शहीद-ग्रंथ-माला

सम्पादक
बनारसीदास चतुर्वेदी

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास

लेखक
मन्मथनाथ गुप्त

१९६०

आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

BHARTIYA KRANTIKARI AANDOLAN KA ITIHAS

by

Manmath Nath Gupta

Rs. 10.00

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	रुपए १०.००
दूसरा संस्करण	:	१९६०
मुद्रक	:	युगीज प्रेस, दिल्ली-६

प्रकाशकीय

'अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा,' 'यश की धरोहर' और 'गरोशशंकर विद्यार्थी'—शहीद-ग्रंथ-माला के ये तीन पुष्प हम पाठकों को भेंट कर चुके हैं। पाठकों और पत्र-पत्रिकाओं ने जिस उत्साह और सहृदयता के साथ इनका स्वागत किया उससे स्पष्ट है कि सर्व-साधारण अपने देश के शहीदों के सम्बन्ध में जानने-पढ़ने को उत्सुक है। अब शहीद-ग्रंथ-माला के चौथे पुष्प के रूप में **'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास'** हम गौरव के साथ पाठकों को भेंट कर रहे हैं।

यह पुस्तक आज से बीस साल पहले प्रकाशित हुई थी और छपते ही सरकार द्वारा जब्त कर ली गई थी। उसी पुस्तक का अब यह नवीन परिवर्द्धित और परिशोधित संस्करण है। श्री मन्मथनाथ गुप्त एक सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी रहे हैं। उन्होंने स्वयं क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय भाग ही नहीं लिया, उनका सभी क्रान्तिकारियों से निकट सम्पर्क भी रहा है। अतः उनसे बढ़कर इस विषय का अधिकारी लेखक और कौन हो सकता है? और यही हमारे लिए गौरव का विषय है कि हम क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक-मात्र प्रामाणिक इतिहास प्रकाशित कर रहे हैं। इस पुस्तक के लिए लेखक ने क्रान्तिकारियों के अनेक ऐसे चित्र भी जुटा दिए हैं जो अन्यत्र सुलभ नहीं हो सकते।

इस लोकप्रिय माला के पाँचवें और छठे पुष्प के रूप में 'गदर-पार्टी का इतिहास' और 'अण्डमान की रामकहानी' भी शीघ्र ही प्रकाश में आएँगी। 'गदर-पार्टी का इतिहास' के लेखक हैं श्री प्रीतमसिंह 'पंछी' और 'अण्डमान की रामकहानी' सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री विजयकुमारसिंह की रचना है।

इस ग्रंथ-माला के अवैतनिक सम्पादक श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी के प्रति धन्यवाद प्रकट करना भी हम अपना परम कर्तव्य समझते हैं क्योंकि उन्होंने ही इस माला के प्रकाशन की योजना हमारे सम्मुख रखी। सामग्री-संकलन और सम्पादन में भी उनका पूर्ण सहयोग हमें मिलता रहता है।

हमारा विश्वास है कि इस माला की पुस्तकें घर-घर में पढ़ी जाएँगी; प्रत्येक संस्था, विद्यालय और पुस्तकालय अपने यहाँ कम-से-कम एक-एक प्रति अवश्य रखेगा।

सम्पादकीय

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास स्वयं एक इतना विस्तृत तथा महत्त्वपूर्ण विषय है कि उस पर किसी ग्रन्थ की रचना एक आदमी की शक्ति के बाहर है, पर चूँकि अपने देश में सामूहिक साहित्यिक यज्ञ की प्रथा अभी अच्छी तरह पनपी नहीं, इसलिए जिनमें धुन और लगन होती है वे अकेले ही उसमें जुट जाते हैं और यथाशक्ति उसे पूरा करने का प्रयत्न भी करते हैं। हाँ, कभी-कभी अनधिकारी व्यक्ति भी ऐसे कामों को हाथ में ले लेते हैं और इन विषयों के प्रति अन्याय भी कर डालते हैं। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि इस ग्रन्थ के लेखक अपने विषय के पूर्ण अधिकारी हैं। वह खून लगाकर शहीद बनने वालों में नहीं, बल्कि उन्होंने अपने जीवन के पूरे बीस वर्ष जेल में बिताए हैं। युवावस्था में ही उन्होंने काकोरी-षड्यन्त्र में भाग लेकर क्रान्ति के प्रति अपनी सच्ची लगन सिद्ध कर दी थी।

श्री मन्मथनाथ जी कठमुल्ले नहीं हैं और उनका दृष्टिकोण पूर्णतया व्यापक तथा सर्वथा वैज्ञानिक है। यह अक्सर देखा गया है कि हिंसात्मक क्रान्ति में विश्वास रखने वाले अहिंसात्मक आन्दोलनों की खिल्ली उड़ाते हैं और अहिंसात्मक दृष्टिकोण रखने वाले हिंसा वालों को हेय दृष्टि से देखते हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन पर समग्र दृष्टि से विचार करने वाले ग्रन्थों की रचना अपने यहाँ अभी तक नहीं हुई। सम्भवत: श्री मन्मथनाथ गुप्त का यह प्रयत्न अपनी तरह का पहला ही है। पारस्परिक अविश्वास की चट्टानों के बीच से उन्होंने अपनी नौका का संचालन बड़ी खूबी के साथ किया है। भले ही कोई उनके निकाले हुए परिणामों से सहमत न हो, पर उन्होंने अपनी अन्तरात्मा के प्रति वफादारी बरती है। उन्होंने जो कुछ लिखा है, दृढ़ विश्वास के साथ लिखा है और यदि काकोरी षड्यन्त्र के समय उनकी उम्र चार-पाँच वर्ष अधिक होती तो उनकी भी गणना 'बिस्मिल' और अशफाक की तरह अमर शहीदों में हो गई होती। क्रान्ति आन्दोलन में उनका सबसे बड़ा

कार्य शायद यही माना जाएगा कि उन्होंने चन्द्रशेखर आजाद को प्रभावित कर अपनी पार्टी में शामिल किया।

यद्यपि क्रान्ति से सम्बन्ध रखने वाला मसाला दिनोंदिन नष्ट होता जा रहा है, फिर भी वह इस समय इतनी मात्रा में विद्यमान है कि उसके आधार पर इस ग्रन्थ के आकार की पाँच जिल्दें तैयार हो सकती थीं, पर इस प्रकार के व्ययसाध्य ग्रन्थ को छपाना आसान नहीं था और छपाने पर उसकी बिक्री भी कठिन होती। इसलिए लेखक को मजबूरन अपनी बात बहुत संक्षेप में कहनी पड़ी है।

यद्यपि हमारे वर्तमान शासक इस विषय में उतने सजग नहीं हैं, जितना कि उनका कर्तव्य था, तथापि जनता की पूरी-पूरी सहानुभूति इस समय भी क्रान्तिकारियों के साथ है और वह उनकी गाथा सुनने के लिए अधिकाधिक उत्सुक है यहाँ तक कि जनसाधारण उनके बारे में कपोलकल्पित रचनाओं का भी स्वागत करते हैं। यह एक बड़ा खतरा है और इसलिए तथ्यपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन और भी अधिक आवश्यक हो गया है। हम लोग श्रीरामलाल पुरी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि उन्होंने आगे बढ़कर इस यज्ञ में हाथ बँटाया है और अपने को सच्चे अर्थों में यजमान सिद्ध कर दिया है।

वह युग शीघ्र ही आने वाला है जबकि इस प्रकार के ग्रन्थ पाठ्य-पुस्तकों में रखे जाएँगे, पर इतनी आशा तो हम अब भी करते हैं कि भिन्न-भिन्न राज्यों की सरकारें शहीद-ग्रन्थ-माला के पुष्पों से अपने विद्यालयों के पुस्तकालयों को सुशोभित करेंगी।

हमें दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी-पाठकों द्वारा इन ग्रन्थों का हार्दिक स्वागत होगा।

९९, नार्थ ऐवेन्यू,
नई दिल्ली
३.८.१९६०

—बनारसीदास चतुर्वेदी

भूमिका

१९५८ में दिल्ली में भारत के जीवित क्रान्तिकारियों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें यह निश्चय किया गया कि भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का सही और विस्तृत इतिहास लिखा जाए। मुझे यह गौरव प्राप्त है कि २० साल पूर्व ही मैंने अपनी क्षुद्र सामर्थ्य के अनुसार क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक इतिहास प्रस्तुत किया था। उस समय एक तरफ स्वतन्त्रता-संग्राम और दूसरी तरफ सरकारी दमन-चक्र तेजी पर था और मेरी पुस्तक फौरन जब्त कर ली गई। इसके बाद कैसे जब्ती हटी और जल्दी-जल्दी इसके चार संस्करण हुए, यह अन्य भूमिकाओं में लिखा गया है।

सम्पूर्ण और विस्तृत इतिहास लिखने के लिए यह जरूरी है कि पहले सारी सामग्री एकत्र की जाए। दुःख की बात है कि हिन्दी में इस सम्बन्ध में बहुत कम पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पर शहीद-ग्रन्थ-माला के रूप में श्रद्धेय श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के संपादन में जो प्रकाशन शुरू हुआ है, वह इस ओर एक बहुत बड़ा कदम है और आशा की जाती है कि इससे हिन्दी-साहित्य का यह अंग पूरा हो जाएगा। जो इतिहास अन्तिम रूप से लिखा जाएगा, उसके लिखे जाने के मार्ग में कई रोड़े हैं, जिसमें से पहला रोड़ा 'सामग्री का अभाव' है तथा दूसरा यह है

कि जो लोग प्रामाणिक सामग्री दे सकते हैं, वे तेजी से हमारे बीच से उठते जा रहे हैं।

एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न इस सम्बन्ध में दृष्टिकोण का है। मैंने तो यह दृष्टिकोण रखा है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का एक अविभाज्य अंश है। कई बार दोनों इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। दो छोटे से उदाहरण यह हैं कि रौलट कमेटी की स्थापना क्रान्तिकारियों को दबाने के लिए हुई पर उसीसे असहयोग आन्दोलन का जन्म हुआ। दूसरा उदाहरण लाला लाजपतराय की मृत्यु के साथ भगत सिंह के कार्य का है। इसी प्रकार इस पुस्तक को पढ़ने के दौरान में पाठकों के मन में बहुत-सी बातें उठेंगी। स्वतन्त्रता-संग्राम पर विचार करते समय हिंसा-अहिंसा का भेद करना बहुत ही मूर्खतापूर्ण है और भविष्य के इतिहासकार कभी इसे प्रश्रय नहीं देंगे।

मैंने केवल क्रान्तिकारियों की वीरता का ही वर्णन नहीं किया है बल्कि यह भी दिखलाया है कि कैसे धीरे-धीरे उनके विचारों में विकास हुआ और अन्त तक वे पूर्ण समाजवाद का आदर्श सामने रखकर चलते रहे। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखने योग्य है कि क्रान्तिकारी जिस आदर्श का प्रतिपादन करते रहे, उसके लगभग २० साल बाद कांग्रेस के नेता उसे अपनाते रहे। इस प्रकार विचारों के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारियों का दान बहुत ही अद्भुत है।

मैंने इस सम्बन्ध में भी बहुत सावधानी बरती है कि बाद के युग में क्रान्तिकारियों ने समाजवाद को अपनाया इसलिए पहले के युग के क्रान्तिकारियों के विचारों या कृत्यों की किसी प्रकार बेकद्री या अवमूल्यन न किया जाए। सच तो यह है कि इस प्रकार का कठमुल्लापन इतिहास-लेखन को उस रोमांस से वंचित कर देता है जो उसमें अन्तर्निहित है और जिसके कारण उसकी दिलचस्पी बढ़ती है।

मेरा यह भी दावा है कि यद्यपि इस पुस्तक में कई घटनाएँ तथा व्यक्तियों के नाम छूट गए होंगे (यह तो अनिवार्य है) फिर भी सब धाराओं और सब मुख्य घटनाओं के सम्बन्ध में एक सिलसिलेवार अध्ययन पेश किया गया है। मैं अपने क्रान्तिकारी मित्रों तथा सभी पाठकों से यह आशा करूँगा कि वे इस पुस्तक की

कमियों को दूर करने में हमें मदद दें और छूटे हुए तथ्यों से अवगत कराएँ।

पहले भाग में इतिहास को १९३५ तक लाकर छोड़ दिया गया था। अगले भाग में १९४२ का विद्रोह, आजाद हिन्द फौज, नौ-सैनिक विद्रोह आदि का वर्णन था। अब तो दोनों भाग पहली बार एक साथ एक जिल्द में प्रकाशित हो रहे हैं। यह उचित ही है। मैं अब यह नहीं मानता कि १९३५ के लगभग क्रान्तिकारी आन्दोलन समाप्त हो गया जैसा कि १९३९ में इस ग्रन्थ को पहली बार प्रकाशित करते समय मुझे लगा था। १९४२ का आन्दोलन गांधीवादी परम्परा का आन्दोलन नहीं था और गांधीजी ने स्वयं उसकी बहुत निन्दा की थी। असल में १९४२ का विद्रोह एक तरफ क्रान्तिकारी आन्दोलन से ही उद्भूत था और दूसरी तरफ वह गांधीवादी जन-आन्दोलन से सम्बद्ध था। आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं है। पर इन तर्कों को यहाँ दूर तक ले जाने की जरूरत नहीं।

१९३९ में मैं इस ग्रंथ के सम्बन्ध में जो भावना लेकर चला था, वह उस समय लिखे हुए इन शब्दों से स्पष्ट है जिन्हें मैं हुबहू उद्धृत कर रहा हूँ—

"भारतीय क्रान्ति-प्रचेष्टा के सनसनीभरे इतिहास की भूमिका मैं किन शब्दों में लिखूँ कुछ समझ में नहीं आता। मुझे तो बार-बार इन शहीदों की—वीरों की—सिर पर कफन बाँधकर निकले हुए अलमस्तों की कहानी लिखते-लिखते यह इच्छा हुई है कि मैं लेखनी पटक दूँ, और निकल पड़ूँ...... इन शहीदों के इतिहास को मैंने वर्षों तक मनन किया है, लिखते-लिखते बार-बार मैं लेखनी रोककर सोचता रहा। लेखनी चलाना यह मेरा काम नहीं है, मैं शायद अपना Vocation miss कर रहा हूँ। मेरे समय का उपयोग तो कुछ और ही होना चाहिए। जमाने का यही तकाजा है, शहीदों का यही संदेश है। मैं मानता हूँ लेखनी—यदि वह एक क्रान्तिकारी की लेखनी है और यदि वह उसी इस्पात से ढाली गई है जिससे भगतसिंह, आजाद, सोहनलाल, करतारसिंह की पिस्तौलें ढाली गई थीं, तो वह साम्राज्यवाद के लिए एक बहुत ही खतरनाक चीज हो सकती है। फिर भी लिखते-लिखते बार-बार लेखनी पर मेरी वितृष्णा हो गई है, मेरे हृदय के भाव उससे व्यक्त कहाँ होते हैं, एक बेताबी ने मुझ पर अधिकार जमा लिया है, और मेरी कहानी रुक-रुक गई है। शायद इस प्रकार की बेताबी में जो चीज

लिखी गई है वह इतिहास की मर्यादा नहीं प्राप्त करेगी, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी भावी पीढ़ियों को निर्माण करने में यह कहानी उसी प्रकार सहायक होगी जिस प्रकार लोरियाँ बच्चों को वीर बनाने में होती हैं। मैं चाहता हूँ देश के नौजवान इस कहानी के साये में पलें, वे इसी को ओढ़ें और बिछाएँ, इसी में उनका कल्याण है, इसी में मेरे लेखनी धारण की सार्थकता तथा पुरस्कार है।

"मेरी पुस्तक में सब क्रान्तिकारी मुकदमों का इतिहास नहीं आया होगा, विपुल तथ्यों का ढेर लगाकर पाठकों को घबरा देने से मेरी कहानी बदमजा हो जाती, फिर भी मैंने सब झुकाव तथा मनोवृत्तियों के साथ न्याय किया है ऐसा मेरा विश्वास है। असल में इतिहास का अर्थ भी यही है कि झुकावों (Trends) के साथ न्याय किया जाए, न कि यह कि सब तथ्यों को लाकर इकट्ठा कर दिया जाए। इसके अतिरिक्त सिलसिला ही इतिहास का प्राण है, निर्जीव तथ्यों का संग्रह इतिहास नहीं कहा जा सकता। अन्त में मैं यह मानता हूँ कि यह पुस्तक एक उद्देश्य लेकर ही लिखी गई है, वह उद्देश्य है क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में एक वैज्ञानिक समझदारी पैदा करना, ताकि भविष्य का क्रान्तिकारी आन्दोलन ठीक रास्ते पर चलाया जा सके।"

१९४६ में मेरी क्या भावना थी, वह इन शब्दों से स्पष्ट है, जो उन्हीं दिनों लिखे गए थे—

"जिस पुस्तक का प्रकाशन के साल ही दूसरा और शायद तीसरा संस्करण हो जाता, कुछ घटनाचक्र ऐसा पड़ा कि आज सात साल बाद उसके दूसरे संस्करण की नौबत आई है। बात यह है कि प्रकाशित होने के तीन महीने के अन्दर ही यह पुस्तक तथा मेरी एक अन्य पुस्तक 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन और राष्ट्रीय विकास' प्रथम यू० पी० तथा बिहार कांग्रेस मन्त्रिमण्डल (१९३७-३९) द्वारा जब्त कर ली गई थीं। खुशी की बात है कि अबकी बार की कांग्रेस सरकारों ने ही इनकी जब्ती हटा ली है।

"१९४२ की क्रान्ति ने कांग्रेस जनों में जो परिवर्तन किया है, वही इसका कारण है। कुछ भी हो हम इसके लिए यू० पी० तथा बिहार की कांग्रेस सरकारों को धन्यवाद देते हैं। बिहार की कांग्रेस सरकार ने यू० पी० की कांग्रेस सरकार

की देखादेखी इस पुस्तक को जब्त किया था, और जब यहाँ की सरकार ने वह जब्ती मंसूख कर दी तो बिहार की सरकार ने भी उसे मंसूख कर दिया।

"जब्त होने पर भी गत सालों में इस पुस्तक का बहुत प्रचार हुआ। एक-एक प्रति को सैंकड़ों ने पढ़ा, और हजारों तो नाम सुनकर ही रह गए। इस पुस्तक का उद्देश्य आतंकवाद का पुनरुज्जीवन नहीं है, जैसा कि अंतिम अध्याय को पढ़ने से ज्ञात होगा। कोई भी आन्दोलन आता है तो अपने ऐतिहासिक उद्देश्य को सिद्ध कर चला जाता है। उस ऐतिहासिक उद्देश्य का उद्‌घाटन करने का अर्थ यह नहीं है कि उसका पुनरुज्जीवन हो। यदि उसका समय निकल गया है तो उसका पुनरुज्जीवन अवांछनीय तथा असम्भव है।

"इन सात सालों में 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का इतिहास' में नए अध्याय जुड़ चुके हैं, किन्तु यह सोचा गया कि इस पुस्तक को ज्यों का त्यों रखा जाए, और उसका एक दूसरा भाग निकालकर सशस्त्र क्रान्ति के इतिहास को आज तक ला दिया जाए। इसलिए इसका एक दूसरा भाग भी निकाला गया है, जिसमें १६४२ तथा आजाद हिंद फौज का इतिहास आ गया है। इस प्रकार दोनों भागों में यह पुस्तक पूरे क्रान्तिकारी आन्दोलन का विशद् इतिहास हो जाएगा। बाजार में ऐसी कोई पुस्तक नहीं है, जिसका दायरा इतना विस्तृत हो।"

फिर एक बार मैं इस ग्रन्थ-माला के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने यह ग्रन्थ-माला शुरू कर शहीदों की स्मृति-रक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़े कार्य का सूत्रपात किया है।

१६०, खैबरपास होस्टल
दिल्ली-८

—मन्मथनाथ गुप्त

१

क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात

भारत कैसे पराधीन हुआ ?—भारतवर्ष एक दिन में अंग्रेजों के अधीन नहीं हुआ था; करीब एक सौ साल के षडयन्त्र, कूटनीति तथा विश्वासघात के बाद हिन्दुस्तान में ब्रिटिश झंडा स्वतंत्रतापूर्वक फहरा सका था। १७५७ ई० में पलासी के मैदान में भारतवर्ष की स्वाधीनता हर ली गई, जो ऐसा समझते हैं, वे गलती करते हैं। पलासी तो केवल उस विराट षडयन्त्र का, जिसके फलस्वरूप भारतवासी ब्रिटिश गुलामी की जंजीरों में जकड़े गये, एक वार मात्र था। यह बात भी गलत है कि अंग्रेजों ने तलवार के जोर से ही हिन्दुस्तान को जीता। सत्य तो यह है कि हिन्दुस्तान मक्कारी और षडयन्त्र से जीता गया, और आवश्यकता पड़ने पर कभी-कभी तलवार भी काम में लाई गई थी।

भारत की पराधीनता का सारा दोष अंग्रेजों के सिर पर मढ़ देना गलत है। कोई भी पद्धति जब तक भीतर से सड़ती नहीं, तब तक केवल बाहर के आघातों से गिर नहीं सकती। औरङ्गजेब के शासन-काल में ही मुगल साम्राज्य का पलस्तर जहाँ-तहाँ से उखड़ने लगा था। उस समय सर्वत्र ऐसी शक्तियाँ पैदा हो चुकी थीं, जो मुगल साम्राज्य को मिटाने की शक्ति तो रखती थीं, पर स्वयं निर्माण की कोई शक्ति रखती थीं या नहीं इसमें सन्देह है। जो कुछ भी हो इतना तो सत्य है कि उन्हें मौका नहीं मिला। बाहर से उस समय के जगत की औद्योगिक रूप से सब से उन्नत शक्ति ब्रिटिश साम्राज्यवाद बीच में कूद पड़ी। इसके पास उन्नत ढंग के अस्त्र थे, उन्नतिशील तथा विकासमान पूँजीवाद का संगठन था, जो भारत के सामन्तवादी संगठन से कहीं मजबूत था, और सबसे बढ़कर जो बात थी, वह यह थी कि उनमें नवीन राष्ट्रीय भावनाओं (चाहे उनका रूप शोषक तथा गलत ही हो) का उदय हो चुका था, जिन से बिखरने की शक्तियों के लिये कम गुंजाइश थी। यह यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं कि यह नवीन राष्ट्रीयता पूँजीवाद की ही उपज थी।

कई साम्राज्य-विरोधी प्रयास—भारतवर्ष में ब्रिटिश झण्डे का सिक्का जमते-जमते जमा, किन्तु उधर उसको उखाड़ने के लिए भी कुछ शक्तियाँ जी-जान से काम करने लगी थीं।

१८५६ के मार्च तक ब्रिटिश सत्ता भारत में अपने पूर्ण विकास को पहुँच चुकी थी। पर यह न समझा जाय कि इस बीच में जीते हुए राज्यों में कोई विद्रोह नहीं हुआ। पलासी के कुछ सालों के अन्दर १७६४ में बंगाल सेना में काफी व्यापक विद्रोह हुआ था। यह विद्रोह कुछ नये फौजी नियमों के विरुद्ध हुआ था। इन लोगों की माँग यह थी कि ये नियम बदल दिये जायँ। ये लोग पहले हथियारबन्द विद्रोह की तरफ नहीं गये, बल्कि इन्होंने एक तरह से हड़ताल कर दी थी। पर मेजर मनरो को जब उनके इस प्रतिवाद का पता लगा तो जल्दी से बाँकीपुर से छपरा में पहुँच गये, और उन्होंने गोरे सैनिकों के साथ विद्रोही सैनिकों पर हमला कर दिया। फिर तो इन विद्रोहियों में से जो हाथ आये, उनको तोप से उड़ा दिया गया। उस विद्रोह का इतिहास कप्तान ब्रूम नामक अंग्रेज अफसर ने अपनी 'बंगाल आर्मी' नामक पुस्तक में बड़े गर्व के साथ लिखा है। सैनिकों का क्या वक्तव्य था यह तो इतिहास को कभी पता ही नहीं लगेगा।

१७९५ का सिपाही-विद्रोह—इसी प्रकार १७९५ में एक अन्य सिपाही-विद्रोह का पता लगता है। इसकी कहानी पुराने कलकत्ता गजट के पृष्ठों में छिपी हुई है। उस जमाने में यूरोप में नेपोलियन और अंग्रेजों में युद्ध चल रहा था। अभी-अभी नेपोलियन रंगमंच पर आये थे। उनके सामने फ्रेंच-प्रजातन्त्र के दुश्मनों की धज्जियाँ उड़ती जा रही थीं। ऐसे ही समय में ३ सितम्बर को बंगाल आर्मी के पन्द्रहवें बटालियन को यह हुक्म दिया गया कि वह फौरन तमलूक रवाना हो जाय, वहाँ पर जहाज तैयार थे। उनको जहाज पर डचों के साथ लड़ने के लिए जाना था। बटालियन तमलूक तक तो चला गया, पर वहाँ जा कर उसने जहाज पर चढ़ने से इनकार कर दिया। गोरे सेनापति ने यह आज्ञा दी कि यह बटालियन तोड़ दिया जाय, इसका झण्डा जला दिया जाय, सब सैनिकों को कोर्ट मार्शल किया जाय। कोर्ट मार्शल में यह तय हुआ कि विद्रोहियों के नेता रघुनाथसिंह उमरावगिर, यूसुफ खाँ आदि को तोप के मुँह पर बाँध

कर उड़ा दिया जाय। अन्य सिपाहियों को एक-एक करके बर्खास्त कर दिया गया। तब से पन्द्रहवाँ बटालियन खतम कर दिया गया। सिटनकार ने कलकत्ता गजट के जो संक्षिप्त सार तैयार किये हैं उसी के दूसरे खण्ड में इस सिपाही विद्रोह का विवरण है।

बेल्लोर का विद्रोह—इसी प्रकार उन्नीसवीं सदी में १८५७ के पहले ही कई और सिपाही-विद्रोहों का पता लगता है। १८०६ में बेल्लोर में मद्रास आर्मी में देशी सेना ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह ने इतना व्यापक रूप धारण किया कि इसी के कारण कहा जाता है कि लार्ड विलियम बेंटिंक की नौकरी गयी। बाद को बेंटिक ने अपनी सफाई देते हुए कहा कि यह विद्रोह उनके कुशासन के विरुद्ध नहीं था बल्कि वर्षों से मुसलमानों में विद्रोह की जो आग भड़क रही थी यह उसी का परिणाम था। पर यह बात गलत थी। जैसा कि लार्ड बेंटिक ने खुद ही १८०७ की ८ जनवरी के मिनिट में माना है, बाद को यह विद्रोह नन्दी दुर्ग, संकरी दुर्ग आदि जिन स्थानों में फैल गया, वहाँ फिर हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न नहीं रहा। सभी धर्म के सैनिक एक होकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे।

सिपाही-विद्रोह के दो साल पहले भी निजाम की फौज की तृतीय घुड़सवार सेना ने १८५५ के २१ सितम्बर को विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया। फौज के अध्यक्ष ब्रिगेडियर मैकेन्जी के शरीर पर दस घाव आये, और वे किसी तरह जान लेकर भागे। विद्रोहियों ने उनका घर लूट लिया। इस विद्रोह के नेता भी मुसलमान थे[1]।

अरब में वहाबी आन्दोलन—अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध इस बीच में केवल सैनिक विद्रोह ही हुए यह बात नहीं। अन्य कई तरह के सार्वजनिक विद्रोह की चेष्टा हुई। इन विद्रोहों में वहाबियों का विद्रोह विशेष उल्लेख योग्य है। १८ वीं सदी में अरब में मुहम्मद अब्दुल वहाब के नेतृत्व में वहाबी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। अरब के नेजद शहर में उनका जन्म हुआ था। मक्का और

---

१. इन विद्रोहों का विवरण श्री निवारण चक्रवर्ती के बंगला लेख से संकलित है।

मदीना में पढ़ने के बाद वह और आगे पढ़ने के लिए शाम चले गये। वहाँ पर उन्होंने एक तो धर्म के नाम पर होनेवाले अनाचारों के विरुद्ध आवाज उठायी। दूसरे तुर्की शासन के विरुद्ध भी उन्होंने आन्दोलन किया। इस प्रकार वहाबी सम्प्रदाय एक सम्पूर्ण रूप से विद्रोही समूह था। यह सम्प्रदाय अरब के बाहर भी फैला।

सैयद अहमद वहाबी—सैयद अहमद नामक एक मुसलमान ने भारतवर्ष में वहाबी आन्दोलन का प्रचार किया। वे बरैली के रहनेवाले थे। वे धर्म-प्रचार करते हुए घूमने लगे, और हर जगह यह कहने लगे कि विदेशियों ने उनके पाक मजहब पर हमला किया है, यदि इन्हें खतम नहीं किया गया तो मजहब की कुशल नहीं है।

तीतू मियाँ—बंगाल के प्रसिद्ध पहलवान तीतू मियाँ अपने इर्द-गिर्द के लोगों में एक सरकश व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे। बारासत जिला के हृदयपुर में उनका घर था। जब जमींदारों में लड़ाई होती थी, तब तीतू मियाँ जिसकी तरफ हो जाते थे, उसी की जीत होती थी। इस प्रकार तीतू एक साधारण लड़ैया मात्र थे, पर उस जमाने में सभी सामन्त इसी प्रकार के होते थे, इस बात को जब हम याद रखेंगे तो उनके लिए केवल लड़ैया शब्द का प्रयोग अनुचित होगा। इसी प्रकार के एक झगड़े में तीतू मियाँ को एक बार जेल की हवा खानी पड़ी। जेल से निकलकर वे हज करने गये, तो उनके साथ सैयद अहमद की भेंट हो गयी। बस फिर क्या था, वे लौटकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का प्रचार करने लगे।

वहाबियों का ब्रिटिश-विरोध—वहाबियों के भड़काने पर सरहदी जातियों ने बार-बार अंग्रेजों पर हमला किया। अम्बाला की घाटी में अंग्रेजों के साथ वहाबियों की एक लड़ाई हुई, जिसमें न केवल सरहदी जाति के लोग थे बल्कि दक्षिण बंगाल के कुछ गरीब किसान भी उसमें भाग लेने के लिये गये थे।

किसान-विद्रोह के उपादान—उधर बंगाल में तीतू मियाँ के नेतृत्व में जो आन्दोलन चला, उसने अंग्रेजों के विरोध के साथ-साथ किसान विद्रोह का रूप धारण किया। जब वहाबियों की संख्या बढ़ने लगी, और उनमें लोग धड़ाधड़ भर्ती होने लगे, तो जमींदार इस बात पर इतने नाराज हुए कि उन्होंने इन को

सजा देनी चाही। इन जमींदारों ने वहाबी किसानों पर एक विशेष कर लगाना चाहा। इस पर तीतू मियाँ के नेतृत्व में इच्छामति नदी के किनारे एक विद्रोह के होने का पता मिलता है।

शरीयतुल्ला और दूदू मियाँ—फरीदपुर में भी वहाबी नेता शरीयतुल्ला तथा उनके पुत्र दूदू मियाँ के नेतृत्व में एक विद्रोही गिरोह खड़ा हो गया था। इस गिरोह का नाम फर्ज था। तीतू मियाँ तथा शरीयतुल्ला के नेतृत्व में जो आन्दोलन हुए, उन्होंने मिलकर विद्रोह आन्दोलन को पुष्ट किया। कई जगह पर सरकारी फौजों और इन लोगों में खंड युद्ध हुए। कहा जाता है कि कुछ समय के लिये चौबीस परगना, नदिया और फरीदपुर पर इनका दबदबा इतना छा गया था कि इन स्थानों में अंग्रेजी राज्य खतम-सा हो गया था। इस आन्दोलन का विस्तृत इतिहास अभी लिखा नहीं गया है।

१८५७ ई० में जो विद्रोह हुआ, उसको बहुत से लोग भारतीय स्वाधीनता का युद्ध मानने से इनकार करते हैं। इस बात में तो कोई सन्देह नहीं कि जिन दलों के प्रयत्नों के फलस्वरूप गदर की लपट फैल गयी थी, उन सबका एक उद्देश्य इतना ही होने पर भी कि हिन्दुस्तान से फिरङ्गियों के पैर उखड़ जायँ, उन सब के अन्तिम ध्येय में कोई समता नहीं थी। कोई कुछ चाहता था, कोई कुछ। गदर का सफल होना प्रगतिशीलता के हक में अच्छा होता या बुरा, इसमें भी सन्देह प्रकट किया जाता है; क्योंकि गदर सफल होने का अर्थ होता कि पाश्चात्य देशों में पूँजीवादी क्रांतियाँ होने पर जिस सामन्तवाद का पैर उखड़ रहा था; उसकी भारत में पुनः स्थापना होती, पर उसकी ज्यों की त्यों पुनः स्थापना तो किसी भी अवस्था में संभव नहीं थी। इसके साथ ही यह भी जोर के साथ नहीं कहा जा सकता कि देशी सामन्तवाद देशी पूँजीवाद के सामने बहुत दिन टिकता; क्योंकि देशी पूँजीवाद को भी पनपना ही था। फिर यह बात भी है कि विद्रोह के पीछे प्रतिक्रियावादी तथा देश को सामन्तवादी युग में लौटा ले जानेवाली जो भावनाएँ थीं, वे कुछ भी हों (Subjective) कारण-रूप थीं, उनका (Objective) कार्य-रूप परिणाम, बहुत सम्भव है, और होती ही! इतिहास में इसके सैकड़ों उदाहरण हैं कि किसी आन्दोलन के संचालकों के मन की कारण-रूप भावना और होते हुए भी एक आन्दोलत के कार्य-रूप परि-

णाम कुछ और ही हुए । हम इसलिए विद्रोह को एक साम्राज्यवाद-विरोधी कार्य ही कहेंगे । सच बात तो यह है कि गदर के नेताओं का आपस में कुछ और अधिक सहयोग होता, तो बहुत सम्भव है, भारत से ब्रिटिश साम्राज्यवाद का खेमा उखड़ जाता । इस दृष्टि से हम इसे निश्चित रूप से एक क्रान्तिकारी प्रयास मानते हैं ।

सामन्तवाद और पूँजीवाद की दोस्ती—गदर को जिस बर्बरता के साथ दबाया गया, उसके सामने चीन में होनेवाले जापानियों के तथा रूस पर किये गये नात्सियों के अत्याचार फीके पड़ जाते हैं । साम्राज्यवाद पूँजीवाद का सबसे विकसित रूप है, इस बात का सबसे जीता-जागता प्रमाण इससे मिलेगा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने पैरों को दृढ़ता के साथ जमाने के लिए अनेकों अमानुषिक उपायों द्वारा यहाँ के घरेलू धन्धों तथा छोटे धन्धों का नाश कर ब्रिटिश पूँजीवाद के लिए पथ प्रशस्त कर दिया; पहले पहल ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने यह सोचा कि यहाँ केवल साम्राज्यवाद का ही बोल-बाला रहेगा, किन्तु विरोधी परिस्थितियों के कारण ब्रिटेन ने कुछ और ही सीखा । फलस्वरूप भारतीय सामन्तवाद और ब्रिटिश पूँजीवाद के सबसे विकसित रूप ब्रिटिश साम्राज्यवाद में दोस्ती हो गई । यह एक अजीब बात है । विपत्ति में अजीब-अजीब गठबन्धन होते हैं ।

पूँजीवाद के साथ राष्ट्रीयता का जन्म—गदर अमानुषिक अत्याचारों द्वारा दबा जरूर दिया गया, किन्तु इस का अर्थ यह नहीं कि भारतवासी दब गये । सच्ची बात तो यह है इन अत्याचारों से भारतवासी 'भारतवासी' हो गये । पहले वे अपने क्षुद्र स्वार्थों, सम्प्रदायों, बहुत हुआ प्रान्तों की दृष्टि से सोचते थे; किन्तु अब वे कुछ-कुछ अखिल भारतीय दृष्टि से सोचने लगे । जब ब्रिटेन ने इन अत्याचारों के युग में उन लोगों को, जो अपने को शेर समझते थे, तथा उन लोगों को जिनको लोग आमतौर से बकरी समझते थे, एक ही तलवार के घाट में पानी पिलाया, अपमान किया, लांछित किया, तो उन सबके कान खड़े हो गये । आपस की दुश्मनी भुलाकर भारत के सभी वर्ग अंग्रेजों को सार्वजनिक दुश्मन समझने लगे । यहीं से उस भावना का सूत्रपात होता है, जिसको हम भारतीयता या देशभक्ति कह सकते हैं । यह बात यहाँ पर स्मरण रखने योग्य

है कि इस अखिल-भारतीय देशभक्ति की नींव बहुत कुछ ब्रिटिश-द्वेष पर थी, तथा इसकी मनोवैज्ञानिक नींव में उन अत्याचारों की याद भी थी, जो गदर में किये गये थे। भारतीय क्रान्ति आन्दोलन के उद्‌भव को समझने के लिए इस बात को समझना बहुत आवश्यक है।

बीज काम करने लगा—क्रान्तिकारी आन्दोलन ठीक-ठीक किस समय प्रारम्भ होता है, यह कहना कठिन है; क्योंकि बीज हमेशा मिट्टी के नीचे काम करता है। जब वह अंकुर के रूप में प्रकट होता है, तभी हम जान पाते हैं कि वह अब तक नीचे-ही-नीचे कार्य करता रहा। गदर के बाद कितने ही गिरोह ऐसे आये और गये, जो ब्रिटिश सत्ता को मिटाने के लिए गुप्त रूप से प्रयत्न करते रहे, किन्तु उनकी योजनाएँ कल्पना में ही रह गईं। वे कार्यरूप में परिणत न हो सकीं। कम-से-कम इतिहास को इनका कोई निश्चित पता नहीं है। कूका विद्रोह की बात हम छोड़ देते हैं, उस विद्रोह का दृष्टिकोण अखिल-भारतीय था या नहीं, इसमें संदेह है।

केशवचन्द्र—१८५७ की असफल क्रान्ति तथा १८८५ में काँग्रेस की स्थापना के बीच भारत में जो घटनाएँ हुईं, तथा जिस प्रकार के आन्दोलन चले, वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ हम उनका केवल संक्षेप में ही उल्लेख कर सकते हैं। १८६० के लगभग श्री केशवचन्द्र सेन का उदय हुआ। इन्होंने अपने कार्यों को सामाजिक तथा धार्मिक पुनरुत्थान तक सीमित रक्खा, पर उनके ओजस्वी व्याख्यानों तथा लेखों से देश में जागृति फैली।

स्वामी दयानन्द—स्वामी दयानन्द ने १८७५ में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। उनके अनुसार वेदों का युग आदर्श युग था, और उनमें प्रतिपादित ज्ञान ही सब से ऊँचा ज्ञान है। पुनरुज्जीवनवाद का यह विशुद्ध रूप था, पर यह उतना विशुद्ध नहीं था जितना कि प्रथम दृष्टि में ज्ञात होता है, क्योंकि स्वामी जी ने वेदों की नई व्याख्या की और इस प्रकार इस नई व्याख्या की साँस से कुछ नये विचार घुस आये जिनका वेदों में होना सम्भव नहीं था।

रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द—रामकृष्ण परमहंस तथा बाद को चलकर उनके शिष्य विवेकानन्द ने साम्राज्यवाद के द्वारा कुचले हुए भारतीय आत्मसम्मान को पुनः स्थापित करने में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। गोरे काले

का भेद, आर्थिक शोषण, दुर्भिक्ष, फूट, सामाजिक कुप्रथाओं ने भारतीयों को बिल्कुल दुर्बल कर रखा था। ऐसे समय में इन सुधारकों ने भारतीयों को यह वाणी सुनायी कि नहीं तुम ऊपर उठ सकते हो। किसी ने कहा, तुम्हारा धर्म और संस्कृति औरों के बराबर है, किसी ने कहा, तुम्हारा धर्म तथा सस्कृति सबसे ऊँची है। विवेकानन्द और केशवचन्द्र ने विदेशों में जाकर यह प्रमाणित कर दिया कि यहाँ के लोग इतने तुच्छ नहीं हैं, जितना वे अपने को समझते हैं। दुनिया भी उनसे सीख सकती है। हम धर्म को मानें या न मानें यह मानना पड़ेगा कि इन सुधारकों ने भारतीयों में एक नयी जान फूंक दी। पददलित तथा पराधीन भारवासियों ने इनके मुँह से धर्म के रूप में ही सही नवीन युग की नयी वाणी सुनी। इन लोगों ने अपने-अपने ढंग के लोगों का आत्मविश्वास बढ़ाया। उन लोगों ने अपने-अपने युग में बड़ा कार्य किया।

पर उद्भूत राष्ट्रीयता साम्प्रदायिक—यह सब तो हुआ, पर साथ ही ये लोग हिन्दू थे, इनकी भाषा हिन्दू थी, इनके व्याख्यानों में ऐसे दृष्टान्त तथा ऐसे युगों का उल्लेख रहता था जिसे हिन्दू ही समझ सकते थे। नतीजा यह हुआ कि इनकी वाणियों से पुष्ट होकर जो राष्ट्रीयता बनी, उसका रूप बहुत कुछ हिन्दू हो गया।

यह बहुत ही बुरा हुआ क्योंकि यहीं से जिन्ना की राजनीति के लिये मानो गुंजाइश पैदा हो गई। नेशनल मोहमडन एसोसिएशन तथा अलीगढ़ कालेज की स्थापना (२४ मई १८७४) को इसी ओर प्रवृत्ति कहा जा सकता है।

इन सब प्रवृत्तियों का जो परिणाम हुआ उसे मैं अपनी पुस्तक "राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास" से उद्धृत करूंगा।

राममोहन, केशवचन्द्र, दयानन्द, परमहंस रामकृष्ण आदि नेताओं ने तथा हिन्दू मेला आदि संस्थाओं ने हिन्दूओं में जिस राष्ट्रीयता को जन्म दिया था, यह स्पष्ट है कि उसमें मुसलमानों का कोई स्थान नहीं हो सकता था। उधर नौकरियों के तथा शिक्षा के क्षेत्र में मुसलमानों का पिछड़ा हुआ होना तो एक कारण था ही। जब हिन्दू अपनी नवजाग्रत चेतना में जोर पहुँचाने के लिये राजपूतों के इतिहास, सिखों के इतिहास तथा शिवाजी आदि से अनुप्रेरणा लेते थे, तो उसमें भी मुसलमानों का कोई स्थान नहीं हो सकता था। मुसलमान स्वाभा-

विक रूप से कथित मुस्लिम काल की ओर ताकने लगे, साथ ही उन्होंने भारत के बाहर इस्लाम की तरफ भी निगाह डाली। इस प्रकार शुरू से ही कई ऐतिहासिक कारणों से जिनमें तृतीय शक्ति के द्वारा भड़काया जाना भी एक मुख्य कारण था, हिन्दू राष्ट्रीयता तथा मुसलमानों की मनोवृत्ति ने विभिन्नमुखी दिशायें लीं। यह कहना मूर्खता होगी कि हिन्दुओं की राष्ट्रीयता जिस तरह उत्पन्न हुई और बढ़ी, वह दूसरे तरीके से हो सकती थी। यह सब कल्पना में ठीक है, पर जिस तरह शक्तियों ने अपना विकास किया, उसमें इस प्रकार के अटकलपच्चू की कोई गुंजाइश नहीं है। सैकड़ों वर्षों के इतिहास के कारण इस प्रकार दो दृष्टिकोण बन गये। इसमें सन्देह नहीं कि प्रारम्भिक युग में राष्ट्रीयता ने धर्म की आड़ में बल्कि धर्म से अनुप्रेरणा लेकर उन्नति की। यह अनिवार्य था। पर साथ ही इसने भविष्य के लिये एक समस्या की भी सृष्टि कर दी।

प्रथम क्रान्तिकारी मुसलमान—वहाबीगण अंग्रेजों को भारतवर्ष से निकालने के पक्षपाती थे। १८५७ के विद्रोह की असफलता के बाद भी वे बराबर छुटपुट रूप में अपना कार्य करते रहे। पटना में इन दिनों उनका प्रधान केन्द्र था। १८७१ में उनके नेता अमीर खाँ को १८१८ के रेगुलेशन तीन के अनुसार नजरबन्द कर दिया गया। वहाबियों ने इस पर बम्बई के प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर एनेस्टी को कलकत्ता लाकर इस नजरबन्दी के विरुद्ध अपील की और यह कहा कि यदि अमीर खाँ ने कोई अपराध किया है तो उसका फैसला खुली अदालत में होना चाहिए। मिस्टर एनेस्टी ने अपनी पैरवी के दौरान में लार्ड मेयो के जमाने में जो ज्यादतियाँ हुई थीं, उनका उल्लेख किया। उनकी यह वक्तृता बिलकुल राजनैतिक रही और वहाबियों ने इसे पुस्तिका के रूप में छपवा कर बटवा दिया। न्यायाधीश नौरमेन के सामने यह मुकदमा पेश था। मिस्टर एनेस्टी की योग्यतापूर्ण वकालत के बावजूद यह मुकदमा खारिज हो गया।

अब्दुल्ला और शेरअली—वहाबियों ने इस बात को यों ही ग्रहण नहीं किया, और अब्दुल्ला नामक वहाबी ने मिस्टर नौरमेन पर छुरे से हमला कर दिया। वे उसी रात को मर गये। अब्दुल्ला को इस सम्बन्ध में फाँसी हुई, पर गोरे उससे इतने नाराज हुए थे कि फाँसी के बाद उसकी लाश को कब्र

देने के बजाय उसे जला दिया। इसी के बाद १८७२ की ८ फरवरी को जिस समय लार्ड मेयो अण्डमन का दौरा करने गये थे, उसी समय शेरअली नामक एक वहाबी ने उन्हें मार डाला। यह शेरअली खैबरघाटी का रहनेवाला था, और मामूली इतिहासों में शेरअली को एक मामूली अपराधी के रूप में दिखाया जाता है, पर वह वहाबी था, और उसका उद्देश्य राजनीतिक था। कुछ भी हो, यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात अब्दुल्ला और शेरअली ने किया।

विभिन्न गुप्त समितियाँ—उस युग में मेजिनी और गैरीबाल्डी का भारतीय देशभक्तों पर बड़ा भारी असर पडा। यहाँ तक कि ठाकुर खानदान के लोग भी गुप्त समिति बना-बनाकर बैठ गये। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी आत्मकथा में एक इसी प्रकार की गुप्त समिति का उल्लेख किया है जिसके सभापति राजनारायण वसु थे, और ज्योतिरिन्द्रनाथ इसके मन्त्री थे। इससे ज्ञात होता है कि उन दिनों लोगों में जोश कितना बढ़ा हुआ था। इसी सिलसिले में यह भी पता चलता है कि श्री शिवनाथ शास्त्री के नेतृत्व में भी एक गुप्त समिति बनी थी। जिस समय यह समिति बनी थी, उस समय शास्त्री जी सरकारी नौकर थे। उन्हीं के घर में समिति का अधिवेशन हुआ करता था। एक दिन लोगों का यह ख्याल आया कि इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि कोई भी सरकारी नौकरी नहीं करेगा। तदनुसार एक अग्निकुण्ड जलाया गया पर उसके सामने लोग इस प्रतिज्ञा को ग्रहण नहीं कर सके। उन्होंने फिर भी अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब ये लोग ईश्वर का नाम कीर्तन करते हुए अग्निकुण्ड की चारों ओर प्रदक्षिणा करने लगे तो मेरे अन्दर एक अपूर्व बल तथा निश्चय का संचार हुआ। इसके कुछ ही दिनों बाद शिवनाथ शास्त्री ने नौकरी छोड़ दी। शिवनाथ शास्त्री के नेतृत्व में यह जो समिति स्थापित हुई थी, उसकी विशेषता यह रही है कि इस समिति के लोग राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ समाज तथा धर्म के सम्बन्ध में भी प्रगतिशील विचार रखते थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि ये लोग सामाजिक तथा धार्मिक मामलों में ब्रह्म समाज के उन्नत विचारों से प्रभावित थे। श्री विपिनचन्द्र पाल इस समिति के सदस्य थे। यह समिति १८७६ में स्थापित

हुई थी ।

समितियों का अर्थ—इन समितियों ने कोई विशेष कार्य नहीं किया। ये लोग जिस कदम को उठा चुके थे, उसके तार्किक परिणाम तक नहीं गये, एक तो उन्हें वह तार्किक परिणाम क्या है यह शायद मालूम नहीं हो सकता था, और दूसरा यदि मालूम था तो उस तक जाने की प्रवृत्ति या साहस उनमें शायद नहीं था, फिर भी ये समितियाँ इस बात को बताती हैं कि किस प्रकार इस युग में वह तबका भी जो तुलनात्मक रूप से सुखी था, तथा जिसे कोई विशेष कष्ट नहीं था, अंग्रेजों के विरुद्ध होता जा रहा था ।

काँग्रेस का जन्म—सन् १८८५ में काँग्रेस का जन्म हुआ। किन्तु उस समय की काँग्रेस के पीछे न तो हम किसी क्रान्तिकारी शक्ति को देखते हैं, न उसके कार्यक्रम में कोई क्रान्तिकारी बात थी। उस जमाने के क्रान्तिकारी विचारों के व्यक्तियों ने, अर्थात् उन व्यक्तियों ने जिनका अपना उद्देश्य ब्रिटेन की सत्ता को यहाँ से उखाड़ने का था, काँग्रेस पर कोई ध्यान नहीं दिया। काँग्रेस तो उन दिनों अर्जीदिहन्दों का एक मजमा थी, उससे साम्राज्यवाद-विरोध या इस प्रकार के किसी नारे की उम्मीद रखना बेकार था । हम देखते हैं कि चाफेकर बन्धु, सावरकर बन्धु, वरीन्द्र कुमार घोष कोई भी काँग्रेस में न थे। बात यह है कि काँग्रेस का जनता से उस समय कोई सम्बन्ध नहीं था, इसलिए उसकी कोई पूछ भी नहीं थी ।

हिन्दू-संरक्षिणी सभा—१८९४ के करीब श्री० दामोदर चाफेकर तथा उनके भाई बालकृष्ण ने एक सभा बनाई, जिसका नाम "हिन्दूधर्म-संरक्षिणी सभा" रक्खा था । चाफेकर बन्धुओं के अन्दर कौन-सी भावना काम कर रही थी, यह इसी से पता लगता है कि शिवाजी और गणपति-उत्सव के अवसर पर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक गाये थे ।

शिवाजी श्लोक—"केवल बैठे-बैठे शिवाजी की गाथा की आवृत्ति करने से किसी को आजादी नहीं मिल सकती है । हमें तो शिवाजी और वाजीराव की तरह कमर कस कर भयानक कृत्यों में जुट जाना पड़ेगा । दोस्तो, अब आपको आजादी के निमित्त ढाल-तलवार उठा लेनी पड़ेगी ! हमें अब शत्रुओं के सैकड़ों मुण्डों को काट डालना पड़ेगा ! सुनो, हम राष्ट्रीय युद्ध के मैदान में अपने

जीवन का बलिदान कर देंगे और आज उन लोगों के रक्तपात से, जो हमारे धर्म को नष्ट कर या आघात पहुँचा रहे हैं, पृथ्वी को रंग देंगे । हम मारकर ही मरेंगे और तुम लोग घर बैठे औरतों की तरह हमारा किस्सा सुनोगे ।"

गणपति श्लोक—"हाय ! गुलामी में रहकर भी तुमको लाज नहीं आती ? इससे अच्छा यह है कि तुम आत्महत्या कर डालो । उफ ! दुष्ट, हत्यारे कसाइयों की तरह गोवध करते हैं, गोमाता को इस दयनीय दशा से छुड़ा लो । मर जाओ, किन्तु पहले अंग्रेजों को मारो तो सही ? चुप मत बैठे रहो, बेकार पृथ्वी पर बोझा मत बढ़ाओ । हमारे देश का नाम तो हिन्दुस्तान है, फिर यहाँ अंग्रेज क्यों राज्य करते हैं ।"

पूना में ताऊन—१८९७ में पूना में ताऊन भयङ्कर रूप से फैल रहा था । उसको दूर करने के लिये घर-घर तलाशी होने लगी, और जिन मकानों में बीमारी पाई गई, उनको जबरदस्ती खाली कराया गया । मिस्टर रैण्ड नामक एक अंग्रेज इस कार्य के लिए विशेष रूप से तैनात होकर आए । ये महाशय जरा कड़े मिजाज के थे, जिस बात को सहूलियत के साथ आसानी से किया जा सकता था, उसी बात को उन्होंने बदमिजाजी और सख्ती से किया । सच बात तो यह है कि मिस्टर रैंड ऐसे परोपकार के कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थे । नतीजा यह हुआ कि पूना तथा उसके आस-पास मिस्टर रैण्ड की बड़ी बदनामी हुई, और सभी लोग उन्हें सार्वजनिक शत्रु के रूप देखने लगे । अखबार मिस्टर रैण्ड का तिरस्कार करने लगे । ४ मई १८९७ को लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपने समाचार पत्र 'केसरी' में इस आशय का लेख लिखा कि बीमारी तो केवल एक बहाना है, वास्तव में सरकार लोगों की आत्मा को कुचलना चाहती है । उन दिनों यह पत्र काफी जनप्रिय हो चुका था, इसी लेख में यह भी लिखा था कि मिस्टर रैण्ड अत्याचारी हैं, और जो कुछ वे कर रहे हैं, वह सरकार की आज्ञा से ही कर रहे हैं, इसलिए सरकार के पास सहायता के लिए प्रार्थना-पत्र देना व्यर्थ है ।

१२ जून, १८९७ ई० को शिवाजी का अभिषेकोत्सव मनाया गया था, और १५ जून को उसी का विवरण देते हुए 'केसरी' ने कुछ पद्य छापे, जिनका शीर्षक "शिवाजी की उक्तियाँ' था । पुलिस का कहना था कि शिवाजी की उक्तियाँ

के बहाने इसमें अंग्रेज जाति के विरुद्ध विद्वेष का प्रचार किया गया था। इस उत्सव के अवसर पर बोलते हुए, पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार, एक वक्ता ने कहा—"आज इस पवित्र उत्सव के मौके पर प्रत्येक हिन्दू तथा मरहठे का—चाहे वह किसी भी दल या सम्प्रदाय का हो—दिल बाँसों उछल रहा है। हम सभी अपनी खोई हुई स्वाधीनता को पा लेने की चेष्टा कर रहे हैं, और हम सबको आपस में मिलकर ही इस भारी बोझ को उठाना है। किसी भी ऐसे आदमी के पथ में रोड़ा अटकाना अनुचित होगा, जो अपनी बुद्धि के अनुसार इस भार को उठाने का कार्य कर रहा है। आपस के हमारे झगड़ों से हमारी उन्नति बहुत कुछ रुक जाती है। यदि कोई हमारे देश पर अत्याचार करता है, तो उसे खत्म कर दो। किन्तु दूसरों के कार्य में बाधा मत डालो। × × ऐसे सभी मौके या उत्सव, जब कि हम सभी अनुभव करते हैं कि हम एक सूत्र में बँधे हैं, खूब मनाये जाने चाहिए।" पुलिस-रिपोर्ट के अनुसार एक और वक्ता ने उसी अवसर पर कहा—"फ्राँस की राज्य-क्रान्ति में भाग लेनेवालों ने इस बात से इनकार किया है कि वे कोई हत्या कर रहे हैं, उनका कहना है कि वे रास्ते के काँटों को हटा रहे हैं।" लोकमान्य तिलक स्वयं इस उत्सव-सभा के सभापति थे। पुलिस रिपोर्ट के अनुसार उन्होंने कहा—"क्या शिवाजी ने अफजल खाँ को मार कर कोई पाप किया? इस प्रश्न का उत्तर महाभारत में मिल सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो गीता में अपने गुरु तथा सम्बन्धियों तक को मारने की आज्ञा दी है। यदि कोई मनुष्य परार्थबुद्धि से कोई हत्या भी कर डाले, तो उस पर उसका दोष नहीं लग सकता। श्री शिवाजी ने अपने पेट भरने के लिये तो अफजल को मारा नहीं था, उन्होंने दूसरों की भलाई और अच्छे उद्देश्य से अफजल खाँ की हत्या की थी। यदि चोर हमारे घर में घुस आये, और हममें उनको पकड़ने की शक्ति न हो, तो हम बाहर से किवाड़ बन्द करलें और उन्हें जिन्दा जला डालें। इसे ही नीति कहते हैं। ईश्वर ने विदेशियों को हिन्दुस्तान के राज्य का पट्टा लिखकर नहीं दिया है। श्री शिवाजी ने जो कुछ भी किया, वह यह था कि उन्होंने अपनी जन्मभूमि पर विदेशियों की राज्य-शक्ति हटाने के लिए लड़ाई लड़ी थी। उन्होंने इस प्रकार किसी पराई चीज पर दखल करने की चेष्टा नहीं की। एक कूपमण्डूक की भाँति अपनी दृष्टि को

संकुचित मत बनाओ। 'भारतीय दण्ड विधान' से यह सबक मत लो कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इसके विपरीत श्रीमद्भगवद् गीता के भव्य वायुमण्डल में चले आओ और महापुरुषों के आचरणों पर विचार करो।"

मिस्टर रैण्ड की हत्या—२२ जून को सारे साम्राज्य में महारानी विक्टोरिया का ६०वाँ राज्याभिषेक दिवस मनाया जा रहा था। पूना शहर में भी उत्सव हो रहा था। रात को रोशनी हो रही थी, आतशबाजियाँ छूट रही थीं। दो गोरे अफसर खुशी में मस्त झूमते हुए गणेशकुण्ड से लौट रहे थे। गदर हुए ४० साल गुजर चुके थे, इस बीच में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध कोई भी चूँ करनेवाला नहीं था। मुसलमान क्रान्तिकारियों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। बड़े आनन्द से सरकार और उसके पिट्ठुओं के दिन कट रहे थे। मालूम होता था कि यही बहार सदा रहेगी, भारतवासी ऐसे ही गुलाम रहेंगे। किन्तु सहसा यह क्या रङ्ग में भङ्ग हो गया? धाँय! धाँय!! धाँय!!! किसी ने गोली चला दी। मिस्टर रैण्ड और लेफ्टिनेण्ट एयर्स्ट एक चीख के साथ गिर पड़े। मारनेवाला जो भी हो, निशाने का पक्का था। दोनों की तत्काल मृत्यु हो गई। मारनेवाला भाग निकला था। सारे साम्राज्य में खड़बली मच गई। साम्राज्य के भाड़े के टट्टू चिल्लाते दौड़ पड़े—"पकड़ो! पकड़ो! पकड़ो उस बदमाश को।" सचमुच ही साम्राज्यवाद की आँखों में वह बदमाश था। साम्राज्य का धन्धा कैसे सुन्दर रूप से चल रहा था, जो आज्ञा अफसर देता, वही चलती थी। न कोई उस पर बहस करता था, न कोई उस पर विद्रोह करता था, किन्तु यह कौन खूनी है? उसका क्या उद्देश्य है? वह क्या चाहता है? साम्राज्यवाद की सारी चेतना इस समय आँखों में केन्द्रीभूत हो रही थी—"वह कौन है?"

वह युवक कठिनता से पकड़ में आया था। यह सवाल उठा था, उसका नाम क्या है? उसका नाम था दामोदर चाफेकर। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बड़ी देर तक इस युवक की ओर घूरा, फिर अँगड़ाई ली, शासकों की सुख-निद्रा में बाधा पड़ चुकी थी। वे सजग हो गए। फिर वे क्रोध के मारे थर-थर काँपते चिल्लाये—"पीस डालो उस बदमाश को।" ब्रिटिश साम्राज्यवाद की वह चक्की जो गदर के दिनों के बाद से करीब-करीब बेकार पड़ी थी, हँसी, और उससे

एक पैशाचिक घर्र-घर्र की आवाज निकलने लगी। इस चक्की का नाम था ब्रिटिश न्यायालय। ऊपर से यह कितनी भोली-भाली मालूम होती थी, किन्तु···

उधर जनता ने भी दामोदर की ओर देखा, "कौन है यह बहादुर, जिसने गदर के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाती पर पहली गोली चलाई है।"

दामोदर चाफेकर ने अदालत में कबूल किया कि उसने रैण्ड साहब की हत्या जान-बूझकर की है। केवल यही नहीं, उसने यह भी स्वीकार किया कि इस घटना के पहले बम्बई में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति के मुँह पर तारकोल पोतनेवाला वही था। इसमें उसका उद्देश्य यह था कि "आर्य-भ्राताओं के दिल में उत्साह की लहर पैदा हो और हम लोग विद्रोह की टीका माथे पर लगायें।" चाफेकर बन्धुओं को फाँसी की सजा हुई।

'केसरी' की १५ जून की संख्या के लिये लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को सजा हुई। जस्टिस मिस्टर रौलट ने लिखा है कि यह सजा लोकमान्य को इस कारण हुई थी कि उन्होंने अपने लेख में तार्किक रूप से राजनीतिक हत्या का समर्थन किया था।

१८९९ में चाफेकर-दल के दो व्यक्तियों ने पूना में एक चीफ कान्स्टेबिल को मारने की असफल चेष्टा की। बाद को उन्हीं लोगों ने दो भाइयों की, जिनको दामोदर चाफेकर को पकड़वाने की वजह से इनाम मिला था, हत्या इसलिये कर डाली कि उनकी मुखबिरी की वजह से दामोदर चाफेकर पकड़े गए थे।

कुछ लोगों ने यह अजीब और मूर्खतापूर्ण सिद्धान्त बना रखा है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में बेकार तथा अपुष्ट हृदय वृत्तिवाले लोग ही थे। कहना न होगा कि किसी भी आन्दोलन का इस प्रकार से विश्लेषण करना गलत है। सभी आन्दोलनों के पीछे सामाजिक आर्थिक शक्तियाँ होती हैं और उन्हीं शक्तियों के साथ आन्दोलन की वृद्धि या लोप होता है।

१९वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड बहुत से क्रान्तिकारियों का आश्रय स्थल था, पर जहाँ तक भारतीय क्रान्तिकारियों का सम्बन्ध था, अवश्य ही इंग्लैण्ड ऐसे लोगों को आश्रय देने के लिये तैयार नहीं था। फिर भी क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक युग में कई प्रमुख क्रान्तिकारी इंग्लैण्ड में ही पनपे, और यह तो

स्पष्ट ही है कि ये न तो बेकार थे और न अपुष्ट हृदयवाले व्यक्ति थे।

श्याम जी कृष्ण वर्मा—ऐसे क्रान्तिकारियों में सब से पहला नाम श्याम जी कृष्ण वर्मा का आता है। वे १८५७ के ४ अक्टूबर को कच्छ के मन्दावी गाँव में एक गरीब भांनाली परिवार में पैदा हुए थे। पढ़ने लिखने में वे बहुत तेज थे, विशेषकर संस्कृत में उनका प्रवेश बहुत अद्‌भुत था। १८७५ में उनकी शादी भानुमती नामक लड़की से हुई, जो सही अर्थों में उनकी जीवन संगिनी रही।

यद्यपि वे संस्कृत के पंडित थे, फिर भी उनके विचार बड़े प्रगतिशील थे और १८ साल की उम्र में ही उनकी ख्याति बम्बई में फैल चुकी थी। बम्बई के समाज सुधारकों को उनकी विद्वत्ता से बहुत लाभ रहा क्योंकि वे शास्त्रों की प्रगतिशील व्याख्या करते थे। वे धाराप्रवाह संस्कृत में भाषण देते थे। इन सब बातों की खबर ऑक्सफोर्ड के संस्कृत अध्यापक मोनियर विलियम्स के पास पहुँची और उन्होंने १८७५ में भारत यात्रा करते समय उनका परिचय प्राप्त किया और यह कहा कि लौटकर वे श्याम जी को अपने सहकारी के रूप में बुलाएँगे। तदनुसार श्याम जी १८८९ के मार्च में एस० ए० सिन्धिया स्टीमर से इंग्लैण्ड पहुँचे। इसके बाद वे ऑक्सफोर्ड गए और मोनियर विलियम्स की सहायता से एक परीक्षा देकर बॅलिपोल कालेज में भर्ती हो गए। साथ ही बैरिस्टरी भी पढ़ते रहे। उसी साल ऑक्सफोर्ड में मोनियर विलियम्स ने 'इंडियन इन्स्टीच्यूट एण्ड लाइब्रेरी' की स्थापना की, जिसमें श्याम जी उनके प्रधान सहायक रहे। अध्यापक महोदय की चेष्टा से श्याम जी को कच्छ स्टेट से तीन साल के लिए १०० पौंड की एक वृत्ति भी मिल गई। उसके अलावा सहकारी के रूप में भी उन्हें कुछ मिलता रहा।

ऑक्सफोर्ड में उनकी ख्याति फैल गई और वे निजी तौर पर अंग्रेज छात्रों को संस्कृत पढ़ाने लगे, जिससे उन्हें कुछ और आय होने लगी। वे ग्रीक और लैटिन भी सीखने लगे। १८८३ में वे ऑक्सफोर्ड के बी० ए० हो गए और साथ ही उस विश्वविद्यालय के संस्कृत, मराठी और गुजराती भाषाओं के अध्यापक नियुक्त हुए, पर इसके पहले ही १८८१ में भारत सचिव ने श्याम जी को बर्लिन की ओरियन्टल काँग्रेस में अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा था। वहाँ उनकी ख्याति और बढ़ी और १८८३ से हालैण्ड के लाउडेन में होनेवाली

ओरियण्टल कांग्रेस में भी वे भारत के प्रतिनिधि बनाए गए। अविनाश चन्द्र भट्टाचार्य के अनुसार श्याम जी ऑक्सफोर्ड के प्रथम भारतीय स्नातक हैं, जिन्हें वहाँ अध्यापक बनने की भी मर्यादा प्राप्त हुई।

भारत में—वे १८८३ में भारत लौटे और ३ महीने रहने के बाद १८८४ मार्च में बैरिस्टरी की परीक्षा देने इंग्लैण्ड पहुँचे। १८८४ में वे बैरिस्टर बने और १८८५ की १६ जनवरी से बम्बई हाईकोर्ट में बैरिस्टरी करने लगे। रतलाम के राजा ने उन्हें अपने दीवान पद पर नियुक्त किया, जिस पर वे १८८८ तक रहे। इसके बाद वे अजमेर में कुछ दिन बैरिस्टरी करते रहे, फिर १८९२ के २१ दिसम्बर को वे उदयपुर राज्य के कौंसिल ऑफ स्टेट के मेम्बर बनाए गए, जिसका कार्यभार उन्होंने १८९३ में सम्हाल लिया। १८९५ की ६ फरवरी को वे जूनागढ़ स्टेट के दीवान बने, पर जल्दी ही उन्होंने अनुभव किया कि उदयपुर की बात और थी, यहाँ वातावरण संकुचित है।

फिर इंग्लैण्ड—वे १८९७ में दीवानी से इस्तीफा देकर फिर इंग्लैण्ड पहुँचे। पहली बार वे ३ माह के लिए ही गए थे, पर लौटकर दोबारा इंग्लैण्ड गए, तो फिर नहीं लौटे। एकाएक वे भारत छोड़कर हमेशा के लिए इंग्लैण्ड क्यों चले गए, इस सम्बन्ध में यह ख्याल है कि बम्बई में उन दिनों जो क्रान्तिकारी षड्-यन्त्र चल रहा था उसके सम्बन्ध में उन पर सन्देह था। उन्होंने स्वयं भी दस साल बाद १९०७ में इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट पत्र की जुलाई संख्या में लिखा था—"१८९७ में जब नाट बन्धु गिरफ्तार हो गए और लोकमान्य तिलक पर मामला चला तो मुझे यकीन हो गया कि ब्रिटिश भारत में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं है और न समाचार पत्रों को ही कोई स्वतन्त्रता है। ब्रिटिश न्याय भी महज गप है। इसी कारण मैं स्वदेश छोड़कर इंग्लैण्डवासी बन गया और अब, जब कि मैंने देखा कि इंग्लैण्ड में भी मेरे लिए निर्विघ्नता के साथ रहना सम्भव नहीं है तो मैं इंग्लैण्ड छोड़कर पेरिस चला आया और इसी को मैंने अपना कार्यक्षेत्र बनाया।"

श्याम जी लण्डन में पहुँचकर हरबर्ट स्पेन्सर आदि विद्वानों के साथ मिलने लगे और साथ ही राजनैतिक कार्य करने लगे।

सरदारसिंह राणा—उन्हीं दिनों सरदारसिंह रावजी राणा नामक एक

युवक इंग्लैण्ड आए और उनका परिचय श्याम जी से हुआ। सरदारसिंह का जन्म सौराष्ट्र के लिम्बडी राज्य के कन्यारा नामक गाँव में हुआ था और बम्बई से बी० ए० की डिग्री लेकर वे लण्डन गए थे। इनके एक पूर्वज राणा प्रताप की सेना में थे। वे उन थोड़े से अनुगत सिपाहियों में थे, जिन्होंने कभी राणा प्रताप का साथ नहीं छोड़ा, तभी से इस परिवार में राणा की उपाधि चली आई थी। छात्रावस्था में ही उनकी शादी हो गई थी और दो बेटे भी हुए थे, पर लण्डन में उन्होंने एक जर्मन युवती से शादी की थी जो केवल एक आदर्श पत्नी ही नहीं उनके सब कार्यों में सहयोगिनी थी।

उन्हीं दिनों चिकागो के 'पार्लियामेंट ऑफ रिलिजन से निकले हुए वीरचन्द गांधी श्याम जी के पास पहुँचे और वहाँ हरबर्ट स्पेन्सर आदि लोगों से मिले। उस समय जो लोग मजदूर आन्दोलन में काम कर रहे थे उनमे भी श्याम जी के साथी मिलते रहे। डॉ० भट्टाचार्य ने श्याम जी के विषय में एक अजीब घटना का उल्लेख किया है, वह यह कि उन्हीं दिनों कुछ ऐसा घटनाचक्र हुआ कि श्याम जी को गाँधी जी का विरोध करना पड़ा। संक्षेप में घटना यों थी कि ट्रान्सवाल बुअरों का स्वतन्त्र राष्ट्र था, फिर भी अंग्रेज उसके राष्ट्रपति जनरल क्रुगर पर इतना जा-बजा दबाव डाल रहे थे कि अन्त तक बुअरों ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। जर्मन सम्राट् द्वितीय विलहेल्म ने तार से क्रुगर के साथ सहानुभूति जताई। स्वतन्त्रता प्रेमी आयरिशों ने तो एक स्वयंसेवक सेना भेज दी। इसके अलावा सारी दुनिया में जनरल क्रुगर के पक्ष में मत प्रस्तुत होने लगा। यहाँ तक कि इंग्लैण्ड के विरोधी दल ने भी इस युद्ध का विरोध किया।

गांधी जी का विरोध—अब हम डॉक्टर भट्टाचार्य की भाषा में ही आगे की घटना का वर्णन करते हैं—"उन्हीं दिनों नैटालवासी मिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी, जो नैटाल में बैरिस्टरी कर रहे थे और यथेष्ट सम्मान के अधिकारी हुए थे, एक स्वयंसेवक सेना तैयार करके ब्रिटिश मर्यादा की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में पहुँच गए। इससे बुअर सेनापति जनरल बोथा और दूसरे सेनापति बहुत व्यथित और क्षुब्ध हुए। यह खबर पाते ही श्याम जी पागल से हो गए कि जो जाति अन्यायपूर्वक भारत पर अधिकार करके तथा निर्लज्जता से

शासन और शोषण करके उसे ध्वंस के मार्ग में घसीट रही है और इस समय भी जो एक छोटी सी जाति को पैरों तले रौंदने के लिए तैयार है, उसी ब्रिटिश जाति की सहायता के लिए गांधी जी का यह कार्य बिलकुल ही बुद्धि के विपरीत और न्याय-विरुद्ध था। इस बात की श्याम जी ने घोषणा की। सच तो यह है कि उसी समय से श्याम जी उग्र से उग्र राष्ट्रवादी बनते गए। यह स्मरण रहे कि उन दिनों अमरीका के आयरिश प्रजातन्त्र दल के मुखपत्र 'गैलिक अमेरिकन' ने यह लिखा था—"नैटाल के भारतीयों का आचरण इतना निन्दनीय है कि भाषा में उसका वर्णन नहीं हो सकता। भारतीयों पर अत्याचार करनेवाले अंग्रेजों को ही भारतीयों ने इस समय सहायता की, इससे भारतीयों का माथा नीचा हो गया है।"

यह द्रष्टव्य है कि हमारे इतिहासों में इस घटना का इस रूप में उल्लेख नहीं मिलता और न यही दिखाया जाता है कि गांधी जी के इस कार्य का उस युग के स्वतन्त्रता संग्रामकारी विभिन्न जातियों के मन पर क्या असर हुआ।

श्याम जी ने १६०३ के १४ दिसम्बर को स्पेन्सर की समाधि पर भाषण देते हुए यह कहा कि स्पेन्सर लेक्चरशिप के लिए वे १००० पौंड का दान देंगे। इसके साथ ही वे स्पेन्सर के मतवाद की भारतीय शास्त्रों के साथ तुलनामूलक आलोचना भी करना चाहते थे।

१६०४ में भारतीय कांग्रेस का जो अधिवेशन होनेवाला था, उसके लिए सर विलियम्स वेडरबर्न लण्डन से बम्बई आ रहे थे। उनके जरिए से श्याम जी ने काँग्रेस में यह घोषणा करानी चाही कि वे भारत से इंग्लैण्ड में आकर पढ़ने वाले छात्रों को दो हजार रुपयों का छः फेलोशिप देना चाहते हैं। ये फेलोशिप हरबर्ट स्पेन्सर तथा स्वामी दयानन्द के नाम पर होनेवाले थे। फेलोशिप लेने वालों के लिए यह जरूरी था कि वे लौट कर सरकारी नौकरी न करने की प्रतिज्ञा करें, पर वेडरबर्न ने काँग्रेस में यह सूचना पढ़कर नहीं सुनाई। केवल यही नहीं यह भी कहा कि यह बहुत ही अनुचित है। जो कुछ भी हो, श्याम जी को पहले से ही सन्देह था, इसलिए उन्होंने इस विज्ञप्ति की प्रतिलिपि भारत के पत्रों में अलग से भेज दी थी।

'इंडियन सोशियोलाजिस्ट'—१६०५ की जनवरी में श्याम जी ने इंडियन

सोशियोलाजिस्ट नाम से एक पत्रिका निकाली जिस पर यह लिखा होता था "An organ of Freedom and of political and social reform." (स्वतन्त्रता और राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार का मुखपत्र)। पत्र की बहुत प्रशंसा हुई।

इंडियन होमरूल सोसायटी—इसी साल १८ फरवरी को २० भारतीयों ने मिलकर श्याम जी के नेतृत्व में इंडियन होमरूल सोसायटी की स्थापना की, जिसका उद्देश्य रखा गया, भारतीयों के लिए भारतीयों के द्वारा भारतीय सरकार की स्थापना। यह तय हुआ कि इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए ब्रिटेन में सब तरह के कार्य किए जाएँ और भारतीय जनता में स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता के सुपरिणाम के सम्बन्ध में ज्ञान का विस्तार किया जाए। इस सोसायटी के सभापति श्याम जी बने और श्री राणा, जेमपारिख, गाडरेज, डॉ० अब्दुल्ला सुहरावर्दी इसके सहकारी सभापति हुए और जे० सी० मुकर्जी इसके अवैतनिक मन्त्री बने। जल्दी ही यह सोसायटी मशहूर हो गई और इंडियन सोशियोलाजिस्ट की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। मई १९०५ में इस पत्र में यह घोषणा की गई कि भारतीय छात्रों के लिए एक बोर्डिंग हाउस की स्थापना होगी, तदनुसार पहली जुलाई को 'ब्रिटिश सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशन' के मिस्टर हाइण्डमैन ने इंडिया हाउस का उद्घाटन किया। इस सम्मेलन में ब्रिटिश पाजिटिविस्ट सोसाइटी के मि० स्विनी, 'जस्टिस' पत्र के सम्पादक मि० क्वेल्स, आॅयरिश रिपब्लिकन और सफरेजिस्ट दल की नेत्री मादाम डिस्पाट, दादाभाई नौरोजी, लाजपतराय, वीका जी, हंसराज, दोस्त मुहम्मद और भारतीय छात्र मौजूद थे।

इंडियन सोशियोलाजिस्ट में बराबर भारतीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में सुन्दर निबन्ध प्रकाशित होते थे। और इंडिया हाउस में भारत के सम्बन्ध में आलोचनाएँ होती थीं। १९०६ की ४ मई को इंडिया हाउस में एक सभा हुई, जिसमें विट्ठल भाई पटेल, भाई परमानन्द तथा अन्य भारतीय मौजूद थे। इसमें बरिशाल में बंगाल प्रादेशिक सम्मेलन को भंग करने का और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को गिरफ्तार करने का प्रतिवाद किया गया और इन घटनाओं के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया गया।

भारतीय स्वतन्त्रता पर निबन्ध—१९०७ के आरम्भ में ही श्याम जी कृष्णवर्मा ने १००० रुपए के एक पुरस्कार की घोषणा इसलिए की कि जो भी भारतीय भारत स्वतन्त्र होने पर उसका संविधान क्या होगा, इस पर निबन्ध लिखेगा, उसी को यह पुरस्कार मिलेगा। कुल मिलाकर ८-१० निबन्ध आए थे जिनमें एक निबन्ध आगा खाँ का लिखा हुआ था। उसमें यह कहा गया था कि भारत स्वतन्त्रता के लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं है क्योंकि यहाँ साम्प्रदायिक विद्वेष बहुत ज्यादा है। बाकी निबन्ध दूसरे मत के थे। निबन्ध के परीक्षकों में स्वयं श्याम जी, सरदारसिंह राणा, गाडरेज, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय और दूसरे व्यक्ति थे। निबन्धों की संख्या कम होने के कारण शायद अन्त तक पुरस्कार किसी को नहीं दिया गया।

विनायक दामोदर सावरकर—श्याम जी कृष्ण वर्मा के चारों ओर थोड़े ही दिनों में एक बहुत बड़ा शिष्य-समाज इकट्ठा हो गया। इन एकत्रित होने वाले लोगों में विनायक दामोदर सावरकर भी थे। ये वही सावरकर हैं, जो बाद को हिंदू-महासभा के हो गए। जिस समय ये इङ्गलैंड गए थे, उस समय उनकी उम्र २२ साल की थी। उन्होंने पूना के फरग्यूसन-कालेज में शिक्षा पाई थी, और बम्बई विश्वविद्यालय से बी० ए० की डिग्री ली थी। वे बम्बई प्रांत के नासिक जिले के रहनेवाले थे। यह बात नहीं है कि सावरकार को विलायत के वातावरण में ही स्वाधीनता की बात सूझी हो। सन् १९०५ ई० में, भारत में रहते समय, वे एक व्यक्ति के प्रभाव में आ चुके थे, जिन का नाम श्री० अगम्य गुरु परमहंस था। परमहंस जी व्याख्यान देते हुए भारत भर का दौरा कर चुके थे। इन भाषणों में वे सरकार के विरुद्ध प्रचार करते हुए लोगों को कहते थे कि सरकार से मत डरो। उस समय पूना में नौ आदमियों की एक कमेटी बनाई गई थी, जिसके अधिकांश सदस्य फरग्यूसन-कालेज में पढ़े व्यक्ति थे, जहाँ विनायक ने शिक्षा पाई थी। महात्मा श्री अगम्य गुरु ने इस सभा में कहा था कि सब सदस्यों से एक एक आना लिया जाय। काफी धन जमा हो जाय, तब वे बताएँगे कि किस प्रकार उस धन का उपयोग किया जाय। विनायक सावरकर जब १९०६ के जून-महीने में भारत से चले गए, मालूम होता है कि उसी समय उस दल का अन्त हो गया, यद्यपि इसके कुछ सदस्य बाद में जाकर

विनायक के बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर द्वारा स्थापित 'तरुण भारत-सभा' में शामिल हो गए। जिस समय विनायक इङ्गलैंड गए, उस समय वे तथा उनके भाई गणेश 'मित्रमेला' नामक एक संस्था के नेता थे और गणेश नासिक में इस संस्था के व्यायाम इत्यादि के शिक्षक थे।

श्याम जी कृष्ण वर्मा ने इस प्रकार कई ऐसे व्यक्तियों को एकत्रित किया, जो विद्वान्, बुद्धिमान् होने के साथ ही देशभक्ति में मँजे हुए थे। सावरकर ऐसे व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में जाकर चमक सकते थे। यह 'भारतीय भवन' विदेश में देशभक्तों का एक अच्छा केन्द्र हो गया। थोड़े ही दिनों में पुलिस की उस पर दृष्टि पड़ गई। सन् १९०७ ई० की जुलाई में किसी मनचले सदस्य ने पार्लियामेंट में यह प्रश्न पूछा कि क्या सरकार कृष्ण वर्मा के विरुद्ध कुछ करने का इरादा कर रही है? इस प्रश्न के फलस्वरूप परिस्थिति ऐसी हो गई कि श्याम जी ने इंगलैण्ड से अपना डेरा उठा लिया और पैरिस चले गए। पैरिस में उनको लण्डन से कहीं अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक काम करने का मौका मिला, किन्तु उनका अखबार (Indian Sociologist) पहले की भाँति लण्डन से ही निकलने लगा। ब्रिटेन की सरकार इस बात को भला कहाँ सह सकती थी? सन् १९०९ ई० की जुलाई में इसके मुद्रक के ऊपर मुकदमा चला और उसे सजा दी गई। छपाई का भार दूसरे व्यक्ति ने अपने ऊपर ले लिया, किन्तु उसे भी सितम्बर १९०९ ई० में एक वर्ष की कड़ी सजा हुई। इसके बाद मजबूरी में क्या होता? फिर अखबार पेरिस से निकलने लगा, और श्याम जी एस० आर० राना के द्वारा अपना सम्बन्ध 'भारतीय भवन' से बनाए रहे।

श्याम जी के अखबार में कैसी-कैसी राजद्रोहात्मक बातें निकलती थीं, यह दिखलाने के लिए रौलट साहब ने अपनी रिपोर्ट में उसके दिसम्बर १९०७ वाले अंक से यह भाव उद्धृत किया है—"ऐसा मालूम होता है कि भारतवर्ष के किसी भी आन्दोलन के लिए गुप्त होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार को होश में लाने का एकमात्र उपाय रूसी तरीकों का प्रयोग जोर-शोर से और लगातार करना ही है। यह प्रयोग भी तब तक किया जाय जब तक कि अंग्रेज यहाँ अत्याचार करना न छोड़ दें, और देश से न भाग जायँ। कोई भी नहीं बता सकता कि किन परिस्थितियों में हम अपनी नीति

में क्यों परिवर्तन करेंगे ! यह तो शायद बहुत कुछ स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर है। साधारण सिद्धान्त के तौर पर फिर भी हम कह सकते हैं कि रूसी तरीकों का प्रयोग पहले भारतीय अफसरों पर लागू होगा न कि गोरे अफसरों पर।"

उन पाठकों को, जो बात के भीतर पैठने के आदी हैं, समझाने के लिए यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि बड़े से लेकर छोटे सभी भारतीय क्रांतिकारी उन दिनों रूसी तरीकों से आतंकवाद का मतलब लेते थे। स्मरण रखने की बात है कि १९०५ की रूसी क्रान्ति उस समय हो चुकी थी तथा उस समय, जब कि यह लेख लिखा गया था, लेनिन आदि बड़े जोर-शोर से रूस में जन-आन्दोलन चला रहे थे। किन्तु दूर से बैठे-बैठे भारतीय क्रान्तिकारी तो केवल 'ग्रैंड ड्यूकों' पर जो बम चलते थे, उनके ही धड़ाके सुन पाते थे। वे यह कब जानते थे कि इनसे कुछ लोग बिलकुल स्वतन्त्र रूप में इन लोगों से अलग जन-क्रान्ति की तैयारी कर रहे थे। बाद को रूस की क्रान्ति इनके ही नेतृत्व में हुई, उन धड़ाकेवालों नेतृत्व में नहीं। और क्रान्ति के बाद भी ये ही विश्व के रङ्ग-मंच पर आए। आतंकवाद को अब कोई भी रूसी क्रान्ति या रूसी क्रान्तिकारियों का तरीका नहीं मान सकता, किन्तु उन दिनों की बात कुछ और थी। उद्धृत अंश से वह स्पष्ट है कि श्याम जी कृष्ण वर्मा-सरीखे व्यक्ति भी उस जमाने में इस गलतफहमी में पड़े हुए थे, पर यह स्वाभाविक था।

लण्डन में गदर दिवस—१९०८ ई० का गदर-दिवस लण्डन के 'भारतीय भवन' में बड़े ठाट के साथ मनाया गया। विदेश में रहनेवाले सभी भारतीय छात्रों को निमंत्रण दिया गया था। करीब १०० भारतीय छात्र उस अवसर पर उपस्थित थे। इसके थोड़े ही दिन बाद भारतवर्ष में "ऐ शहीदो !" शीर्षक एक परचा आया। इस परचे में गदर के युग में मारे हुए भारतीयों की तारीफ थी, और उसमें गदर को भारतीय स्वाधीनता युद्ध बताया गया था। वह परचा फ्रेंच टाइपों में छपा हुआ था, इससे रौलट-कमेटी का अनुमान है कि इसमें श्याम जी कृष्ण वर्मा की "शरारत" थी। मद्रास के एक कालेज में इन परचों की कुछ प्रतियों की बाबत पता लगा था कि वे 'डेली न्यूज'-नामक समाचार-पत्र के अन्दर भेजे गए थे, जिससे स्पष्ट है कि वे लंडन से बाँटे गए थे।

'भारतीय भवन' में आने-जानेवाले सबको यह परचा तथा 'घोर चेतावनी'—नामक एक परचा मुफ्त दिया जाता था और उनसे यह कहा जाता था कि वे इस परचे को देश में अपने मित्रों के पास भेज दें। पुलिस के कथनानुसार प्रत्येक रविवार को 'भारतीय भवन' में जो सभा होती थी, उसमें छात्रों को गुप्त हत्या के लिए उत्तेजित किया जाता था। कहा जाता है १९०८ ई० 'भारतीय भवन' में लण्डन विश्वविद्यालय के एक छात्र ने बम बनाने के तरीके, उसमें क्या-क्या मसाले लगते हैं तथा उसका इस्तेमाल कैसे होता है, इस विषय पर एक वक्तृता दी थी, और श्रोताओं से उसने कहा था, "जब आपमें से कोई अपनी जान पर खेल कर बम चलाने को तैयार होगा, तो मैं उसे पूरा विवरण दूँगा।"

क्रान्तिकारी साहित्य की रचना—क्रान्तिकारियों को बम और पिस्तौलों के साथ ही क्रान्तिकारी साहित्य रचना की ओर झुकना पड़ा। सब देशों के क्रान्तिकारी हमेशा से इस बात को समझते हैं कि साहित्य में क्रान्ति को आगे बढ़ाने, उसे उद्दीपित करने, उसकी एक चिनगारी को धधकती हुई ज्वाला में परिणत करने की शक्ति है। इस कार्य के लिए श्री सावरकर सामने आये और उन्होंने १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध का हाल लिखा।

सावरकर लिखित क्रान्ति का इतिहास—सावरकर के इस इतिहास की कहानी स्वयं बड़ी रोमांचकारी है, जो संक्षेप में इस प्रकार है। श्री सावरकर ने इसे २४ साल की उम्र में लन्दन में मराठी में लिखा। हाँ, इस के कुछ अध्यायों का अंग्रेजी में अनुवाद कर वे लन्दन में फ्री इण्डिया सोसायटी के सदस्यों को सुनाते थे। स्कॉटलेंड यार्ड को पता चला और उसके एजेण्टों ने मराठी पुस्तक का एक अध्याय चुरवा लिया। तब पुस्तक चोरी से भारत भेज दी गई, पर मराठी प्रेस के मालिकों ने इसे छापने से इनकार किया। फिर अन्त में 'अभिनव भारत' नामक क्रान्तिकारी दल का सदस्य एक छापेखाने का मालिक उसे छापने को तैयार हो गया, पर पुलिस को कुछ सुराग मिल गया। तब सब मराठी छापेखानों पर एक साथ छापा मारा गया, पर इतने में किसी सहानुभूतिशील पुलिस अफसर ने उस छापेखानेवाले को खबर दे दी थी, और वह पुस्तक की पांडुलिपि हटा दी गई थी। बाद को यह पांडुलिपि पेरिस में लेखक के पास भेज दी गई। फिर मराठी पुस्तक को जर्मनी में किसी संस्कृत प्रेस में छापने की

चेष्टा की गई, पर एक तो वहाँ प्रचलित नागरी लिपि पसन्द नहीं आई, दूसरा खर्च बहुत आ चुका था, तीसरे जर्मन कम्पोजिटर मराठी नहीं समझते थे, इस कारण इसे उस समय मराठी में प्रकाशित करने का प्रस्ताव त्याग दिया गया।

तब इसे अंग्रेजी में अनुवाद करके छापने की ओर ध्यान गया। लन्दन में आई० सी० एस० आदि पढ़ने के लिए गए हुए मराठी छात्रों ने इसका बीड़ा उठाकर उसे सम्पूर्ण किया। फिर श्री वी० वी० एस० ऐयर की अध्यक्षता में इसे छापने की चेष्टा हुई, पर पुलिसवाले चुप नहीं बैठे थे। तब अंग्रेजी पांडुलिपि पेरिस भेज दी गई, पर फ्रेंच सरकार ब्रिटिश सरकार की हिदायतों के अनुसार भारतीय क्रान्तिकारियों के पीछे पड़ी थी। कोई भी फ्रेंच मुद्रक इस पुस्तक को छापने के लिए तैयार नहीं हुआ।

अन्त में झाँसा देकर हालैंड के एक छापेखाने में पुस्तक छपने लगी पर फ्रेंच पुलिस साथ ही ब्रिटिश पुलिस को अन्धकार में रखने के लिए क्रान्तिकारियों की ओर से खुल्लमखुल्ला यह कहा जाने लगा कि पुस्तक फ्रांस में छप रही है। जब पुस्तक हालैंड में छप गई, तो प्रतियाँ चोरी से फ्रांस में लाई गईं कि अब भारत और अन्य स्थानों में भेजा जाय। पर छपने के पहले ही पुस्तक जब्त घोषित कर दी गई थी।

यह बहुत ही अजीब बात है कि किसी पुस्तक को छपने से पहले ही जब्त कर लिया जाए। पर ब्रिटिश सरकार इस प्रकार की बातों पर अवलम्बित थी। इस जब्ती की आज्ञा के विरुद्ध श्री सावरकर ने लन्दन टाइम्स में एक पत्र लिखा जिसमें यह कहा गया कि जिस पुस्तक की प्रति सरकार ने देखी तक नहीं, उसे जब्त करने का क्या अर्थ होता है। लन्दन टाइम्स ने इस पत्र को प्रकाशित करते हुए यह कहा कि जब सरकार को इस प्रकार की कार्रवाई करनी पड़ रही है, तो सरकार में कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य है।

हालैंड में छपी हुई पुस्तकों की प्रतियाँ सर्वत्र पहुँचाई गईं। पुस्तकों पर ग़लत रैपर लगाए गए, जैसे पिकविक पेपर्स इत्यादि। इस प्रकार पुस्तकें भारत में फैलीं, और जैसा कि लेखक का उद्देश्य था इसने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को बल पहुँचाया। तथ्यों के संकलन की दृष्टि से यह पुस्तक बहुत सुन्दर है। १८५७ का गदर एक सैनिक गदर मात्र नहीं था, यह भारतीय स्वतन्त्रता का

युद्ध था, इस तथ्य को इसी पुस्तक ने सबको समक्ष रक्खा ।

लण्डन में भी धाँय धाँय ?—१६०६ की पहली जुलाई को मदनलाल धींगरा नामक एक नवयुवक ने लण्डन के साम्राज्यविद्यालय की एक सभा में सर कर्जन वाइली नामक एक अंग्रेज को गोली मार दी । सर कर्जन किसी से बात कर रहे थे कि धींगरा ने पिस्तौल निकाल कर उन पर चलाई । कर्जन साहब डर के मारे चीख उठे, किन्तु इसके पहले कि कोई कर्जन साहब को बचाने दौड़ता, धींगरा शेर की तरह उन पर झपटा, और एक के बाद एक-दो गोलियों से उनको समाप्त कर दिया । दिखाने के लिए तो सर कर्जन भारत-मंत्री के शरीर-रक्षक के रूप में नियुक्त थे, किन्तु वास्तव में वे भारतीय छात्रों पर खुफिया का काम करते थे । उन्होंने सावरकर तथा श्याम जी के 'भारतीय-भवन' के मुकाबले में भारतीय विद्यार्थियों की एक सभा भी खोल रक्खी थी ।

धींगरा कौन थे !—धींगरा अमृतसर जिले के एक खत्री-कुल में उत्पन्न हुए थे । इनका परिवार धनी था । पंजाब-विश्वविद्यलय से बी० ए० पास करके वे आगे पढ़ने के लिए इङ्गलैण्ड गए थे । वे अच्छे छात्र थे, किन्तु कहते हैं कि विलायत के वातावरण में वे आनन्दोपभोग में लिप्त हो गए । विलायत में जाते ही वे 'भारतीय भवन' में आने-जाने लगे । इसका नतीजा यह हुआ कि उनके पीछे खुफिया पुलिस लग गई । खुफिया पुलिस को रिपोर्ट से मालूम होता है कि वे घंटों अकेले बैठकर पुष्पों का निरीक्षण किया करते थे । ऐसी हालत में वहाँ के उस समय के खुफियों ने रिपोर्ट दी कि वह या तो कवि है या क्रान्तिकारी ।

हम इस अध्याय में बङ्गाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर कोई प्रकाश नहीं डालेंगे, किन्तु इतना यहाँ कह देना जरूरी है कि उसी जमाने में खुदीराम, कन्हाईलाल आदि की टोली बंगाल में खून का फाग रच रही थी । इन समाचारों से मदनलाल के दिल में भी जोश आया, वे भी कुछ करने के लिए व्याकुल हो उठे । उन्होंने आज की हिन्दू महासभा के प्राण श्री विनायक सावरकर से यह बात कही । कहा जाता है, सावरकर ने ध्यान से इस नवयुवक की ओर देखा, फिर कहा कि अच्छी बात है । मदन का हाथ जमीन पर रख दिया गया, फिर सावरकर ने एक छुरी उठाई, और उसे बेखटके उस के हाथ में भोंक दी ।

यह परीक्षा थी। मदनलाल के सुन्दर हाथ के कटे हुए हिस्से से लाल-लाल लहू की धारा निकलने लगी थी। गुरु तथा शिष्य दोनों की आँखों में आँसू थे, दोनों ने एक दूसरे का आलिङ्गन कर लिया।

इसके बाद मदनलाल सावरकर से कम मिलने लगे। केवल यही नहीं वे जाकर सर कर्जन की सभा में शामिल हो गए और 'भारतीय भवन' आना एकदम छोड़ दिया। दूसरे लड़के भीतरी रहस्य को भला क्या जानते थे, वे लगे मदनलाल को कायर तथा प्रतिक्रियावादी कहने। मदनलाल के कानों में भी ये बातें पहुँचीं। सुनकर वे खूब हँसे, किन्तु चुप रहे। वे जानते थे कि थोड़े ही समय में इन लोगों की राय बदल जायगी।

अपने सहपाठियों के विचारों का कुछ भी ख्याल न कर वे अपनी अग्नि परीक्षा के लिए तैयारी करने लगे। वे नवयुवक थे। ऐश्वर्य तथा सौंदर्य के किवाड़ उनके लिए खुले थे। वे आई. सी. एस. बन सकते थे। स्वास्थ्य अच्छा था। ऐसी हालत में मरने की ठान लेना, यह बहुत बड़ा त्याग था।

आखिर एक दिन मदनलाल ने वह काम कर ही दिखाया। इंग्लैण्ड के अन्दर एक अंग्रेज की हत्या, क्या बात है। चारों तरफ हलचल मच गई। दुनिया के सारे देशों में यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपा। मदनलाल के पिता को भी यह समाचार मिला, किन्तु बजाय इसके कि वे ऐसे पुत्र के पिता होने के लिए अपने को बधाई देते, वे बहुत बिगड़ गए, और पंजाब से तार भेजा कि वे ऐसे व्यक्ति को, जो राजद्रोही तथा हत्यारा है, अपना पुत्र मानने से इनकार करते हैं। देश में चारों ओर मदनलाल की निन्दा के प्रस्ताव पास हुए, इससे यह समझना भूल होगी कि ये प्रस्ताव किसी प्रकार भारतवासियों के आम जनमत को जाहिर करते हैं।

लण्डन में सभा—लण्डन में भी भारतीयों की एक सभा इसी सिलसिले में हुई। श्री विपिनचन्द्र पाल इस सभा के सभापति थे। सरकार के ग़ुलाम राजभक्तों के लिए तो बड़ी आसानी थी। एक के बाद एक वे बोलते जाते थे, किन्तु जो धींगरा के तरफ वाले थे, उनके लिए बड़ी परेशानी का सामना था। वे कैसे अपने हृदय के भावों को यहाँ पर स्वतन्त्र रूप में व्यक्त कर सकते थे? वे ग़ुलामों की एक एक वक्तृता सुनते थे, और हाथ मसल-मसलकर रह जाते थे।

सावरकर भी उस सभा में मौजूद थे। उनके माथे पर बल था, होठ फड़क रहे थे, आँखों में अपने वीर साथी की निन्दा सुनते-सुनते आँसू आ गए थे। फिर भी वे चुप बैठे थे। क्या करते, कोई रास्ता नहीं था। लोग विरोधियों की एक-एक वक्तृता सुनते थे और सावरकर की ओर देखते थे, किन्तु सावरकर तो ऐसे बैठे थे मानों उन्हें काठ मार गया हो। न वे किसी से आँख मिलाते थे, न इधर-उधर झाँकते थे। उनके चेहरे पर एक परेशानी थी, ग्लानि थी, साथ ही साथ सबसे बड़ी बात बेबसी थी।

सब वक्तृताएँ एकतरफा हो रही थीं। इतने में सभा के अध्यक्ष विपिनपाल उठे। उन्होंने सभा के लोगों को एक बार ध्यान से देखा, फिर पूछा, जैसे वे अपने आप ही को पूछ रहे हों—तो क्या मान लिया जाय, मदनलाल धींगरा की निन्दा का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास होता है ?

"नहीं,"—कड़ककर शेर की भाँति सावरकर ने कहा। अब उनके धैर्य का बाँध टूट चुका था, उन्होंने कहा—"नहीं मुझे कुछ कहना है।"

विपिनपाल बैठ गए। सावरकर बोल रहे थे, गुलामपक्ष वालों की तरह वह स्वतन्त्रतापूर्वक बोल नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने बैरिस्टरी की एक पेंच निकाली। उन्होंने कहा कि मदनलाल धींगरा का मामला अभी विचाराधीन है, इसलिए उसकी किसी प्रकार निन्दा या स्तुति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उससे मुकदमे पर असर पड़ेगा। सावरकर इस ढर्रे पर बोल रहे थे कि सभा में उपस्थित एक अंग्रेज पायजामे से बाहर हो गया। उसने आव देखा न ताव सावरकर को एक घूंसा जमाकर कहा—"जरा अंग्रेजी घूंसे का मजा ले लो, देखो कैसा ठीक बैठता है।"

वह अंग्रेज अच्छी तरह यह बात कह भी नहीं पाया था कि एक हिन्दुस्तानी नौजवान ने उठाकर एक डंडा उस गुस्ताख अंग्रेज की खोपड़ी पर मारा, और कहा—"जरा इसका भी तो मजा ले लो, यह हिन्दुस्तान का डंडा है।"

बस, गड़बड़ मच गई। लोग दौड़ पड़े। किसी ने एक पटाखा सभास्थल में छोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि सभा भङ्ग हो गई। सभापति सभा छोड़कर चले गए। मदनलाल के खिलाफ लण्डन में निन्दा का कोई प्रस्ताव नहीं पास हो सका।

अदालत में मदनलाल का गर्जन—मदनलाल रंगे हाथों पकड़े गए थे, लण्डन शहर के अन्दर एक प्रतिष्ठित तथा पदवीधारी अंग्रेज को उन्होंने जान-बूझकर मारा था। फाँसी उन्हें होगी, यह तो कोई भी बच्चा जान सकता था। वे भी जानते थे, फिर भी उन्होंने अदालत में जो कुछ भी कहा, दिल खोलकर कहा। उनके बयान में न कहीं जरा भय था, न कोई पश्चात्ताप। उन्होंने कहा था—"जो सैकड़ों अमानुषिक फाँसी तथा काले पानी की सजा हमारे देशभक्तों को हो रही है, मैंने उसी का एक साधारण-सा बदला उस अंग्रेज के रक्त से लेने की चेष्टा की है। मैंने इस सम्बन्ध में अपने विवेक के अतिरिक्त किसी से सलाह नहीं ली, मैंने किसी के साथ षड्यन्त्र नहीं किया। मैंने तो केवल अपना कर्त्तव्य पूरा करने की चेष्टा की है। एक जाति जिसको विदेशी संगीनों से दबाए रखा जा रहा है, समझ लेना चाहिए कि वह बराबर लड़ाई ही कर रही है। एक निःशस्त्र जाति के लिए खुला युद्ध तो सम्भव है ही नहीं। मैं एक हिन्दू होने की हैसियत से समझता हूँ कि यदि हमारी मातृभूमि के विरुद्ध कोई जुल्म करता है, तो वह ईश्वर का अपमान करता है। हमारी मातृ-भूमि का जो हित है, वह श्रीराम का हित है। उसकी सेवा श्रीकृष्ण की ही सेवा है। मेरी तरह एक हतभाग्य सन्तान के लिए जो वित्त तथा बुद्धि दोनों से हीन है, इसके सिवा और क्या है कि मैं अपनी माता की यज्ञवेदी पर अपना रक्त अर्पण करूँ। भारतवासी इस समय केवल इतना ही कर सकते हैं कि वे मरना सीखें और इसके सीखने का एकमात्र उपाय यह है कि वे स्वयं मरें। इसीलिए मैं मरूँगा और मुझे इस शहादत पर गर्व है। ईश्वर से मेरी केवल यही प्रार्थना है कि मैं फिर उसी माता के गर्भ में पैदा होऊँ, और फिर उसी पवित्र उद्देश्य के लिए अपने प्राणों का अर्पण कर सकूँ। यह तब तक के लिए चाहता हूँ, जब तक कि वह विजयी तथा स्वाधीन न हो जाय, ताकि मानव-जाति का कल्याण हो और ईश्वर की महिमा का विस्तार हो सके। वन्दे मातरम्।"

१६ अगस्त १६०६ को मदनलाल धींगरा को फाँसी दे दी गई। उनकी लाश जेल के अन्दर ही दफना दी गई।

गणेश दामोदर सावरकर को सजा—विनायक सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर भारत में ही रह कर क्रान्तिकारी दल का सङ्गठन कर रहे थे।

१६०८ के प्रारम्भ में गणेश सावरकर ने "लघु अभिनव भारत-मेला" के नाम से कुछ देश भक्तिपूर्ण, भड़कानेवाली कविताएँ प्रकाशित की थीं। इन कविताओं के कारण गणेश सावरकर का १२१ दफा के अनुसार, अर्थात् सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के अपराध में, आजीवन काले पानी की सजा हुई थी। कविताओं के लिए कालापानी ? हाँ, यह ब्रिटिश न्याय है ! इसी न्याय की नींव पर ब्रिटिश साम्राज्य बना था। मार्क्स का यह कहना कि राष्ट्र कोई निष्पक्ष संस्था नहीं बल्कि राज्य करनेवाले वर्ग की कार्यकारिणी मात्र है, यहाँ कितना सही उतरता है।

बम्बई हाईकोर्ट में इस मुकद्दमे का फैसला देते हुए एक मराठी भाषी जज ने कहा (याद रहे कि ये कविताएँ मराठी में थीं)—"लेखक का प्रधान उद्देश्य हिन्दुओं के कुछ देवताओं तथा वीरों का, जैसे शिवाजी आदि का नाम लेकर वर्तमान सरकार के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करना है। ये नाम तो सिर्फ बहाने हैं। लेखक का कहना तो केवल इतना ही है कि अस्त्र उठाकर इस सरकार का विध्वंस करो, क्योंकि यह विदेशी तथा अत्याचारी है। लेखक का उद्देश्य है, इस बात को जानने के लिए इतना ही काफी है कि लेखक के गीता आदि के वचनों की व्याख्या पर विचार किया जाय।" गणेश सावरकर को ६ जून १६०६ के दिन सजा सुना दी गई और तार द्वारा यह सूचना विनायक सावरकर को भेज दी गई। कहा जाता है कि इसके बाद विनायक सावरकर भी लण्डन में 'भारतीय भवन' की बैठक में बहुत तेजी से बोले, और यह कहते रहे कि इसका बदला लिया जायगा। पहली जुलाई को ठीक इसी के बाद सावरकर के नेतृत्व में मदनलाल ने सर कर्जन वाइली का खून किया था। इससे रौलट साहब ने यह सन्देह प्रकट किया है कि सम्भव है इन दोनों घटनाओं में कोई सम्बन्ध हो।

मिस्टर जैकसन की हत्या—१६०६ की फरवरी के महीने में विनायक सावरकर को पेरिस से २० ब्राउनिङ्ग पिस्तौलें मय कारतूस मिली थीं। 'भारतीय भवन' में चतुर्भुज अमीन नाम का एक रसोइया था। वह जब हिन्दुस्तान लौट रहा था, तो उसके सन्दूक में एक झूठा पेंदा लगाकर ये सब चीजें हिन्दुस्तान भेज दी गईं। गणेश सावरकर इसी जमाने में राजद्रोहात्मक कविताओं के लिए गिरफ्तार हुए थे। गिरफ्तार होने से पहले ही वे एक मित्र से बता गए थे कि

इस प्रकार जहाज में पिस्तौलें आ रही हैं। गणेश की गिरफ्तारी के बाद उस मित्र ने सब सामान ले लिया था।

निम्न अदालत में गणेश सावरकर का मुकदमा करनेवाले एक अंग्रेज थे, उनका नाम मिस्टर जैकसन था। जब गणेश सावरकर को सेशन सिपुर्द किया गया, तो दल ने यह तय किया कि मिस्टर जैकसन की हत्या की जाय। तदनुसार औरङ्गाबाद के एक सदस्य ने २१ दिसम्बर १९०९ को मिस्टर जैकसन को गोली मार दी। कहा जाता है कि यह हत्या उन्हीं ब्राउनिंग पिस्तौलों में से एक से हुई। इस प्रकार महाराष्ट्र में यह दूसरे अंग्रेज की हत्या थी। पहली हत्या को हुए लगभग १२ साल बीत चुके थे। इतने उच्च दिमागों के वर्षों के प्रयत्न के बाद एक आतंकवादी कार्य हो पाता था। केवल इस दृष्टि से देखा जाय, तो भी हम कहेंगे कि आतंकवाद बड़ी उच्च शक्तियों का अपव्यय करने के लिए विवश है। इसके साथ ही हम यह मानने में असमर्थ हैं कि इन घटनाओं का हमारी राष्ट्रीय चेतना पर कोई असर नहीं हुआ। यह कह देना आवश्यक है कि इन अलमस्तों का हमारी राष्ट्रीय सुषुप्त-चेतना (Subconscious mind) पर गहरा असर पड़ा, और राष्ट्रीय मनोजगत् मैं इसकी बहुमुखी प्रतिक्रिया हुई!

नासिक तथा ग्वालियर-षड्यन्त्र—सावरकर-बन्धु के नेतृत्व में महाराष्ट्र में जो क्रान्तिकारी आन्दोलन हुआ था, उसका और थोड़ा-सा विवरण देना उचित लगता है। मिस्टर जैकसन की हत्या के अपराध में सात आदमियों पर मुकदमा चलाया गया, जिसमें से तीन को फाँसी दे दी गई। नासिक में एक षड्यन्त्र चला, जिसमें २८ आदमियों पर मुकदमा चला। उसमें से २७ आदमी दोषी ठहराये गये, और उनको सजाएँ हुईं। पहले जिस 'मित्र मेला' का परिचय दिया है, वही अन्त में जाकर 'अभिनव भारत-समिति' में परिणत हो गया। नासिक-षड्यन्त्र में जो लोग पकड़े गये थे, वे महाराष्ट्र के हर एक कोने से आए थे। इससे ज्ञात होता है कि यह षड्यन्त्र सुदूर विस्तृत था। ग्वालियर में भी दो षड्यन्त्र चले, एक में २२ व्यक्ति तथा दूसरी में १९ व्यक्ति फाँसे गये। इन सब षड्यन्त्रकारियों के सम्बन्ध में एक खास बात यह है कि करीब-करीब ये सभी ब्राह्मण थे और उनमें भी अधिकांश चितपावन ब्राह्मण!

वायसराय पर बम—आम तौर पर लोगों की धारणा है कि भारत के इतिहास में वायसराय पर केवल दो ही बार बम पड़े—एक लार्ड हार्डिञ्ज पर १९१२ में और दूसरा लार्ड इरविन पर १९२९ में; किन्तु नहीं, इनसे पहले भी वायसराय के जीवन पर हमला हो चुका था। १९०९ में लार्ड और लेडी मिन्टो जब अहमदबाद में आए थे, तो उन पर गाड़ी में भीड़ में से किसी ने एक बम फेंका था। वह बम फूटा नहीं; खैर, जब उनकी तलाशी ली गई कि क्या गिरा, और एक आदमी ने उन्हें उठाया, तो उसका हाथ उड़ गया। इतिहास के पाठकों को पता होगा, यही लार्ड मिन्टो, जो क्रान्तिकारियों के बम से बचे, थोड़े ही दिनों बाद अण्डमन का निरीक्षण करते हुए एक पठान कैदी की छुरी से मारे गये थे। यह पठान वहाबी था, न कि मामूली सिपाही।

सतारा षड्यन्त्र—सन् १९१० में सतारा में षड्यन्त्र का पता लगा। तीन ब्राह्मण युवकों पर मुकदमा चलाया गया। इन पर आरोप था कि उन्होंने बादशाह के विरुद्ध षड्यन्त्र किया है। ये लोग सावरकर-बन्धु की 'अभिनव भारत-समिति' की एक शाखा की गुप्त सभा के सदस्य थे। इन तीनों को सजा हो गई।

उपसंहार—इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक युग में दो षड्यन्त्र-दल थे—

(१) चाफेकर-बंधु का दल,

(२) सावरकर-बंधु दल

दोनों में धार्मिक भावनाओं को बहुत महत्त्व दिया गया था। सच बात तो यह है कि धर्म के नाम पर लोगों को मुख्य तौर से जोश दिलाया जाता था। चाफेकर-बंधु ने तो शुरू में एक 'हिन्दू धर्म-बाधा-निवारिणी सभा' खोल रखी थी।

सावरकार को भगाने का षड्यन्त्र—यहाँ थोड़े में यह बताया जाय कि श्याम जी कृष्ण वर्मा आदि जो क्रान्तिकारी यूरोप में ही रह गए उन्होंने बाद में क्या किया। १९०९ के सितम्बर में श्याम जी ने लाला हरदयाल को पेरिस में बुलाकर एक अंग्रेजी पत्र 'वन्दे मातरम्' नाम से निकालने की चेष्टा की थी, ऐसा पता लगता है। इसके अलावा जब सावरकर गिरफ्तार करके मोरिया-स्टीमर से भारत लाए जा रहे थे तो उन्हें फ्रांस की भूमि पर भगाने का एक

षड्यन्त्र भी श्याम जी वर्मा आदि ने किया था । जब उनका जहाज मार्शेल बन्दरगाह में रुका तो यह तय किया गया कि वे जहाज से भागकर फ्रांस की भूमि पर आ जाएँ और वहाँ से टैक्सी द्वारा सीधे पेरिस पहुँचें। सावरकर भागने में समर्थ हुए थे, इसके अलावा वह फ्रांस की भूमि पर पहुँच भी गए थे, पर बन्दरगाह की फ्रेंच पुलिस ने अन्तर्राष्ट्रीय विधान के बिलकुल विरुद्ध सावरकर को पकड़कर ब्रिटिश पुलिस के हाथ में सौंप दिया । इस पर बड़ा तूफ़ान मचा और यह मामला हेग अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के सामने गया, पर ब्रिटिश प्रभाव के कारण कुछ नहीं हुआ । अन्तर्राष्ट्रीय अदालत में न्याय की हत्या हुई ।

बाद में भी श्याम जी कृष्ण वर्मा बराबर कुछ-न-कुछ करते रहे, पर कहते हैं सावरकर को भगाने की घटना के बाद उनसे एस० राजा, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय आदि का कुछ मतभेद हो गया । प्रथम महायुद्ध छिड़ने के बाद श्याम जी के लिए पेरिस में रहना भी असम्भव हो गया, इसलिए वह जेनेवा पहुँचे और वहीं १९३० की ३० मार्च को उनका देहान्त हुआ। प्रथम महायुद्ध के आरम्भ के पहले ही 'इण्डियन सोशियोलाजिस्ट' का प्रकाशन वन्द हो गया था । १९२० की जनवरी में फिर इण्डियन सोशियोलाज़िस्ट का एक अंक निकला था, १९२१ में भी एक अंक निकला, अंतिम अंक शायद १९२२ के सितम्बर में निकला, जिसमें उन्होंने एक व्यंग्यात्मक लेख लिखा था। उसमें अंग्रेजों के चरित्र की निन्दा की गई थी। अन्य उत्तेजात्मक लेख भी थे।

श्याम जी के पास इतना रुपया कहाँ से आया था, इस सम्बंध में यह बताया गया है कि जब बड़ौदा के गायकवाड़ मल्हारराव लार्ड नार्थब्रुक के द्वारा गद्दी से उतारे गए, तब मल्हारराव ने श्याम जी कृष्ण वर्मा के साथ इस उद्देश्य से सम्बन्ध स्थापित किया था कि श्याम जी उनके पक्ष में आन्दोलन करेंगे । श्याम जी ने पेरिस विश्वविद्यालय तथा अन्य बहुत-सी संस्थाओं को लाखों का दान दिया था । वह कुशल व्यापारी थे और हमेशा अपनी पूंजी का ऐसा उपयोग करते थे कि अधिक-से-अधिक लाभ हो ।

सरदारसिंह राणा—श्याम जी के साथियों में सरदारसिंह राणा का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है । राणा जी मादाम कामा के साथ पेरिस में क्रान्तिकारी साहित्य-सृजन तथा प्रचार में संलग्न थे और वह अंग्रेजी पत्र 'वन्दे

मातरम्' तथा बाद में चलकर 'तलवार' और 'इण्डियन फ्रीडम' से सम्बद्ध रहे। राणा जी बहुत धनी व्यक्ति थे और हेमचन्द्र दास नाम से जो क्रान्तिकारी यूरोप में बम बनाना सीखने गए थे उन्हें बम बनाना सिखाने में भी राणा जी ने बड़ी सहायता दी। श्री राणा जब तब भारत में अस्त्र-शस्त्र भी भेजा करते थे, उन्होंने १६०६ में सावरकर के पास २० आटोमेटिक ब्राउनिंग पिस्तौल और गोलियाँ भेजी थीं। इन्हीं पिस्तौलों में से एक से मिस्टर जैक्सन की हत्या की गई थी, जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। सावरकर ने इण्डिया हाउस के रसोइया छत्रभुज अमीन के संदूक के अन्दर छिपाकर इन पिस्तौलों को भेजा था।

जब प्रथम महायुद्ध छिड़ गया तो श्री राणा अपनी जर्मन पत्नी और अपने लड़के रणजीतसिंह के साथ सरकारी आदेश पर मार्तिनिक द्वीप में भेज दिए गए। बाद में युद्ध के अन्त पर १६१६ में श्री राणा मार्तिनिक द्वीप से लौटे, पर इस बीच में उनकी पत्नी और पुत्र की मृत्यु हो चुकी थी। इसी प्रकार मादाम कामा भी १६१४ में विशी के एक पुराने गढ़ में कैद कर ली गई थीं। ४ साल तक इस प्रकार कैद रहने के बाद वह पेरिस लौट आईं। श्री राणा अन्त तक १६४६ में भारत लौट आए।

मादाम बीका जी कामा—मादाम कामा भी ३० साल तक इंग्लैंड और फ्रांस में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए संग्राम करने के बाद १६३४ के नवम्बर में स्वदेश लौट आईं और १६३६ की १२ अगस्त को उनका देहान्त हुआ।

मादाम कामा का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था, पर राजनैतिक मत-वाद के कारण पति के साथ उनकी अनबन हो गई। शादी के बाद ५-६ साल के अन्दर ही दोनों का सम्बन्ध टूट गया था। इन्हीं दिनों बम्बई में बड़े जोर का ताऊन फैला। मादाम कामा इस समय एक तपस्विनी की तरह ताऊन के रोगियों की सेवा करती रहीं, लोगों ने बहुत मना किया पर वह नहीं मानीं। खैरियत यह है कि वह बची रहीं। १६०१ में ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से उन्होंने यूरोप की यात्रा की। धीरे-धीरे वहाँ उनका परिचय दादा भाई नौरोजी और श्री राणा आदि से हुआ। मादाम कामा सब तरह से इन लोगों के साथ सहयोग करती रहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन—१९०७ के १८ अगस्त को जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन होनेवाला था । यह तय हुआ कि मादाम कामा तथा सरदारसिंह राणा उसमें भारत का प्रतिनिधित्व करें और वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय उनके सहकारी रहें । पर जब वे वहाँ पहुँचे तो कहा जाता है कि ब्रिटिश समाजवादी रैमजे मैकडोनल्ड की अपचेष्टा के कारण उन्हें प्रतिनिधि रूप में स्वीकार करने में झगड़ा पड़ गया । पर फ्रेंच समाजवादी ज्योरे, जर्मन नेता बेवेल लीबनेख्त, रोजा लुक्जेमबुर्ग और ब्रिटिश नेता हाइन्डमैन के समर्थन से वे प्रतिनिधि चुने गए । तब मादाम कामा ने बहुत दिनों से जिस राष्ट्रीय झंडे की कल्पना की थी, उसे अपने हाथ से बनाकर फहरा दिया और उसके बाद यह प्रस्ताव रखा—

'भारत में ब्रिटिश राज्य का जारी रहना, भारत के सर्वोच्च स्वार्थ के लिए निश्चित रूप से आपत्तिजनक और बहुत ही हानिकर है और दुनिया के स्वतंत्रता-प्रेमियों को चाहिए कि उस निर्यातित देश में रहनेवाले मानव-जाति के पंचमांश को गुलामी से मुक्त होने में सहयोग दें क्योंकि आदर्श सामाजिक अवस्था का तकाजा यह है कि कोई भी जाति किसी तानाशाही या अत्याचारी सरकार के अधीन न रहे ।'

प्रस्ताव रखते हुए मादाम कामा ने बहुत जोशीला भाषण दिया, पर ब्रिटिश समाजवादियों ने यह कहकर इसका विरोध किया कि पहले से इस प्रस्ताव की नोटिस नहीं दी गई, इत्यादि इत्यादि ।

१९०८ की २० दिसम्बर को लन्दन के कैक्सटान हाल में भारतीय देश-भक्तों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, खापर्डे, आगाखाँ आदि उपस्थित थे । खापर्डे सभापति के पद पर थे, मादाम कामा ने भारत में विदेशी वस्तु बायकाट का प्रस्ताव रखा । ज्ञानचन्द्र वर्मा ने इसका समर्थन किया । वी० वी० एस० अय्यर ने इसी प्रकार तुर्की के प्रजातन्त्र बनने पर एक प्रस्ताव रखा । डॉ० आनन्द कुमारस्वामी ने एक विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया और सावरकर ने भी स्वराज्य की मांग पेश की ।

बलिदान की ओर—इसके बाद जब सावरकर नासिक षड्यन्त्र में अभि-युक्त घोषित किए गए और छत्रभुज अमीन ने मुखबिर होकर सारी बात

बता दी तो मादाम कामा ने एक ओर तो नासिक षड्यन्त्र की पैरवी की व्यवस्था की, दूसरी ओर श्याम जी वर्मा और राणा को बचाने के लिए वह स्वयं बिना किसी से पूछे ब्रिटिश कौंसिल के पास पहुँची और बोलीं—"मैंने ही छत्रभुज अमीन को ब्राउनिंग पिस्तौलें दी थीं। सारी जिम्मेदारी मेरी है और मैं ही दोषी हूँ"—पर मादाम कामा के नाम न तो वारण्ट निकला और न कुछ हुआ क्योंकि उन दिनों मादाम कामा फ्रांस में थीं और उन्हें गिरफ्तार करने में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ा खड़ा हो सकता था।

इसी प्रकार मादाम कामा बराबर देश-सेवा करती रहीं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि वह विशी में कैद कर ली गई थीं। अफसोस की बात है कि मादाम कामा अपने पारसी समाज में बहुत ही अवज्ञा की दृष्टि से देखी जाती थीं, पर भारतीय देशभक्तों में उनका नाम अमर रहेगा।

वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय—वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय एक प्रख्यात परिवार के सदस्य थे। उनके पिता अघोरनाथ चट्टोपाध्याय मध्य यूरोप के विश्वविद्यालयों से डाक्टरेट की पदवी प्राप्त करनेवाले शायद प्रथम भारतीय थे। उन्होंने ज्युरिख विश्वविद्यालय से यह पदवी जर्मन में सन्दर्भ लिखकर प्राप्त की थी। उनकी सन्तानों में सभी वीरेन्द्रनाथ, सरोजिनी नाइडू, हरीन्द्रनाथ और मृणालिनी कवित्व-शक्ति के अधिकारी हुए। उनकी माता वरदा सुन्दरी देवी लेखिका तथा गायिका भी थीं।

वीरेन्द्र १९०३ में बी० ए० पास करके विलायत गए और आई० सी० एस० में बैठे, पर उसमें कृतकार्य नहीं हुए। इसके बाद वह बैरिस्टरी पढ़ने के लिए तैयार ए, पर अपने उग्र विचारों के कारण वह मिडिल टेम्पल-इन से निकाल दिए गए। वह यूरोप की लगभग सभी भाषाएँ जानते थे, साथ ही गोली चलाने, तलवार चलाने तथा जुजुत्सु में प्रवीण थे। वह श्याम जी, कामा तथा अन्य लोगों के साथ भारत को स्वाधीन करने के आन्दोलन में लगे रहे। केवल यही नहीं, दूसरे देशों से जो भी स्वतन्त्रता योद्धा वहाँ आता था, उसके साथ उनका सहयोग रहा। उन्होंने जो कार्य किए उनके सम्बन्ध में हमने इस पुस्तक में यत्र-तत्र जिक्र किया है। यों तो वह लेखन-कार्य करते ही रहे, पर वह विशेष रूप से तभी कार्यशील हुए जब प्रथम महायुद्ध छिड़ा। फिर भी यहाँ इतना

और बता दिया जाए कि जब मदनलाल धींगरा ने सर कर्जन वाइली की हत्या की तब सरोजिनी नायडू ने एक बयान प्रकाशित किया, जिसमें यह बताया कि डाक्टर अघोरनाथ चट्टोपाध्याय इस प्रकार के कार्यों के विरुद्ध हैं, पर असल में डाक्टर चट्टोपाध्याय ने ऐसी कोई बात नहीं कही थी।

डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त का कहना है कि डॉक्टर साहब ने अपने पुत्र के सम्बन्ध में बल्कि यह कहा था कि मेरे बड़े लड़के से यह कहना कि उसने जो मार्ग अपनाया है, वह उसी पर डटा रहे । इससे पाठक अपना उपसंहार निकाल सकते हैं कि श्रीमती नायडू ने अपने सगे भाई के साथ भी अन्याय किया।

प्रथम महायुद्ध खतम होने के बाद भी वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय बराबर क्रान्तिकारी कार्य करते रहे और भारत से जो भी नेता बाहर जाते थे, उनसे मिलते रहे। यह पता नहीं है कि कैसे, कब, कहाँ उनकी मृत्यु हुई। वह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के एक महान योद्धा के रूप में परिचित रहेंगे । सच तो यह है कि वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने किस हद तक यूरोप जानेवाले नेताओं को अनुप्राणित किया इसका पूरा ब्यौरा अभी मालूम नहीं है।

श्री जवाहरलाल नेहरू ने वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्या के विषय में आत्मकथा में लिखा है—"वह लोगों में चट्टो नाम से प्रसिद्ध थे। वह बहुत ही योग्य और प्रिय स्वभाव के व्यक्ति थे। वह पैसों की कमी से हर समय पीड़ित रहते थे। उनके कपड़े फटे पुराने होते थे और अक्सर रोटियों के भी लाले पड़े रहते थे। फिर भी वह कभी हँसने हँसाने से बाज नहीं आते थे। हमेशा प्रफुल्ल रहते थे। जब मैं 'हैरो' में था तो वह ऑक्सफोर्ड में थे। तब से वह भारत नहीं लौटे थे। कभी-कभी देश लौटने की प्रबल इच्छा उनके मन में होती थी, पर घर से सारा संबंध बहुत पहले ही टूट चुका था। और यह भी निश्चित है कि यदि वह भारत आएँ तो बहुत दुखी हो जाएँ और अपने को खपा न पाएँ। जिन क्रान्तिकारियों से मैं योरप में मिला था, उनमें बौद्धिक रूप से वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय तथा एम० एन० राय की छाप मुझ पर पड़ी थी।"

२

बंगाल में क्रान्ति-यज्ञ का प्रारम्भ

लोग क्रान्तिकारी आन्दोलन को विशेषकर बंगाल का ही आन्दोलन समझते हैं, किन्तु जैसा कि देखा गया है, एक मुसलमान क्रान्तिकारी के द्वारा ऐसे षड्यन्त्रों का नहीं तो आतङ्कवादी हत्याओं का सूत्रपात हुआ था। लोकमान्य तिलक की अनुप्रेरणा से तथा सावरकर-बन्धु के नेतृत्व में जहाँ क्रान्तिकारी आन्दोलन चला था, वह महाराष्ट्र इसी से बिलकुल अलग ही हो गया। पर बंगाल में एक बार कार्य शुरू होते ही उसका तांता बराबर जारी रहा, और इस प्रकरण में सैकड़ों नवयुवक जेल गए, फाँसी चढ़े, गोलियाँ खाईं। इसका क्या कारण है? बात यह है कि जब तक दृश्यगत परिस्थितियाँ (Objective Conditions) अनुकूल नहीं होंगी, तब तक कोई आन्दोलन, चाहे उसको कितने ही अच्छे नेता मिल जाएँ, पनप नहीं सकता। बंगाल की परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि जिसमें आतङ्कवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन पनप सकता था। उसका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया है।

इस सदी के प्रारम्भ में ही वायसराय लार्ड कर्जन ने 'विश्वविद्यालय-कानून' नाम से एक कानून जारी किया। इस कानून का साफ मतलब यह था कि अँग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की संख्या पर रोक लगाई जाए, लोग कम-से-कम इसका मतलब यही लगा रहे थे। फलस्वरूप अँग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में बड़ी हलचल पैदा हुई, विशेषकर बंगाल के पढ़े-लिखे लोगों में। बंगाल में ही अँग्रेजी-साम्राज्यवाद ने अपना खूनी पंजा सर्वप्रथम फैलाया था, इसीलिए वहाँ के उन लोगों ने, जिन्होंने पढ़-लिखकर ब्रिटिश-झण्डे के मनहूस साये को स्वीकार कर लिया था तथा जो लोग साम्राज्यवाद के मददगार हो गये थे, अब तक बड़ी चैन की बाँसुरी बजाई थी। इन साम्राज्यवाद में भाड़े के 'भद्रलोक' गुलामों ने जब देखा कि इस प्रकार इस 'बिल' से उनके जन्मसिद्ध गुलामी के अधिकारी पर कुठाराघात हो रहा है, तो वे बहुत ही खिन्न हो गए। अपने वर्ग के स्वार्थ

पर जरा चोट पड़ते ही इनकी सब राजभक्ति काफूर हो गई, और अखबारों तथा सभाओं में जन्मसिद्ध अधिकार के लिए तीव्र आन्दोलन होने लगा। मजे की बात यह है कि जब अँग्रेजी-राज्य के प्रारम्भ-काल में राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी-शिक्षा को तरजीह देने का आन्दोलन किया था, उस समय इन्हीं बाबू लोगों में से बहुतेरों ने उनका विरोध किया था। किन्तु इस बीच में बहुत पानी बह चुका था, लोग अंग्रेजी-शिक्षा के कारण अंग्रेजों की नौकरियों में बहुत मजे कर चुके थे, इसलिए अब दूसरी बात हो गई थी

वङ्गभङ्ग—बंगाल के मध्य श्रेणीवाले तो यों ही खार खाए हुए बैठे थे कि लार्ड कर्जन ने एक नया शोशा छोड़ दिया और वह पहले वाले से कहीं अधिक खतरनाक था। १६०५ में लार्ड कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण पर शायद मैकाले का अनुकरण करते हुए यह कह मारा कि इस देश के लोग स्वभावतः मिथ्यावादी होते हैं। इस पर तहलका मच गया। जब लार्ड मैकाले ने इस तरह की बातें कही थीं, उस समय राष्ट्रीयता का उदय नहीं हुआ था, पर लार्ड कर्जन के इस कथन से नवोदित राष्ट्रीयता को बहुत ठेस लगी। उसी साल के मार्च महीने में कलकत्ते के ओवर टाउन हाल की विराट सभा में बड़े लाट साहब की इस चुनौती भरी उक्ति का जोरदार विरोध किया गया।

पर लार्ड कर्जन इससे पीछे नहीं हटे। उन्होंने अपना आक्रमण जारी रखते हुए एक नया कदम उठाया।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा उन दिनों एक प्रान्त था। इस प्रान्त की जनसंख्या ७ करोड़ ६० लाख थी, और यह एक छोटे लाट के आधीन था। विशेषज्ञों को पता होगा कि बंकिमचन्द्र ने मूलरूप से जो 'वन्दे मातरम्' गीत लिखा था, उसमें अब जहाँ "त्रिशकोटि-कंटकलकलनिनाद कराले' है, पहले वहाँ सप्तकोटिकंठ-कलकलनिनादकराले द्विसप्तकोटिकरैर्धृतकरवाले" था। यह सप्तकोटि उस जमाने के बंगाल का वर्णन था। लार्ड कर्जन की यह आदत थी कि वह जिस नतीजे पर पहुँच जाते थे, उसे कार्यान्वित करके ही दम लेते थे। न तो वह यह देखते थे कि इसका क्या असर होगा, न जनमत का कोई लिहाज करते थे। लार्ड कर्जन तो इस नतीजे पर पहुँच ही चुके थे कि बंगाल का अंग-भंग कर दिया जाय, फिर भी एक दिखावे के लिए वह बंगाल गए, और अपनी नीति का परि-

चय दे दिया ।

जुलाई १९०७ में यह घोषित कर दिया गया कि बंगाल यानी सूबा बंगाल नहीं बल्कि बँगलाभाषी बंगाल को भी दो टुकड़ों में बाँट दिया जायगा । देश में इसके विरुद्ध तीव्र आन्दोलन हो रहा था, बंगाली तो इसके खिलाफ आगबबूला हो रहे थे । सारे बंगाल में एक बिजली सी दौड़ गई । उसी बंगाल ने जिसने गुलामी का तौक सबसे पहले पहना था, अब ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर दिया । बंगाली यह कभी नहीं चाहते थे कि उनके 'सोने का बंगाल' दो टुकड़ों में बाँट दिया जाय, अतएव उसके विरुद्ध एक विराट आन्दोलन खड़ा हो गया । विशेषकर मध्यवित्त श्रेणी को ही इस बाँट से नुकसान पहुँचता था, किन्तु जब 'वंग-भंग' का नारा दिया गया तो उसके साथ सब वर्गों की सहानुभूति हो गई ।

'वंग-भंग' तो हो गया, किन्तु बंगाली नेताओं ने आशा नहीं छोड़ी । वे बराबर आन्दोलन करते रहे । सभाएँ होती रहीं, जुलूस निकलते रहे । इस जमाने में सैकड़ों गाने लिखे गए, जो एक हद तक जनता के हृदय से निकले और जनता के गाने थे । जो लोग समझते हैं कि गांधी जी ने ही हमारे देश में जन-आन्दोलन का श्रीगणेश किया, वे गलती करते हैं, 'वंग-भंग' का आन्दोलन भी एक जन-आन्दोलन था । भारतवर्ष के वर्तमान युग के इतिहास को पढ़ते समय इस बात को स्मरण रखना बहुत आवश्यक है । केवल यही नहीं बंगाल में ही सर्वप्रथम स्वदेशी, पिकेटिंग, राष्ट्रीय-शिक्षा यहाँ तक कि भद्र अवज्ञा का नारा उठा ।

श्री अरविन्द ने इन दिनों देश के विभिन्न स्थानों पर घूम-घूमकर जो भाषण दिए, उनसे भी यही बात प्रमाणित होती है । उन्होंने १९०८ के अप्रैल में पूर्व बंगाल में एक व्याख्यान में कहा था—ऐसा समय था जब यह समझना सम्भव था कि कुछ श्रेणियों का यानी शासक श्रेणी के द्वारा शिक्षा प्राप्त श्रेणी का और अधिक हुआ तो व्यापारी श्रेणी में जागृति यथेष्ट समझी जाती थी, पर यह युग जन जागरण का, करोड़ों लोगों का और गणतन्त्र का युग है । आज के जीवन संग्राम में यदि किसी जाति को जिलाना है, यदि कोई जाति स्वराज्य फिर से प्राप्त कर उसकी रक्षा करना चाहती है तो जनता को जगाना पड़ेगा, राष्ट्रीय जीवन के साथ उसका चेतनायुक्त सम्पर्क स्थापित रखना पड़ेगा, जिससे

हर एक व्यक्ति यह अनुभव करे कि राष्ट्र के द्वारा प्राप्त स्वतन्त्रता में ही उसकी भी स्वतन्त्रता निहित है।

श्री अरविन्द ने १९०८ में बम्बई में स्वदेशी और राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप पर भाषण देते हुए यह कहा था—"जब सचमुच वाणी आई, तो बंगाली उस वाणी को ग्रहण करने के लिए तैयार थे। एक मुहूर्त के अन्दर वह वाणी नसनस में बैठ गई। सारी जाति एक क्षण में जाग उठी। मोहनिद्रा भँग हुई। बंगालियों ने एकाएक जाग कर क्षण भर में नींद की जड़ता त्याग दी और मुक्ति के पथ को पहचान लिया और सारे भारत को उस मार्ग का सुराग बताकर सबको उसमें भाग लेने के लिए आह्वान किया।" यह बताया गया कि जाति के लिए दिव्य जीवन प्रतीक्षा कर रहा है, इस समय जो दैन्य और दुर्गति हैं, वे सत्य नहीं हैं, जाति के लिए मृत्युहीन जीवन है, इस जीवन को पाना ही उसकी नियति है. आधे बंगाल ने इस सत्य और विश्वास को ही जीवन में प्रतिष्ठित किया है। (बांगलार विप्लववाद : पृष्ठ २९)।

यद्यपि नाना कारणों से भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को एक हद तक हिन्दू रंग मिलता रहा, पर यह स्मरण रहे कि 'न्यू इण्डिया' में विपिनचन्द्र पहले ही यह कह चुके थे कि हमारे आदर्श का नवीन भारत न तो हिन्दू है और न मुसलमान, यहाँ तक कि ब्रिटिश भी नहीं। इन तीनों की संस्कृति के समन्वय से ही नवीन भारत का निर्माण होगा।

बंगाल का एकाकी पथ—इस आन्दोलन में धर्म का बहुत सहारा लिया गया। किन्तु इस बात पर विवेचना करने के पहले हम यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात पर विचार करेंगे। वंग-भंग की यह विपत्ति केवल बंगाल ही के ऊपर पड़ी थी, इसलिए दूसरे प्रान्तों के लोग इस विपत्ति की गहराई तक नहीं जा सकते थे, न उससे सक्रिय रूप से कोई सहानुभूति रख सकते थे। उस जमाने में कलकत्ते में बहुत सी मिलें खुल रही थीं, इस प्रकार देशी पूँजीवाद धीरे-धीरे अपने लड़खड़ाते (लड़खड़ाते इस कारण कि जब भारत में देशी पूँजीवाद का उदय हो रहा था, उस समय दूसरे देशों में वह ह्रासशील हो चुका था) पैरों को जमा रहा था, और उसका इस देश में एक दुश्मन था, विदेशी पूँजीवाद। दूसरे दुश्मन जो थे जैसे कुटीर-शिल्प, छोटे देशी उद्योग-धन्धे, उनको तो साम्राज्यवाद

के गुर्गों ने अत्यन्त जघन्यता और बर्बरता से नष्ट कर डाला था। यहाँ तक कि लोगों की उँगलियाँ काट डाली गईं, मकान फूंक दिए गए। देशी पूँजीपतियों ने अच्छा मौका देखा, उन्होंने 'स्वदेशी' का नारा दिया, बस, यह नारा इतना जबरदस्त हो गया कि सारे आन्दोलन का नाम ही स्वदेशी-आन्दोलन हो गया। इससे नई खुलनेवाली देशी कलों को काफी सहारा मिल गया, और वे खड़ी हो गयीं। बंगाल के लोगों में देशभक्ति के साथ ही साथ प्रांत-भक्ति भी जोरों से जग उठी।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बंगाल के लोगों में और प्रान्तों के लोगों से अधिक प्रान्तीयता है, किन्तु इसके बड़े गहरे ऐतिहासिक कारण हैं। किसी जाति में यदि किसी विशेष भाव का उत्कर्ष है, तो यह कहना कि यह उसके लिए स्वाभाविक है, एक गलत तरीका है। वैज्ञानिक तरीका तो यह है उसके कारणों का पता लगाया जाय। बात यह है कि शुरू-शुरू में बंगाल के लोग ही अंग्रेजी साम्राज्यवाद के चंगुल में फँसे। वहीं के लोगों ने पहले अंग्रेजी सीखी, और अंग्रेजों के गुमाश्ते, मुंशी, दुभाषिये बनकर भारतवर्ष में उतने ही आगे बढ़ते गए, जितना ब्रिटिश झण्डा आगे बढ़ता गया। स्वभावतः इन अंग्रेजों के गुलामों को चूँकि वे ब्रिटिश तोपों के साये में थे, तथा कुछ हद तक उनका और अंग्रेजों का स्वार्थ एक था, गलतफहमी हो गई कि ये और प्रान्तों के लोगों से ऊँचे हैं। इस किस्म की गलतफहमी बाद को उन गुलाम सिक्खों को भी रही, जो हांककांग, सिंगापुर आदि स्थानों में ब्रिटेन की छत्रछाया के नीचे रहते थे। मेरे नजदीक तो ये सिक्ख और वे बंगाली (बाद को उसमें सभी प्रान्त के लोग शामिल होते गए) केवल गुलाम ही नहीं गुलाम बनकर दूसरों को भी गुलाम बनानेवाले थे।

जो कुछ भी हो, इन मध्यवित्त श्रेणी के गुलाम बंगालियों को ख्याल हो गया था कि वे ऊँचे हैं, धीरे-धीरे यह भाव बंगाल के साहित्य में भी सूक्ष्मरूप से प्रवेश कर गया, और इस प्रकार कुछ हद तक जाति की चारित्रिक विशेषता में परिणत हो गया। इसके बाद 'वंग-भंग' आया। इस बात में बंगाल के अलावा किसी प्रांत को कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। बंगालियों ने एक प्रकार से अकेले इस आन्दोलन को चलाया।

अवश्य सारे भारत की सहानुभूति बंगाल के साथ थी। उन दिनों के जो

महत्त्वपूर्ण नेता थे याने तिलक, गोखले, खापर्डे, लाला लाजपतराय, सरदार अजितसिंह आदि ने बंगाल का समर्थन किया। गोखले नरम दल के नेता थे, पर उन्होंने भी कहा कि यदि जनमत की इसी तरह उपेक्षा होती रही तो तानाशाही शासन के साथ सहयोग का अन्त होने पर जैसा कि नलिनी किशोर गुहा ने लिखा है, "सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया या विरोध बंगाल के ही अन्दर से आया। सुरेन्द्रनाथ ने नारा दिया—अब आवेदन निवेदन का युग गया, अब हम अपने पैरों पर खड़े होंगे।"

पूर्वीय देशों में जागृति—प्रायः एक सदी से या उसके कुछ अधिक समय से पूर्वीय देशों को हर मामले में यूरोपीय देशों के सामने दबना पड़ रहा था। पूर्व के बहुत से लोगों में आत्मविश्वास नहीं-सा रह गया था। यही धारणा सबके दिल में जम रही थी कि यूरोपियन लोग अजेय हैं। ऐसे समय में जापान ने जारशाही रूस को पछाड़ दिया। रूस यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों में समझा जाता था, इसलिए रूस के हारने से समस्त पूर्व के लोगों में एक अजीब उत्साह की लहर दौड़ गई। ठीक इसी समय वंग-भंग हुआ, बस इसी बात पर उस जमाने के बंगाली और उत्तेजित हो गए। इन लोगों ने कहा—"वाह, क्या बंगाली कोई चीज नहीं? उधर जापान ने तो रूस को पछाड़ दिया और इधर बंगाल का यह अपमान? क्या बंगाली मर्द नहीं हैं? क्या इनमें धर्म तथा देश की ममता नहीं है? वे शक्ति की देवी, काली माता को याद करें! वे अपनी शक्ति बढ़ाएँ, मराठा वीर शिवाजी के वीरतापूर्ण कृत्यों का स्मरण करें। वे विदेशी सरकार का सबसे बड़ा पाया विदेशी वस्तुओं का 'बायकाट' कर उचित तरीके से विरोध करें।"

भारतवर्ष में पहली पिकेटिंग—यह आन्दोलन मुख्यतः एक हिन्दू-आन्दोलन ही रहा, क्योंकि हिन्दू 'भद्रलोक'-श्रेणी के लोग ही अंग्रेजी-शिक्षित थे। यह भी स्मरण रखने की बात है कि भारतवर्ष में विदेशी वस्त्रों तथा सरकारी स्कूलों पर पिकेटिंग सबसे पहले इसी समय में हुई, विशेषकर छात्रों ने इसमें खूब भाग लिया। पिकेटिंग से कई जगहों पर गड़बड़ी हुई, किन्तु बंगाली दबे नहीं।

धर्म और राष्ट्रीय उत्थान—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, धार्मिक भावों से अधिक लाभ उठाया गया। पूर्वीय देशों के उत्थान का प्रारम्भिक इतिहास सब

इसी प्रकार धार्मिक रंग में रंगा हुआ है। चाफेकर को हम देख ही चुके हैं कि उन्होंने 'हिन्दू धर्मबाधा-निवारिणी समिति' बनाई थी, सावरकर बन्धु भी धार्मिक रहे, हम दिखाएँगे कि बंगाली क्रान्तिकारियों ने भी धर्म के सहारे लोगों को उभाड़ा था । इस वाक्य से शायद यह गलतफहमी हो कि वे धर्म को नहीं मानते थे, केवल उभाड़ने का काम उससे लेते थे। इसलिए यह कह देना जरूरी है कि वे स्वयं धर्म के कट्टर माननेवाले थे ।

इसी जमाने में व्यायाम तथा मानसिक उन्नति के लिये अनुशीलन और सुहृद समितियाँ खुलीं। इनका प्रचार गाँव-गाँव तक फैला हुआ था । अकेले ढाका-समिति की ही ६०० शाखाएँ थीं। बहुत दिनों तक ये समितियाँ खुल्लम-खुल्ला काम करती रहीं, किन्तु सरकार ने जब इन पर प्रहार किया, तो ये ही खुली समितियाँ कुछ सदस्यों को लेकर गुप्त समितियों में परिणत हो गईं। ऐसा तो होता ही है, जब खुले तौर पर काम नहीं करने दिया जाता, तभी लोग गुप्त समितियाँ बनाते हैं।

१६०६ में बरिशाल में सम्मेलन हो रहा था, उसमें जो कुछ भी कार्रवाई हो रही थी, वह गुप्त नहीं थी, फिर भी उसे भंग कर दिया गया। उन दिनों 'युगान्तर' ने बहुत काम किया । पर उसके सम्पादक भूपेन्द्रनाथ दत्त को राज-द्रोह में जेल भेज दिया गया। यह स्मरण रहे कि भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अदालत में अपने मुकदमे की पैरवी नहीं की। इस प्रकार असहयोग युग में पकड़े हुए कांग्रे-सियों का आत्मपक्ष समर्थन न करना भी पहले ही स्वदेशी युग में आ चुका था।

सरकार श्री अरविन्द को सज़ा दिलाना चाहती थी, पर उन्हें सज़ा कराने के लिए श्री विपिन चन्द्र पाल की गवाही की जरूरत थी। पर श्री पाल ने सर-कार की तरफ से गवाही देने से इन्कार किया । इस पर किंग्सफोर्ड नामक अंग्रेज ने उन्हें छः महीने की सजा कर दी । जिस दिन श्री पाल पर मुकदमा चल रहा था, उस दिन अदालत में बहुत भीड़ थी। अंग्रेज सार्जेंट एकत्र जनता पर मनमाने ढंग से बेंत चला रहे थे। इस पर राष्ट्रीय विद्यालय के छात्र १७ साल उम्र के सुशील सेन आपे से बाहर हो गए और उन्होंने अदालत के हाल में ही सार्जेंट को मुक्का मारा। इस पर किंग्सफोर्ड ने सुशील सेन को बेंत की सज़ा दी।

इन्हीं घटनाओं के कारण किंग्सफोर्ड को "संध्या" नामक उस युग के क्रान्तिकारी पत्र के सम्पादक ब्रह्मबान्धव उपाध्याय ने कसाई क़ाज़ी की उपाधि दी। सुशील सेन को जो बेंत लगाए गए, उस पर उस युग के प्रख्यात कवि काव्य विशारद ने एक गीत लिखा जिसका अर्थ यह था—"तू चाहता है कि मैं बेंत खाकर अपनी माँ को भुला दूँ, पर मैं माँ की वैसी सन्तान थोड़े ही हूँ। खून की लालिमा से हमारी कालिमा मिटेगी और शक्ति बढ़ेगी। भला कौन ऐसी नालायक सन्तान है जो माँ को छोड़कर जायगी।"

किंग्सफोर्ड के अन्य कारनामों में एक यह भी था कि एक सम्पादकीय के लिए श्री ब्रह्मबान्धव पर उनकी अदालत में मुकदमा चला। इस पर ब्रह्मबान्धव ने भी यह कहा कि मैं विदेशियों की अदालत में न्याय की प्रार्थना नहीं करता। अभी ब्रह्मबान्धव पर मुकदमा चल ही रहा था कि वे अस्पताल में परलोक सिधार गये। किंग्सफोर्ड ने उन दिनों के बंगला पत्र 'युगान्तर' और 'सन्ध्या' के अलावा श्री अरविन्द के 'वन्देमातरम्' और विपिनचन्द्र के 'न्यू इण्डिया' नामक अंग्रेजी पत्रों पर भी मुकदमे चलाए।

वारीन्द्रकुमार घोष—१८८० में वारीन्द्रकुमार घोष का जन्म इंग्लैण्ड में हुआ था, किन्तु वे बचपन में ही इंग्लैण्ड से भारतवर्ष लाए गए थे। १९०२ में वे अपने बड़े भाई श्री अरविन्द घोष के निकट से जो उस समय बड़ौदा कालेज में वाइस प्रिन्सिपल थे, बंगाल आए। ये दोनों भाई डॉक्टर के० डी० घोष के लड़के थे। डॉक्टर घोष सरकारी नौकर थे। अरविन्द की सारी शिक्षा इंग्लैण्ड में ही हुई थी, वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के 'Classical Tripos' में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। इण्डियन सिविल सर्विस में भी वे ले लिए जाते किन्तु अन्य परीक्षाओं में पास होने पर भी घुड़सवारी की परीक्षा में असफल होने के कारण उनको नहीं लिया गया था।

वारीन्द्र एक निश्चित उद्देश्य लेकर ही बंगाल आए थे। बाद को उन्होंने स्वयं अदालत में कहा कि वे क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए बंगाल गए थे। इस आन्दोलन का उद्देश्य सशस्त्र उपायों से ब्रिटिश सरकार को यहाँ से निकालना था, तथा उसकी प्रथम सीढ़ी गुप्त समिति का रूप लेने वाली थी। वारीन्द्र ने बंगाल जाकर देखा कि कुछ व्यायाम-समितियाँ हैं तो जरूर, पर उन्होंने कुछ

और भी समितियाँ स्थापित कीं और क्रान्तिकारी भावनाएँ भी फैलाईं; किन्तु जो बात वे चाहते थे, उसकी गुंजाइश उन्होंने नहीं देखी, इसलिए वे १६०३ में फिर बड़ौदा लौट गए। अभी समय नहीं आया था।

वारीन्द्र फिर आए—१६०४ में जब भावी वंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन जोरों पर था उस समय वे फिर बंगाल गए। अब की बार वारीन्द्र को पहले से अधिक सफलता मिली। वारीन्द्र बाद को जब पकड़े गए, तो उन्होंने २२ मई १६०८ को एक मजिस्ट्रेट के सामने जो बयान दिया था, वह नीचे दिया जाता है। स्मरण रहे कि वारीन्द्र के मुकदमें में सभी ने आपस में सलाह करके बयान दे दिया था। उन्होंने ऐसा करने में देश की भलाई समझी। जो कुछ भी हो, वारीन्द्र के बयान का सारांश यह था—

वारीन्द्र घोष का बयान—"एक साल बड़ौदा में रहने के बाद मैं बंगाल लौट कर आया। मेरा उद्देश्य यह था कि राष्ट्रीय मिशनरी की भाँति मैं भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन का प्रचार करूँ। मैं एक जिले से दूसरे जिले गया और मैंने वहाँ अखाड़े वगैरह स्थापित किए। ऐसी जगहों पर नौजवानों को क़सरत सिखाई तथा राजनीति में उनकी दिलचस्पी पैदा की जाती थी। इसी भाँति मैंने दो साल तक लगातार स्वाधीनता का प्रचार करते हुए दौरा किया। मैं इसी बीच में बंगाल के लगभग सब जिलों का दौरा कर चुका था। मैं इस बात से थक गया और बड़ौदा लौट गया, और फिर अपनी किताबों में डूब गया। एक साल बाद फिर मैं बंगाल लौट आया। अब की बार मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि केवल विशुद्ध राजनीतिक प्रचार-कार्य से इस देश में कुछ नहीं होगा। लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा देना चाहिए, ताकि वे विपत्ति का सामना कर सकें। एक धार्मिक संस्था खोलने की योजना भी मेरे दिमाग में थी। तब तक स्वदेशी तथा बायकाट आन्दोलन भी आरम्भ हो चुका था। मैंने सोचा कि कुछ आदमियों को मैं अपनी देख-रेख में शिक्षा दूँ, इसलिए मैंने इन लोगों को एकत्र किया, जो मेरे साथ पकड़े गए हैं। मेरे मित्र भूपेन्द्रनाथ दत्त तथा अविनाश भट्टाचार्य की सहायता से मैंने 'युगान्तर' प्रकाशित करना शुरू किया। हमने लगभग डेढ़ साल तक इसे चलाया, फिर इसे वर्तमान व्यवस्थापकों के हाथ सौंप दिया। अखबार का भार इस प्रकार दूसरों पर सौंपने के बाद, मैं फिर लोगों को

भर्ती करने में लग गया। मैंने १६०७ के शुरू से लेकर अब तक (अर्थात् १६०८ तक) करीब १४-१५ नवयुवकों को एकत्रित किया। मैंने इन नवयुवकों को धार्मिक पुस्तकें तथा राजनीति पढ़ाई। हम लोग हमेशा यही सोचते थे कि आगे जाकर एक क्रान्ति होगी और इसके लिए अस्त्र-शस्त्र भी इकट्ठे किए जाने लगे। मैंने इन दिनों ११ पिस्तौलें, चार राइफलें और एक बन्दूक एकत्र कर ली थी। हमारे यहाँ के नवयुवकों में एक उल्लासकर दत्त भी था। उसने कहा कि चूंकि मैं आप लोगों से मिलकर काम करना चाहता था, इसीलिए मैंने बम बनाना सीख लिया था। उसके घर में एक प्रयोगशाला थी, जिसका उसके पिता को पता नहीं था। उसी में वह अपने प्रयोग किया करता था। मैं कभी इस प्रयोग-शाला में नहीं गया। मुझे उससे केवल यह मालूम भर था कि एक ऐसी प्रयोग-शाला है। उल्लासकर की मदद से हमने ३२ नं० मुरारीपुकुररोड के एक मकान में बम बनाना शुरू किया। इस बीच में हमारे एक मित्र हेमचन्द्रदास अपनी जायदाद का एक हिस्सा बेचकर पेरिस में मेकेनिक्स और हो सका तो बम बनाना सीखने चले गए। जब वे लौट आए, तो वे बम बनाने के हमारे कार-खाने में उल्लासकर के साथ शामिल हो गए। हम कभी भी यह नहीं समझते थे कि राजनीतिक हत्याओं से आजादी मिल जायगी। हम हत्याएँ केवल इस-लिए करते हैं कि हम समझते हैं कि जनता को इसकी आवश्यकता है।"

वारीन्द्र के अतिरिक्त और लोगों ने जो बयान दिए उनसे भी साफ हो जाता है कि उस जमाने के क्रान्तिकारी क्या चाहते थे। उपेन्द्रनाथ बनर्जी इन षड्यन्त्रकारियों में एक प्रमुख व्यक्ति थे, बंगला भाषा के लेखकों में उन्हें एक प्रमुख स्थान प्राप्त है।

उपेन्द्र का बयान—"मैंने सोचा कि हिन्दुस्तान के कुछ आदमी तब तक कुछ काम नहीं करेंगे, जब तक कि उनसे धार्मिक रूप से काम न कराया जाय, इस-लिए मैंने चाहा कि अपने काम में साधुओं से मदद लूं। जब साधुओं को मदद न मिली, तो मैंने छात्रों पर ध्यान दिया और उनको धार्मिक, नैतिक तथा राज-नीतिक शिक्षा देने लगा। तब से मैं बराबर लड़कों में देश की दशा तथा आजादी की जरूरत पर प्रचार करता रहा और यह बताता रहा कि इसको हासिल करने का एकमात्र उपाय लड़ना है। वह इस प्रकार होगा कि अभी तो गुप्त समितियाँ

स्थापित कर हम भावनाओं का प्रचार करें तथा अस्त्र-शस्त्र संग्रह करें। मैं यह जानता था कि वारीन्द्र, उल्लासकर और हेम बम बना रहे हैं। ऐसा करने में उनका उद्देश्य उन सरकारी अफसरों को, उदाहरणार्थ गवर्नर तथा किंग्सफोर्ड को मारना था, जो दमन द्वारा हमारे काम में रोड़े अटकाते रहते थे।"

दूसरे अभियुक्तों ने इसी प्रकार के बयान दिए।

क्रान्तिकारियों का प्रचार-कार्य—वारीन्द्र जिस षड्यन्त्र में लिप्त थे, जब वे पकड़े गए तो वह 'अलीपुर षड्यन्त्र' नाम से मशहूर हुआ। इस षड्यन्त्र के सभी सदस्य उच्च शिक्षित थे। कुछ तो विदेश भी हो आए थे। जनता में भी असन्तोष था, ऐसी अवस्था में वारीन्द्र आदि ने प्रचार-कार्य भी जोरों से किया। वे 'युगान्तर' तो निकाल ही रहे थे। १९०७ में इसकी ग्राहक-संख्या ७००० थी। १९०८ में इसकी बिक्री और भी बढ़ी, किन्तु इसी सन् में 'समाचार-पत्रों द्वारा विद्रोह के लिए प्रोत्साहन-सम्बन्धी कानून' (Newspaper's Incitement to offences Act) के अनुसार इसे बन्द कर दिया गया। चीफ जस्टिस सर लारेन्स जेकिन्सन ने 'युगान्तर' की फाइलों के सम्बन्ध में बताया—

"इनकी हर एक पंक्ति से अंग्रेजों के प्रति विद्वेष टपकता है, हर एक शब्द से क्रान्ति के लिए उत्तेजना झलकती है। इसमें बताया गया है कि क्रान्ति कैसे होगी?"

जो लोग अखबार निकालकर एकदम क्रान्ति का प्रचार करते थे, उनके सम्बन्ध में न तो यह कहा जा सकता है कि वे जनमत को कोई महत्त्व नहीं देते थे, और न यह कहा जा सकता है कि वे प्रचार-कार्य से अनभिज्ञ थे। अवश्य ही वे प्रचार कार्य द्वारा जनमत को इस हद तक ले जाना चाहते थे कि यदि कोई विद्रोह हो, तो उस समय जनता उसका विरोध न करे।

माननीय जस्टिस मिस्टर रौलट ने अपनी रिपोर्ट में दिखलाया है कि 'युगान्तर' किस प्रकार का प्रचार-कार्य करता था। इसके लिए उन्होंने 'युगान्तर' से दो उद्धरण दिए हैं। हम यहाँ दोनों का अनुवाद उद्धृत करते हैं—

"अस्त्र की शक्ति प्राप्त करने का एक और बहुत ही अच्छा उपाय है। रूस की क्रान्ति में देखा गया है कि जार की सेना में क्रान्तिकारियों से मिले हुए बहुत-से आदमी हैं, जो समय पड़ने पर अस्त्र-शस्त्र समेत क्रान्तिकारियों से मिल

जाएँगे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति में भी यह पद्धति खूब सफल रही थी। जहाँ पर शासक विदेशी हैं, वहाँ तो क्रान्तिकारियों के लिए और भी सुविधा है, क्योंकि विदेशी-सरकार को अपनी अधिकांश सेना को पराधीन जाति से ही भर्ती करना पड़ता है। यदि क्रान्तिकारी बुद्धिमानी से इन लोगों में स्वतन्त्रता का प्रचार करें, तो बहुत काम हो सकता है। जब असली संघर्ष का मौका आएगा, तब क्रान्तिकारियों को न सिर्फ प्रशिक्षित आदमी मिलेंगे; बल्कि सरकार-पक्ष के अच्छे-से-अच्छे हथियार भी मिलेंगे।''

दूसरा पत्र इस रूप में था—

प्रिय सम्पादकजी,

मुझे मालूम हुआ कि आपके अखबार हजारों की तादाद में बाजार में बिकते हैं। यदि मान भी लिया जाए कि आपके अखबार की पन्द्रह हजार प्रतियाँ खप जाती हैं, तो इसका अर्थ यह है कि कम-से-कम ६०,००० लोग उसे पढ़ते हैं। मैं इन ६०,००० व्यक्तियों से एक बात कहने का लोभ संवरण नहीं कर पाता, इसीलिए मैंने असमय में कलम पकड़ी है! मैं पागल, नादान तथा सनसनी पैदा करनेवाला ही सही, मेरे आनन्द की सीमा नहीं रहती है, जब मैं देखता हूँ कि चारों ओर असन्तोष बढ़ रहा है······ऐ लूट खसोट! मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ, तुम हमारी सहायता करो। अब तक तुमने हमें लुटवाया, किन्तु अब हमें वही मार्ग दिखलाओ जिससे हम लूटनेवालों को लूट सकें। इसीलिए हम तुम्हारी पूजा करते हैं।''

ऊपर जो पत्र दिया गया, वह हमने रौलट साहब के विवरण से लिया है, अतएव उसमें कहाँ तक नमक-मिर्च मिलाया गया है, तथा कहाँ तक अतिरञ्जन है, यह नहीं कहा जा सकता।

बाद की सब बातें पृथक् अध्यायों में आ जाएँगी, केवल थोड़ी सी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन दिया जाता है, जिनका उल्लेख वहाँ नहीं होगा।

लाट साहब पर हमला—१९०७ के अक्तूबर में बंगाल के गवर्नर की गाड़ी को उड़ा देने के दो षड्यन्त्र हुए थे। ६ दिसम्बर १९०७ को गवर्नर की गाड़ी बड़ी शान्ति से अपने पथ पर मिदनापुर के पास से जा रही थी। इतने में बड़े जोर का धड़ाका हुआ। गाड़ी पटरी पर से उतर गई, किन्तु लाट साहब बाल-

बाल बच गए । पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार इस धड़ाके से पाँच फुट चौड़ा और पाँच फुट गहरा गड्ढा हो गया था।

१९०७ के अक्तूबर में ढाका जिले के निताइगञ्ज नामक स्थान में एक आदमी को छुरा मार कर लूट लिया गया। उसी सन् के २३ दिसम्बर को ढाका के भूतपूर्व जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर एलन की पीठ पर गोली मारी गई, अन्त में वे बच गए। ११ अप्रैल १९०८ को चन्दननगर के फ्रेंच मेयर के घर पर बम डाला गया, कोई मरा नहीं। कहा जाता है, इस मेयर पर, इस लिए हमला किया गया था कि उसने फ्रेंच भारत से गुप्त रूप में अस्त्र-शस्त्र मँगाने का रास्ता बन्द कर दिया था।

मुजफ्फरपुर-हत्या काण्ड—३० अप्रैल १९०८ को किंग्सफोर्ड के धोखे में मिसेज और मिस केनेडी की गाड़ी पर बम फेंका गया । बम फेंकनेवाले का नाम खुदीराम था। मिसेज और मिस केनेडी दोनों मर गईं । खुदीराम के बारे में हम विस्तारपूर्वक आगे लिखेंगे ।

अलीपुर षड्यन्त्र—३४ मुरारीपुकुर-रोड में एक बम का कारखाना था। जब वह पकड़ा गया, तो उसी के साथ बहुत से बम, डिनामाइट तथा चिट्ठियाँ भी पकड़ी गईं । ३४ आदमी पकड़े गए, और इस षड्यन्त्र का नाम अलीपुर षड्यन्त्र पड़ गया। अभियुक्तों में से एक अर्थात् नरेन गोसाईं मुखबिर हो गया, किन्तु अदालत में उसका बयान होने के पहले ही दो क्रान्तिकारी नवयुवकों ने बड़ों से बिना सलाह किए ही, चोरी से जेल में पिस्तौलें मँगा लीं, और मुखबिर का काम तमाम कर दिया। इन दोनों नवयुवकों को अर्थात् श्री कन्हाईलाल तथा श्रीसत्येन्द्र चाकी को फांसी की सजा हुई । अन्त तक अलीपुर-षड्यन्त्र में १५ आदमियों को सम्राट् के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अपराध में सजा हुई। इन सजायाफ्तों में वारीन्द्रकुमार घोष, उल्लासकर दत्त, हेमचन्द्र दास तथा उपेन्द्र बनर्जी का पहले उल्लेख किया जा चुका है । १० फरवरी १९०९ को अलीपुर-षड्यन्त्र का सरकारी वकील जान से मार डाला गया। २४ फरवरी सन् १९१० को जब अलीपुर-षड्यन्त्र की अपील की सुनवाई हाईकोर्ट में हो रही थी, उस समय डी० यस० पी०, जो सरकार की ओर से इस मुकद्दमे की देख-रेख कर रहा था, दिनदहाड़े अदालत से निकलते समय गोली से मार दिया गया।

इसी प्रकार की बहुत सी घटनाएँ हुईं, जिनका अलग-अलग उल्लेख करना न तो सम्भव है, न उसकी कोई जरूरत है। सार यह है कि बंगाल के शिक्षित नवयुवक इस प्रकार ब्रिटिश-साम्राज्यवाद पर वार करते रहे। सारा बंगाल और कुछ हद तक सारा भारत इन अलमस्तों के पीछे था। इस आन्दोलन का और कुछ नतीजा हो या न हो, बंगाल तो फिर से एक हो गया। मानना पड़ेगा कि जाति की मुरझाई हुई मनोवृत्ति पर शहीदों के खून की यह वर्षा काफी उत्तेजक साबित हुई। बंगाली जाति करीब-करीब एक बे-रीढ़ की जाति थी। इन लोहे की रीढ़वालों ने उसे एक 'रीढ़दार जाति' बना दिया।

जिस समय 'वन्देमातरम्' कहने पर लोग मारे जाते थे, जन-आन्दोलन जब स्वप्न था, उस जमाने में इन लोगों ने जो हिम्मत की, कोई अन्धा, मूर्ख, कायर भले ही उसे छोटा बताए, किन्तु हमारी जाति के मन पर उसका जो असर पड़ा, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। अब तो ऐसे लोग भी जो हमेशा क्रान्तिकारियों का विरोध करते रहे, यह मानते हैं कि आधुनिक बंगाल के स्रष्टा दो हैं—ये क्रान्तिकारी और बंगला लेखक।

कन्हाई का साहसपूर्ण कार्य—ऊपर संक्षेप में कन्हाईलाल का वर्णन किया गया है, किन्तु उस जमाने में कन्हाई के कार्य से सारे बंगाल में जो सनसनी हुई थी, और जो खुशी की लहर दौड़ गई थी उसको देखते हुए इस विषय का कुछ विस्तृत वर्णन होना जरूरी है। अलीपुर षड्यंत्र में नरेन गोसाईं नामक एक नौजवान मुखबिर हो गया, ३० जून १९०८ को इसे माफी दे दी गई। साधारण कायदे के मुताबिक नरेन को अभियुक्तों से हटाकर अस्पताल में रखा गया, जहाँ राजनैतिक मुकदमा होने के कारण उस पर अच्छी देखरेख रखी जाती थी, ताकि वह पलट न जाय या उस पर कोई हमला न करे। जब नरेन इस प्रकार मुखबिर बना, तो अभियुक्तों में जो नौजवान थे उनको बहुत बुरा लगा, और उन्होंने तय किया कि इसकी किसी प्रकार हत्या की जाय, किन्तु काम बड़ा कठिन था। एक तो किसी की हत्या जेल के बाहर ही करना मुश्किल है, फिर हत्या करने का इरादा रखनेवाला स्वयं कैदी हो, और जिसकी हत्या करना है उस पर पहरा रहता हो तो यह काम बहुत ही कठिन हो जाता है। सत्येंद्र वसु तथा कन्हाईलाल ने आपस में सलाह कर ली, और तय कर लिया कि यह काम

होना चाहिए, षड्यन्त्र के नेताओं से इस बात का इशारा किया गया, किन्तु उन्होंने इसमें बिलकुल दिलचस्पी नहीं ली बल्कि ऐसी-ऐसी बातें कहीं जिससे यह बात असम्भव सिद्ध हो। अब वे दो अलमस्त साधनों की खोज में लगे, बाहर से अभियुक्तों के लिए कटहल, मछली वगैरह आती थी। कहा जाता है कटहल या मछली के अन्दर ही दो रिवालवर आए, असली बात तो यह है किसी को पता ही नहीं कि कैसे ये रिवालवर अन्दर गए। जो लोग जेल में बहुत दिनों तक रह चुके हैं वे जानते हैं कि रुपया खर्च करने के लिए तैयार होने पर जेल में कोई भी चीज वार्डर, यहाँ तक कि जेलरों के जरिए से जा सकती है, फिर क्रान्तिकारी इसके अतिरिक्त नैतिक दबाव भी तो रखते थे। सम्भव है कि कोई वार्डर इन रिवालवरों को अन्दर ले गया हो। बात यह है कि इस षड्यन्त्र में लिप्त दोनों व्यक्तियों को फाँसी हो गई, उनकी जीभ हमेशा के लिए नीरव हो गई है, इसलिए ठीक-ठीक इसका पता इतिहास को कभी नहीं लगेगा।

जेल में धाँय-धाँय—जब साधन प्राप्त हो गया तो यह प्रश्न पैदा हुआ कि नरेन के पास कैसे जाया जाए, क्योंकि जेल में एक वार्ड से दूसरे वार्ड में जाना तिब्बत या मध्य अमेरिका जाने से कम कठिन नहीं है। सत्येन्द्र ने खाँसी की बीमारी बनाई, और अस्पताल पहुँच गए, उधर दो-एक दिन बाद कन्हाईलाल के भी पेट में सूक्ष्म दर्द उठा, और वह भी कराहते-बिलखते अस्पताल पहुँचे। अस्पताल पहुँचते ही पहले कन्हाई इतने जोर से कराहने लगे कि डाक्टर तथा जेलर समझे कि अब यह दो-चार ही दिन के मेहमान हैं, किन्तु उनका असली मतलब तो यह था कि सत्येन्द्र जान जाएँ कि वह आ गए, और अब काम शुरू हो जाना चाहिए।

उधर सत्येन्द्र अस्पताल में आने के बाद से बराबर यह दिखला रहे थे कि वे जीवन से उकता गए हैं, और अपने साथियों से नाराज हैं। उन्होंने नरेन को एक खबर भी भेज दी कि हम भी मुखबिर बनना चाहते हैं, नरेन तथा जेल के अफसर सत्येन्द्र के अभिनय से इतने प्रभावित हुए थे कि ३१ अगस्त को नरेन एक जेल सर्जेन्ट की संरक्षकता में सत्येन्द्र से मिलने भेजा गया। बस गोली की मार के अन्दर आते ही सत्येन्द्र ने गोली चला दी। गोली पैर में तो लगी, किन्तु नरेन गिरा नहीं। अब कन्हाई भी आस-पास ही कहीं थे, उनके पास भी भरा हुआ रिवालवर था। नरेन भागकर अस्पताल से बाहर जा रहा है यह देखकर

कन्हाई ने उसका पीछा किया। बीच में एक फाटक पड़ता था, किन्तु हाथ में रिवालवर देख फाटक के पहरेदार ने फाटक खोल दिया, यही नहीं, उसने इशारे से बता दिया कि नरेन किधर गया। कन्हाई एक शेर की तरह झपटकर नरेन के पास पहुँचा, और सब गोलियाँ उस पर खाली कर दीं। इस प्रकार साम्राज्यवाद के ऐन गढ़ में साम्राज्यवाद का एक पिट्ठू देशद्रोही नरेन मारा गया।···

इस खबर के पहुँचते ही सारे बंगाल में जो सनसनी हुई वह अवर्णनीय है।

अंग्रेजी दैनिक 'बंगाली' के दफ्तर में खुशी में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मिठाई बाँटी, सारे बंगाल में यह घटना एक राष्ट्रीय विजय के रूप में ली गई।

साम्राज्यवाद का बदला—ब्रिटिश साम्राज्यवाद यह नहीं बर्दाश्त कर सकता था कि कोई व्यक्ति या संस्था आतंकवाद में उससे आगे बढ़ जाए; वह तो इस वस्तु का एकाधिकार अपने हाथ में रखना चाहता है, तदनुसार कन्हाई और सत्येन्द्र पर मुकदमा चला, और सन् १९०८ की १० नवम्बर को उन्हें फाँसी दे दी गई।

शहीद का दर्शन—मोतीलाल राय ने कन्हाईलाल पर एक पुस्तक लिखी थी। मोती बाबू बंगाल के एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा लेखक थे। कन्हाई की फाँसी के बाद इनको तथा कुछ अन्य लोगों को जेल के अन्दर से कन्हाई की लाश ले आने की आज्ञा मिली थी, उस समय का जो मार्मिक वर्णन उन्होंने लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं—

"पाँच-छः आदमियों को भीतर जाने की अनुमति मिली। एक गोरे ने हमसे जानना चाहा कि कौन-कौन भीतर जाना चाहता है। आशु बाबू (कन्हाई के बड़े भाई), मैं और कन्हाई परिवार के अन्य तीन व्यक्ति थर-थर काँपते हुए उस गोरे के पीछे हो लिए। शोक और दुःख से हम सिहर रहे थे। लोहे के फाटकों को पार कर हम लोग जेल के भीतर दाखिल हुए, यान्त्रिक पुतले की भाँति हम उस गोरे के पीछे-पीछे चल रहे थे। एकाएक वह गोरा रुक गया, और उसने उँगली के इशारे से हमें एक कोठरी दिखा दी। सिर से पैर तक कम्बल से ढकी हुई एक लाश पड़ी थी। यही कन्हाई का शव था। हम लोगों ने शव उठाकर कोठरी के सामने आँगन में रख दिया, किन्तु किसी को भी यह हिम्मत न होती थी कि शव से कम्बल उतारे। आशु बाबू के चेहरे पर से मोती के समान बूंदें टपकने लगीं। एक-एक करके सभी रोने लगे। उसी समय वह गोरा बोल उठा, 'आप

रोते क्यों हैं ? जिस देश में ऐसे वीर पैदा होते हैं, वह देश धन्य है। मरेंगे तो सभी, किन्तु ऐसी मौत कितने मरते हैं ?'

"हमने विस्मित नेत्रों से आँख उठाकर उस कर्मचारी को देखा तो मालूम हुआ कि उसके चेहरे पर भी आँसुओं की झड़ी लगी है। उसने कहा, 'मैं इस जेल का जेलर हूँ, कन्हाई के साथ मेरी खूब बातें हुआ करती थीं। फाँसी की सजा सुनाई जाने के बाद से उसकी खुशी का कोई पारावार नहीं था; कल शाम उसके चेहरे पर जो मोहनी हँसी मैंने देखी, वह कभी न भूलेगी। मैंने कहा—'कन्हाई आज हँस रहे हो, किन्तु कल मृत्यु की कालिमा से तुम्हारे ये हँसते हुए होंठ काले पड़ जाएँगे। दुर्भाग्य से कन्हाई को फाँसी लगने के समय भी मैं वहाँ मौजूद था, कन्हाई की आँखों पर पट्टी बाँध दी गई थी, वह शिकंजे में कसा जाने वाला ही था, ठीक उसी समय कन्हाई ने घूमकर मेरी ओर संकेत किया और कहा, 'क्यों मिस्टर, इस समय मैं कैसा लग रहा हूँ ?' ओह ! यह वीरता, इस प्रकार की वीरता का होना रक्त-मांस के मानवों के लिए सम्भव नहीं।"

"हमने चकित होकर ये सब बातें सुनीं। इसके बाद डरते-डरते ओढ़ाए हुए कम्बल को उठाकर उसे देखा, अर्थात् उस तपस्वी कन्हाईलाल के दिव्य स्वरूप के वर्णन की भाषा मेरे निकट नहीं है। चौड़ा माथा लम्बे-लम्बे बालों से ढका हुआ था, अधखुले नेत्रों से अमृत ढुलक रहा था, कसे हुए होठों से संकल्प की रेखा फूट पड़ती थी, विशाल भुजाओं की मुट्ठियाँ बँधी हुई थीं। आश्चर्य है कि कन्हाई के किसी भी अंग पर मृत्यु की मनहूस छाया नहीं थी, कहीं भी वीभत्सता के चिन्ह नहीं थे, केवल दोनों कन्धे फाँसी की रस्सी की रगड़ से दब गए थे, उनकी पवित्र मुख-श्री पर कहीं विकृति न थी। कौन ऐसा अभागा है जो इस मृत्यु पर ईर्ष्या न करेगा ?"

कन्हाई की लाश को बड़े समारोह के साथ जलाया गया, हजारों की तादाद में लोग इकट्ठे थे। हजारों रोनेवाले थे, जब कन्हाई जलकर खाक हो गया तो उसकी राख को लोगों ने गंडा-ताबीज बनाने के लिए लूट लिया। कन्हाई को एक शहीद का सम्मान दिया गया, यह बात ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए कितनी अखरनेवाली थी कि जिसको हत्यारा कहकर फाँसी पर चढ़ा दिया उसे जनता ने शहीद कर के पूजा……।

कन्हाई पर उस युग का सार्वजनिक मत—कन्हाईलाल की फाँसी पर जन-मत किस प्रकार उत्तेजित हुआ था, यह १२ सितम्बर, १९०८ के 'वन्दे मातरम्' के एक लेख से ज्ञात है, उसमें लिखा था—

"कन्हाई ने नरेन को मार डाला। कोई भी अभागा भारतवासी जो अपने साथियों का हाथ चूम लेने के बाद उनके साथ विश्वासघात करता है, अब से अपने को प्रतिहिंसा लेनेवाले से बेखतरा नहीं समझेगा।"

'स्वाधीन भारत' नामक एक परचे में निकला—

When coming to know of the weakness of Narendra, who roused by a new impulse, had lost his self-control, our crooked-minded merchant rulers were preparing to hurl a horrible thunderbolt upon the whole country, and when the great hero Kanailal, after having achieved success in the effort to acquire strength, in order to give an exhibition of India's unexpected strength wielding the terrible thunderbolt of the great magician, and marking every in chamber in the Alipore central jail quake drew blood from the breast of the traitor to his country, safe in a British prison, in iron chains, surrounded by the walls of a prison then indeed the English realised that the flame which had been lit in Bengal had at its root a wonderful strength in store......

यह बात बिना किसी अत्युक्ति के कही जा सकती है कि कन्हाईलाल और खुदीराम बंगाल की चेतना के अन्तरंगतम स्तर में प्रविष्ट हो गए, जहाँ से उन्हें कोई नहीं निकाल सकता; अर्थात् लोरियों में, गानों में, बच्चों की कहानियों में, और जहाँ से वे राष्ट्रीय जीवन को उसके अन्तस्थल में मजे में अपनी पवित्र धारा से पूत कर सकते थे।

राजनैतिक डकैतियों की ओर—श्री नलिनीकिशोर गुह ने यह दिखलाया है कि किस प्रकार क्रान्तिकारी दल अपना खर्च चलाने के लिए धीरे-धीरे डकैती की ओर बढ़े। उन्होंने जो वर्णन दिया है, उसके ब्योरे में जाने से पूर्व यह

बता दिया जाय कि रूस के निहिलिस्ट और आयरलैंड के क्रान्तिकारी आर्थिक जरूरत पूरी करने के लिए डकैती डालते थे, यह बात उस जमाने के क्रान्तिकारियों को मालूम थी। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की 'देवी चौधुरानी' और 'आनन्द-मठ' में भी डकैती द्वारा धन-संग्रह के उदाहरण मौजूद थे। इसके अलावा सामन्तवादी काल में भारत में भी राबिनहुड के ढंग के जनपदीय वीर ऐसे हुए थे, जो अमीरों के घर डाका डालकर गरीबों के घर भरते थे।

'युगान्तर' के स्वतन्त्रता विशेषांक में डकैती के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका अनुवाद दिया जाता है—"एक दिन सवेरे सुबोध मल्लिक के घर पर कलकत्ता के विभिन्न मुहल्लों के प्रतिनिधियों को लेकर एक गुप्त बैठक हुई। यह लगभग १९०६-७ की बात है। पी० मित्र इसके सभापति थे। गुप्त समिति के लिए धन जुटाने के लिए डकैती का प्रस्ताव आया। इस पर कुछ लोगों ने कहा कि देशवासियों के यहाँ डाका न डालकर सरकारी खजाना लूटना चाहिए। इस पर दूसरों ने कहा कि सरकारी खजाना लूटने के लिए जिस शक्ति और सम्बल की आवश्यकता है, उसे संचित करने के लिए ही पहले-पहल देशवासियों पर डकैती करनी पड़ेगी। यह तो स्पष्ट है कि धनी इसमें पैसे नहीं देंगे। बाद को श्री अरविन्द घोष ने समझाया कि स्वतन्त्रता के लिए डकैती करने में जिस नैतिक दोष की कल्पना की जाती है, वह बिलकुल बेबुनियाद है। अन्त में रंगपुर के एक प्रतिनिधि ने कहा कि हम लोग डकैती करके जो-कुछ लाएँ, उसका ठीक-ठीक हिसाब रखें और स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद जिनसे जो-कुछ लिया जाय, वह उन्हें ठीक-ठीक लौटा दिया जाए। इस प्रस्ताव का अरविन्द घोष ने समर्थन किया और यह प्रस्ताव पास हुआ। इस सभा में पुलिन बिहारीदास उपस्थित थे, यह उन्हीं का कथन है।"

ऐसा मालूम होता है कि पहले चन्दों से गुप्त समिति चलाने की चेष्टा हुई थी। नलिनी बाबू ने लिखा है कि १९०४-५ में यानी कि जब यह आन्दोलन केवल जन-आन्दोलन था, तब बहुत से विशिष्ट व्यक्ति और धनी जमींदार आदि क्रान्तिकारी आन्दोलनों के लिए चन्दा देना चाहते थे, पर अलीपुर षड्यन्त्र में नरेन गोस्वामी ने जिस प्रकार दल की सारी बातें खोलकर रख दीं, उससे ऐसे सहानुभूति रखनेवाले धनी क्रान्तिकारी दल से अलग हो गए। यहाँ यह

भी बता दिया कि बाद को जब डकैती का तरीका अपनाया गया, तब एकाध क्षेत्र में क्रान्तिकारियों ने डाका डालने के बाद गृह-स्वामी के नाम एक रसीद भी भेजी थी। १९१६ में कलकत्ता के गोपीराय क्षेत्र में एक डकैती हुई थी, जिसे अतुल्य घोष और पुलिन मुकर्जी के नेतृत्व में किया गया था। बाद को बंगाल ब्रांच ऑफ इंडिपेंडेंट किंगडम ऑफ युनाइटेड इंडिया की तरफ से गृहस्वामी को यह पत्र मिला—"हमारे खजाने में आपके हिसाब में ९८९१ रु० ५ पा० दिए गए कर्ज के रूप में जमा हुआ। स्वतन्त्रता मिलने पर हम इस रुपये को मय सूद लौटा देंगे।"

कुन्तल चक्रवर्ती नामक युवक के पास बाद को पुलिस ने इस पत्र में इस्तेमाल किया हुआ ब्लाक प्राप्त किया। यह पत्र चाहे जितना भी अजीब लगे, पर इससे क्रान्तिकारियों की ईमानदारी तथा वह जिस वृत्ति से परिचालित होते थे, उसका पता मिलता है।

डकैतियों के अतिरिक्त धन-संग्रह के और भी उपाय काम में लाए गए। १९१० में ही जाली नोट तैयार करने का प्रयास हुआ। यह प्रयास बार-बार हुआ और कुछ सफलता भी मिली। श्री गुह ने दिखलाया है कि सोनार गाँव में प्रबोधदास गुप्त ने लगभग दस पन्द्रह हजार के जाली नोट चलाए। अन्त में वह पकड़े गए। इसी प्रकार मदारीपुर दल के नेता श्री पूर्णदास भी इस काम में बहुत आगे बढ़ थे। इसका भी प्रमाण है कि टकसाल से साँचे उड़ाने की चेष्टा हुई। पर श्रीपूर्णदास ने जिसके भरोसे सांचे उड़ाना चाहा था, उसी ने पुलिस में खबर देकर अपने घर पर पूर्णदास को पकड़वा दिया। श्री गुह ने लिखा है कि जर्मन षड्यन्त्र के अवसर पर भी इसी रूप में अर्थ की व्यवस्था करने की चेष्टा की गई।

इसके अतिरिक्त अलकीमिया से सोना बनाकर आर्थिक समस्या को सुलझाने का भी प्रयत्न हुआ। बताते हैं कि कुछ समय तक पं० मोक्षदा सामाध्यायी इस क्षेत्र में उत्साह प्रदर्शित करते रहे। यहाँ तक कि सरोजिनी नायडू के पिता हैदराबादवासी श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय ने १९१२ में कलकत्ता में रहते समय ऐसा होना सम्भव बताया था। श्री गुह लिखते हैं—"मोक्षदा सामाध्यायी श्रीमानी मार्केट पर एक गुप्त कैमरे में निर्दिष्ट व्यवस्था के अनुसार अघोरनाथ

को ले आए। वहाँ क्रान्तिकारियों के साथ (श्री नालिनीकिशोर गुह यहाँ उपस्थित थे) इस विषय पर बड़े उत्साह के साथ आलोचना हुई और उन्होंने कहा कि इस प्रकार आर्थिक समस्या मिट सकती है, पर यह उपाय कारगर नहीं हुआ।"

ऊपर जो बातें बतायी गईं, उनसे यह स्पष्ट है कि क्रान्तिकारियों ने डकैतियों से बचने के सब उपाय अपनाए थे। बंगाल के ही क्यों, बाद को बंगाल के बाहर के सभी क्रान्तिकारी दलों ने डकैती का मार्ग अपनाया। इन डकैतियों के सम्बंध में कुछ तथ्य इस प्रकार हैं—

बर्हा डकैती—बाद के युग में जैसे काकोरी ट्रेन डकैती उत्तर भारत में बहुत मशहूर हुई, उसी प्रकार बर्हा डकैती बहुत मशहूर हुई। इसका ब्यौरा 'बांगलार विप्लववाद' नामक पुस्तक से उद्धृत किया जाता है—

"१९०८ के २ जून की बात है। सवेरे-सवेरे ढाका से दो नावें रवाना हुईं। इस डकैती में भाग लेनेवाले ३१ युवक पूर्वनिश्चित व्यवस्था के अनुसार विभिन्न नावों पर सवार होते गए। वे ही लोग नाव खे रहे थे। क्रान्तिकारियों के साथ नये ढंग की दूर की मार करनेवाली राइफलें, यथेष्ट कारतूस, तलवार और दूसरे अस्त्र-शस्त्र थे। दोपहर के बाद नाव में खाना पककर तैयार हुआ। जो खाना तैयार हुआ, उसे आधा उबला हुआ चावल कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। लोगों ने उसे ही, जहाँ तक बन पड़ा, खाया।

ढाका अनुशीलन समिति के नेता पुलिनबिहारीदास ने इस डकैती की योजना बनाई थी। जिस मकान में डाका डालना था, उसकी सड़कों और नदी का नक्शा बनाया गया था। कहाँ किस बिन्दु पर कौन सशस्त्र संतरी रहेगा, यह भी बताया गया था।

बर्हा में नाव रात के आठ बजे पहुँची। नदी छोटी-सी थी। नदी के किनारे से मकान एक चौथाई मील दूरी पर था। योजना के अनुसार लोगों को तैनात करने के बाद, क्रान्तिकारी निर्दिष्ट मकान पर पहुँचे। क्रान्तिकारियों ने विशाल पक्की इमारत घेरकर लगातार गोलियाँ चलाईं। रात अँधेरी थी। क्रान्तिकारियों के साथ बोतलोंवाली मशाल थी। मकान मालिक ने जब देखा कि परिस्थिति गम्भीर है, तो उसने तिजोरी की चाबी दे दी। जो लोग धन लेने

के कार्य के लिए निर्दिष्ट थे, उन्होंने ही धन ग्रहण किया ।

बन्दूकों की भयंकर आवाज सुनकर और यह सुनकर कि डाका पड़ रहा है, बहुत से हिन्दू और मुसलमान आ गए। वैशाख का महीना था । जब क्रान्तिकारी डाका डालने के बाद झाड़-झंखारों के अन्दर से भीतर के रास्ते से लौटने लगे, तब गाँव के लोग या मकान-मालिक के ही किसी आदमी ने क्रान्तिकारियों पर कोंच या टेंटा फेंका । कोंच या टेंटा मछलियों को पकड़ने के लिए दूर से फेंका जाता है, वह जाकर मछली में अटक जाता है, फिर उसे खींचकर निकाल लिया जाता है। राजेन्द्रदत्त नामक एक क्रान्तिकारी की बाँहों में टेंटा बिंध गया । इस पर क्रान्तिकारी लगातार गोलियाँ चलाने लगे । लोगों की बातचीत से क्रान्तिकारियों को यह मालूम हो गया कि कुछ स्थानीय लोगों को चोट लगी है। चौथाई मील पैदल चलकर क्रान्तिकारी नाव पर सवार हो गए । पर इस बीच में देहात के लोग नदी के दोनों किनारों पर दौड़ने लगे और गुहार लगाकर दूसरों को भी इस के लिए आह्वान करने लगे । लोगों में डकैत पकड़ने का उत्साह बढ़ गया । केवल स्थल मार्ग से ही नहीं, बल्कि कुछ नावें भी पीछे-पीछे चल पड़ीं । पीछा किए जाने पर क्रान्तिकारियों ने अपनी योजना बदल दी और वे ढाका न जाकर दूसरी ओर चल पड़े ।

इसी बीच खबर पाकर इलाके के दारोगा साहब भी आ गए थे और वे कांसटेबलों के साथ बन्दूक चलाते हुए नाव का पीछा करने लगे। तब क्रान्तिकारी बड़ी नदी छोड़कर एक छोटी नदी में दाखिल हो गए, पर पुलिस की टुकड़ी, जनता और नाव बराबर उनका पीछा कर रही थी। पुलिस लगातार गोलियाँ चला रही थी और क्रान्तिकारी बराबर उसका जवाब दे रहे थे। पहले-पहल क्रान्तिकारी नाव के भीतर से ही गोलियाँ चला रहे थे, पर बाद को आशुदास गुप्त, शान्ति मुखोपाध्याय, जो बाद को साधु हो गए, और शिशिर गुहराय नाव की छत पर से गोली चलाने लगे । पुलिसवाले राइफलों की मार के बाहर थे ।

तब दूसरा दिन शुरू हो गया । दो क्रान्तिकारी नाव से पानी उलीच रहे थे क्योंकि इस बीच गोली लगने से नाव में छेद हो चुका था । इन्हीं दो में से एक गोपालसेन के सिर पर पुलिस की गोली लगी जो घातक सिद्ध हुई ।

गोपाल ने वन्देमातरम् कहकर प्राण त्याग दिया। इस समय नाव धामराही नामक गाँव की तरफ आ चुकी थी। गोपाल की मृत्यु से क्रान्तिकारियों में नई प्रेरणा आ गई और सबने सम्मुख युद्ध में मृत्यु आलिंगन करने का निश्चय कर लिया। गोपाल की लाश को सामने रखकर क्रान्तिकारियों ने वन्देमातरम् का नारा दिया। अमृत हाजरा (बाद को राजा बाजार बम फैक्टरी के शशांक) सामने खड़े हो सीना खोलकर वन्देमातरम् का नारा जोर से देते रहे। अमृत हाजरा गोरे चिट्टे, तगड़े नौजवान थे। इसी समय धामराही की जनता के एक हिस्से से भी आवाज आई—वन्देमातरम्। गोपाल की मृत्यु के बाद से दोनों ओर से ही गोलियाँ चल रही थीं। पर क्रान्तिकारी अधिक गोलियाँ चला रहे थे। जब जनता के अन्दर से वन्देमातरम् की ध्वनि आई, तब पहले पहल क्रान्तिकारियों ने समझा कि उनके समर्थक मौजूद हैं। उन लोगों ने फौरन गोली चलाना बन्द कर दिया और नाव किनारे लगाकर वे संग्राम के लिए तैयार हो गए। पर देखा गया कि भीड़ छंट रही है और बहुत से लोग हाथ उठाकर क्रान्तिकारियों को अभिनन्दित करते हुए भी वहाँ से चले जा रहे हैं। पीछा करनेवाली जनता का एक हिस्सा स्पष्ट रूप से समझ गया था कि ये क्रान्तिकारी हैं। इसलिए उन्होंने फिर पीछा करने की कोशिश नहीं की, पर कुछ मुसलमान फिर भी रह गए। पीछा करनेवाले इसी कारण डटे हुए थे कि वे समझते थे कि डकैती से जो धन आया है, वह उसी नाव में होगा। इस समय तक एक ही नाव रह गई थी, क्योंकि क्रान्तिकारियों ने संग्राम की सुविधा के लिए एक नाव डुबा दी थी। पीछा करनेवाले यह समझ रहे थे कि डकैतों को पकड़ने पर बहुत धन मिलेगा। उनका असली उद्देश्य यही था।

पुलिसवाले राइफलों की मार के बाहर थे। उस समय तक पीछा करनेवाले लोगों की संख्या बहुत घट गई थी, इसलिए क्रान्तिकारियों ने उन लोगों के साथ एक समझौता करना चाहा। पहले पीछा करनेवाले कुछ आनाकानी कर रहे थे, पर बाद को कुछ मुसलमान पास आए। उन्हें सारी बात समझाकर कहा गया कि तुममें से हर एक को पचीस रुपए दिए जा रहे हैं। तुम चले जाओ, पीछा मत करो। उनमें से तीन-चार को नाव में चढ़ाया गया, पर नाव में बहुत धन देखकर वे मचल गए और बोले—"और भी रुपया देना पड़ेगा।"

वे नाव से उतरकर बखेड़ा करने लगे और डराने लगे कि नाव पर हमला करेंगे। इस पर क्रान्तिकारियों ने उन पर जोर का हमला किया और इस हमले के बाद वे चले गए। एक ने अमृत हाजरा की धोती पकड़ ली थी, और उन्हें कुछ दूर तक घसीटा भी था। शिशिर की आँखों में चोट भी आई थी। यह पहले ही बताया जा चुका है कि दिन का समय था।

इतने में दूर से कुछ धुँआ-सा दिखाई पड़ा। जब उस ओर दूरबीन लगाकर देखा गया तो मालूम हुआ कि पुलिस का लंच है। क्रान्तिकारी और भी दूर हट गए, पर पुलिस का लंच इधर न आकर चला गया।

अब क्रान्तिकारियों ने निश्चय किया कि कुछ लोग किनारे पर उतर जाएँगे और वे रस्सी के सहारे नाव को खींचकर ले चलेंगे। नाव खींचनेवालों के साथ दो सशस्त्र क्रान्तिकारी पहरा देते रहे।

फिर रात यानी दूसरी रात शुरू हुई। तब भा पुलिस और कुछ लोग दूर ही दूर रहकर पीछा कर रहे थे। पुराने लोगों की जगह नए लोग आ रहे थे। इतने में वैशाख महीने में आनेवाली आँधी आई, बिजली चमकी। रात अँधेरी थी। क्रान्तिकारियों को इसी में आशा की रौप्य रेखा दिखाई पड़ी। अब नाव बड़ी नदी में होकर चल रही थी। यह तय हुआ कि इस आँधी का लाभ उठाना चाहिए। नाव का मुँह फेरकर जिधर आँधी का रुख था, उधर ही पाल तान दिया। पुलिस जानती थी कि क्रान्तिकारी पश्चिम की ओर जा रहे हैं, पर नाव चली उत्तर-पूरब की ओर। क्रान्तिकारी जिस रास्ते से आए थे, उसी से होकर लौटेंगे, यह बात पुलिस की अक्ल के बाहर थी। नाव आँधी के कारण तेजी से चली और चार घंटे का रास्ता एक घंटे में तय हो गया। इसके बाद एक मोड़ होकर नाव एकदम भवाल जंगल में पहुँच गई। पुलिस और पीछा करनेवाले यह नहीं सोच पाए कि नाव किधर गई। उधर क्रान्तिकारी जंगल में पहुँच नाव छोड़कर रवाना हो गए। उस समय कुछ रात बाकी थी। रुपये-पैसों के कई हिस्से कर दिए गए, अस्त्र दूसरी तरफ गए, लोग अलग-अलग बँट गए। पहले दिन के आधे उबले हुए चावल के बाद दो दिनों तक किसी को कुछ खाने को नहीं मिला था। दूसरे दिन क्रान्तिकारियों ने दोपहर को यह तय कर लिया था कि पीछा तो चल ही रहा है, अब पुलिस की टुकड़ी आएगी, पर गिरफ्तार

नहीं होना है । दैव ने क्रान्तिकारियों को बचा लिया । खैरियत यह थी कि बन्दूकों के साथ काफ़ी कारतूस भी थे ।

वर्हा डकैती में जिन लोगों ने हिस्सा लिया था, उनमें से बाद को एक सज्जन असेम्बली के सदस्य हो गए थे । उन्होंने इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा था—"उसी नाव में हमने पहले-पहल सोशलिज्म शब्द सुना था, पर उस समय मार्क्स के सोशलिज्म की बात हमारे कानों तक नहीं पहुँची थी । हमें उसकी धारणा भी नहीं थी । हम उस समय सोशलिज्म से राबिनहुडीय धन-साम्य ही की बात समझते थे । हमने वर्हा डकैती के अवसर पर मृत्यु-सम्भावना के समय पहले-पहल सोशलिज़्म शब्द सुना था ।" (नलिनीकिशोर गुह 'बाङ्गलार विप्लववाद) ।

यहाँ यह बता दिया जाए कि बाद को पुलिस बहुत तोड़-जोड़ करने के बाद भी इस डकैती में भाग लेनेवालों का पता नहीं पा सकी । इस डकैती में कुछ लोगों का चालान अवश्य हुआ था, पर उनके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिला क्योंकि कोई असली कार्यकर्ता गिरफ्तार नहीं किया जा सका ।

क्रान्तिकारियों द्वारा हत्याएँ—हम इसके पहले कुछ हत्याओं का वर्णन कर चुके हैं, पर जब जमकर संगठन चलने लगा, तब यह दिखाई पड़ा कि नरेन गोसाईं की तरह दल-त्यागी मुखबिरों के अतिरिक्त दूसरे लोगों को भी समय-समय पर सजा देने की जरूरत है । खुदीराम को गिरफ्तार करानेवाले नन्द-लाल को इसी प्रकार सजा दी गई, जिसका उल्लेख हमने यथा-समय किया है । इस प्रकार की हत्याओं में अनुशासन कायम रखना, दुष्ट का दमन करना तथा प्रतिहिंसा की भावनाएँ मिली-जुली होती थीं । क्रान्तिकारियों के पास केवल एक ही सजा थी । वह था प्राणघात । पर कुछ क्रान्तिकारी इस बात से संतुष्ट नहीं थे । उनका कहना यह था कि दोष के अनुपात से सजा मिलनी चाहिए, यह क्या कि हर एक को एक ही लाठी से हाँका जाए । यदि क्रान्तिकारियों के पास शक्तिशाली संगठन होता, तो संभव है कि इस प्रकार उनकी सजाओं में विभिन्नता होती । पर उनका संगठन हर समय अपना अस्तित्व कायम रखने के जीवन-संग्राम में ही व्यस्त रहा । फिर भी कम सज़ा देने का एकाध उदाहरण मिलता है । अलीपुर षड्यन्त्र के बाद के युग के महान क्रान्तिकारी नेता यतीन्द्र

नाथ मुखर्जी ने नीरज हालदार को नहीं मारा था। इसका नतीजा यह हुआ कि बाद को नीरज के जरिए से ही पुलिस ने यतीन्द्रनाथ की खबर पा ली।

कई पुलिस अफसर कहते थे कि एक बार क्रान्तिकारियों की काली सूची में कोई आ गया कि फिर उसका कोई छुटकारा नहीं था। इसके कई उदाहरण हैं कि सात साल, यहाँ तक कि इससे अधिक साल बाद लोगों को सजा दी गई। १९०८-९ में किसी एक क्रान्तिकारी मामले में एक व्यक्ति ने पुलिस की सहायता की थी, नलिनीबाबू ने दिखलाया है कि १९१४ में भी क्रान्तिकारी उसे उसी प्रकार मारना चाहते थे। इतने दिनों तक पुलिस की सहायता से वह निश्चिन्त था। उसने, जिन्हें नुकसान पहुँचाया था, वे सब-के-सब जेल में थे, कुछ तो परलोक सिधार गए थे, इसीलिए उसे ठीक-ठीक पहचाननेवाले आदमी भी कम ही थे। इसलिए वह व्यक्ति भी कुछ हद तक निश्चिन्त था। पर क्रान्तिकारी निश्चिन्त नहीं थे। चटगाँव में उन्होंने उसका पता पाया था। इसलिए उसे मारकर एक मिसाल पेश करने के लिए क्रान्तिकारी चेष्टा करने लगे।

१९१६ में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट वसन्त चटर्जी दिन दहाड़े मारा गया था। उस पर भी क्रान्तिकारी पहले कई बार असफल हमला कर चुके थे।

सी० आई० डी० के मधुसूदन भट्टाचार्य को भी मेडीकल कालिज के सामने एक भीड़ के सामने मार डाला गया। बाद को इसी सम्बन्ध में १९१५ में एक क्रान्तिकारी माउजर पिस्तौल के साथ गिरफ्तार हुए थे।

१९१५ की २१ अक्टूबर को पुलिस इन्सपेक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी पर उसके मसजिदवाड़ी स्ट्रीट के घर पर आक्रमण हुआ। वहाँ उस समय और भी तीन अधिकारी थे। सतीश बनर्जी बच गया पर एक दूसरा पुलिस अधिकारी मारा-गया।

सिडीशन कमेटी के अनुसार १९१३ में क्रान्तिकारियों का कार्य बहुत जोरों से चलने लगा। दो पुलिस अधिकारी मारे गए। हेड कांस्टेबल हरिपद देव को कलकत्ता के कालिज स्क्वेयर में लेक के किनारे पर तीन बंगाली नवयुवकों ने जान से मार दिया। यह हत्या बिलकुल भीड़ के अन्दर की गई थी और न तो कोई युवक पकड़ा जा सका और न बाद को कुछ पता ही मिला। रिपोर्ट

में बताया गया कि पुलिस कर्मचारी को इसलिए मार डाला गया कि उसने क्रान्तिकारियों का कुछ पता मालूम कर लिया था।

इस घटना के चौबीस घंटों के अन्दर मैमनसिंह में इन्सपेक्टर बंकिमचन्द्र चौधरी के घर पर एक पिकरिक एसिड का बम डाला गया और वह तुरन्त मर गया। यह इन्सपेक्टर भी क्रान्तिकारियों के विरुद्ध काम कर रहा था। इसी प्रकार कार्नवालिस स्ट्रीट पर इन्सपेक्टर सुरेशचन्द्र मुकर्जी ने ड्यूटी देते हुए एक फरार को देखा जिस पर उस फरार ने गोली चलाई और वह तुरन्त ढेर हो गया।

रामदास नाम का एक आदमी पहले क्रान्तिकारी था। फिर वह वसन्त चटर्जी के साथ मिलकर क्रान्तिकारियों का सर्वनाश करने लगा। १९१४ की जुलाई मास में रामदास को ढाका के कारोनेशन पार्क के बकलैंड बेंड में मार डाला गया। रामदास का पृष्ठपोषक वसन्त चटर्जी भी वहाँ मौजूद था, पर क्रान्तिकारी उसे पहचान नहीं पाए थे। वसन्त चटर्जी पर नवम्बर महीने में उसके कलकत्तावाले मुसलमान पाड़ा लेनवाले मकान में हमला कर दिया गया था। इस अवसर पर क्रान्तिकारी बम और पिस्तौलों से सुसज्जित होकर गए थे। उनकी योजना यह थी कि वसन्त बाबू की बैठक में बम डालते ही सुप्रसिद्ध पुलिस कप्तान चार्ल्स टैगर्ट और लोमन इत्यादि आएँगे, तब दूसरी टोली टैगर्ट को मारने के लिए आगे बढ़ेगी। इस अवसर पर नगेन्द्र और काली को चोट आ जाने के कारण योजना का दूसरा अंश पूरा नहीं किया गया।

वसन्त चटर्जी की हत्या उन दिनों बहुत प्रसिद्ध हुई थी। सिडीशन कमेटी के अनुसार उस हत्या का ब्योरा यों है कि पाँच व्यक्ति माउजर पिस्तौलों से लैस होकर आए थे। इस प्रसंग में इन पिस्तौलों का किस्सा भी बता दिया जाए। एक साथ रोडा कम्पनी से पचास पिस्तौलें चुराई गई थीं। ये पिस्तौलें विभिन्न उपदलों में बाँट दी गई थीं।

अलीपुर षड्यन्त्र के बाद जो सजाएँ दी गईं, उनसे जैसा कि पहले वर्णनों से स्पष्ट है, क्रान्तिकारी षड्यन्त्र मरा नहीं, बल्कि बढ़ता ही चला गया। देश में अस्त्र बनाने की भी कुछ चेष्टाएँ की गईं। सदस्यों को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा भी दी जाती थी। त्रिपुरा के पहाड़ी इलाके में बिलौनिया तथा उदयपुर

में खेती के दो फार्म थे, पर ऊपर से खेती के फार्म होने पर भी वहाँ सदस्य अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा पाते थे। यहाँ कठिन परिश्रम और अनुशासन की भी शिक्षा दी जाती थी। सबसे पहले तो सदस्य को पैदल ४५ मील चलकर फार्म में जाना पड़ता था और इस प्रकार यह परीक्षा देनी पड़ती थी कि वह सैनिक कार्य के उपयुक्त है। वहाँ खेतीबारी भी, साथ ही कुली का काम भी करना पड़ता था। कोई जाकर देखता तो उसे यही मालूम होता कि बाकायदा खेती-बारी हो रही है, क्योंकि सदस्य दिन में सचमुच हल और हँसिया चलाते थे। ऊख और धान की बाकायदा खेती होती थी। जब सदस्य इस तरह काम करते-करते मंज जाते थे, तो उन्हें रात को दूर की पहाड़ियों में ले जाकर अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा दी जाती थी।

ये संगठन किस प्रकार फैलते तथा बौंड़ते चले गए, इसका भी कुछ विवरण सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में मौजूद है। उसमें स्पष्ट लिखा है—

"यह नहीं समझना चाहिए कि विभिन्न संगठन आवश्यक रूप से छोटे ही थे। ढाका अनुशीलन समिति तथा जिन संस्थाओं को पश्चिम बंगाल और उत्तरी बंगाल पार्टियों के नाम से हमने याद किया है, दूर-दूर तक फैली थीं और उनकी सीमाएँ एक दूसरे को लांघ जाती थीं। ढाकावाली समिति इन संस्थाओं में सबसे तगड़ी थी। यदि और पार्टियाँ न होतीं, केवल यही समिति होती, तो भी इसका अस्तित्व सरकार के लिए बहुत बड़ा खतरा होता। १९१० से ही यह समिति फैलने लगी। बाद के सालों में यह सारे बंगाल में फैल गई और दूसरे प्रान्तों में भी इसकी शाखाएँ फैल गईं। मैमनसिंह और ढाका में इसका संगठन बहुत तगड़ा था, पर उत्तर-पश्चिम के दिनाजपुर से लेकर दक्षिण-पूर्व के चटगाँव और उत्तर-पूर्व के कूच बिहार से लेकर दक्षिण-पश्चिम के मेदिनीपुर तक यह कार्यशील था। बंगाल के बाहर इसके सदस्य आसाम, बिहार, पंजाब, संयुक्त-प्रदेश (अब उत्तर-प्रदेश), मध्यप्रदेश तथा पूना में काम कर रहे थे।

अनुशीलन समिति के अलावा उन्हीं दिनों कलकत्ता दल, मदारीपुर दल, बरीशाल दल, उत्तर वंग दल तथा मैमनसिंह दल भी थे। नलिनी बाबू ने लिखा है कि हर दल अपना क्षेत्र बढ़ाता जा रहा था। बाद को चलकर चंदननगर दल ढाका अनुशीलन दल के साथ मिल गया।

कई बार दल के द्वारा प्रचारित पुस्तिकाएँ तथा पर्चे चटगाँव से लेकर पंजाब तक बँटते थे।

३

दिल्ली और पंजाब में क्रान्तिकारी लहरें और गदर पार्टी

पंजाब और बंगाल भारत के दो विभिन्न सिरे पर हैं, फिर भी बंगाल तथा अन्य प्रान्तों में जो लहर चल रही थी, पंजाब उससे अछूता न रह सका। सर डेनजिल इबटसन ने, जो उन दिनों पंजाब के गवर्नर थे, १९०७ में एक रिपोर्ट दी जिसमें लिखा कि नए विचारों का बड़े जोर से प्रचार हो रहा है। उन्होंने लिखा—"पूर्व तथा पश्चिम पंजाब में ये विचार पढ़े-लिखे लोगों में, विशेषकर वकील, मुन्शी और छात्रों में फैले हैं, किन्तु मध्य पंजाब में तो ये विचार हर श्रेणी में फैले मालूम देते हैं, लोगों में बड़ी बेचैनी तथा असंतोष है। लाहौर से आन्दोलनकारी आ-आकर अमृतसर और फिरोजपुर में राजद्रोह का प्रचार करते रहे हैं, फिरोजपुर में इनको काफी सफलता मिली, गोकि अमृतसर में ये इतने सफल न रह सके। ये रावलपिंडी, स्यालकोट तथा लायलपुर में अंग्रेजों के विरुद्ध बड़े जोर-शोर से प्रचार-कार्य कर रहे हैं। लाहौर में तो इस प्रचार-कार्य का कुछ कहना ही नहीं, इससे सारे शहर में एक गहरी बेचैनी फैली है।" सर डेन-जिल ने अपनी इस रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि दो जगह गोरा होने की वजह से गोरों का अपमान किया गया, और एक जगह तो ऐसा हुआ कि एक संपादक को सजा दी गई तो दंगा ही हो गया।

गवर्नर साहब ने यह जो लिखा था कि लाहौर के आन्दोलनकारियों ने आकर गड़बड़ मचाई थी, गलत था, असली बात यह थी कि साम्राज्यवाद द्वारा शोषण तीव्रतर हो रहा था इसलिए भूख, गरीबी और बेकारी की वजह से लोग बेचैन होते जा रहे थे। पंजाब के गाँवों में जो असंतोष बढ़ रहा था, वह मुख्यतः आर्थिक था। चिनाब-नहर की बस्तियों में तथा बड़ी दुआब में सरकार नहर की दर बढ़ा रही थी, इस पर असंतोष हुआ तो उस पर लाहौर के आन्दो-

लनकारी क्या करें ? सरकार का मन्शा यह था कि नहर वगैरह से जो जमीन पहले से अधिक उपजाऊ हो गई, उसका सारा फायदा सरकार को ही हो, और किसान जैसे भुक्खड़ थे वैसे ही रहें। सरकार की इस शोषण-नीति से जनता इतनी क्रुद्ध हो गई थी कि जनता ने फौज और पुलिस से नौकरी छोड़ने को कहा। एक तरफ दमन हुआ और शोषण करना जारी रहा, दूसरी तरफ जरूरत पड़ने पर जल्दी से जल्दी फौज लाकर जनता को दबा देना चलता रहा। इस पर रेल के कुलियों में एक बार हड़ताल हुई तो सारी जनता ने उनसे सहानुभूति दिखाई, उनकी हमदर्दी में यत्र-तत्र आम सभाएँ हुईं, और हड़तालियों के सहायतार्थ एक बड़ी रकम चंदे में उगाही गई। यहाँ पर मैं एक बात की ओर ध्यान आकर्षित कर आगे बढ़ूँगा, वह यह कि आज हिन्दुस्तान के पूँजीपति यह कहते नजर आते हैं कि आजकल जो हड़तालें होती हैं उनके लिए साम्यवादी जिम्मेदार हैं। जब भारत में कोई भी अपने को साम्यवादी नहीं कहता था तथा जब शायद उसका नाम किसी को आता भी नहीं था उस समय हड़तालें कैसे हो जाती थीं ? बात यह है कि मजदूरों के हाथ में यही अस्त्र है और यह अस्त्र उनके लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है जैसे बैल के लिए सींग। उन्हें किसी साम्यवादी से उसका व्यवहार सीखने की जरूरत नहीं। गवर्नर साहब भला यह सब बात क्यों सोचते ? उन्होंने लिखा था कि कुछ लोग यहाँ से अंग्रेजों का बिस्तर बँधवाना चाहते हैं, और इन लोगों को ही बँधवा दिया जाए तो प्रजा के मन में फिर राजभक्ति की उमंगें लहराने लगेंगी। तदनुसार ब्रिटिश सरकार के कानूनों की किताब में ढूँढ़ाई पड़ी, माँ-बाप सरकार किसी गैरकानूनी तरीके से बाँध थोड़े ही सकती थी, बहुत गोताखोरी के बाद कानून समुद्र से "१८१८ का रेगुलेशन तीन" नामक एक अस्त्र निकला।

लालाजी और अजीतसिंह—लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह जी गिरफ्तार कर लिए गए और ले जाकर बर्मा निर्वासित कर दिए गए। इसका उलटा असर हुआ, पंजाब के इन दो लोकप्रिय नेताओं की गिरफ्तारी से लोगों में और भी असन्तोष फैला। सरकार ने यह मानने से इनकार किया कि इस असंतोष की जड़ आर्थिक है। १९०७ के जून को पार्लियामेंट में भाषण देते हुए मिस्टर मोर्ले ने कहा—"पहली मार्च से पहली मई तक

पंजाब के प्रसिद्ध आन्दोलनकारियों ने २८ सभाएँ कीं, जिनमें से केवल ५ से खेती सम्बन्धी दुखड़ों का ताल्लुक था, बाकी विशुद्ध राजनैतिक सभाएँ थीं।" मोर्ले ने ये बातें ऐसे कहीं जिसमें भ्रम होने लगता है कि शायद विशुद्ध राजनैतिक सभाएँ करना कोई गुनाह है, किन्तु ब्रिटिश सरकार की आँखों में यह गुनाह ही था। पहली नवम्बर को वायसराय महोदय ने राजद्रोही सभाओं को बन्द करने के लिए पेश नए बिल के सम्बन्ध में यह कहा—"हम भूल नहीं सकते कि लाहौर में गोरे ख्वामखाह बेइज्जत किए गए, तथा रावलपिंडी में दंगे हुए, इस पर वहाँ के गवर्नर बहादुर ने जो गम्भीर मन्तव्य किया उसे भी हम भुला नहीं सकते। इसी मन्तव्य पर लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह जनता के हित के लिए गिरफ्तार कर नजरबन्द कर दिए गए, और आर्डिनेन्स लागू कर दिया गया। इन सब बातों के अलावा पूर्व बंगाल से तो रोज बायकाट, बेइज्जती, लूटमार तथा गैरकानूनी कार्रवाइयों की खबरें आती रही हैं। इन सब की जड़ में ये आन्दोलनकारी थे जो राजद्रोही भाषणों से, इश्तहारों से, अखबारों से, लोगों में बुरी से बुरी जातिगत भावनाएँ उभारते रहे।"

श्यामजी के नाम लालाजी का पत्र—इन दोनों नेताओं की नजरबन्दी के बाद कुछ दिनों तक आन्दोलन कुछ ठण्डा-सा पड़ गया, किन्तु राजनैतिक साहित्य में बराबर वृद्धि होती गई। ६ महीने नजरबन्द रहने के बाद सरदार अजीतसिंह ईरान भाग गए और तब से वे बाहर ही रहे। प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि लालचन्द 'फलक' को राष्ट्रीय कविताओं के सम्बन्ध में इसी युग में सजा दी गई। भाई परमानन्द पर मुकदमा चलाया गया, और उनसे मुचलका ले लिया गया। भाई परमानन्द के पास से वही 'बम मैनुअल' मिला, जो अलीपुर षड्यन्त्रकारियों के पास मिला था। इसके अतिरिक्त उनके पास लाला लाजपतराय के लिखे हुए दो पत्र भी मिले जो १९०७ के तूफानी जमाने में भेजे गए थे। एक पत्र पर २८ फरवरी १९०७ की तारीख थी और दूसरे पर ११ अप्रैल पड़ा था, दोनों लाहौर से गए थे। एक पत्र में लाला जी ने भाई परमानन्द को लिखा था कि आप श्याम जी कृष्णवर्मा से कहें कि वे अपने अगाध धन के थोड़े से हिस्से को लगाकर यहाँ के छात्रों के लिए ढंग की राजनैतिक पुस्तकें भेजें।

उस पत्र में यह भी कहा गया था कि श्यामजी से कहा जाए कि वे १००००) रु० राजनैतिक मिशनरियों के लिए दें।

दूसरी चिट्ठी में लालाजी ने लिखा था—"लोग अजीब बेचैनी में हैं। खेतिहर श्रेणी में भी यह असंतोष बहुत फैला है, मुझे भय है कि कहीं लोग फूट पड़ने में जल्दबाजी न कर जाएँ।" यह पत्र प्रकाशनार्थ नहीं लिखा गया था, इससे साफ जाहिर है कि यह सारी बेचैनी स्वत: उद्भूत हुई थी तथा शोषण के परिणामस्वरूप थी। नेता बल्कि पीछे थे, उनमें परिस्थितियों से फायदा उठाने की हिम्मत नहीं थी।

जब ये पत्र अदालत में आए तो लाला लाजपतराय ने कहा कि ऐसा लिखने से उनका मतलब केवल इतना था कि "खेतिहर श्रेणी के लोग चूँकि राजनैतिक हलचल के आदी नहीं हैं इसलिए संभव है कि वे अपना आन्दोलन शान्तिपूर्वक न चला सकें।" वे उस जमाने में खेतिहर श्रेणी में राजनैतिक आन्दोलन के पक्षपाती नहीं थे।

उन्होंने यह भी कहा कि जिन पुस्तकों का उस पत्र में उल्लेख है, वे कुछ सुप्रचलित अच्छी पुस्तकें हैं, तथा इनसे उनका मतलब "राजनैतिक, क्रान्तिकारी तथा ऐतिहासिक उपन्यासों का था।" उन्होंने अदालत में यह भी कहा कि नजरबन्दी से लौटने के बाद ही उन्हें पता लगा कि श्यामजी कृष्णवर्मा राजनैतिक बलप्रयोग में विश्वास रखते हैं। "जब से मुझे उनके विषय में ये बातें मालूम हुईं, तब से मैंने उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा।"

दिल्ली में संगठन—ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे इतना ही जाहिर होता है कि उत्तर भारत में असंतोष की आग सुलग रही थी, किन्तु कोई क्रान्तिकारी संगठन नहीं था, यानी क्रान्तिकारी परिस्थितियों के होते हुए भी वे शक्तियाँ इतनी प्रबल नहीं हुई थीं कि अपने अन्दर से कोई उपयुक्त व्यक्तित्व या संगठन पैदा करें। अस्तु,

मास्टर अमीरचन्द दिल्ली के एक अध्यापक थे, ये ही एक तरह से उत्तर भारत के पहले क्रान्तिकारी नेताओं में थे वह पहले धार्मिक तथा सुधार के क्षेत्र में काम करते थे, किन्तु १६०६ के युग में स्वदेशी आन्दोलन का बंगाल में जोर बढ़ते ही वे उसी में जी-जान से काम करने लगे।

लाला हरदयाल—लाला हरदयाल पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० पास कर सरकारी छात्रवृत्ति लेकर विलायत गए हुए थे। वे दिल्ली के ही रहनेवाले थे, और बड़े प्रतिभावान थे। विलायत जाने के बाद उन्होंने एकाएक यह कहकर ऑक्सफोर्ड में पढ़ना तथा मिली मिलाई सरकारी छात्रवृत्ति लेना अस्वीकार कर दिया कि अंग्रेजी शिक्षा का तरीका ही बुरा है। भारत लौट आने के बाद लाला हरदयाल राजनैतिक शिक्षा के प्रचार में जुट गए। वे लाहौर तथा दिल्ली में विशेष रूप से क्रियाशील हो गए। यह सन् १९०८ की बात है। लाला हरदयाल के कई अनुयायी हो गए, जिनमें दीनानाथ, जे० एन० चटर्जी, अमीरचन्द आदि कई व्यक्ति थे। लाला हरदयाल तो क्रान्ति के आयोजन में विदेश चले गए, किन्तु दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द उनके काम को चलाते रहे। यह दल एक आदर्शवादियों का दल था। लाला हनुमन्त सहाय विदेशी माल के बड़े व्यापारी थे, किन्तु स्वदेशी का प्रण करने के बाद उन्होंने अपने लाभजनक कारोबार पर लात मार दी; फिर लाला हरदयाल के संस्पर्श में आकर उनको यह विश्वास हो गया कि विदेशी शिक्षा का उद्देश्य हमारी गुलामी को मजबूत करना तथा गुलाम मनोवृत्ति पैदा करना है, बस उन्होंने १९०९ में अपने मकान चेलपुरी में एक राष्ट्रीय स्कूल खोला। इसी समय राष्ट्रीय पुस्तकों का वाचनालय भी खोला गया। जिस स्कूल का उल्लेख किया गया है उसमें मास्टर अमीरचन्द के अतिरिक्त कई और व्यक्ति शिक्षा देने का काम करते थे, जो बाद को क्रान्तिकारियों के लिए नए-नए सदस्य भर्ती करने का जरिया था। इन लोगों में मास्टर अवधबिहारी सब से ज्यादा उत्साही थे। इन लोगों का बंगाल से भी सम्बन्ध था, किन्तु कभी तो यह सम्बन्ध टूट जाता था, और कभी कायम हो जाता था।

१९१० में यह सम्बन्ध अलीपुर षड्यंत्र के खतम हो जाने के बाद टूट गया, किन्तु जब रासबिहारी उत्तर भारत में आए, उस समय यह सम्बन्ध फिर से कायम किया गया। महात्मा हंसराज के पुत्र बलराज जी भी इस आन्दोलन में शरीक थे। ऊपर जिन आदमियों के नाम आए हैं उनके अतिरिक्त चरनदास, मन्नूलाल, खुदीराम, आदि व्यक्ति भी इस षड्यन्त्र में शामिल थे। किन्तु यह बात कही जा सकती है कि रासबिहारी के हेड क्लर्क होकर देहरादून जंगल

विभाग में आने के पहले यह संस्था केवल एक प्रचार कार्य की संस्था थी, और उसने कोई भी खास काम नहीं किया था।

रासबिहारी—रासबिहारी ने लाला हरदयाल के लगाए हुए पौधे को सींचा, उन्होंने अवधबिहारी, दीनानाथ, बालमुकुन्द आदि को और भी राजनैतिक शिक्षा दी, इसके अलावा उन्होंने 'लिबर्टी' नामक उत्तेजक क्रान्तिकारी पर्चा बटवाया, तथा बम बनाने आदि की शिक्षा देनी शुरू की। १९१२ में सर माइकल ओडायर पंजाब के गवर्नर थे। वह आए ही थे कि लार्ड हार्डिंग पर, जो कि भारतवर्ष के बड़े लाट थे, बम फेंका गया।

१९११ का दरबार—१९१० में बादशाह एडवर्ड के मरने के बाद जार्ज पंचम ब्रिटिश साम्राज्य के तख्त व ताज के मालिक हुए, बंगाल में वंग-भंग के कारण बड़ा गहरा असंतोष फैला हुआ था। गत सात-आठ वर्षों से बंगाल में एक बिकट परिस्थिति थी। बंगाली नहीं चाहते थे कि किसी भी हालत में बंगाल दो टुकड़ों में बाँटा जाए। इस असंतोष को दूर करने के लिए कुछ लोगों ने ब्रिटिश सरकार को यह सलाह दी कि जार्ज पंचम स्वयं भारतवर्ष में आएँ तो सारी बेचैनी दूर हो जाएगी। इसी सलाह का अनुसरण कर १२ दिसम्बर सन् १९११ को दिल्ली में एक विराट दरबार किया गया। सम्राट् इस अवसर पर स्वयं आए और यह घोषणा की गई कि भारत की राजधानी अब कलकत्ता की जगह पर दिल्ली होगी क्योंकि सरकार चाहती है कि प्राचीन इन्द्रप्रस्थ के ऐश्वर्य का फिर से उद्धार हो। यह भी घोषणा की गई कि बंगालियों के असंतोष का ध्यान रखकर प्रजा-वत्सल सरकार वंग-भंग को रद्द करती है, और पूर्वी और पश्चिमी बंगाल को एकत्र कर लेफ्टनेन्ट गवर्नर के अधीन एक प्रान्त कर दिया जाता है। इसका मतलब यह नहीं था कि बंगाल प्रान्त वंग-भंग के पहले जैसा था वैसा कर दिया गया, प्राचीन मगध की राजधानी पाटलिपुत्र का उद्धार कर पटना एक प्रान्त की राजधानी बना दी गई। इस प्रान्त में छोटा नागपुर, बिहार और उड़ीसा के जिले हुए और इस प्रान्त का नाम बिहार-उड़ीसा हुआ।

दिखाने के लिए तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने ऐसा दिखलाया मानो इन्द्रप्रस्थ के वैभव का उद्धार करने के लिए ही दिल्ली को राजधानी बनाया गया, किन्तु असली बात यह थी कि सरकार यह समझ गई थी कि बंगाल प्रान्त बहुत

खतरनाक प्रान्त है, और उसमें अखिल भारतीय राजधानी रखना किसी भी तरह युक्तियुक्त न होगा। इसके अतिरिक्त सरकार यह भी चाहती थी कि राजधानी समुद्र से जितना भी दूर हो सके उतना हो, क्योंकि उसी समय से महायुद्ध के बादल यूरोप के आकाश में मँडरा रहे थे। उस हालत में देश के आन्तरिक भाग में राजधानी रखने में ही भलाई थी। बंगाल को सरकार ने जोड़ जरूर दिया, किन्तु उसका मतलब इससे हल न हो सका, क्योंकि यद्यपि बंगाल के आन्दोलन से एक तरह का वंग-भंग के विरोध से ही प्रारम्भ हुआ था, किन्तु बंगाली अब बहुत आगे बढ़ चुके थे, और उनके सामने स्वतन्त्रता की माँग थी, न कि केवल वंग-भंग को रद्द कराना। बाद के इतिहास से यह स्पष्ट हो जाएगा कि १६११ के दरबार में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जितनी भी चालें चलीं सब व्यर्थ गईं। जिस खतरे के डर से भारतवर्ष की राजधानी बात की बात में कलकत्ते से दिल्ली लाई गई थी, वही खतरा दिल्ली आते ही सामने आया।

वायसराय पर बम—ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हार्डिंग को भारत का वायसराय बना कर भेजा था! यह तय हुआ कि हार्डिंग २३ दिसम्बर १६१२ को दिल्ली में बड़े समारोह के साथ प्रवेश करें। हजारों हाथी, घोड़े, तोप, बंदूक, और फौज के साथ यह राजकीय जुलूस निकला। देखने से मालूम होता था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमेशा के लिए अपना डेरा यहाँ जमा रहा है। देश-भक्तों के दिल की एक अजीब ही स्थिति थी। यह जुलूस देखकर स्वतः यह भाव मन में उठता था कि इतना बड़ा जिसका साम्राज्य है, जिसमें सूर्यास्त नहीं होता, इतनी विशाल जिसकी फौजें हैं, और इतना विपुल जिसका ऐश्वर्य है, उससे मुट्ठी भर क्रान्तिकारी, जिनके पास न तो धन है न साधन, भला कैसे लोहा ले सकते हैं। सच तो यह है कि यही असर पैदा करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने यह सारा खेल रचा था, किन्तु दिल्ली के कुछ मनचले क्रान्तिकारियों ने उस अवसर पर कुछ और ही असर पैदा करना चाहा।

जिस समय चाँदनी चौक में, एक तरह से दिल्ली के वक्षस्थल में वायसराय का यह मीलों लम्बा जुलूस पहुँचा, उस समय किसी अज्ञात दिशा से वायसराय की सवारी पर एक भयानक बम गिरा, पर निशाना ठीक नहीं बैठा। फिर भी जुलूस के उद्देश्य पर पानी फिर गया। एक बार फिर सारे भारत-

वासियों ने जाना कि भारतवर्ष वीरों से शून्य नहीं है । देशभक्तों का दिल बाँसों उछलने लगा । निशाना तो ठीक नहीं लगा था, किन्तु फिर भी वायसराय का एक अंगरक्षक घायल हो गया, और वह वहीं ढेर हो गया । वायसराय के सिर के पीछे भी चोट आई किन्तु वे केवल मूर्छित हो गए । सारे जुलूस में भगदड़ मच गई, और पुलिस ने चारों तरफ से चाँदनी चौक घेर लिया किन्तु बम फेंकनेवालों का कुछ पता न लगा ।

इसी घटना के सिलसिले में बाद को गिरफ्तारियाँ वगैरह हुईं ।

बाद को पता लगा कि इस षड्यन्त्र की ओर से एक परचा बाँटा गया था जिसमें इस हमले की तारीफ की गई थी । उसमें लिखा था "गीता, वेद, पुराण सभी बार-बार यही कहते हैं कि मातृभूमि के दुश्मनों को चाहे, वे किसी जाति या धर्म के हों, मारना चाहिए । दिल्ली में दिसम्बर में जो घटना हुई थी उससे सूचित होता है कि भारतवर्ष के बुरे दिन अब खतम होने को हैं, और ईश्वर ने अपने वरदहस्तों में भारतवर्ष के भाग्य को ले लिया है ।"

बाद को यह भी प्रमाणित हुआ कि १७ मई १९१३ को लाहौर के लारेंस बाग में, जहाँ शहर के गोरे एकत्रित होते थे, जो बम फूटा था वह इन्हीं लोगों के द्वारा रखा गया था । इस बम से कोई भी गोरा नहीं मरा, बल्कि एक हिन्दुस्तानी अरदली, जो इस पर आ गया, मर गया ।

दिल्ली षड्यन्त्र—कलकत्ता के राजा बाजार में तलाशी लेने पर अवधबिहारी के नाम का पता लगा । पता लगाने पर पुलिस ने यह भी मालूम किया कि अवधबिहारी मास्टर अमीरचंद के घर में रहते हैं । तदनुसार पुलिस ने मास्टर साहब के घर की तलाशी ली । उस तलाशी में कई क्रान्तिकारी परचे, एक बम की टोपी तथा कुछ पत्र मिले । इस पर अमीरचंद, उनके भतीजे सुलतानचंद और अवधबिहारी गिरफ्तार कर लिए गए । इन पत्रों में कुछ "एम० एस०" के दस्तखती पत्र थे । पुलिस ने पता लगाते-लगाते कई दिनों में यह पता लगाया कि "एम० एस०" का असली नाम दीनानाथ है । अब दीनानाथ की खोज होने लगी, कई व्यक्ति दीनानाथ के धोखे में पकड़े गए, अन्त में असली दीनानाथ पकड़े गए । यह हजरत पकड़े जाते ही मुखबिर हो गए, और जो कुछ भी उसे मालूम था उगल दिया, किन्तु इस व्यक्ति को भी वायसराय

पर बम फेंकने का पता न था। सरकार ने १३ अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया। दीनानाथ के अतिरिक्त अमीरचन्द का दत्तकपुत्र सुलतानचन्द भी मुखबिर हो गया। ७ महीनों तक मुकदमा चलने के बाद ५ अक्तूबर १९१४ को मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी तथा बालमुकुन्द को फाँसी की सजा हो गई। चीफ कोर्ट में फैसला और भी सख्त हो गया, अर्थात् वसन्तकुमार को भी फाँसी की सजा दी गई।

इस मुकदमे के दौरान में पुलिस ने लाला अमीरचन्द का लिखा हुआ एक पर्चा पेश किया था, जिसमें यह लिखा था—"भारत संवैधानिक सुधारों से कुछ भी हासिल नहीं कर सकता। एकमात्र तरीका, जिससे हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं, वह है क्रान्ति का तरीका। इतिहास यह बताता है कि उत्पीड़कों ने किसी भी देश को अपनी खुशी से कभी आजादी नहीं दी और वे हमेशा तलवार से ही मुक्त किए गए।"

मास्टर अमीरचन्द बहुत ही सज्जन थे और सब लोग उनके चरित्र की सराहना करते थे। यहाँ तक कि अंग्रेज जज ने भी उनकी सराहना करते हुए लिखा—

"It must be borne in mind that patriots of Amir Chand type are often except as regards monomania possessing them, esteemable men of blameless private life."

यानी कि यह स्मरण रखना चाहिए कि अमीरचन्द की तरह देशभक्त, यदि उनमें जो वस्तुविशेष के लिए सनक रहती है, उसे निकाल दिया जाए, तो बहुत निर्दोष निजी जीवन युक्त सम्माननीय व्यक्ति होते हैं।

यह एक अजीब बात थी कि किसी भी गवाह ने वायसराय पर बम वाले मामले का उद्घाटन नहीं किया था, फिर भी चार व्यक्तियों को फाँसी की सजा एक तरह से इन्तजामन दी गई। लिखते समय पंजाब की जेलों में ऐसे पुराने वार्डर थे जो इन वीरों के जेल जीवन का वर्णन करते हैं। उससे मालूम होता है कि जब तक ये हवालात में रहे, तब तक वे अपने स्वभाव के अनुसार कैदियों तथा वार्डरों को पढ़ाते तथा अन्य शिक्षा देते थे।

अवधबिहारी—अवधबिहारी की फाँसी के दिन एक अंग्रेज ने पूछा—"कहिए

आप की अन्तिम इच्छा क्या है ?"—इस पर अवधबिहारी ने तपाक से उत्तर दिया कि मेरी एक ही इच्छा है कि अंग्रेज राज का नाश हो।

इस पर अंग्रेज ने कहा—"अब तो शान्तिपूर्वक मरिये।" अवधबिहारी ने इस पर हँस कर कहा—"अब शान्ति कैसी, मैं तो चाहता हूँ ऐसी प्रचण्ड क्रान्ति की आग सुलगे जिससे यह सारी ब्रिटिश सत्ता ही नष्ट हो जाए ?"

अवधबिहारी बड़ी बहादुरी से फाँसी के तख्ते पर चढ़े।

बालमुकुन्द—बालमुकुन्द कुछ दिनों तक जोधपुर में राजकुमारों को पढ़ाने का काम करते रहे थे; जब नराधम दीनानाथ ने उनका नाम लिया तो वे गिरफ्तार हो गए। उनके पास दो बम भी बरामद हुए। उनकी तलाशी लेते हुए गाँव में जो उनका घर था उसकी तमाम जमीन दो दो गज गहरी खोद डाली गई। पुलिस को यह शक था कि उनके यहाँ बम का खजाना है। भाई परमानन्द बालमुकुन्द जी के भाई लगते थे, इसलिए उन्होंने बड़ी दूर तक अपीलें कीं, किन्तु उससे कुछ फायदा न हुआ, और उनको फाँसी की सजा दे दी गई।

श्रीमती बालमुकुन्द—भाई बालमुकुन्द विवाहित थे, उनकी स्त्री श्रीमती रामरखी को हम कोई राजनैतिक महत्त्व नहीं दे सकते, वह कोई क्रान्तिकारिणी नहीं थीं, किन्तु जिस प्रकार उन्होंने अपने देशभक्त पति का साथ दिया वह एक ऐतिहासिक घटना है, और उसका उल्लेख किए बिना भाई बालमुकुन्द की वीरता की कहानी अधूरी रह जाएगी। पति की गिरफ्तारी होने के दिन से ही श्रीमती रामरखी दुबली होने लगीं, उनको कुछ आभास-सा हो गया कि बस अब खातमा है। उन्हें बड़ी मुश्किलों से जेल में पति से मिलने की इजाजत मिली। रामरखी को पहले ही पति को भोजन कैसा मिलता है, इसकी फिक्र पड़ गई, उन्होंने पूछा—"खाना कैसा मिलता है ?"

भाई बालमुकुन्द ने इस पर हँस कर कहा—"मिट्टी मिली रोटी।"

रामरखी उस दिन घर लौट गईं तो अपने आटे में भी मिट्टी मिलाने लगीं। फिर एक बार वह मिलने गईं, तो पूछा कि सोते कहाँ हैं, इसके उत्तर में भाई जी ने बताया कि अँधेरी कोठरी में दो कम्बल पर। बस उस दिन से जो श्रीमती रामरखी घर लौटीं तो वह भी ग्रीष्म ऋतु के होते हुए भी कम्बल पर लेटने लगीं। जिस दिन भाई जी को फाँसी हुई, उस दिन सवेरे उठकर रामरखी ने

वस्त्र आभूषण धारण किए, और जाकर एक चबूतरे पर बैठ गईं। उनके चेहरे पर कोई भी दुःख का चिन्ह नहीं था। किन्तु वह जो बैठ गईं सो उठी नहीं, न तो श्रीमती रामरखी ने जहर खाया था न कोई ऐसी बात की थी। पति-पत्नी दोनों की लाश एक साथ जलाई गई।......

बसन्तकुमार—जिस समय रासबिहारी देहरादून में थे उस समय बसन्तकुमार उनके नौकर का काम करते थे। मुखबिर दीनानाथ ने बताया था कि लाहौर के लारेन्स गार्डन में जो धड़ाका हुआ था, उसमें बसन्तकुमार का हाथ था। वे बंगाल में पकड़े गए। पहले उनको आजन्म कालेपानी की सजा हुई, पर पुलिस की अपील से यह सजा बढ़ाकर फाँसी कर दी गई।

४

दिल्ली षड्यंत्र के बाद

शचीन्द्र सान्याल और बनारस केन्द्र—१९१२ में ढाका अनुशीलन समिति के फरार अमृत या शशांक हाजरा तथा अन्यान्य लोगों के मन में यह विचार आया कि अलग-अलग दल बनाकर कार्य करने से कार्य-सिद्धि नहीं होगी। इसी कारण चन्दननगर दल तथा अनुशीलन दल का मिलन हुआ। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी चन्दननगर दल के थे।

१९०८ के लगभग काशी के शचीन्द्रनाथ सान्याल ने एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की। इसका रूप अभी पूरा क्रान्तिकारी नहीं हुआ था; बल्कि अभी यह केवल लाठी, कुश्ती तथा जिमनास्टिक आदि सीखने की एक संस्था मात्र थी। शचीन्द्र सान्याल ने इसका नाम अनुशीलन समिति रखा, पर बंगाल की अनुशीलन समिति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। बाद को जब बंगाल में अनुशीलन समिति गैरकानूनी करार की गई, तो शचीन्द्र सान्याल ने अपनी संस्था का नाम यंगमेन्स एसोसिएशन रखा।

शचीन्द्र अपने दल को पूरा क्रान्तिकारी रूप नहीं दे पा रहे थे, इसलिए उन्होंने बंगाल की यात्रा की। वे ढाका के माखन सेन से मिले, पर उनसे मिल कर उनका मन संतुष्ट नहीं हुआ क्योंकि वे धर्म के आधार पर राजनैतिक कार्य की बात कह रहे थे, शचीन्द्र को यह बात पसंद नहीं आई। वे १९१३ में ही अनुशीलन के नेताओं से मिले और उनके राजाबाजारवाले अड्डे पर गए।

वहाँ शचीन्द्र जिस रूप में गए, वह रवि सेन के अनुसार इस प्रकार था—"जब शचीन्द्र पहले-पहल राजाबाज़ार आए, तब मैंने देखा कि सिर पर मोटी चुटिया थी और कोट पहने थे। देखनें पर बंगाली नहीं लगते थे।"

राजाबाजार में ही कई और क्रान्तिकारियों के साथ शचीन्द्र का परिचय हुआ। उनमें से शिरीष बाबू शचीन्द्र को लेकर चन्दननगर ले गए और वहाँ

रासबिहारी के साथ उनका परिचय कराया गया। नलिनी बाबू ने लिखा है—"शचीन्द्र के साथ रासबिहारी का परिचय हुआ। उन्होंने आगन्तुक की गति-विधि देखी। शचीन्द्र मानो बारूद के भरे अनार थे। इसलिए हर समय चंचल रहते थे। शचीन्द्र की यह चंचलता देखकर रासबिहारी ने उनका नाम लट्टू रखा। शचीन्द्र में असाधारण कर्मशक्ति, सरलता और साधुता थी। उनमें जैसे कर्म-शक्ति हर समय उबाल के बिन्दु पर बनी रहती थी। रासबिहारी शचीन्द्र की यह चंचलता देखकर बोले—"उसके ग्रुप के साथ मिलना खतरनाक तो नहीं रहेगा। यह तो बड़ा अस्थिर लगता है। मैं सेना में काम कर रहा हूँ। पता नहीं क्या गोलमाल कर डाले।"

प्रतुल गांगुली इन दिनों फरार थे, अब वे उस बात के लिए नियुक्त हुए कि वे शचीन्द्र के साथ उत्तर-प्रदेश का दौरा करेंगे और फिर उनकी रिपोर्ट पर तय होगा कि रासबिहारी कहाँ तक उनसे सहयोग करें। प्रतुल बाबू ने दौरा करने के बाद अच्छी रिपोर्ट दी, जिसके फलस्वरूप शचीन्द्र का दल रास-बिहारी के साथ काम करने लगा और शचीन्द्र रासबिहारी के दाहिने हाथ बन गए। बाद को शचीन्द्र के और ब्योरे दिए जाएँगे।

करतारसिंह—पंजाब ने यों तो भारतवर्ष के इतिहास को बहुत से वीर दिए हैं, किन्तु जिस युग का जिक्र हम कर रहे हैं उस युग में देश के लिए सिर देनेवाले सरदारों में शायद करतारसिंह सबसे कम उम्र के थे, इसलिए हम उसकी जीवनी की कुछ विस्तृत आलोचना करेंगे। करतारसिंह का जन्म १८९६ ई० पंजाब प्रान्त के लुधियाना जिले के सरावा नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार मंगलसिंह था, लड़कपन में ही करतारसिंह को पितृ-वियोग हुआ। करतार के अभिभावक उनके दादा ही थे, उन्होंने बचपन में ही उनका पालन-पोषण किया तथा शिक्षा आदि दी। लुधियाना के रगलसा हाई स्कूल में वे भर्ती कराए गए, किन्तु वे स्वभाव से ऊधमी थे। पढ़ने लिखने में उनका मन न लगता था। वे खेलों तथा ऊधम में सबसे आगे रहते थे, वे एक तरह से लड़कों के स्वाभाविक नेता थे। करतार की स्कूली शिक्षा अभी पूर्ण भी नहीं हुई थी कि वे उड़ीसा चले गए। वहीं उन्होंने एन्ट्रेन्स पास किया और उनकी रुचि राजनैतिक साहित्य की ओर मुड़ी। दिल में विपत्तियों

में कूद पड़ने की लालसा तो थी ही, तिस पर उन दिनों सैकड़ों पंजाबी समुद्र लाँघ कर अमेरिका जा रहे थे, करतार को भी सूझा कि वे ऐसा क्यों न करें। बस उन्होंने अपने दादा से कहा। दादा भी राजी हो गए, करतारसिंह अमेरिका पहुँच गए।

करतारसिंह ने अमेरिका जाकर देखा कि पश्चिम के लोग, यों तो हर वक्त आजादी, भ्रातृत्व आदि शब्द अपने मुँह पर रखते हैं, किन्तु भारतीयों से घृणा करते हैं। उन्होंने गहराई से सोचा तो यह समझ गए कि भारतीयों से ये लोग जो घृणा करते हैं, इसकी वजह यह है भारतवासी गुलाम हैं। इस प्रकार बड़ी अच्छी माली हालत होने पर भी गुलामी की ग्लानि उन पर हमेशा रहने लगी। वे अपने साथी भारतीयों से सदा इस बात की आलोचना किया करते कि गुलामी कैसे दूर हो, सच बात यह है कि वे कुछ करने के लिए छटपटाने लगे, किन्तु कोई रास्ता ही नहीं मालूम होता था। इतन में पंजाब से निकाले हुए श्री भगवानसिंह अमेरिका आ पहुँचे। एक तजर्बेकार व्यक्ति के आ जाने से सब काम चमक गया, और अमेरिका के भारतवासियों में जोरों से काम होने लगा। दल की ओर से एक अखबार "गदर" निकाला जाने लगा, करतारसिंह इस अखबार के सम्पादकों में थे। "गदर" अखबार के सम्पादक माने केवल सम्पादक नहीं था, बल्कि सम्पादक खुद ही कम्पोज करते, मशीन चलाते, छापते तथा बेचते थे। करतारसिंह इस अखबार पर मेहनत करते कभी अघाते नहीं थे, बराबर हँसते और गीत गाते थे। करतारसिंह ने इस प्रकार छापने का काम तो सीख ही लिया, साथ ही अलग से जहाज के भी सारे काम सीखे।

जब महायुद्ध छिड़ा तो करतारसिंह ने कहा अब विदेश में रहने का कोई अर्थ नहीं होता, यही तो मौका है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस वक्त एक मुसीबत की गिरफ्त में है, देश में क्रान्ति की तैयारी होनी चाहिए। उस जमाने में देश में लौटना खतरे से खाली नहीं था। जो आता था करीब-करीब वही "भारत-रक्षा कानून" में गिरफ्तार कर लिया जाता था, किन्तु करतारसिंह किसी तरह बचकर भारत की भूमि पर पहुँच गए। उस दिन से करतारसिंह के लिए बैठना हराम हो गया, वे सारे देश का दौरा करने लगे। याद रहे

कि इस समय करतारसिंह की उम्र केवल अठारह साल की थी । करतारसिंह रासबिहारी से बनारस में मिले । रासबिहारी ने उनसे कहा—"जाओ, पंजाब को तैयार करो, इधर हम तैयार हो रहे हैं ।" करतार पंजाब चले गए, और वहाँ के संगठन को मजबूत बनाने लगे । शस्त्र इकट्ठे होने लगे, दल की नई-नई शाखाएँ खोली जाने लगीं, धन एकत्र करने के लिए डाके भी डाले गए ।

२१ फरवरी १९१५ का दिन सारे भारत में क्रान्ति के लिए मुकर्रर था । करतारसिंह इसके पहले ही लाहौर छावनी के मेगजीन पर हमला करनेवाले थे । एक सिपाही उनसे मिल गया था । इसने वादा किया था कि समय उपस्थित होने पर वह उन्हें मेगजीन की कुञ्जी दे देगा, किन्तु करतार जब वहाँ दल बल सहित पहुँचे तो मालूम हुआ कि वह सिपाही एक दिन पहले बदल गया । किन्तु इस प्रकार निराश होने पर भी उनका दिल नहीं टूटा, वे पिंग्ले के साथ मेरठ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि छावनियों का गश्त करने निकल पड़े । छावनियों में कमेटियाँ बन गई थीं, २१ फरवरी को विद्रोह होना निश्चित था, इस बीच में दल के ही एक व्यक्ति कृपालसिंह ने सारा रहस्य खोलकर सरकार के सामने रख दिया । ब्रिटिश सरकार कुछ इस प्रकार की बातों के अस्तित्व का मन-ही-मन अनुमान लगा रही थी, इतने में यह भंडाफोड़ हो गया । बस क्या था, दमन चक्र बड़े जोरों से चलने लगा, गिरफ्तारियों की धूम मच गई, पुलिस का राज्य हो गया । जहाँ-जहाँ छावनियों में शक था कि वहाँ फौजें विद्रोह में भाग लेंगी, वहाँ सारी फौज के शस्त्र ही छीन लिए गए । इन सब बातों से इतनी गड़बड़ी फैल गई कि भगदड़ मच गई, काम कौन करता ?

करतारसिंह को भी लोगों ने भागने की सलाह दी । वे भागने के अलावा करते ही क्या, उस समय काम कुछ हो नहीं रहा था । कृपालसिंह की कृपा के कारण लोग इस प्रकार डर चुके थे कि कोई किसी की सुनने के लिए तैयार न था । इस हालत में करतारसिंह भी दो साथियों सहित ब्रिटिश भारत के बाहर पहुँचे । अब उनपर कोई विपत्ति नहीं थी, न आ सकती थी, क्योंकि उनका पता किसी को भी नहीं मालूम था, किन्तु इस प्रकार इतने ही से उनके मन को शान्ति नहीं मिली । वे भावुक तो थे ही, उन्होंने सोचा इस प्रकार

भागने से क्या हासिल, जब एक साथ लड़े तो एक साथ विपत्ति का सामना भी करेंगे। बस उन्होंने अपनी यात्रा की दिशा बदल दी। ऐसी जगह पर आते ही जहाँ कि लोग उन्हें जानते थे, वे गिरफ्तार कर लिए गए और जेल पहुँचाये गए। इस प्रकार निश्चित गिरफ्तारी में अपने को झोंक देना बेवकूफी भले ही हो, किन्तु इसमें जो बहादुरी है उसकी हम बिना तारीफ किए रह नहीं सकते।

जेल में भी यह चिर-विद्रोही चुप न रह सका। यहाँ उसने सब साथियों को इस बात पर राजी कर लिया कि जेल से भाग चला जाए, और बाहर चलकर लाहौर छावनी की मेगजीन पर कब्जा कर लिया जाए। फिर क्या है लड़ाई छेड़ दी जाए। करतार सिंह की यह योजना भी सफल नहीं हो सकी। भेद खुल गया, और सबको बेड़ियाँ पड़ गईं। कहा जाता है कि करतार सिंह की सुराही के नीचे की जमीन में सब औजार बरामद हो गए।

करतार सिंह ने अदालत में अपने से सम्बन्ध रखनेवाली सब बातों को स्वीकार किया। वीर करतार की यह समझ ही में नहीं आ रहा था कि आखिर इन बातों को करके उसने कौन-सा बुरा काम किया। उसे न तो यह पता था, न तो इसकी कोई परवाह थी कि उसका मुकदमा बिगड़ जाएगा। सच बात तो यह है वह मुकदमा में विश्वास ही नहीं रखता था। उसने सब बातें कबूल करने के अन्तर यह कहा, "मैं जानता हूँ मैंने जिन बातों को कबूल किया है, उनके दो ही नतीजे हो सकते हैं, कालापानी या फाँसी! इन दो बातों में मैं फाँसी को ही तरजीह दूँगा, क्योंकि उसके बाद फिर नया शरीर पाकर मैं अपने देश की सेवा कर सकूँगा। यदि मैं भाग्यवश अगले जन्म में स्त्री भी होऊँ तो मैं अपनी कोख से विद्रोही सन्तानों को पैदा करूँगा।"

करतार की बात ही सच थी, जज ने उसे फांसी की सजा दी। फाँसी घर में उसका वजन दस पौंड बढ़ गया था······

फाँसी के बाद करतार सिंह फाँसी घर में बन्द थे, उनके माथे पर बल न था, न भय। उनके दादा आए और बोले, "करतार, तुम फाँसी किनके लिए जा रहे हो, वे तो सब तुम्हें गालियाँ दे रहे हैं।" करतार के माथे पर एक बल आया, किन्तु क्षण भर के लिए; वाकई यह दुख की बात थी कि जिनके लिए वह यहाँ बन्द था वे ही उसे बुरा कहें! फिर भी करतार दबनेवाला या हिम्मत

हार जानेवाला जीव नहीं था, उसने अपने दो एक मरे हुए रिश्तेदारों का नाम लेकर पूछा, "वे कहाँ गए ?" दादा ने कहा, "वे मर गए।" इस पर करतार ने कहा, "वे मर गये। हम भी मरने जा रहे हैं, फिर नई बात क्या है ?"

बलवन्त सिंह—विदेश से लौटे हुए जिन पंजाबियों को क्रान्तिकारी आन्दोलन में फाँसी हुई थी, उनमें बलवन्त सिंह भी थे। १८८२ ईसवी में आपका जन्म जालन्धर के खुदपुर गाँव में हुआ था। थोड़ी शिक्षा के बाद ही आप फौज में भर्ती हो गए, किन्तु दस साल उनमें रहने के बाद उनका जी ऊब गया, और वे विदेश रवाना हो गए। आप अमेरिका जाने के बजाय कैनेडा गए, और वहीं पर काम करने लगे। कैनाडा में उन दिनों कोई गुरद्वारा नहीं था, इसके अतिरिक्त भारतीयों को अपने मुर्दे जलाने का अधिकार भी नहीं था। उन्होंने पहले-पहल इन्हीं बातों को लेकर सार्वजनिक आन्दोलन में प्रवेश किया, और इसमें वे सफल रहे। भारतीयों को गोरे कुली बहुत नापसन्द करते थे, क्योंकि भारतीय उनसे अधिक मेहनत कर सकते थे। गोरे यह आन्दोलन करने लगे कि भारतीय हंडूरास द्वीप में भेज दिए जाएँ। इस पेंच को भी वहाँ के भारतीयों ने काट दिया। इस आन्दोलन में श्री बलवन्त सिंह का मुख्य भाग था। किन्तु वह केवल इन्हीं बातों से संतुष्ट होनेवाले जीव नहीं थे; लड़ाई छिड़ चुकी थी, विदेश की स्वाधीन आबहवा में पले हुए हिन्दुस्तानी सैंकड़ों की तादाद में देश वापस आने लगे, ताकि यहाँ आकर क्रान्ति की आग को भड़का सकें, क्योंकि इस समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आँखें कहीं और लगी हुई थीं। आप भी शंघाई पहुँचे, किन्तु वहाँ से हिन्दुस्तान न जाकर आप श्याम की राजधानी बैंकाक पहुँचे। श्याम की सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया, और ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया। लाहौर षड्यंत्र में आपको सम्मिलित कर लिया गया, और मृत्युदण्ड की सजा हुई।

फाँसी घर में रहते समय आप पर यह जुर्म लगाया गया कि आपने अपने सिर पर जो कम्बल का टुकड़ा बाँध रखा है, उसमें अफीम है, और उस अफीम का यह मतलब बताया गया कि वे इस अफीम को खाकर आत्महत्या करने वाले हैं। इस पर उन्होंने जवाब दिया 'वाह' खूब रहा, जब हमें गौरवपूर्ण ढंग से मरने का मौका दो चार दिन में मिलने ही वाला है, तो मैं क्यों इस

प्रकार कायरों की मौत मरूँ ? यथासमय इनको फाँसी दे दी गई।

भाई भागसिंह—भाई भागसिंह २० साल की अवस्था में फौज में भर्ती हुए थे। पाँच वर्ष तक नौकरी करने के बाद आप चीन चले गए। हाँगकाँग में कुछ दिन तक पुलिस की नौकरी करते रहे, फिर वहाँ से शंघाई गए और वहाँ की म्युनिसिपैलिटी में नौकरी कर ली। यहाँ भी मन न लगा तो कैनेडा पहुँचे, अब तक का जीवन अल्हड़पन का जीवन था। ज्यादा सोचने विचारने का अवसर नहीं था, किन्तु कैनेडा में जो गए और यहाँ के गोरे निवासियों के मुकाबले में भारतीयों की दुर्दशा देखी तो आप एक नए ढङ्ग पर सोचने को विवश हुए। बलवन्तसिंह, सुन्दरसिंह आदि लोगों का साथ हुआ।

कैनाडा में 'गदर' पत्र तो आता ही था, ये सभी उस रङ्ग में रंगे गए। आप जब काम से दक्षिणी ब्रिटिश कोलम्बिया गए, तो वहाँ संदेहवश गिरफ्तार कर लिए गए, किन्तु फिर बाद को छोड़ दिए गए। भाई भाग सिंह गुरद्वारा बनवाना, मुर्दे जलाने का अधिकार प्राप्त करना तथा 'कोमा गाटा मारू' को घाट उतारने के मामले में कैनाडा के गोरों की आँखों में काफी खटकने लगे थे। उन लोगों ने बहुतेरा हाथ-पाँव मारा कि भाई जी को दबा दें या खरीद लें, किन्तु वे असफल रहे। इसलिये इन लोगों ने सोचा कि इसका काम ही तमाम कर दिया जाए, किन्तु इस घृणित कार्य को कैसे अंजाम देंगे यह इन्हें नहीं सूझता था। अन्त तक गोरों ने बेला सिंह नामक एक सिक्ख को ही इस काम के लिए नियुक्त किया। एक दिन भाई भाग सिंह जी नियमानुसार अपना पूजापाठ खतम कर सिर टेक रहे थे कि बेला सिंह ने उनकी पीठ की ओर से गोली चलाई। यह गोली जाकर उनके फेफड़े में रुक गई। भीड थी इसलिये लोग दौड़ पड़े, तो एक आदमी को उस दुष्ट ने और गोली मार दी।

अस्पताल में आपका ऑपरेशन हुआ, लड़का आपके सामने लाया गया तो आप बोले, "यह लड़का मुल्क का है, जाओ इसे दरबार साहब में ले जाओ।" आपकी अन्तिम घड़ी आई, तो आप यही अफसोस करते हुए मरे कि मैं तो चाहता था कि स्वतंत्रता के युद्ध में वीरों की तरह मरूँ, किन्तु अफसोस ऐसे मर रहा हूँ।

भाई वतन सिंह—विश्वासघाती बेला सिंह की गोली से एक और सिक्ख

खेत आए थे, इस व्यक्ति का नाम वतन सिंह था। आप भी पंजाब से रोजी की तलाश में कैनाडा आये थे। वहाँ वे बराबर भाई भागसिंह आदि देश-भक्तों के साथ सभी हकों की लड़ाई में सम्मिलित थे। जिस दिन बेला सिंह ने गोरों के बहकाने में आकर भाग सिंह पर गोलियाँ चलाईं, उस दिन भाई वतन सिंह वहीं मौजूद थे। बेला सिंह ने जो भाग सिंह पर गोली चलाई तो वतन सिंह आततायी पर लपके, किन्तु बेला सिंह बिल्कुल निधड़क गोली चला रहा था। उसने एक के बाद एक सात गोलियाँ वतन सिंह को मारीं, और जब वे गिर पड़े तो जान छुड़ाकर भाग गया।

डाक्टर मथुरासिंह—गदर दल के सदस्यों में डाक्टर मथुरा सिंह एक प्रमुख व्यक्ति थे। मैट्रिक पास करने के बाद आप डाक्टरी का काम पुस्तकों से तथा डाक्टरों से सीखने लगे, और इस प्रकार कुछ वर्षों में एक चतुर डाक्टर हो गए। निजी तौर पर डाक्टरी सीखने को तो आपने सीख ली, किन्तु उससे आपको तृप्ति नहीं हुई। आपने विदेशों में जाकर डाक्टरी सीखने की ठान ली, तदनुसार वे उसके लिए तैयारियाँ करने लगे। इस बीच में आपकी स्त्री तथा कन्या की मृत्यु हो गई, इससे आपको दुःख तो हुआ, किन्तु आप और स्वतन्त्र हो गए, और अब आपकी विदेश-यात्रा के रास्ते में कोई भी अड़चन नहीं रही। लड़ाई छिड़ने से पहले ही वे अमेरिका के लिए रवाना हो गए, किन्तु शंघाई जाते-जाते उनकी पूँजी खतम हो गई, इससे उन्हें वहीं उतरना पड़ा। वहाँ वे डाक्टरी करने लगे, और जब काफी रुपया इकट्ठा हो गया तो वे कैनाडा के लिए रवाना हो गए। वहाँ पर उतरने में काफी दिक्कत हुई, तो उनका मिजाज गरम हुआ, तिस पर इमिग्रेशनवालों ने कुछ अधिक पूछताछ की तो झगड़ा ही हो गया। मामला अदालत तक गया तो वहाँ आप दोषी माने गए और उन्हें कैनाडा से निकलकर उल्टे पाँव फिर शंघाई आना पड़ा।

इस बीच में बाबा गुरुदत्त सिंह ने 'कोमा गाटा मारू' जहाज पर क्रान्तिकारी कामों का सिलसिला जारी कर दिया था, और तमाम समुद्रों में आफतों का सामना करने के बाद वह भारत की ओर आ रहा था। डाक्टर मथुरा सिंह इस जहाज से पहले ही भारत पहुँच गए थे, वे अमृतसर पहुँच भी न पाए थे इतने में बजबज की दुर्घटना हुई। बजबज की दुर्घटना को अच्छी तरह समझने

के लिए जरूरी है हम समझ लें कि गदर पार्टी क्या थी।

गदर-पार्टी का वास्तविक रूप—गदर-पार्टी, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एक सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास करनेवाला दल था, किन्तु यह भावना रोटी की तथा एक-आध क्षेत्र में विद्या की तलाश में गए हुए हिन्दुओं के दिल में कहाँ से आई ? ये सभी हिन्दुस्तानी गए थे रोटी की तलाश में, किन्तु जब उन्होंने देखा कि केवल उनके सम्मान में ही नहीं, रोटी में भी उनकी ग़ुलामी बाधक है, पग-पग पर अड़चनें खड़ी की जाती हैं, कहीं उतरने नहीं दिया जाता, कहीं मजदूरी करने नहीं दी जाती तो उनके दिलों में राजनैतिक भावनाएँ आईं। अब तक वे लोग अपने-अपने स्वार्थ के सम्बन्ध में सोचते थे किन्तु अब वे संगठित होकर सामूहिक रूप से सोचने लगे। अमेरिका के अरिगन प्रान्त में पंडित काशी राम, बाबा केशर सिंह, बाबा इशर सिंह महाराज, शहीद भगत सिंह उर्फ गान्धी सिंह, बाबा सोहन सिंह, शहीद मास्टर, ऊधम सिंह, हरनाम सिंह, टंडिलाट तथा अन्य लोगों ने अपनी हालत के सुधार के लिए एक आन्दोलन खड़ा किया। उधर कैलिफोर्निया के हिन्दुस्तानी भी संगठित हो रहे थे। अरिगन के हिन्दुस्तानियों ने लाला हरदयाल को कैलिफोर्निया से बुला लिया, और परामर्श के बाद यह तय हुआ कि सारे हिन्दुस्तानी संगठित हो जाएँ। इस फैसले के फलस्वरूप जो सभा कायम हुई उसका नाम 'हिन्दी असोसिएशन' रक्खा गया, यही असोसिएशन बाद में जाकर 'गदर-पार्टी' के रूप में तबदील हो गया। इस असोसिएशन के पदाधिकारी निम्नलिखित व्यक्ति चुने गए—

सभापति—बाबा सोहन सिंह

उप-सभापति—बाबा केसर सिंह

मंत्री—लाला हरदयाल

कोषाध्यक्ष—पं० काशीराम

तमाम हिन्दुस्तानी इस संघ के सदस्य हो गए, बात की बात में चंदा तथा काम करनेवाले भी खूब इकट्ठे हो गए। संघ की ओर से, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, 'गदर' नाम से एक अखबार निकाला गया, और यह तय हुआ कि सैनफ्रैंसिस्को इस संघ का केन्द्र हो। इसकी वजह यह थी केलिफोर्निया प्रान्त में ही हिन्दुस्तानी सब से ज्यादा बसे थे। सैनफ्रैंसिस्को एक प्रसिद्ध बंदरगाह

होने की वजह से भी बहुत उपयुक्त था। जो दफ्तर इस संघ के लिए लिया गया उसका नाम बंगाल के क्रान्तिकारी पत्र युगान्तर के अनुकरण पर 'युगान्तर आश्रम' रक्खा गया, और जो प्रेस इसके अखबार के लिये स्थापित किया गया उसका नाम 'गदर प्रेस' रक्खा गया। 'गदर' के सम्पादन का भार लाला हरदयाल पर सौंपा गया। 'गदर' अखबार का पहला अंक नवम्बर १९१३ में निकला।

काम की योजना तैयार हो चुकी थी, अब अमेरिका के रहनेवाले सब हिन्दुस्तानियों की मंजूरी लेनी बाकी थी, इस उद्देश्य से फरवरी सन् १९१४ में स्टाकटन नगर में एक सभा की गई। इस सभा का सभापतित्व प्रसिद्ध पंजाबी क्रान्तिकारी श्री ज्वाला सिंह ने किया। इस सभा के बाबा सोहन सिंह, केशर सिंह, करतार सिंह, लाला हरदयाल, तारकनाथ दास, पृथ्वी सिंह, बाबा करम सिंह, बाबा बसाखा सिंह, भाई संतोख सिंह, पंडित जगतराम हर्यानिवा, दलीप सिंह फाल, पूरन सिंह, निरंजन सिंह पंडोरी, कमर सिंह धूत, निधान सिंह महरोरी, बाबा निधान सिंह चग्घा, बाबा अरूड़ सिंह आदि शामिल थे। इस सभा में बहुत से प्रस्ताव पास हुए। प्रवासी हिन्दुस्तानियों का यह पहला ही क्रान्तिकारी जलसा था। इस सभा में किए हुए फैसले के मुताबिक अखबार और छापेखाने में काम करनेवाले सैनफ्रेंसिस्को चले गए। बाबा सोहन सिंह और बाबा केसर सिंह कैलिफोर्निया में संगठन के उद्देश्य से दौरा करने लगे। भगत सिंह और करतार सिंह आप लोगों के साथ हो गए।

इसके थोड़े ही दिन बाद एक सभा और बुलाई गई, इसमें शहीद राम सिंह, भगत सिंह, मलाल सिंह, मौलवी बरकतुल्ला और भाई भगवान सिंह भी शरीक थे। फिर तो जलसे होते ही रहे। दल के लिए धन इकट्ठा करने का काम जारी था। इन प्रवासी हिन्दुस्तानियों में देश के लिए इस प्रकार जोश था कि लोग अपने बैंक की किताबें ही चन्दे में दे देते थे। इस प्रकार प्रत्येक उपाय से दल का संदेश प्रत्येक हिन्दुस्तानी के घर पहुँचा दिया गया। बड़े जोर-शोर से काम होने लगा, थोड़े ही दिनों में दल की शाखाएँ कैनाडा, पनामा, चीन तथा अन्य देशों में जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तानी थे, फैल गईं।

गदर पार्टी का आदर्श था 'आजादी और बराबरी। इस पार्टी से किसी धर्म

तथा सम्प्रदाय का भेद नहीं था, कोई भी हिन्दुस्तानी इस दल का सदस्य हो सकता था। गदर पार्टी का हरेक सदस्य देश का एक सिपाही समझा जाता था। पार्टी के अन्दर मजहबी या धार्मिक बहस की कोई आज्ञा नहीं थी। वैयक्तिक जीवन में हर एक सदस्य को पूरी आजादी थी। इस पार्टी का एक खास सिद्धान्त यह था कि जहाँ कहीं भी दुनिया के किसी हिस्से में गुलामी के विरुद्ध युद्ध हो, वहाँ गदर पार्टी का सिपाही अपने आपको आजादी और बराबरी के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए पेश करे, और हिन्दुस्तान के स्वातंत्र्य-युद्ध के लिए तो तन, मन, धन अर्पण करने को तैयार रहे। हिन्दुस्तान में स्वतन्त्र प्रजातन्त्र कायम करना इस दल का उद्देश्य था।

मार्च १९१४ में लाला हरदयाल पर अमेरिका की सरकार ने मुकदमा दायर किया। खैर, आपको एक हजार डालर की जमानत पर रिहा कर दिया गया। यह सलाह ठहरी कि लाला हरदयाल अमेरिका से बोरिया-बिस्तर उठाकर चले जाएँ। इनके जाने के बाद बाबा सोहन सिंह और भाई सन्तोख सिंह बहैसियत सभापति और मंत्री के काम करते रहे। करतार सिंह, पृथ्वी सिंह और पं० जगतराम बाहर संगठन करने के काम में संलग्न रहे।

कोमा गाटा मारू—पहले हम कोमा गाटा मारू का उल्लेख कर चुके हैं। इसी जमाने में जब यह आन्दोलन चल रहा था, हिन्दुस्तानियों का विशेष कर बाबा गुरदत्त सिंह का चार्टर किया हुआ यह जहाज बैंकोवर पहुँचा, किन्तु कैनाडा की सरकार ने उसे बन्दरगाह पर लगने से रोक दिया। इस पर कैनाडा निवासी हिन्दुस्तानियों में बहुत ही जबर्दस्त असन्तोष की आग भड़क उठी। भाग सिंह, मेवा सिंह और वतन सिंह ने इस सम्बन्ध में जो कुर्बानियाँ की, वे सोने के हरफों में लिखी रहेंगी। भाग सिंह तथा वतन सिंह किन परिस्थितियों में शहीद हुए, यह तो पहले ही लिखा जा चुका है, अब मेवा सिंह का थोड़ा सा हाल संक्षेप में लिखकर हम आगे बढ़ जाएंगे।

मेवा सिंह—भाग सिंह तथा वतन सिंह की हत्या का मुकद्दमा चल रहा था। हत्यारे ने बयान दिया कि इमिग्रेशन विभाग के लोगों ने मुझे यह हत्या करने के लिए नियुक्त किया था। इस बयान को सुनकर अदालत में उपस्थित मेवा सिंह के बदन में आग सी लग गई, कितना बड़ा विश्वासघात था कि पैसों

के लिए एक हिन्दुस्तानी गोरों के भड़काने पर दो अच्छे से अच्छे नररत्नों की हत्या कर डाले। प्रतिहिंसा के लिए वे व्याकुल हो गए, किन्तु समय अभी नहीं आया था। आप सिद्धि के लिए साधना करने लगे। उन्होंने सैंकड़ों रुपए गोली चलाने की दक्षता प्राप्त करने में खर्च कर डाले।

मुकदमा चल रहा था। उस दिन इमिग्रेशन अफसर मिस्टर हापकिन्सन की गवाही हो रही थी, इतने में सनसनाती हुई गोली आकर हापकिन्सन को लगी। वह वहीं ढेर हो गया। अदालत में एक भगदड़ सी मच गई। जज मेज के नीचे छिप गए, और जिसको जिधर जगह मिली वह उधर भाग निकला। किन्तु मेवा सिंह का काम हो चुका था, उसे और किसी को सजा देनी नहीं थी। उन्होंने रिवालवर वहीं पर पटक दिया, और चिल्लाकर लोगों से कहा—"कोई डरने की बात नहीं, मेरा काम खत्म हो चुका है, मुझे अब कोई भी गिरफ्तार कर सकता है।"

गिरफ्तार कर लिए जाने पर जब उन्हें बताया गया कि हापकिन्सन मर चुका, तो वह बहुत ही खुश हुए। उन्होंने अफसोस किया तो इतना किया कि वे रीड को (जो हापकिन्सन का साथी और सलाहकार था) न मार सके। उन्होंने मुकदमे में अपना सारा अपराध कबूल कर लिया। उन्हें मालूम था कि इसके लिए उन्हें फाँसी ही होगी, किन्तु उन्हें इसकी कब परवाह थी।

फाँसी घर में बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद फाँसी का दिन आया। भाई मीत सिंह धर्माचार्य बनकर गए, तो उन्होंने हँसते-हँसते अपने देश के लिए यह संदेश दिया कि दलबन्दी तथा मजहबी तास्सुब छोड़कर सब लोग कार्य करें। यथासमय उनको फाँसी दे दी गई, और उनकी लाश का बड़ा भारी जुलूस निकला।

कोमा गाटा मारू रवाना—२३ जुलाई १९१४ के दिन कोमा गाटा मारू बैंकोवर से रवाना हुआ और हिन्दुस्तान की यात्रा शुरू हुई। इस बीच में यूरोप में लड़ाई छिड़ गई थी। गदर पार्टी ने यह फैसला किया कि यात्रियों से भेंट करे और पार्टी की सारी बातें उन्हें सूचित करें। बाबा सोहन सिंह इस उद्देश्य से रवाना हुए, और योकोहामा में ये इन यात्रियों से मिले।

बाबा सोहन सिंह जिस समय योकोहामा में थे उसी समय करतार सिंह

सराभा भी पहुँच गए, और यह खबर लाए कि महायुद्ध शुरू होने के कारण गदर पार्टी ने यह फैसला किया था कि उसके तमाम त्यागी सदस्य हिन्दुस्तान चले जाएँ और क्रान्तिकारी तरीकों से मातृभूमि को स्वाधीन करने का प्रयत्न करें। इसी उद्देश्य से सैनफ्रैंसिस्को से चलनेवाला जहाज 'कोरिया' था, जिसमें सिर्फ कैलिफोर्निया से ठीक ६२ हिन्दुस्तानी सवार हुए, इनमें से ६० तो ऐसे थे जो देश की सेवा में सब-कुछ न्यौछावर करनेवाले थे और दो सरकार के टुकड़ों पर पलने वाले सी० आई० डी० के लोग थे।

जहाज में खूब सभाएँ होती थीं, 'गदर गूँज' पढ़ी जाती थी। हरेक यात्री के दिल में यही धुन थी कि हिन्दुस्तान को आजाद करें या उसी कोशिश में मर मिटें। देश को स्वाधीन देखने के अलावा इनके दिल में कोई आकांक्षा नहीं थी। जब यह जहाज योकोहामा पहुँचा, तो सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी पंडित परमानन्द इनमें शामिल हो गए। पं० परमानन्द को आगे चलकर पहले फाँसी बाद में कालेपानी की सजा हुई। साढ़े तेईस साल लगातार जेल में रहने के बाद वे छूटे।

जापान पहुँचने पर यह सलाह ठहरी कि कुछ साथियों को चीन भेज दिया जाए ताकि वहाँ के हिन्दुस्तानियों को क्रान्ति का सन्देश दे दिया जाए। तदनुसार निधान सिंह चग्घा, अमर सिंह और प्यार सिंह इस काम के लिए शंघाई रवाना किए गए, जो वहाँ से सैंकड़ों हिन्दुस्तानियों को लेकर हिन्दुस्तान अपने साथियों से पहले आए।

दो और जहाज, जो कैनाडा से चले थे, 'कोरिया' जहाज को हाँगकाँग आकर मिले। इन जहाजों पर करम सिंह, सजन सिंह, बाबा शेर सिंह और किशन सिंह भी थे। इन दिनो समुद्र के इस भाग पर जर्मन जहाज 'एमडन' का राज्य था, इसलिए जहाज को कई दिनों तक हाँगकाँग में लङ्गर डाले रहना पड़ा। बराबर इस हालत में भी जहाज में सभाएँ होती थीं, हाँगकाँग के फौजी हिन्दुस्तानी भी इन जलसों में शरीक होते थे। जब ब्रिटिश सरकार को इस बात का पता चला तो वह बहुत घबड़ाई, उसने यह हुक्म जारी कर दिया कि कोई सिपाही इन जलसों में शामिल न हो। याद रहे कि इस जहाज पर जो लोग थे, वे कोई बच्चे नहीं थे, लाखों डालरों का कारोबार करनेवाले लोग

उनमें थे, फिर भी जोश से किस प्रकार भरे हुए थे वह इन दिनों हाँगकाँग में होनेवाली एक घटना से पता लगता है । बाबा ज्वाला सिंह एक दिन हाँगकाँग में टहल रहे थे कि उन्होंने एक रिक्शा आते देखा । उसमें एक गोरा बैठा था और एक चीनी उसे खींच रहा था । बाबा जी को यह बात गवारा न हुई, और वे उस गोरे पर टूट पड़े और बोले, "तुझे शर्म नहीं आती कि तू इस पर बैठा है और एक तेरी ही तरह इन्सान तुझे खींच रहा है ।" बड़ी मुश्किलों से दोस्तों ने इस झगड़े को दाबा, नहीं तो मामला बहुत तूल पकड़ता ।

जब जहाज में खाना कम हो गया, तो तोशामारू नामक जहाज कुछ मुसाफिरों को लेकर हिन्दुस्तान रवाना हुआ । रास्ता इस समय खतरनाक हो रहा था । मुसाफिरों के जहाजों को डुबा देना तो एमडन के लिए एक खेल था, उस के सामने तो बड़े-बड़े जंगी जहाजों के छक्के छूटे हुए रहते थे, और दर्जनों जंगी जहाजों को वह अकेला जल-समाधि दे चुका था । जब उसने तोशामारू को भी उड़ाना चाहा तो इस जहाज में झंडियों के जरिये बातचीत कर उसे समझा दिया गया कि इस जहाज में अमेरिका प्रवासी भारतीय क्रान्तिकारी हैं, जो भारत में क्रान्ति की आग सुलगाने जा रहे हैं । इस पर 'एमडन' ने इसे छोड़ दिया, जहाज़ तीन दिन सिंगापुर ठहर कर पेनाङ्ग पहुँचा ।

तोशामारू पेनाङ्ग में—तोशामारू पेनाङ्ग पहुँचने पर रोक लिया गया । उसे जाने ही नहीं दिया जा रहा था, तब एक दिन उकताकर बाबा ज्वाला सिंह आदि कुछ क्रान्तिकारी एक हथियारबन्द डेपुटेशन बनकर गवर्नर के पास पहुँचे । वहाँ इस हालत में अस्त्र-शस्त्र लेकर बिना अनुमति के घुसना मना था, किन्तु मनचले भला ऐसी बातों को कब सुननेवाले थे । वे एकदम उसी हालत में गवर्नर के कमरे में शोर मचाते हुए पहुँचे । गवर्नर ने जो देखा कि इतने अजनबी आदमी अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर उसके यहाँ घुस पड़े हैं तो उसकी सिट्टी-पिट्टी भूल गई और वह बगलें झाँकने लगा । उसने इन लोगों को बैठने को कहा तो इन लोगों ने पूछा कि क्या वजह है कि हमें बन्दरगाह छोड़ने नहीं दिया जाता । इसपर गवर्नर ने तुरन्त बन्दरगाह के हाकिम के नाम यह हुक्म लिख दिया कि जल्दी से जल्दी इन्हें जाने दो । दूसरी शिकायत यह थी कि जहाज में रसद कम हो गई है, इस पर गवर्नर ने कहा कि मैं भला इसमें क्या कर सकता

हूँ, सो इन्हें बताया गया कि तुमको कुछ करना ही होगा। गवर्नर ने इन लोगों के चेहरे की ओर देखा और १५००) दे दिए। यह १५००) जहाज के काम करनेवाले खलासी आदि में बाँट दिया गया। उनकी रसद वास्तव में कम हो चुकी थी।

किन्तु तोशामारू आजाद हालत में भारत न पहुँचा। कलकत्ते से पहले ही इस जहाज को हिरासत में ले लिया गया, और २६ अक्टूबर को कलकत्ता पहुँचने पर १२० यात्री उतारकर मिन्टगुमरी और मुल्तान की जेलों में भेजकर नजरबन्द कर दिए गए, और बाकी लोगों को अपने-अपने गाँव में नजरबन्द कर दिया गया। तोशामारू के यात्रियों के साथ यह व्यवहार इसलिए किया गया कि इसके पहले ही कोमा गाटा मारू २६ सितम्बर को ११ बजे आ चुका था, और बजबज में दोनों ओर से गोलियाँ चली थीं। झगड़ा इस बात पर चल पड़ा कि जहाज से उतरे हुए यात्री अपने को आजाद समझते थे, किन्तु सरकार चाहती थी कि वे स्पेशल ट्रेन पर पंजाब जाएँ। इस पर गोलियाँ चल गईं, १८ यात्री मारे गए, बहुत से भाग गए थे, भागनेवालों में गुरुदत्त सिंह भी थे। भेदियों के जरिये से सब पता पुलिस को पहले से था ही।

इसके बाद तो मुकद्दमों का तांता सा लग गया। लाहौर षड्यंत्र के नाम से पहला मुकद्दमा चला और जिसका फैसला १३ सितम्बर १९१७ को सुनाया, इसमें इतने आदमियों को केवल फाँसी सुनाई गई—

(१) बाबा सोहन सिंह, (२) बाबा केशर सिंह, (३) पृथ्वी सिंह, (४) करतार सिंह, (५) बी० जे० पिंगले, (६) भगत सिंह, (७) जगत सिंह, (८) पं० परमानन्द झाँसीवाले, (९) जगत राम, (१०) बाबा जौहर सिंह, (११) हरनाम सिंह, (१२) बखशी सिंह, (१३) सोहन सिंह अव्वल, (१४) सोहन सिंह दोयम, (१५) निधान सिंह चग्घा, (१६) भाई परमानन्द लाहौरी, (१७) हृदय राम, (१८) हरनाम सिंह टेडिला, (१९) रामसरन कपूरथला, (२०) रलिया सिंह, (२१) खुशहाल सिंह, (२२) बसाधा सिंह, (२३) काहिला सिंह, (२४) बलवन्त सिंह, (२५) सावन सिंह, (२६) नन्द सिंह इत्यादि।

इनमें से सबको आख़िर तक फाँसी नहीं हुई। पहले ६४ आदमियों पर मुकद्दमा चलाया गया। जिसमें से सात को अन्त तक फाँसी हुई, पाँच बरी हुए,

चौबीस की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई, तथा काले पानी की सजा दी गई, और बाकी को १० से लेकर २ साल की सजा हुई।

हम पहले भी कहीं लिख चुके हैं और फिर लिखते हैं कि महायुद्ध के जमाने में क्रान्तिकारियों ने जो तैयारी की थी वह कुछ मनचलों के मन की लहर नहीं थी, न वह सिर पर कफन बाँधे हुए कुछ अलमस्तों की अग्निक्रीड़ा ही थी, बल्कि हरेक अर्थ में एक क्रान्ति की तैयारी थी। यह बात सच है कि जो तैयारियाँ तथा जिस किस्म की तैयारियाँ थीं उनके सफलीभूत होने पर यहाँ समाजवादी क्रान्ति के पहले जिस क्रान्ति को सभी वैज्ञानिक क्रान्तिकारी अनिवार्य मानते हैं अर्थात् राष्ट्रीय क्रान्ति, वह अवश्य ही होकर रहती।

डाक्टर भाग सिंह जो स्वयं गदर पार्टी के सदस्य थे, लिखते हैं, "१९१४-१५ का क्रान्ति-आयोजन इतना जबरदस्त तथा विस्तृत था, और यूरोप में छिड़े हुए महायुद्ध की वजह से सरकार बड़ी नाजुक हालत से गुजर रही थी कि इस आयोजन से उसे बड़ा खतरा पैदा हो गया था।" यह खतरा कितना बड़ा था इस सम्बन्ध में पंजाब के उस समय के गवर्नर सर माइकल ओडायर ने इस तरह लिखा है कि महायुद्ध के दौरान में ब्रिटिश सरकार बहुत कमजोर हो चुकी थी। हिन्दुस्तान भर में केवल तेरह हजार गोरी फौज थी, जिनकी नुमाइश सारे हिन्दुस्तान में करके सरकार के रोब को कायम रखने की चेष्टा की जा रही थी। ये भी बूढ़े थे, नौजवान तो यूरोप के युद्धक्षेत्रों में लड़ रहे थे। यदि ऐसी अवस्था में सैनफ्रैंसिस्को से चलनेवाले गदर पार्टी के सिपाहियों की आवाज मुल्क तक पहुँच पाती, तो निश्चय है कि हिन्दुस्तान अंग्रेजों के हाथ से निकल जाता। यह राय उक्त गवर्नर ने अपनी India as I knew it नामक पुस्तक में लिखी है। यही राय वायसराय हार्डिञ्ज और दूसरे अंग्रेजों की है।

कुछ मिलाकर ९ षड़यन्त्रों के मुकदमे स्पेशल ट्रिब्युनल के सामने चले। इन सब मुकद्दमों में २८ आदमियों को फाँसी दे दी गई, यों हुक्म तो बहुतों को हुआ। इन मुकद्दमों के फैसले के दौरान में जो-जो बातें कहीं गईं उनमें से कुछ का उल्लेख कर हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं: "बहुत से और पर्चों के साथ एक युद्ध की घोषणा भी तलाशी में बरामद हुई थी। रेल तथा तार को बेकार कर देने के लिए बड़ी तादाद में औजार इकट्ठे किए गए थे।"

फौजों में अशान्ति पैदा करना इनके कार्य-क्रम की स॰दूसरे ऐसे लेखों का बात के प्रमाण हैं कि रास्ते के बन्दरगाहों में तथा मेरठ़ा।' यद्यपि इस फैजाबाद, बनारस, लखनऊ की फौजों में इस उद्देश्य से लोग ग़ा कोई प्रत्यक्ष है, कि एक पर्चे में, यह भी था कि छात्रों से अपील की गई थं।'कर्मयोगी' छोड़कर क्रान्तिकारी कामों में शामिल हो जाएँ। इसमें और भी क॰ कि क्रान्ति के बाद लोगों को ओहदे मिलेंगे, और हरदयाल को राजा ैही जाएगा। ब्रिटेन के शत्रुओं से इनको मदद प्राप्त थी, वह कितनी बड़ी थी, किसी और अध्याय में दिखाया जाएगा।

क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जहाँ एक ओर बहुत से वीर और शहीद पैदा किए, वहाँ उसमें बहुत से मुखबिरों का भी उल्लेख आता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि २१ फरवरी सेनाओं के विद्रोह के लिए तय हुई थी। पुलिस ने कृपाल सिंह नामक एक सैनिक को मिला लिया था और उसपर शक भी हो गया था। इसी शक के कारण २१ ता० के बदले विद्रोह का दिन १९ ता० को कर दिया गया। पर कृपाल सिंह को यह बदली हुई तारीख भी मिली और यद्यपि उसपर निगरानी रखी गई थी, पर वह इस खबर को पहुँचाने में सफल हुआ था। उसकी उस समय हत्या इसलिए नहीं की गई थी क्योंकि हत्या से सरकार का रहा-सहा सन्देह भी दूर हो जाता। उसकी मुखबरी के कारण सेनाओं का तबादला किया जाने लगा और ज़बरदस्त धर-पकड़ शुरू हुई। रासबिहारी उस समय भी लाहौर में थे, पर वे लाहौर छोड़कर भागे। अब यह तय हुआ कि रासबिहारी को बाहर भेजा जाए और वे वहाँ से अस्त्र-शस्त्र भेजें। रासबिहारी भारत से जाते समय बोले, "दल की रक्षा कीजिए, युवकों की भरती जारी रखिए, सेना के साथ सावधानी से सम्पर्क रखिए।"

शचीन्द्र और गिरिजादत्त उन्हें जहाज पर चढ़ा आए।

५

्तक

उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी आन्दोलन

उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी आन्दोलन मुख्यतः बङ्गाल से फैला। रौलट साहब ने इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में एक पूरा अध्याय ही लिखा है। हम इस अध्याय में मुख्यतः उससे उद्धरण देंगे। वे पहले उत्तर प्रदेश और उस समय के संयुक्त प्रान्त का वर्णन करते हैं: "संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध और बङ्गाल के बीच में बिहार व उड़ीसा प्रान्त है। यह प्रान्त भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष का हृदय है। इस प्रान्त में बनारस और इलाहाबाद है जो हिन्दुओं की दृष्टि में पवित्र है, आगरा है जो किसी जमाने में मुगल साम्राज्य का केन्द्र था, और लखनऊ है जो एक मुस्लिम राज्य की राजधानी थी। १८५७ के युद्धों का यही प्रान्त मुख्यतः केन्द्र था।

"नवम्बर १९०७ में 'स्वराज्य' नाम से इलाहाबाद से एक पत्र निकला। यहीं से पहले-पहल इस शान्तिपूर्ण प्रान्त में क्रान्तिकारी प्रचार का तथा प्रयास का सूत्रपात होता है। इसके परिचालक एक सज्जन श्री शान्तिनारायण थे जो पहले पञ्जाब के किसी अखबार के सम्पादक थे। इस पत्र का उद्देश्य लाला लाजपत राय तथा सरदार अजित सिंह की नजरबन्दी से रिहाई की यादगार थी। इस अखबार का स्वर शुरू से ही सरकार के विरुद्ध था, किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे यह और भी गरम होता गया। अन्त में शान्तिनारायण को खुदीराम वसु के सम्बन्ध में लिखे हुए एक आपत्तिजनक लेख के कारण लम्बी सजा हुई। 'स्वराज्य' फिर भी बन्द नहीं हुआ चलता रहा, एक के बाद एक इसके आठ सम्पादक हुए, जिसमें से तीन को आपत्तिजनक लेखों के सम्बन्ध में लम्बी सजाएँ हुईं। इन आठ सम्पादकों में से सात पञ्जाबी थे। १९१० में प्रेस ऐक्ट के बाद ही यह अखबार बन्द किया जा सका। जिन लेखों पर आपत्ति की गई थी, उनमें से एक तो खुदीराम वसु पर था। यह खुदीराम वही थे जिन्होंने

श्रीमती तथा कुमारी कैनाडा की हत्या कर डाली थी। दूसरे ऐसे लेखों का शीर्षक यों था 'बम या बायकाट' 'जालिम और दबानेवाला।' यद्यपि इस अखबार ने बड़े जोर का राजद्रोह फैलाया, फिर भी प्रान्त में इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। इलाहाबाद में १९०९ में एक ऐसा ही अखबार 'कर्मयोगी' निकला किन्तु इसका भी कोई नतीजा इस प्रान्त में नहीं हुआ।"

"१९०८ में होतीलाल वर्मा नामक एक व्यक्ति को हम एकाएक राजद्रोही प्रचार कार्य में नाम करते हुए पाते हैं। ये जाति के जाट थे, और पंजाब में पत्रकार रूप में कुछ दिनों तक काम करते थे। अरविंद घोष का कलकत्ते से 'बन्देमातरम्' नामक जो अखबार निकाला था, यह उसके संवाददाता थे। बाद को इनको क्रान्तिकारी प्रचार कार्य में दस साल का कालेपानी हुआ। वे महाशय चीन, जापान तथा यूरोप घूम चुके थे, तथा वहाँ 'बुरे' लोगों के असर में आ चुके थे। इनके पास बम बनाने के मैनुअल के हिस्से मिले थे, ये हिस्से कलकत्ता अनुशीलन समिति के द्वारा बनाए गए मैनुअल से मिलते-जुलते थे। इन्होंने अलीगढ़ के नौजवानों में राजद्रोह फैलाने की कोशिश की थी, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला।"

बनारस षड्यन्त्र—"हम अब बनारस षड्यन्त्र की कहानी पर आते हैं। प्रसिद्ध शहर बनारस में बहुत से विद्यालय और दो कालेज हैं। इसमें रहने वालों में बङ्गालियों की एक बड़ी संख्या है। बहुत से बङ्गाली तीर्थ के ख्याल से इस शहर में बसे हुए हैं फिर वे जहरीली बातें यहाँ क्यों न फैलतीं जो दूसरी जगह फैल चुकी थीं।"

बनारस का काम—देखने में तो शचीन्द्र की समिति का उद्देश्य सदस्यों की मानसिक, नैतिक, शारीरिक उन्नति करना था, किन्तु बनारस षड्यन्त्र के कमिशनरों के शब्द में, जिनकी अदालत में यह मुकद्दमा चला था, इसमें कोई संदेह नहीं कि इस संस्था को खोलने में शचीन्द्र का उद्देश्य राजद्रोह प्रचार करना था; जैसा कि इसके भूतपूर्व सदस्य देवनारायण मुकर्जी ने बताया है कि यहाँ लोग सरकार को बहुत गालियाँ दिया करते थे। विभूति के अनुसार इस समिति का एक भीतरी वृत्त था, जिसके सदस्य इसके असली उद्देश्य से वाकिफ थे, राजद्रोह की शिक्षा इस प्रकार दी जाती थी कि भगवद्गीता का क्लास

खोला गया था, उसमें गीता की व्याख्या ऐसे की जाती थी कि राजनैतिक हत्या का भी समर्थन हो। वार्षिक काली पूजा के अवसर पर एक सफेद कुम्हड़ा या पेठा की बलि दी जाती थी। यों तो इसका कोई खास अर्थ नहीं था, किन्तु इन लोगों ने इसका अर्थ यह लगाया कि सफेद कुम्हड़ा माने सफेद चमड़ीवाला अंग्रेज है। इसलिए इस वलिदान के लिए एक विशेष प्रार्थना भी की जाती थी। इस बात का प्रमाण है कि बनारस में अनुशीलन-समिति की स्थापना के पहले बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति यहाँ आए थे, और यह निश्चय है कि शचीन्द्र तथा उनके साथी जो उस समय करीव-करीब बच्चे थे, उनमें से किसी के द्वारा वरगलाए गए थे।

"यह क्लब या समिति १९०९ से १९१३ तक कायम रही, किन्तु यह बात नहीं कि उनमें आपसी मतभेद न हो। पहले तो इसके वे सदस्य अलग हो गए जो इसकी राजनैतिक कार्यप्रणाली से असहमत थे, और यह नहीं चाहते थे कि यह समिति इस प्रकार सरकार से लोहा ले। फिर इसके जो गरम सदस्य थे वे भी इससे अलग हो गए। इन अलग होनेवालों में शचीन्द्र भी थे। ये लोग चाहते थे कि सिद्धान्त कार्यरूप में परिणत किए जाएँ, और बातों की जगह पर काम हो। इन लोगों ने एक नई समिति बनाई जो बंगाल की समितियों के साथ पूर्ण सहयोग में काम करना चाहती थी। एक मुखबिर के बाद में दिए गए गुप्त बयान के अनुसार शचीन्द्र बराबर कलकत्ते जाते रहे और वहाँ शशांक मोहन हाजरा उर्फ अमृत हाजरा (जो राजा बाजार बम मामले में मशहूर हुए) से मिले और उनसे बम तथा धन लेते रहे। १९१३ की शरद ऋतु में उन्होंने तथा उनके साथियों ने बनारस के स्कूल तथा कालेजों में राजद्रोहात्मक पर्चे बाँटे, और डाक द्वारा दूसरी जगहों में पर्चे बाँटे। विभूति नामक मुखबिर के अनुसार ये लोग कभी गाँवों में भी जाते थे, और गाँववालों में लेक्चर देते थे। मुखबिर के अनुसार लेक्चर के दो ही विषय होते थे, एक तो अंग्रेजों को निकाल बाहर करो और दूसरा अपनी हालत सुधारो। मुखबिर ने और भी कहा कि हम खुलमखुल्ला अंग्रेजों को निकालने की बात करते थे और कहते थे कि अपनी दशा को सुधारो।"

रासबिहारी—"१९१४ में दिल्ली और लाहौर षड्यन्त्र में मशहूर

रासबिहारी स्वयं बनारस आए, और अपने हाथों में पूरे आन्दोलन का भार ले लिया। यद्यपि रासबिहारी को गिरफ्तार करने के लिए इनाम की एक बड़ी रकम की घोषणा की जा चुकी थी, तथा उसके फोटो का सर्वत्र प्रचार किया जा चुका था, फिर भी १९१४ में अधिकांशतः वे पुलिस से बचे रहे। बनारस एक ऐसा शहर है, जहाँ हर प्रान्त के लोग रहते हैं, हरेक प्रान्त के लोग करीब-करीब एक दूसरे से अलग रहते हैं। बंगाली टोला, जो बंगालियों का विशेष मुहल्ला है, करीब-करीब एक ऐसा मुहल्ला है जिसके लोग अपने ही दायरे में रहते हैं। इस प्रकार गैरबंगाली पुलिस के लिए जो बंगला नहीं बोल सकते हैं, यह बात बड़ी कठिन हो जाती है कि बंगाली टोला के लोगों पर ठीक-ठीक निगरानी रक्खे। रासबिहारी बंगाली टोला के पास रहते थे, और रात के समय व्यायाम की दृष्टि से निकलते थे। शचीन्द्र-दल के बहुत से व्यक्ति समय-समय पर उनसे मिलते थे, कम-से-कम एक मौके पर उन्होंने बम तथा पिस्तौल लोगों को दिखलाया था। १९१४ के नवम्बर की रात को जब वे एक बम की टोपी की जाँच कर रहे थे, वह फट गई, और शचीन्द्र और रासबिहारी दोनों को चोट आ गई। इस दुर्घटना के बाद रासबिहारी एक दूसरे मकान में गए। यहीं पर विष्णुगणेश पिंगले नाम के एक महाराष्ट्रीय युवक रासबिहारी से मिलाया गया। पिंगले बहुत दिनों तक अमेरिका रहा। १९१४ के नवम्बर में वह लौटा था; उसके साथ लौटनेवालों में गदर पार्टी के कुछ सिक्ख भी थे। उसने रासबिहारी को बतलाया कि अमेरिका से ४००० आदमी विद्रोह की गरज से आ चुके थे, और २०००० तब आनेवाले थे, जब विद्रोह छिड़ जाएगा। रासबिहारी ने शचीन्द्र को पंजाब की हालत देखने को भेजा। शचीन्द्र ने अपना काम निभा लिया, उन्होंने कुछ गदर पार्टी के नेताओं को बतलाया कि जो बम बनाना सीखना चाहते हैं उन्हें वह आसानी से सिखाया जा सकता है। इसके साथ ही उन्होंने बताया कि इसमें उन्हें बंगालियों की सहायता मिलेगी।"

"१९१५ की फरवरी में शचीन्द्र पिंगले के साथ बनारस लौट आए, और उनके बनारस पहुँचने पर रासबिहारी ने, जो इस बीच में मकान बदल चुके थे, दल की एक महत्त्वपूर्ण सभा की। इसमें उन्होंने बतलाया कि एक विराट विद्रोह शीघ्र होनेवाला है, और वे देश के लिए मरने को तैयार रहें। इला-

हाबाद छावनी में दामोदर स्वरूप सेठ नाम का एक शिक्षक नेतृत्व करनेवाला था, रासबिहारी स्वयं शचीन्द्र तथा पिंगले के साथ लाहौर जा रहे थे। दो आदमी बंगाल में हथियार और बम लाने के लिए नियुक्त किए गए और बिनायकराव कापले नामक एक मराठा युवक पंजाब में बम ले जाने के लिए नियुक्त किया गया था। विभूति और प्रियनाथ पर यह भार रहा कि वे बनारस में फौज को भड़काएँ और नलिनी नाम का एक व्यक्ति जबलपुर में फौज को भड़कानेवाला था। इन योजनाओं पर काम करने के लिए फौरन बन्दोबस्त किया गया, शचीन्द्र और रासबिहारी लाहौर और दिल्ली के लिए रवाना किए गए किन्तु शचीन्द्र जाते ही फिर बनारस इसलिए लौट आए कि बनारस का कार्यभार लें। १९१५ की फरवरी में मनीलाल जो बाद में मुख-बिर हो गया, और विनायकराव कापले एक पूलिंदा लेकर बनारस से लाहौर के लिए रवाना हो गए। यह दोनों पश्चिमी भारत के रहनेवाले थे तथा इनके साथ जो पुलिन्दा था उसमें १८ बम थे। एकाएक किसी से धक्का लगकर धड़ाका न हो इसलिए ये लोग बराबर इन्टर में गए, दो जगह पर अर्थात् लखनऊ और मुरादाबाद में इन्हें फालतू भाड़ा देना पड़ा, क्योंकि इन लोगों के पास तीसरे दर्जे के टिकट थे। लाहौर पहुँचने पर मनीलाल से रासबिहारी ने कहा कि २९ फरवरी को सारे भारत में एक साथ विद्रोह होगा। इस तारीख की खबर बनारस भेज दी गई किन्तु चूँकि लाहौर दल को सन्देह हुआ कि उन्हीं में से एक व्यक्ति ने इसका भाण्डाफोड़ कर दिया है, इसलिए तारीख बदल दी गई।"

"बनारस के लोगों को, जो शचीन्द्र के मातहत काम कर रहे थे, इस ता-रीख बदलने की बात का पता नहीं था, इसलिए २१ की शाम को परेड की जगह पर प्रतीक्षा कर रहे थे कि अब गदर होता है। इस बीच में लाहौर में भण्डा फूट चुका था और बहुत सी गिरफ्तारियाँ हो चुकी थीं। रासबिहारी और पिंगले बनारस लौट गए, किन्तु केवल थोड़े दिनों के लिए ही। २३ मार्च को पिंगले १० बम के एक बक्स समेत १२ नं० इंडियन कैवलरी की छावनी में पकड़े गए। ये बम इतने काफी थे कि आधा रेजिमेन्ट इनसे उड़ सकता था। मुखबिर विभूति के बयान के अनुसार ये बम कलकत्ते से लाकर बनारस

में इकट्ठे किए गए थे, और तब से वहीं थे। जिस समय वे पकड़े गए, उस समय वे एक टीन के बक्स में थे। इनमें पाँच पर कैप चढ़े हुए थे, और दो के कैप अलग थे जिनके अन्दर गनकाटन था।"

"रासबिहारी कलकत्ते में अपने बनारस के चेलों से आखिरी बार मिलने के बाद हिन्दुस्तान के बाहर चले गए। इसी मुलाकात में उन्होंने अपने चेलों को बतलाया कि वे किसी 'पहाड़' में जा रहे हैं और दो साल तक नहीं लौटेंगे। इस बीच में संगठन तथा क्रान्तिकारी साहित्य का प्रचार जारी रहने वाला था। रासबिहारी की अनुपस्थिति में शचीन्द्र तथा नगेन्द्रनाथ दत्त उर्फ गिरजा बाबू इस दल के नेता होनेवाले थे। ये नगेन्द्र बाबू ढाका अनुशीलन-समिति के तपे हुए सदस्य थे इनका नाम अवनी मुकर्जी के नोटबुक में निकला था। अवनी मुकर्जी सिंगापुर और बंगाल में जर्मन बंदूक मँगाने के षड्यन्त्र के सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए थे।"

बनारस षड्यन्त्र—"**बाद को शचीन्द्र, गिरजा बाबू तथा दूसरे षड्यन्त्र-कारी पकड़े गए, और भारतरक्षा-कानून के मुताबिक बनाई गई एक अदालत में इन पर मुकदमा चला।** कुछ तो इनमें से मुखबिर हो गए, कई को लम्बी सजाएँ हुईं और **शचीन्द्र नाथ सान्याल को साढ़े बाईस साल की सजा हुई।** इस मुकद्दमे में दी गई गवाहियों से साबित है कि कई बार फौजों को भड़काने की चेष्टा की गई, राजद्रोही परचे बाँटे गए तथा वे बातें हुई जो ऊपर लिखी गई हैं।"

"तहकीकात के दौरान में मुखबिर विभूति की दी गई खबर के अनुसार कि वह तथा उसके साथी चन्दननगर के सुरेश बाबू के यहाँ ठहरे थे। पलिस ने फौरन वहाँ तलाशी ली और ये चीजें वहाँ बरामद हुईं—

(क) एक ४५० छै फायरवाला रिवालवर
(ख) उसी के लिए एक टिन कार्तूस
(ग) एक ब्रीच लोडिङ्ग राइफल
(घ) एक दोनाली ५०० एक्सप्रेस राइफल
(ङ) एक दोनाली बंदूक
(च) सत्रह करौलियाँ

(छ) बहुत से कार्तूस

(ज) एक पैकेट बारूद

(झ) कुछ 'स्वाधीन भारत' और 'Liberty' पर्चे।

पुलिस को इस मकान पर पहले कभी शक नहीं था। शचीन्द्र के कब्जे से 'युगान्तर' की पुरानी फाइलें तथा राजनैतिक हत्याकारियों के फोटों बरामद हुए। जिस समय वे गिरफ्तार हुए उस समय वे डाक से राजविद्रोही पर्चे भेजने का बन्दोबस्त कर रहे थे। पटना से बंकिमचन्द्र के घर में मैजिनी का जीवन-चरित्र मिला जिस पर शचीन्द्र ने पृष्ठ पर एक नोट लिखा था, "लेखों के जरिये शिक्षा।" इसके लेखों ने, जो कि चोरी से देश के कोने-कोने तक पहुँचा दिए गए थे बहुत से हृदयों पर प्रभाव डाला, और समय पर जाकर उस ने प्रभाव डाला" वाक्य इसके नीचे लकीर खींची गई थी। फिर एक वाक्य लीजिए जिसके नीचे लकीर खींची हुई थी, "जाकोब रूफिनि ने अपने षड्यन्त्र के साथियों से कहा—देखो हम केवल पाँच बहुत ही कम उम्र के नौजवान हैं, हमारे पास करीब-करीब कोई भी बल नहीं है, और हम करने क्या चले हैं: एक प्रतिष्ठित सरकार को उलटने ?"

"बनारस में जितनों को सजा हुई उनमें से केवल एक ऐसा था जो उत्तर-प्रदेश का रहनेवाला था, अधिकतर बंगाली थे, और सभी हिन्दू थे। सब परि-स्थितियों को देखते हुए यह कहा जाता है कि इन षड्यन्त्रकारियों को षड्यन्त्र के लिए उत्तेजना तो बंगाल से मिली थी, वे धीरे-धीरे इसी की ओर जा रहे थे, फिर रासबिहारी के आने पर यह एक बड़ा-सा काण्ड हो गया, और एक भारतीय क्रान्तिकारी योजना का एक अंश हो गया। यह योजना करीब-करीब सफल हो गई थी, कम से कम एक भयंकर मारकाट तो हो ही जाती, और वह भी ऐसे विकट समय में।"

हरनाम सिंह—"गदर आयोजना की सफलता के कुछ दिन बाद हरनाम सिंह नाम का एक पंजाब का जाट सिक्ख जो कभी ९ नम्बर भूपाल एनफैंट्री में हवलदार था, और बाद को फैजाबाद छावनी बाजार का चौधरी हो गया था, पकड़ा गया और उस पर षड्यन्त्र करने का जुर्म लगाया गया। यह साबित हुआ कि क्रान्तिकारी पर्चों से उसका दिमाग फिर गया था, यह पर्चे उस

को रासबिहारी से सम्बन्ध रखनेवाला सुचा सिंह नामक लुधियाने के एक छात्र ने दिये थे। हरनाम सिंह बाद में पंजाब गया था, वहाँ इसने इन पर्चों को बाँटा था, एक क्रान्तिकारी झण्डा तथा एलान-ए-जंग नामक पुस्तिका ली थी। यह पुस्तिका उसके घर पर बरामद हुई।"

यहाँ यह बता देना जरूरी है कि सेना में विद्रोह का यह प्रयास केवल उत्तर भारत में ही विशेष सफल हो रहा था। श्री सतीशचन्द्र पाकड़ासी ने अपनी पुस्तक में यह लिखा है—नेतागण ढाका से लेकर लाहौर तक विद्रोह की तैयारी में लगे हुए थे। उन दिनों ढाका में सिख सेना थी। लाहौर के षड्यन्त्रकारी सिख सैनिकों ने ढाका के सिखों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए परिचयपत्र भेज दिये। ढाका के क्रान्तिकारी नेता अनुकूल चक्रवर्ती उन पत्रों को लेकर ढाका के सिख सैनिकों से मिले। उनमें से वो नेता किस्म के सिख सैनिक सारी बातें सुनकर विद्रोह में शिरकत करने के लिए उत्सुक हो गये। पर यह बात यहीं तक रही। इसके बाद श्री पाकड़ासी लिखते हैं—"मैमन सिंह और राजशाही के सुरूल नामक जंगल में युवक क्रान्तिकारी सन्ध्या के बाद कवायद करते थे। आक्रमण और रण कौशल सीखने के लिए सब लोग प्रयास करने लगे। ज़िलों में बन्दूकें चुराने की होड़ मच गई। चारों तरफ यह अफ़वाह फैला दी गई कि अब की बार मैट्रिक्यूलशन और विश्वविद्यालय की दूसरी परीक्षाएँ नहीं होंगी। उन दिनों हम विद्रोह प्रयास की असली खबर अधिक नहीं जानते थे। पंजाब, संयुक्त प्रदेश विद्रोह का प्रधान केंद्र हो गया। पर बंगाल के विद्रोह की सफलता का सारा भार क्रान्तिकारियों पर ही रहा। पंजाब और संयुक्त प्रदेश की तरह बंगाल में सैनिक विद्रोह की संभावना नहीं थी।"

इससे यह प्रमाणित होता है कि यद्यपि बंगाल में क्रान्तिकारी दल अधिक संगठित था, यहाँ तक कि क्रान्तिकारी बाकायदा बन्दूक चलाना और कवायद आदि करने का अभ्यास करते थे, पर सैनिक विद्रोह की सम्भावना के कारण पंजाब और संयुक्त प्रदेश ब्रिटिश सरकार केलिए अधिक खतरनाक हो गए थे। जैसा कि ऊपर के उद्धरणों से ज्ञात है तथा स्वयं दिल्ली षड्यन्त्र के ब्योरे से ज्ञात है, उत्तर भारत में बम बंगाल से ही आ रहे थे।

कापले की हत्या—विनायक राव कापले बनारस षड्यंत्र के सम्बन्ध में फरार थे। १९१८ की ६ फरवरी को ये मार डाले गए, इनके विरुद्ध कई गम्भीर आरोप थे। ये एक मौजेर की गोली से मारे गए थे। बाद को इसी सम्बन्ध में एक बंगाली युवक सुशील लाहिड़ी पकड़ा गया, और उसके साथ दो रिवालवर और मौजेर पिस्तौल के पाए गए। सुशील लाहिड़ी को फाँसी हो गई। पण्डित जगतनारायण, जो बाद में काकोरी षड्यंत्र में इस्तागासे की ओर से वकील बने थे, वे ही सुशील लाहिड़ी के मुकद्दमे में अभियुक्त के वकील थे।

६

मैनपुरी षड्यन्त्र

यों तो उत्तर प्रदेश में कई षड्यंत्र चले, किन्तु मैनपुरी षड्यंत्र इनमें एक अपनी ही विशेषता रखता है। मैंने इस सम्बन्ध में पहले ही लिखा है, "इस प्रान्त में यही एक ऐसा षड्यंत्र है जिस पर कि बङ्गाल या बङ्गाली क्रान्तिकारियों का कोई प्रभाव नहीं था।"

पं० गेंदालाल दीक्षित—इस षड्यंत्र के नेता पं० गेंदालाल दीक्षित थे। आप का जन्म आगरा ज़िले के प्रसिद्ध गाँव बटेसर के पास २० नवम्बर सन् १८८८ ईसवी में हुआ। इनके पिता भोलानाथ दीक्षित थे। एन्ट्रेन्स पास करने के बाद आप और आगे पढ़ना चाहते थे, किन्तु आर्थिक कारणों से आप और आगे पढ़ न सके, और आप को शिक्षक का कार्य करना पड़ा। दीक्षित जी औरैया के डी० ए० वी० स्कूल में शिक्षक का कार्य करने लगे। पंडित जी आर्य समाजी थे। उन दिनों का आर्य समाज आज के आर्य समाज से भिन्न था, उसमें जीवन का स्फुरण था, तथा कुछ अंश तक वह एक क्रान्तिकारी शक्ति था। पंडित जी के हृदय में देश की दुर्दशा पर क्षोभ तो था ही, तिस पर देश में उस समय एक अग्नियुग जोरों से चल रहा था। बंगाल के नवयुवक सिर पर कफन बाँधकर अपने तरीके से स्वाधीनता-आन्दोलन में जुटे थे। पंडित जी ने भी सोचा कि बस हम क्यों चुप बैठे रहें, हम भी कुछ कर गुजरें।

इसी उद्देशय से इन्होंने शिवाजी-समिति बनाई, शिवाजी के तरीके से ही उन्होंने भारत-माता को विदेशियों की जंजीर से छुड़ाने की ठानी। कहा जाता है कि दीक्षित जी ने पहले तो देश के पढ़े लिखे लोगों को इस उद्देश्य से उभाड़ना चाहा, किन्तु पढ़े लिखे वर्ग के सब लोग तो गुलामी की बदौलत चैन की बंसी बजा रहे थे, बल्कि यों कहना चाहिए कि उनको शिक्षा ऐसी दी गई थी, तथा उनके चारों ओर वातावरण ऐसा पैदा किया गया था कि वह गुलामी में

ही सुखी थे, इस लिए वे निराश होकर डाकुओं का संगठन करने लगे। बात यह है कि उन्होंने देखा कि डाकुओं में हिम्मत है, यदि किसी बात में गलती है तो यह है कि उनको उचित दिशा नहीं मालूम। अब विचार करने पर मालूम होगा कि पंडितजी ने ऐसी उम्मीद कर बड़ी भूल की। जो डाकू थे उन का भला क्या उपयोग हो सकता था। वे तो बल्कि आन्दोलन को कलुषित करते। खैर यह बात नहीं कि पंडित गेंदालाल का ही ऐसा गलत ख्याल था, शायद श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने ही कहीं लिखा है कि पहले वे भी समझते थे कि जिस समय आम विद्रोह हो उस समय जेल के सब कैदी रिहा कर दिए जाएँ, तो उस समय उसमें मदद देंगे, किन्तु बाद को जब वे साधारण कैदियों में बहुत दिन रहे तो उनका यह ख्याल बदला।

कुछ दिनों तक गेंदालाल इन्हीं का संगठन करते रहे। उन्हें एक व्यक्ति मिल गया जिसे लोग ब्रह्मचारी कहते थे। ये चम्बल और यमुना के बीच में रहनेवाले डाकूओं का संगठन करने लगे। इस काम में वे बड़े दक्ष साबित हुए। ब्रह्मचारी ग्वालियर में डाके डलवाते रहे। थोड़े ही दिन में राज्य को ब्रह्मचारी की फिक्र होने लगी और उन्होंने चाहा कि उन्हें किसी भी तरह पकड़ें। राज्य के ओर चारों तरफ गुप्तचर दौड़ने लगे, तथा लोगों को इनाम के वादे किए गए।

एक डाका—ब्रह्मचारी तथा गेंदालाल ने एक धनी के यहाँ डाका डालने का निश्चय किया। वह जगह इतनी दूर थी कि एक दिन में नहीं पहुँच सकते थे, इसलिए रास्ते में पड़ाव डालना पड़ा। गिरोह में ८० के करीब आदमी थे। उसी गिरोह में एक भेदिया था, इसने यह तय कर लिया था कि किसी प्रकार भी हो सके इन्हें पकड़वाना जरूरी है, और इससे अच्छा मौका भला कहाँ मिलेगा! लोग भूखे तो थे ही, वह स्वयं पूड़ियाँ बनाकर लाने गया और उसमें विष मिलवा कर लाया। ब्रह्मचारी ने जब पूड़ियाँ खाईं तो बस उनकी जीभ ऐंठने लगी, वे समझ गए कि मामला क्या है। उधर उस भेदिये ने जब देखा कि उसकी बात शायद खुल गई, तो वह जल्दी से पानी लाने के बहाने चला जाने लगा, किन्तु ब्रह्मचारी की आँखों से भला वह कब बचकर जा सकता था। उन्होंने पास में खड़ी भरी बन्दूक उठाई, और धाँय से उस पर गोली चला दी।

आस ही पास कहीं पुलिस के सवार थे, गोली की आवाज सुनते वे लोग भी आ गए। बस फिर क्या था वहाँ तो एक बाकायदा लड़ाई सी हो गई। ब्रह्मचारी के दल के ३५ आदमी मारे गए। पुलिसवालों की संख्या बहुत कम थी तथा वे हर तरीके के सामान से लैस थे, बड़ी बहादुरी से लड़ने पर भी ब्रह्मचारी न जीत सके। ब्रह्मचारी, गेंदालाल तथा अन्य साथी ग्वालियर के किले में बन्द हो गए।

"मातृवेदी"—इधर कुछ नौजवान भी गेंदालाल के नेतृत्व में काम कर रहे थे। इस टोली का नाम 'मातृवेदी' था, ये लोग भले घर के लड़के थे, तथा इनका दल में भर्ती होने का उद्देश्य केवल एक ही था—देशभक्ति। इन लोगों ने भी डाके डाले, किन्तु ग्वालियर के विद्रोह की तरह ये डाकू नहीं थे। जब इन लोगों को पता लगा कि गेंदालाल इस प्रकार गिरफ्तार हो गए, तो उन्हों ने गेंदालाल को जेल से भगाने की एक योजना बनाई और तदनुसार काम होने लगा। किन्तु यह षड्यंत्र फूट गया और गिरफ्तारियाँ हुईं। इन्हीं गिरफ्तारियों का नतीजा मैनपुरी षड्यंत्र हुआ। सोमदेव नाम का एक नौजवान मुखबिर भी हो गया। उसने अपने बयान में कहा कि गेंदालाल जी इस षड्यंत्र के नेता हैं, साथ ही यह भी बतलाया कि गेंदालाल जी इस समय ग्वालियर के किले में है। गेंदालाल जी को इस प्रकार रखा गया था कि उनका स्वास्थ्य एकदम चौपट हो गया।

वे ग्वालियर से मैनपुरी जेल लाए गए। स्टेशन से जेल उन्हें पैदल ले जाया गया। जेल कोई दूर नहीं था, किन्तु इसी बीच में क्षयरोग हो जाने के कारण वे इतने दुर्बल हो गए थे कि रास्ते में उन्हें कई बार बैठना पड़ा। पंडित गेंदालाल जेल में दाखिल होते ही मुकद्दमे की क्या परिस्थिति है, समझ गए।

अब उन्होंने सोचना शुरू किया कि क्या होना चाहिए। स्थिति बड़ी विकट थी। उधर ग्वालियर का मुकद्दमा था, इधर मैनपुरी का। या तो फाँसी होती या आजन्म कालेपानी। उन्होंने पुलिसवालों से कहा कि इन बच्चों को क्या मालूम। यह भला क्या मुखबिर बनेंगे, मैं बनूंगा, मैं तो बंगाल तथा बम्बई के सैकड़ों क्रान्तिकारियों को जानता हूँ, मैं चाहूँगा, तो सैकड़ों को पकड़वा दूंगा। बस क्या था, पुलिसवाले बहुत खुश हुए, उन्होंने कहा, "यह बहुत

अच्छा हुआ कि खुद 'गिरोह का सरदार ही मुखबिर बन गया।" गेंदालाल जी को ले जाकर पुलिसवालों ने मुखबिरों में रख दिया। मुखबिर लोग भी दंग रह गए, अभियुक्तगण भी।

एक दिन सबेरे लोगों को पता लगा कि पं० गेंदालाल जी रात को गायब हो गए, साथ ही साथ एक मुखबिर राम नारायण को लेते गए। दौड़-धूप होने लगी, किन्तु गेंदालाल भला क्यों हाथ आते। गेंदालाल रामनारायण को पट्टी पढ़ाकर जेल से भगा ले गए थे, किन्तु वे उस पर एतबार नहीं कर सकते थे। एक दफे जो मुखबिर बन गया, उसे साथ में रखना खतरनाक था। वे रामनारायण को लेकर कोटा पहुँचे। जिस बात से गेंदालाल जी डरते थे वही हुई। रामनारायण ने एक दिन गेंदालाल जी को कोठरी में बन्द कर दिया, और उनका सारा सामान लेकर चलता हो गया। इतनी ही खैरियत हुई कि उसने पुलिस भेजकर उन्हें गिरफ्तार नहीं करवा दिया। गेंदालाल जी तीन दिन तक बिना दाना पानी के उसी बन्द कोठरी में बन्द पड़े रहे। किसी प्रकार से अन्त में वे कोठरी में से निकले। उनके बाद वे पैदल चल कर आगरा पहुँचे, किन्तु वहाँ भी दुर्भाग्य ने पीछा न छोड़ा। वहाँ भी उन्हें आश्रय न मिला। जब इस प्रकार कई जगह ठोकरें खाने के बाद भी उन्हें आश्रय न मिला, तो वे विवश होकर अपने घर की ओर चले।

इधर घरवालों का हाल बुरा था, क्योंकि पुलिस ने उन्हें बहुत तङ्ग कर रक्खा था। पुलिसवाले यह समझते थे कि गेंदालाल जी कहाँ हैं इसका पता घरवालों को अवश्य होगा। अतः वे उनको हर तरीके से तङ्ग करते थे। घर वाले हर तरीके से परेशान थे, इतने में गेंदालाल जी बहुत ही बुरी हालत में घर पहुँचे। उनको देखकर घरवालों का हाल और भी बुरा हुआ। इतनी घोर विपत्ति में वह अपनी बहादुरी से मुक्त हो आए, इस पर खुशी मनाना तो दूर रहा, वे उन्हें पकड़वाने की फिक्र करने लगे। एक व्यक्ति से गेंदालाल जी को इस बात का पता लग गया, तो उन्होंने अपने घरवालों से कहा कि आप फिक्र न कीजिए, मैं बहुत जल्दी आपका घर छोड़कर चला जाता हूँ। सारांश यह है कि उन्हें अन्त में घर त्यागना पड़ा।

अन्त में वे किसी तरह लुढ़कते-पुढ़कते दिल्ली पहुँचे। पुलिस तो पीछे थी

ही। इधर पास एक पैसा नहीं था। साथी तो जेल में थे या फरार। रिश्तेदारों की हालत यह थी कि उन्हें पकड़वाने को तैयार थे। शरीर जवाब दे रहा था, मन में कोई प्रसन्नता नहीं थी, क्योंकि जिस क्रान्ति के लिए सर्वस्व बलिदान करके यह सारा खेल रचा गया, उसका कहीं पता नहीं था। दल छिन्न-भिन्न हो चुका था। बहादुर साथी लम्बी-लम्बी सजा के लिए जेलों में प्रतीक्षा कर रहे थे। दूसरे साथी थोड़ी ही परीक्षा में अपने प्रण से डिग ही नहीं गए थे, बल्कि अपने मित्रों को फँसाने के लिए अदालत के सामने गवाहियाँ देने को तैयार थे। इस अवस्था में पंडित जी की मानसिक हालत कैसी थी, यह कल्पना की जा सकती है। फिर भी जीना जरूरी था, इसलिए उन्होंने एक प्याऊ में नौकरी कर ली। पुलिस की आँखों से बचने के लिए यही सबसे अच्छी नौकरी थी। इधर रोग ने उनको और भी बेकाबू कर दिया। वे समझ गए कि अब इस रोग से बचना कठिन है। फिर ठीक-ठीक इलाज भी होता, तो कोई बात थी। उसका तो कोई सवाल ही नहीं उठता था, मुश्किल से पेट भरता था। गेंदालाल ने यह सब सोच समझकर अपने एक विश्वस्त मित्र को पत्र लिखा! खैरियत यह थी कि ये सच्चे मित्र थे, और पंडित जी की स्त्री को लेकर झट पंडित जी के पास पहुँचे।

रोग यह था कि उन्हें रह-रहकर मूर्छा आती थी। स्त्री ने बड़ी सेवा तथा तीमारदारी की, किन्तु वहाँ तो रोग घटने के बजाय बढ़ता नजर आ रहा था। कितना भयानक तथा दर्दनाक दृश्य है। एक देशभक्त अपनी जन्मभूमि से दूर अपनी अन्तिम शय्या पर लेटा हुआ है। उसके सहयोद्धा मित्र पास नहीं हैं, केवल उसकी स्त्री उसके पास है, तिस पर तुर्रा यह कि पुलिस पीछे लगी हुई है!

ऐसी अवस्था में जब मृत्यु करीब थी, उनकी स्त्री रोने लगी। पं० गेंदालाल थोड़ी देर तक अपनी स्त्री की ओर देखते रहे, फिर बोले, "तुम रोती हो, रोओ, किन्तु आखिर इस रोने से क्या हासिल! दुःख तो मुझे भी है। किस बात का मैंने बीड़ा उठाया था और मैंने उसे कितना सिद्ध किया? मर तो मैं रहा ही हूँ, किन्तु जिस कारण मैं मर रहा हूँ वह पूरा कहाँ हुआ? सच बात तो यह है उसके पूरे होने की आशा भी नहीं देख रहा हूँ। मैं इस बात को देखकर मर

रहा हूँ कि मैंने जो कुछ किया था वह छिन्न-भिन्न हो गया। मुझे केवल इतना ही दुःख है कि माँ के ऊपर अत्याचार करनेवालों से बदला नहीं ले सका। जो मन की बात थी वह मन ही में रह गई। मेरा यह शरीर नष्ट हो जाएगा, किन्तु मैं मोक्ष नहीं चाहता। मैं तो चाहता हूँ कि बार-बार इसी भूमि में जन्म लूँ और बार-बार इसी के लिए मरूँ। ऐसा तब तक करता रहूँ, जब तक कि देश गुलामी की जंजीर से छूट न जाए।"

इसी प्रकार जब भी उन्हें होश आता था ऐसी बात करते थे। जो लोग पंडित जी की मृत्युशय्या के पास थे उनको यह भी डर था कि कहीं पुलिस को पता चल गया कि गेंदालाल जी यहाँ है तो सबकी फजीहत हो जाएगी, यहाँ तक कि यदि वह मर भी गए तो लाश पर झगड़ा खड़ा होने का डर है। जो कुछ भी हो इन लोगों ने सोच समझकर गेंदालाल जी की स्त्री को घर भेज दिया, और गेंदालाल जी को सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया। इस प्रकार पंडित जी उसी हालत में अकेले मर गए। सन् १९२० के दिसम्बर की २१ तारीख को यह घटना हुई।

षड्यंत्र के दूसरे व्यक्ति—काकोरी षड्यंत्र में बाद को फाँसी पानेवाले पं० रामप्रसाद बिस्मिल के नाम भी मैनपुरी षड्यंत्र के सिलसिले में वारंट था, किन्तु उन्होंने ऐसी डुबकी लगाई कि पुलिसवाले खोजते रह गए, और अन्त तक उनका पता नहीं लगा। जब १९१४-१८ का महायुद्ध खतम हो गया, और उसके बाद आम मुआफी दी गई, उस समय वे सार्वजनिक रूप से प्रकट हुए।

एक शिवकृष्ण जी थे, वे भी फरार रहे। उनको शायद आम मुआफी के अवसर पर भी माफी नहीं दी गई। ये भी उस षड्यंत्र के प्रमुख नेता थे।

मुकुन्दी लाल जी, जिन्हें बाद में काकोरी षड्यंत्र में आजीवन कालेपानी की सजा हुई थी, इस षड्यंत्र में थे। उनको उस मुकदमे में ६ साल की सजा हुई। मजे की बात यह है कि जब आम मुआफी हुई तो मुकुन्दी लाल जी उसमें शामिल नहीं किए गए। इसमें इन साथियों की गलती नहीं थी, बल्कि उन लोगों की शरारत थी जोकि जेल में से सरकार के साथ इस आम मुआफी की बातचीत कर रहे थे। उन्होंने अपनी पूरी सजा नैनी जेल में काटी।

इसमें सन्देह नहीं कि मैनपुरी षड्यंत्र भारतवर्ष के क्रान्तिकारी आन्दोलन

की एक विशेष कड़ी है। मैनपुरी षड्यंत्र के सदस्यों को जो प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी, वह इस प्रकार है—

मैनपुरी की प्रतिज्ञा

है देश को स्वाधीन करना जन्म मम संसार में।
तत्पर रहूँगा मैं सदा अंग्रेज दल संहार में।
अन्याय का बदला चुकाना मुख्य मेरा धर्म है।
मद दलन अत्याचारियों का यह प्रथम शुचि कर्म है।
मेरी अनेकों भावनाएँ उठ रहीं हृदय-धाम में।
बस शांत केवल कर सकूँगा मैं उन्हें संग्राम में।
स्वाधीनता का मूल्य बढ़कर है सभी संसार से।
बदला चुकेगा हरणकर्त्ता के रुधिर की धार से।
अंग्रेज रुधिर प्रवाह में निज पितृगण तर्पण करूँ।
अंग्रेज सिर सहित भक्ति मैं जननि के अर्पण करूँ।
हो तुष्ट दुःशासन-रुधिर स्नान से यह द्रौपदी।
हो सहस्रबाहु विनाश से यह रेणुका सुख में पगी।
है कठिन अत्याचार का ऋण ब्रिटिश ने हमको दिया।
सह ब्याज उसके उऋण का हमने कठिन प्रण है किया।
मैं अमर हूँ मेरा कभी भी नाश हो सकता नहीं।
है देह नश्वर त्राण इसका हो नहीं सकता कहीं।
होते हमारे मात जग में पद-दलित होगी नहीं।
रहते करोड़ों पुत्र के जननी दुखित होगी नहीं।
उद्धार हो जब देश का इस क्लेश कारागार से।
भयभीत तब होंगे नहीं हम जेल से तलवार से।
रहते हुए तन प्राण रण से मुख न मोड़ेंगे कभी।
कर शक्ति है जब तक न अपने शस्त्र छोड़ेंगे कभी।
परतंत्र होकर स्वर्ग के भी वास की इच्छा नहीं।
स्वाधीन होकर नरक में रहना भला उससे कहीं।

है सुवर्ण पिंजर वास अति दुख पूर्ण सुन्दर कीर को।
वह चाहता स्वच्छन्द विचरण अति विपिन गम्भीर को।
ज़ंजीर की झनकार में शुभ गीत गाते जाएँगे।
तलवार की आघात में निज जय मनाते जाएँगे।
हे ईश भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो।
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।

७

लड़ाई के समय विदेश में भारत के क्रान्तिकारी

बहुत से लोग समझते हैं और कहते फिरते हैं कि क्रान्तिकारियों का संगठन तथा आन्दोलन एक बच्चों का खेल था, किन्तु इस अध्याय से साबित हो जाएगा कि यह बात निर्मूल है । कहीं यह न समझा जाए कि हम क्रान्तिकारियों की तारीफ में अतिशयोक्ति कर रहे हैं, इसलिए हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर जस्टिस रौलट की रिपोर्ट को एक बड़ी हद तक पहले उद्धृत करेंगे । वे लिखते हैं—

बर्नहार्डी ने 'जर्मनी और अगामी महायुद्ध' नामक अपनी पुस्तक में (१९११ के अक्टूबर में छपी थी) जर्मनी की यह आशा व्यक्त की थी कि "बंगाल के हिन्दू, जिनमें स्पष्ट रूप से वे राष्ट्रीय तथा क्रान्तिकारी विचार के हैं, हिन्दुस्तान के मुसलमानों से मिल जायें तो इनके सहयोग से दुनिया में ब्रिटेन की जो धाक और दबदबा है, उसकी नींव हिल जाएगी ।" १९१४ के ६ मार्च को जर्मनी के सुप्रसिद्ध अखबार 'बर्लिनेर टागेब्लाट' ने एक लेख प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'इङ्गलैंड की भारतीय आफत ।' इस लेख में दिखलाया गया था कि भारतवर्ष की स्थिति बड़ी डांवाडोल है, तथा यहाँ गुप्त समितियाँ पनप रही हैं और बाहर से उनको मदद मिल रही है । खास करके इस लेख में यह कहा गया था कि कैलिफोर्निया में एक विराट चेष्टा इस अभिप्राय से हो रही थी कि भारतवर्ष को बमों तथा हथियारों से लैस किया जाए ।

सैनफ्रैंसिस्को षड्यंत्र—१९१७ के २२ नवम्बर को अमेरिका के सैनफ्रैंसिस्को में एक मुकद्दमा चला । इसमें यह बात खुली कि १९११ के पहले हरदयाल ने जर्मन एजेंटों तथा यूरोप के भारतीय क्रान्तिकारियों की मदद से गदर पार्टी के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक बड़ा षड्यंत्र किया था, यह

षड्यंत्र कैलिफोर्निया, ओरिगोन तथा वाशिङ्गटन में फैला हुआ था। इसमें यह प्रचार किया जाता था कि जर्मनी ही इंग्लैंड का विनाश करेगा।

जर्मनी में क्रान्ति के पुजारी—१९१४ के सितम्बर को एक नौजवान तामिल ने जिनका नाम चम्पकरमण पिल्ले था और जो जुरिख में 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रो-इंडिया कमेटी' का सभापति था, जुरिख के जर्मन कौंसल को लिखा कि हम जर्मनी में ब्रिटिश-विरोधी साहित्य के प्रकाशन की अनुमति चाहते हैं। १९१४ अक्टूबर में वे जुरिख छोड़कर बर्लिन चले गए, वहाँ वे जर्मन परराष्ट्र-दफ्तर की देखरेख में काम करने लगे। उन्होंने वहाँ पर जर्मन जेनरल स्टाफ के संयुक्त 'Indian National Party' (भारतीय राष्ट्रीय-दल) नाम से एक दल स्थापित किया, इसके सदस्यों में 'गदर' पत्रिका के संस्थापक हरदयाल, तारकनाथ दास बरकतुल्ला, चन्द्र चक्रवर्ती तथा हेरम्बलाल गुप्त भी थे। आखिर में जिनका नाम लिया गया, अर्थात् चक्रवर्ती और गुप्त सैनफ्रैंसिस्को के जर्मन-भारतीय षड्यंत्र में अभियुक्त थे।

ब्रिटिश विरोधी साहित्य—जर्मनों ने, मालूम होता है, शुरू-शुरू से इस दल के लोगों से केवल इतना ही काम लिया कि वे ब्रिटेन के विरुद्ध भड़कानेवाले साहित्य की सृष्टि करें। इस साहित्य का दिल खोलकर उन-उन जगहों में प्रचार किया गया, जहाँ-जहाँ समझा गया कि इससे ब्रिटेन को नुकसान हो सकता है। बाद को इन लोगों से दूसरे काम लिए जाने लगे। बरकतुल्ला को इसलिए नियुक्त किया गया कि जितने भी हिन्दुस्तानी फौजी आदमी जर्मनों के हाथ में गिरफ्तार हों, उनको ब्रिटिश विरोधी बनाएँ। इस प्रकार आजाद हिन्द फौज की नींव पड़ी। पिल्ले का तो यहाँ तक एतबार किया गया कि जर्मन सेना की गुप्तलिपि तक बता दी गई, इसको फिर उसने १९१६ में आमस्टरडम में एक अपने एजेंट को दिया जो अमेरिका होकर बैंकाक जा रहा था, जहाँ कि वह एक छापाखाना खोलता, जिसमें लड़ाई की खबरें छपतीं और चोरी से श्याम तथा वर्मा की सरहद में फैलाई जातीं। हेरम्बलाल गुप्त कुछ दिनों तक अमेरिका में जर्मनी का एजेन्ट था, और हेर बोहम (Herr Boehm) से यह तय किया था कि वह श्याम में जाए, और वहाँ अपने लोगों को शिक्षा देकर बर्मा पर धावा बोल दे। गुप्त के बाद चक्रवर्ती अमेरिका के एजेन्ट हुए। उसकी

नियुक्ति करते हुए जर्मन परराष्ट्र दफ्तर से उसे यह पत्र दिया गया था—

बर्लिन

४ फरवरी १९१६

जर्मन राजदूत निवास,

वाशिंगटन.

भविष्य में हिन्दुस्तान के मुतल्लिक सब मामले डाक्टर चक्रवर्ती जो कमेटी बनाएँगे, केवल उसी की देख-रेख में होंगे । इस प्रकार वीरेन्द्र सरकार तथा हेरम्बलाल गुप्त, जो इस बीच में जापान से निकाल दिए गए हैं, भारतीय स्वाधीनता कमेटी के प्रतिनिधि नहीं रहे ।

(द०) जिमेरमैन ।

भारतवर्ष में जर्मन योजनाएँ—जर्मन जेनरल स्टाफ की भारत के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट योजनाएँ थीं । इन्हीं योजनाओं के सम्बन्ध में विशेष कर जब तक भारत के गैरमुस्लिम लोगों से ताल्लुक है, हम इस जगह पर आलोचना करेंगे । एक योजना मुसलमानों से ताल्लुक रखनेवाली थी । वह सीमाप्रान्त में सीमित थी । दूसरी योजनाएँ सैनफ्रैंसिस्को की गदर पार्टी तथा बंगाल के क्रान्तिकारी दल के ऊपर निर्भर थी । दोनों योजनाएँ शंघाई के जर्मन कौंसल-जनरल की देख-रेख में थीं, किन्तु इस मामले में वाशिङ्गटन के कौंसल-जनरल ही सबसे बड़े अधिकारी थे । अगस्त १९१५ में फ्रेंच पुलिस ने यह रिपोर्ट दी कि यूरोप स्थित भारतीय क्रान्तिकारियों में आम विश्वास दीख पड़ता है कि थोड़े ही दिन के अन्दर भारतवर्ष में एक प्रबल विद्रोह होगा, और जर्मनी उसमें मदद देगा । बाद को जो कुछ लिखा जाएगा, उससे पता लग जाएगा, कि ऐसी धारणा के लिए क्या-क्या कारण थे ।

नवम्बर १९१४ में पिंगले नामक एक मराठा तथा सतेन्द्र सेन नामक एक बङ्गाली अमेरिका से सालामिस जहाज से आए । पिंगले उत्तर भारत में चले गए, जिससे वहाँ एक विद्रोह का संगठन किया जा सके । सत्येन्द्र १५९, बहूबाजार स्ट्रीट में रहे ।

१९१४ के आखिर में पुलिस को यह खबर मिली कि श्रमजीवी समवाय नाम की एक स्वदेशी कपड़े की दूकान के हिस्सेदार रामचन्द्र मजूमदार और

अमरेन्द्र चटर्जी, जतीन मुकर्जी, अतुल घोष और नरेन भट्टाचार्य एक षड्यंत्र कर रहे थे कि बड़ी तादाद में अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किए जाएँ।

१९१५ के आरम्भ में बङ्गाल के कुछ क्रान्तिकारियों ने यह तय किया कि जर्मनों की तथा अन्य प्रान्तों के तथा श्याम के क्रान्तिकारियों की सहायता से एक भारतव्यापी विद्रोह खड़ा किया जाए। इसके लिए तय हुआ कि धन डकैती द्वारा इकट्ठा किया जाए। तदनुसार गार्डन रीच और वेलियाघाट में डकैतियाँ डाली गईं, इन दोनों से चालीस हजार रु० क्रान्तिकारिओं के हाथ लगे। १२ जनवरी और २२ फरवरी को ये डकैतियाँ की गई थीं। भोलानाथ चटर्जी इस के पहले ही बैंकाक इसलिए भेजे जा चुके थे, ताकि वहाँ के क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध स्थापित करें। जितेन्द्रनाथ लाहिड़ी मार्च के महीने में यूरोप से बम्बई लौटे। उन्होंने भारतीय क्रान्तिकारियों से कहा कि वे बटैविया में एक एजेन्ट भेजें। इस पर एक सभा की गई, जिसके फलस्वरूप नरेन भट्टाचार्य[1] बटैविया भेजे गए, ताकि वे वहाँ के जर्मनों से बातचीत करें। वे अप्रैल में रवाना हो गए। अपना नाम बदलकर उन्होंने सी मार्टिन रक्खा। उसी महीने में एक दूसरे बङ्गाली अवनी मुकर्जी जापान भेजे गए, और इन लोगों के नेता जतीन मुकर्जी बालासोर में जाकर छिप रहे क्योंकि गार्डर रीच और वेलियाघाट डकैतियों के बारे में बड़ी सख्त पड़ताल हो रही थी। उस महीने में मावेरिक नामक जहाज केलिफोर्निया के सैनपेड्रो नामक स्थान से रवाना हुआ।

वैटेविया पहुँचने पर मार्टिन के साथ जर्मन कौंसल थियोडोर हेलफेरिख की जानपहचान कराई गई, जिसने बतलाया कि कराँची के लिए अस्त्रशस्त्रों का एक जहाज रवाना हो गया है, ताकि भारतवासियों को क्रान्ति में मदद दे सके। मार्टिन ने इसपर कहा कि यह जहाज कराँची जाने के बजाए बंगाल जाए। शंघाई के कौंसल जनरल से इजाजत लेने के बाद यह बात मान ली गई। मार्टिन इसके बाद बंगाल लौट आया, क्योंकि सुन्दरबन के राय मंगल नामक जगह पर जहाज को लेना था। कहा जाता है, इस जहाज में सब मिलाकर

---

[1]यहाँ नरेन भट्टाचार्य बाद को एम० एन० राय नाम से मशहूर हुए, स्मरण रहे कि मानवेन्द्र और नरेन्द्र का एक ही अर्थ है।

३०००० राइफलें, हरएक राइफल के लिए चार सौ कार्तूस और २ लाख रुपए थे। इसी बीच में मार्टिन ने हैरी एन्ड संस नाम की कलकत्ते की एक बोगस कम्पनी को तार दिया कि "व्यापार ठीक है।" जून के महीने में हैरी एन्ड सन्स ने मार्टिन को रुपया भेजने के लिए तार दिया, फिर तो हैलफेरिख और हैरी एन्ड सन्स में जून और अगस्त में खूब लेनदेन होती रही। इस प्रकार कोई ४३००० हजार रुपए आए, जिसमें से ३३००० रुपए क्रान्तिकारियों के हाथ लगने के बाद ही पुलिसवालों को पता लगा कि क्या मामला है।

मार्टिन जून के मध्यभाग में हिन्दुस्तान लौट आया, और फिर तो जतीन मुकर्जी, जदूगोपाल मुकर्जी, नरेन्द्र भट्टाचार्य, भोलानाथ चटर्जी और अतुल घोष मावेरिक के माल को उतारने का बन्दोबस्त करने लगे। साथ ही साथ यह भी बन्दोबस्त होने लगा कि इस माल का अधिक से अधिक अच्छा उपयोग किया जाए। यह तय हुआ कि अस्त्र तीन हिस्सों में तकसीम कर दिया जाए (१) हटिया (इससे बंगाल के पूर्वी जिलों का काम चलता है, बरीसाल दल इसको काम में लाते), (२) कलकत्ता, (३) बालासोर।

बंगाल के क्रान्तिकारी समझते थे कि संख्या की दृष्टि से उसके साथ इतने काफी आदमी हैं जो बंगाल की फौजों से समझ ले सकते हैं, किन्तु वे बाहर से आनेवाली फौजों से डरते थे। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर क्रान्तिकारियों ने यह निश्चय किया कि बंगाल में आनेवाली तीन मुख्य रेलों को उनके पुलों को उठाकर बेकार कर दिया जाए। यतीन्द्र के ऊपर मद्रास से आनेवाली रेल का भार दिया गया, वे बालासोर से इस काम को अंजाम देनेवाले थे, भोलानाथ चटर्जी बी० एन० आर० का भार लेकर चक्रधरपुर चले गए; सतीश चक्रवर्ती ई० आई० आर० का पुल उड़ाने के लिए गए। नरेन चौधुरी और फणीन्द्र चक्रवर्ती को यह काम सौंपा गया कि वे हटिया जायँ, जहाँ पर एक जत्था इकट्ठा होनेवाला था। हटिया से वे इस जत्थे की सहायता से पूर्व बंगाल के जिलों पर कब्जा करनेवाले थे, और वहाँ से वे कलकत्ता पर चढ़ आनेवाले थे। नरेन भट्टाचार्य तथा विपिन गांगुली के नेतृत्व में कलकत्ता दल पहले तो कलकत्ते के पास अस्त्र-शस्त्र तथा अस्त्रागारों पर कब्जा करनेवाला था, फिर फोर्ट विलियम पर धावा बोलनेवाला तथा सारे कलकत्ते

पर अधिकार जमानेवाला था । 'मावेरिक' जहाज पर आनेवाले जर्मन अफसरों पर यह भार था कि वे पूर्व बंगाल में रहें, वहाँ फौजें इकट्ठी करें, फिर बाकायदा उन्हें सैनिक शिक्षा दें।

इस बीच में जदूगोपाल मुकर्जी 'मावेरिक' के माल को उतारने का बन्दोबस्त कर रहे थे। कहा जाता है कि रायमगंल के पास के एक जमींदार से इनकी बातचीत हुई थी, जिसके फलस्वरूप उस जमींदार ने यह प्रतिज्ञा की कि माल उतारने के लिए वह आदमी, नावें आदि देगा। 'मावेरिक' रात को पहुँचनेवाला था, जहाज की पहिचान यह होती कि उसमें कुछ लालटेनें कुछ खास तरीके से टँगी हुई होतीं। यह समझा जाता था कि १९१५ की पहली जुलाई तक पहली किश्त अस्त्र बँट जाएँगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अतुल घोष की आज्ञा के अनुसार कुछ आदमी रायमगंल के पास नाव से इस लिए गए थे कि जहाज के माल को उतारने में मदद दें। ये लोग कोई दस दिन तक वहीं आस-पास डेरा डाले पड़े रहे, किन्तु जून के अन्त तक भी 'मावेरिक' नहीं पहुँचा था, न बैटेविया से कोई सन्देश आया, जिससे मालूम होता कि इस प्रकार देर क्यों हो रही है।

इधर तो यह लोग 'मावेरिक' की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे, उधर बैंकाक से एक बङ्गाली ३ जुलाई को यह खबर लेकर आया कि श्याम का जर्मन कौंसल नाव के जरिए रायमङ्गल में पाँच हजार राइफलें, उसके उपयुक्त कार्तूस तथा एक लाख रुपया भेज रहा है। षड्यंत्रकारियों ने इस पर यह सोचा कि जो 'मावेरिक' से माल आनेवाला था और नहीं आया, यह उसकी क्षति पूर्ति है; उन्होंने इस सन्देश लानेवाले को बैटेविया होकर बैंकाक जाने पर राजी किया, ताकि वह हेलफेरिख से कह सके कि पहली योजना त्याग न दी जाए बल्कि दूसरी किश्तें सन्दीप बालासोर तथा गोकर्णी में भेज दी जाएँ। जुलाई में सरकार को रायमङ्गल में अस्त्र उतारने की योजना का पता लग गया। इसके बाद सरकार चौकन्नी हो गई।

७ अगस्त को खबर पाकर पुलिस ने हैरी एण्ड सन्स के दफ्तर वगैरा की तलाशी ली और गिरफ्तारियाँ कीं। १३ अगस्त को षड्यंत्रकारियों की ओर से बैटेविया में हेलफेरिख को होशियार करते हुए एक तार दिया गया। १५ अगस्त

को मार्टिन उर्फ नरेन्द्र भट्टाचार्य और एक दूसरा आदमी हेलफेरिख की परिस्थिति समझाने के लिए रवाना हो गए।

४ सितम्बर को बालासोर के यूनिवर्सल एम्पोरियम की (जो हैरी एण्ड सन्स की शाखा थी) तथा २० मील दूर कपटियपाड़ा नामक एक क्रान्तिकारियों के अड्डे की तलाशी ली गई। यहाँ पर सुन्दरबन का एक मानचित्र तथा पेनांग के एक अखबार की वह कटिंग मिली, जिसमें 'मावेरिक' जहाज की यात्रा के सम्बन्ध में कुछ छपा था। अन्त तक पाँच बङ्गालियों के एक जत्थे को घेर लिया गया, और इनका नेता जतीन मुकर्जी तथा इन्स्पैक्टर सुरेशचन्द्र मुकर्जी के हत्यारे चित्तप्रिय राय चौधरी मारे गए।

इस साल 'मार्टिन' के बारे में और कुछ भी नहीं मालूम हुआ। अन्त तक ऊबकर हेलफेरिख को तार देने के लिए दो षड्यंत्रकारी गोआ गए। २७ दिसम्बर १९१५ को मार्टिन को बैटेविया से एक तार दिया गया जो यों था "How doing, no news, very anxious B.—Chatterton" उसके फलस्वरूप तहकीकात हुई और दो बंगाली पाए गए, एक तो उनमें से भोलानाथ चटर्जी थे। २७ जनवरी १९१६ को भोलानाथ ने आत्महत्या कर ली।

अन्य योजनाएँ—अब हम संक्षेप में 'मावेरिक' तथा 'हेनरी एस' नाम के जहाजों का वर्णन करेंगे। यह दोनों जहाज अमेरिका से पूर्वीय देशों के लिए रवाना हुए थे। 'एस एस मावेरिक' स्टैंडर्ड आयेल कम्पनी का तेल ढोने वाला स्टीमर था, जिसको सैनफ्रैंसिस्को की एक जर्मन कम्पनी एफ० जेकसेन ने खरीदा था। कैलिफोर्निया के सैन पेड्रो नामक जगह से १९१५ के २२ अप्रैल को वह बिना कुछ माल लाए रवाना हुआ। इन पर खलासी आदि सब मिलाकर १५ जहाजों के नौकर थे, इसमें पाँच कथित इरानी थे। उन्होंने अपने को खानसामा बताकर दस्तखत किया था। असल में ये पाँचों व्यक्ति भारतीय थे, जर्मन दूतावास का फोन ब्रिन्केन तथा 'गदर' नामक अखबार में हरदयाल के बाद सर्वेसर्वा रामचन्द्र ने इनको भेजा था। इनमें से एक हरिसिंह पंजाबी के पास बक्सों में बन्द 'गदर' साहित्य था। मावेरिक पहले तो दक्षिण कैलिफोर्निया के सैन जोसे डेल कैब्रो में गया, फिर वहाँ से उसे जावा के अंजेर (Anjer) की आज्ञा मिल गई। वह फिर सोकोररो द्वीप के लिए रवाना हो

गया, जो मेक्सिको से ६० मील पश्चिम में था। यहाँ पर वह 'एनि लारसेन' नामक एक 'Schooner' जहाज से मिलनेवाला था। इस जहाज पर टौशेर नामक एक जर्मन के द्वारा न्यूयार्क में खरीदे हुए अस्त्र-शस्त्र थे, सैन डिगो नामक जहाज पर ये अस्त्र-शस्त्र चढ़ाये गए थे। मावेरिक के कप्तान को यह आज्ञा थी कि राइफलों को एक खाली तेल की टंकी में भर दे, फिर ऊपर से उसको तेल से भर दे, और दूसरी टंकी में गोली वगैरा भर ले, और जरूरत पड़े तो जहाज को डुबा दे। इत्तिफाक ऐसा हुआ कि ऐनिलारसेन से मावेरिक की भेंट नहीं हुई; और कुछ दिन इन्तजार करने के बाद मावेरिक होनोलूलू होते हुए जावा रवाना हो गया। जावा में डच सरकार की ओर से उसकी तलाशी हुई, वह खाली पाया गया। ऐनी लारसेन घूमते-घामते सन् १५ के जून के अन्त तक वाशिंग्टन के होकियाम स्थान में पहुँचा, जहाँ अमेरिकन सरकार ने इस सारे सामान को जब्त कर लिया। वाशिंगटन स्थित जर्मन राजदूत कौन्ट लर्नसडोर्फ ने अमेरिकन सरकार से कहा कि यह माल जर्मन राष्ट्र का है, किन्तु अमेरिकन सरकार ने यह बात नहीं मानी।

हेलफेरिख ने वैटेविया में ठहरे हुए मावेरिक के खलासियों की खबरदारी की, ताकि उनको कोई नुकसान नहीं पहुँचे, फिर उसी जहाज में उन्हें अमेरिका वापस भेज दिया। अब की बार इसमें हरिसिंह के बजाय 'मार्टिन' (एम० एन० राय) गए, इस प्रकार मार्टिन अमेरिका भाग गए। अमेरिका पहुँचने पर वह अमेरिकन सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए।

हेनरी० एस०—एक दूसरा जहाज 'हेनरी० एस०' भी इसी प्रकार जर्मन भारतीय षड्यंत्र के सिलसले में लगा था। वह मैनिला से शंघाई के लिए रवाना हुआ, किन्तु चुँगीवालों ने इसका पता पा लिया कि मामला यों है। बस उन्होंने जहाज की रवानगी के पहले उसका सब माल उतरवा लिया। जब ऐसा हुआ तो वह बजाय शंगाई के पोन्टिआनाक रवाना हुआ। इत्तफाक ऐसा हुआ कि रास्ते में उसका मोटर बिगड़ गया और उसे सेलिविल के एक बन्दरगाह में ठहरना पड़ा। उस जहाज पर दो जर्मन अमेरिकान थे, एक वेडे (Wehde) और दूसरा बोएम (Boehm)। मालूम होता है कि इनकी योजना कुछ ऐसी थी कि जहाज बैंकाक जाता, और कुछ अस्त्र-शस्त्र उतार देता, जो स्याम बर्मा

के सीमान्त में पाकोह सुरङ्ग में छिपा दिए जाते, और बोएम का यह काम था कि वह सरहद पर हिन्दुस्तानियों को फौजी शिक्षा देता, ताकि वे बर्मा पर हमला के लिए प्रस्तुत हों। बोएम बैटेविया से आते हुए सिंगापुर में गिरफ्तार हुआ, सेलिबिल से वह बैटेविया गया था। वह चिकागो स्थित हेरम्बलाल गुप्त की आज्ञा के अनुसार मैनिला में 'हेनरी० एस' पर सवार हुआ था, इसके अतिरिक्त इन्हें मैनिला के जर्मन कौंसल से यह आज्ञा मिली थी कि वे बैंकाक में ५०० रिवालवर उतारें और ५००० में से बाकी चटगाँव भेज दिया गया। यह बतलाया गया था कि इन रिवालवरों में राइफल का कुन्दा है, इससे जान पड़ता है कि वे मौजेर की तरह थे।

इस बात को विश्वास करने के लिए कारण है कि जब 'मावेरिक' की योजना असफल हो गई, तब शंघाई से कौंसल-जनरल ने अस्त्र-शस्त्रों के साथ दो और जहाजों को बंगाल की खाड़ी में भेजने का प्रबन्ध किया, एक रायमंगल दूसरा बालासोर में। एक पर ३०००० राइफलें ८० लाख कार्तूस, २००० पिस्तौल, हाथवाले बम, विस्फोटक और दो लाख रुपया ले जानेवाला था, दूसरे में १०००० राइफलें, दस लाख कार्तूस, बम आदि जानेवाला था। 'मार्टिन' ने बैटेविया के जर्मन कौंसल को बताया कि अब रायमंगल में कोई जहाज उतारना ठीक नहीं होगा, इसके बजाय हटिया में ही उतारना ठीक होगा। इस स्थान परिवर्तन के सम्बन्ध में हेलफेरिख के साथ राय के बाद यह योजना बनाई गई--

तय हुआ कि हटिया के लिए जहाज सीधा शंघाई से आएगा। बालासोर के लिए जहाज जानेवाला था वह एक जर्मन स्टीमर था जो एक डच बन्दरगाह में था और जो कि बीच समुद्र में अस्त्र-शस्त्र लादनेवाला था। एक तीसरा स्टीमर जो एक प्रकार से लड़ाई का जहाज था, अस्त्र-शस्त्र लेकर अन्डमान जानेवाला था, वहाँ वह पोर्ट ब्लेयर पर हमला करता, सब अराजकवादियों, कैदियों तथा सिङ्गापुर रेजिमेंट के विद्रोहियों को छुड़ाता और उन्हें लेकर रंगून जाता और उस पर हमला बोल देता। बंगाल में षड्यंत्रकारियों को मदद देने के लिए एक चीनी ६१००० गिल्डर[१] तथा एक पत्र ले

[१] एक प्रकार की मुद्रा।

कर पेनाँग में एक बंगाली को देनेवाला था । यदि ये न मिलते तो वह कलकत्ता के दो पते में से किसी पते पर जाकर यह धन तथा पत्र देता । यह पत्र तथा धन अपनी जगह पर नहीं पहुँचा सका क्योंकि यह रास्ते में ही धन के साथ गिरफ्तार हो गया।

इसके साथ ही वह बंगाली जो 'मार्टिन' के साथ बटैविया गए थे, शंघाई में वहाँ के जर्मन राजदूत से बातचीत करने के लिए भेजे गए थे, इसके बाद वह हटियावाले जहाज से लौटनेवाले थे । काफी कठिनाई से वह शंघाई पहुँचे और वहीं गिरफ्तार हो गए।

इस बीच में जतीन मुकर्जी की मृत्यु के बाद कलकत्ता से षड्यंत्रकारी चन्दनगर में जाकर छिप रहे। शंघाई के बंगाली की गिरफ्तारी के बाद, मालूम होता है, जर्मनों ने बंगाल की खाड़ी में हथियार पहुँचाने की योजना छोड़ दी।

वेवेडे बोएम और हेरम्बलाल गुप्त पर चिकागो में सरकार की ओर से मुकदमा चला और उनको सजा हुई। नवम्बर १९१७ में सैनफ्रैंसिस्को मुकदमा चला, इसमें भी लोगों को सजाएँ हुईं।

शंघाई में गिरफ्तारियाँ—अक्टूबर १९१५ में शंघाई की म्युनिसिपल पुलिस ने २ चीनियों को गिरफ्तार किया, इनके पास १२९ ऑटोमैटिक पिस्तौल तथा २९८३० गोलियाँ निकलीं। ये चीजें उनको नीलसेन नामक एक जर्मन ने दी थीं, ये लोग इसे जहाज के तख्ते के नीचे छिपा कर ले जानेवाले थे। जिस पते पर वे यह सारा माल पहुँचानेवाले थे, वह था अमरेन्द्र चटर्जी, श्रमजीवी समवाय कलकत्ता। अमरेन्द्र उन षड्यंत्रकारियों में से थे जो चन्दननगर भाग चुके थे।

नीलसेन का पता ३२, याँगट्सिपू रोड, जो इन चीनियों के मुकदमे में आया था, अवनी के रोजनामचे में मिला ; अवनी क्रान्तिकारी समिति की ओर से जापान भेजे गए थे। जब वे जापान से देश की ओर लौट रहे थे, तभी सिंगापुर में गिरफ्तार हुए थे, यह विश्वास करने के लिए कारण है कि या तो यह या दूसरी इसी किस्म की योजनाएँ रासबिहारी वसु की सलाह से बनी थी। रासबिहारी इन दिनों नीलसेन के मकान में ही टिके थे। रासबिहारी जिन पिस्तौलों को भारतवर्ष भेजना चाहते थे, वे माई ताह औषधालय, चाओं तुङ रोड पर एक चीनी द्वारा पाए गए थे, नीलसेन के पतों में यह एक पता था। एक दूसरे

क्रान्तिकारी जो उस मकान में रहते थे, उनका नाम था अविनाश राय। यह महाशय शंघाई के जर्मन भारतीय षड्यंत्रों में लिप्त थे, जिसका उद्देश्य चोरी से भारतवर्ष में अस्त्र-शस्त्र भेजना था, इन्होंने अवनी के जरिये चन्दननगर में मोतीलाल राय को एक सन्देश भेजा था जिसमें यह कहा गया था कि सब ठीक है और कोई योजना ऐसी निकाली जाए, जिससे अविनाश राय भारत में निर्विघ्न पहुँच जायँ। अवनी के नोटबुक में मोतीलालराय के अलावा चन्दननगर, कलकत्ता, ढाका और कौमिला के कुछ जाने हुए क्रान्तिकारियों का पता निकला। और चीजों के साथ उस नोटबुक में श्याम केप कोह नामक स्थान के निवासी अमरसिंह इंजीनियर का पता निकला। हेनरी एस० नामक जहाज से कुछ अस्त्र-शस्त्र उतारे जाने थे। अमरसिंह को बाद में माँडले षड्यंत्र में फाँसी की सजा दे दी गई।

इतना लिखने के बाद रौलट साहब लिखते हैं, "जर्मनों के इन सारे षड्यंत्रों से यह पता चलता है कि क्रान्तिकारीगण बड़ी आशायें रखते थे, किन्तु जर्मन लोग उस आन्दोलन की रूप-रेखा से बिलकुल अपरिचित थे, जिसको वे उपयोग में लाना चाहते थे।"

सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट गलत—१६१५-१८ के युग में भारत के बाहर क्रान्तिकारी षड्यंत्र के विषय में जो विवरण दिया गया, उसे भारतीय बर्लिन कमेटी के उन दिनों के मंत्री, स्वामी विवेकानन्द के अनुज डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त ने 'भूत के बाप का श्राद्ध' या 'कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा,' बताया है। उनका कहना है—"इस रिपोर्ट के पढ़ने से मालूम होता है कि अंग्रेज गुप्तचरों को सारी खबरें नहीं मिलीं और जो खबरें मिलीं, वह भी असम्पूर्ण थीं। उन्होंने कई बार गलत खबरें पाईं और दीं। इस रिपोर्ट में किसी किसी व्यक्ति को प्रधान क्रान्तिकारी (राष्ट्रीय या पैनइस्लामिक) नेता करके बताया गया है, पर दूसरी सरकारों की गुप्त पुलिस ने उन्हें अंग्रेजों का गुप्तचर कहकर ही सन्देह किया है। इसके अलावा कई खबरें इस तरह गलत ढंग से पेश की गई हैं कि वे ऐतिहासिक सत्य के बिलकुल विरुद्ध पड़ती हैं।"

अमेरिका में क्रान्तिप्रयास पर डा० खानखोजे—इसलिए अब हम इस सम्बन्ध में स्वयं मशहूर क्रान्तिकारियों द्वारा लिखे हुए ब्योरे पाठकों के सामने

पेश करेंगे। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी पांडुरंग खानखोजे ने अमेरिका में हुए क्रान्तिकारी कार्य के सम्बन्ध में जो ब्योरा लिखकर डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त को दिया था, उसकी मोटी-मोटी बातों को हम उद्धृत करते हैं—

"लगभग १९०७ के प्रारम्भ में अमेरिका के कैलिफोर्निया में जो भारतीय छात्र थे, उनमें से खगेन्द्रचन्द्र दास, पांडुरंग खानखोजे, तारकनाथदास, अधरचंद्र लसगर आदि ने मिलकर भारतीय स्वाधीनता संघ की स्थापना की। उनका एकमात्र कार्य था अमेरिका में आकर बसनेवाले सिखों में प्रचार करना। सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए खानखोजे और लसगर माउंट कामाल पईरू मिलिटरी अकेदमी में भरती हो गए।"

अब डा० खानखोजे के शब्दों में ही सुनिए—"हम लोग वहाँ मेज पर खाना पहुँचानेवाले खानसामों का काम करते थे। इसी ढंग से हम वहाँ प्रवेश करने में समर्थ हुए। हमारे संघ और सिखों के सहयोग से रावलपिंडी क्रान्तिकारी घोषणा-पत्रों का एक बंडल लाला पिंडीदास को भेजा गया। इसके फलस्वरूप १९०७ में लालाजी पर मामला चला और उन्हें सात साल की कड़ी सजा हुई।

"१९०८ में कैलिफोर्निया के सैक्रामेंटो और आरगिल स्टेटों से पोर्टलेंड नामक स्थान में भी संघ का केन्द्र स्थापित किया गया। इसके बाद कैनेडा में भी क्रान्तिकारी प्रचार शुरू किया गया। १९११-१२ में विख्यात कामा गोटा मारू जहाज ब्रिटिश कोलम्बिया के वैनकूवर में पहुँचा। कैनेडा के इमिग्रेशन कानून के अनुसार भारतीयों को ब्रिटिश प्रजा के रूप में कैनेडा में प्रवेश करने दिया जाएगा या नहीं, इसी की परीक्षा करने के लिए इस जहाज को लिया गया था। सिख लोग कैनेडा आना चाहते थे और क्रान्तिकारियों का अपने साथ सम्पर्क रहने के कारण उन्हें अमेरिका लाना चाहते थे। पर उन्हें उतरने नहीं दिया गया। अन्त तक इस जहाज के सिखों को कलकत्ता के पास बजबज में उतार दिया गया। युवक करतारसिंह इन दिनों एक विशेष कार्यकर्त्ता थे। उन्हें जहाज से यह समाचार मिला था कि सिख लोग जबरदस्ती करके भी तट पर उतरना चाहते हैं पर सरकार ने उसमें बाधा पहुँचाई और कैनेडा के युद्धपोत ने इस जहाज को बंदरगाह से समुद्र में भगा दिया। उन्हीं दिनों उनपर पीने के पानी

का भी कष्ट पड़ा।"

हम इस ग्रंथ में पहले ही गदर पार्टी के सम्बन्ध में कुछ प्रामाणिक ब्योरा दे चुके हैं, पर डा० खानखोजे के बयान में जो अतिरिक्त सूचनाएँ हैं, उन्हें हम उन्हीं के शब्दों में उद्धृत करते हैं—"१६१० में पोर्टलैंड ही केन्द्र बना और वहाँ से साइक्लोस्टाइल की हुई पुस्तकें इधर-उधर भेजी जातीं थीं। यहाँ के वास्ताविक नेता काशीराम थे। इन्हीं दिनों सोहन सिंह ग्रंथी इसके सदस्य बने। १६११-१२ में यह दल बहुत शक्तिशाली हो चुका था। १६१३ में लाला हरदयाल और भाई परमानन्द कैलिफोर्निया आए। परमानन्द दल में शामिल नहीं हुए, पर हरदयाल शामिल हुए और उन्होंने सलाह दी कि दल का नाम बदल कर गदर पार्टी कर दिया जाए। गदर पार्टी के दो विभाग थे—एक प्रचार विभाग और एक 'प्रहारक' विभाग। हरदयाल प्रहारक विभाग के मंत्री बनाए गए और मैं प्रहारक विभाग का मंत्री बनाया गया। इन्हीं दिनों हमें एक मुसलमान कार्यकर्त्ता की जरूरत महसूस हुई। तदनुसार हमने जापान के टोकियो से अध्यापक बरकतुल्ला को अमेरिका लौट आने का सन्देश भेजा। १६१४ में वे अमेरिका आए और इन्हीं दिनों पं० रामचन्द्र सेनफ्रैंसिस्को आकर गदर पार्टी के सदस्य बन गए। पिंगले नामक युवक महाराष्ट्रीय गुप्त समिति के सदस्य थे और वे मेरे नाम से अमेरिका में एक पत्र ले आए थे। इन्हीं दिनों सत्येन्द्रनाथ सेन भी इस दल में शामिल हो गए। १६०६-१० में तारकनाथ दास वार्मोंट मिलिटरी विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे और बाद को पश्चिम अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में भरती हुए। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें उस विश्वविद्यालय से निकलवा दिया।

डॉ० खानखोजे के वक्तव्य से मालूम होता है कि गदर पत्रिका उर्दू, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी आदि भाषाओं में छपती थी। इसका एक अंग्रेजी संस्करण भी निकलता था, पर यह नियम से प्रकाशित नहीं होती थी। प्रहारक विभाग में सैनिक कवायद, बम बनाने, पिस्तौल, बन्दूक आदि चलाने तथा युद्धविद्या की शिक्षा दी जाती थी। बम बनाने के परीक्षण के उपलक्ष्य में हरनाथ सिंह नामक क्रान्तिकारी का हाथ कोहनी तक उड़ गया था, पर पार्टी ने इस घटना को विशेष रूप से गुप्त रखा। हरदयाल के अमेरिका से चले जाने के बाद, बरकतुल्ला,

रामचन्द्र और काशीराम प्रचार विभाग के नेता बने । पंडित काशीराम कांट्रेक्टर थे और उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में तन, मन, धन लगा दिया । मैं मिनिसोटा विश्वविद्यालय में डाक्टरेट के लिए तैयारी कर रहा था, तब मुझे पार्टी की तरफ से आदेश मिला कि मैं फौरन एक विशेष कार्य के लिए कैलिफोर्निया पहुँचूं । तब तक महायुद्ध नहीं छिड़ा था । इसलिए हम लोगों की योजना थी कि अमेरिका के भारतीय खेतिहरों में मैजिक लेन्टर्न के द्वारा प्रचार किया जाए । इन दिनों अमेरिका के पश्चिमी हिस्से में कई सौ भारतीय रहते थे, जिनमें से बहुत से सैनिक रह चुके थे । यह १९१४ की बात है । मुझे आदेश दिया गया कि मैं उक्त योजना के अनुसार भारत लौटूं । पंजाबी बिशनदास कोछा मेरे साथ चलें । वे इलैक्ट्रिक इंजीनियरिंग के स्नातक थे और मेरे साथ शिकागो से न्यूयार्क पहुँचे । हम लोग वहाँ से भारत के लिए रवाना हुए । यहाँ बता दिया जाए कि अंग्रेजों द्वारा उड़ाई गई यह खबर बिलकुल झूठी थी, कि जर्मन सेनापति बर्नहार्डी ने गदर पार्टी के लोगों को यह बताया था कि जर्मनी के साथ इंग्लैंड की लड़ाई जल्दी होगी ।

"न्यूयार्क में श्री अगासे उर्फ मोहम्मद अली मुझ से मिले और हम लोग पूर्व की ओर रवाना हुए । अगासे महाराष्ट्रीय गुप्त समिति के सदस्य थे और युद्धविद्या सीखने के लिए ईरान भेजे गए थे। वे १९१९ में भी मोहम्मद अली के नाम से सैनिक अफसर के रूप में नौकरी कर रहे थे ।"

"गदर पार्टी के बाद का काम बर्लिन की भारतीय कमेटी के साथ मिलकर चलता रहा । गदर पार्टी को बर्लिन कमेटी से आर्थिक सहायता मिलती थी । युद्ध के बाद इस पार्टी का पुनर्गठन हुआ और उस समय उसके बहुत से विभाग थे। इन दिनों तक अधिकांश अमेरिका, कैनेडा में बसनेवाले भारतीयों के भारत लौट चुकने के बाद पार्टी का जनबल और अर्थबल दोनों कम था । एक खेतिहर युवक संतोखसिंह ने अपना सारा धन देकर पार्टी में काम करना शुरू किया । वे पार्टी के मंत्री बने । इन्हीं दिनों सुरेन्द्रनाथ कर इस पार्टी के एक विभाग के नेताओं में चुने गए । सुरेन्द्रनाथ कर भारतीय क्रान्तिकारी के रूप में जेल भेजे गए ।"

अमेरिका से हम लोग एक ग्रीक जहाज पर ग्रीस के बंदरगाह पिरेउस में

पहुँचे। वहाँ से बिशनदास सिनेमा-यंत्र तथा दूसरी चीजों के साथ भारत भेजे गए। पर भारत पहुँचते ही गिरफ्तार करके नजरबन्द कर लिए गए। इस समय वे मध्य भारत में एक चावल मिल के मालिक हैं।

"इसके बाद मैं और मोहम्मद अली तुर्की के स्मर्ना में और उसके बाद कुस्तुनतुनिया पहुँचे। वहाँ हम अब सैयद (भूपेन्द्रनाथ दत्त के अनुसार ये एक पंजाबी थे, जिन्हें अनवरपाशा ने त्रिपोली से लाकर एक वृत्ति देकर 'जहाने इस्लाम' नामक अरबी भाषा की एक पत्रिका प्रकाशित करने का भार सौंपा था) और प्रमथनाथ दत्त (दाऊद अली नाम से) अनवरपाशा और तलातपाशा से मिले। हम लोगों ने अनवरपाशा और तलातपाशा से कहा—हम भूतपूर्व सैनिकों से बनी हुई गदर पार्टी के सदस्य हैं। मैं इस पार्टी के सैनिक संचालक के रूप में सूचित करता हूँ कि हम इसे महामारा या बसरा में लाना चाहते हैं और हम इस दल के साथ भारत पर आक्रमण करने की व्यवस्था करेंगे।

"दूतावास अभी तक तुर्की युद्ध से अलग था, पर हम लोग वहाँ के जर्मन दूतावास के जरिए इन पाशाओं से मिले थे। पाशाओं ने हमारी योजना स्वीकार कर ली। हम लोगों ने वहाँ से गदरपार्टी को एक घोषणा-पत्र द्वारा खबर भेज दी कि रास्ता साफ है। अब सेना भेजो। इस घोषणा-पत्र का शीर्षक था—गदर के सिपाहियों को नोटिस। यह तुर्की और जर्मन सरकारी दफ्तरों के द्वारा कैलिफोर्निया भेजा गया। इसके बाद मैं, प्रमथ दत्त और आगा से एक साथ कुस्तुनतुनिया से एलेक्ज़ेड्रिया पहुँचे। इस समय तक तुर्की ने युद्ध घोषणा कर दी थी, जिस पर अंग्रेजों ने इस नगर पर बम वर्षा की। इसलिए वहाँ से हम अलप्पो पहुँचे। इसके बाद हम कारवां के साथ बगदाद पहुँचे। इन दिनों जर्मनों ने एक अभियानकारी टुकड़ी तैयार की, जिसका उद्देश्य क्रान्तिकारी प्रचार और भारतीय क्रान्तिकारियों को सहायता पहुँचाना था। बगदाद में हम लोगों ने ईरानी सीमान्त की ओर जाने के लिए एक बड़ी टुकड़ी तैयार की और अपनी प्रचार पुस्तिकाएँ बाँटते रहे। इन्हीं दिनों प्रचार पुस्तिकाएँ लेकर ईरान के बुहारा नगर में पहुँचे। वहाँ अंग्रेजों ने हमारी टुकड़ी को पकड़ने की चेष्टा की, जिस पर हम फिर सीराज भाग गए। वहाँ हमें सूफी अम्बा प्रसाद मिले, जो वहाँ सूफी साहब के नाम से परिचित थे और एक

ईरानी विद्यालय के प्रधान के रूप में थे । हम लोगों ने वहाँ गदरपार्टी के प्रतिनिधि के रूप में उनकी नियुक्ति का स्वागत किया । इसके बाद हम हरीज और किरमान की तरफ बढ़े और यहीं हमने आंतिम टुकड़ी बनाई । इस टुकड़ी में ईरानी और भारतीय दोनों थे । जिन लोगों को ईरानी डेमोक्रेटिक पार्टी के कारण भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति सहानुभूति थी, उनकी सहायता से हमने भारतीयों के प्रति सहानुभूति रखनेवाले ईरानियों की पलटन में ले लिया । केरसास्प आने पर हमें स्पष्ट रूप से बर्लिन की भारतीय कमेटी का समाचार मिला । वहाँ बर्लिन कमेटी के सदस्य केरसास्प के साथ हमारी मुलाकात हुई थी । केरसास्प के किरमान से चले जाने के बाद हमें फिर उनकी कोई नहीं खबर मिली ।"

केरसास्प के सम्वन्ध में डा० दत्त ने यह लिखा है केरसास्प जर्मनी में इंजीनियरिंग पढ़ने गये और वहींथे बर्लिन कमेटी से सदस्य बने थे । वह बर्लिन कमेटी की तरफ से ही क्रान्तिकारी कार्य के लिए ईरान भेजे गए थे । इन्होंने शीराज में कौंसल के घर पर आक्रमण करने में जर्मनों की सहायता की थी । वाद को केरसास्प और बसन्तसिंह राजा महेन्द्रप्रताप की खोज में काबुल पहुँचे । बसन्तसिंह भी गदरपार्टी के सदस्य थे और बर्लिन कमेटी के द्वारा ही ईरान भेजे गए थे । आफगान सीमा पार करके ईरान में कदम रखते ही अंग्रेजों ने उन्हें पकड़ लिया और दूसरे भारतीयों के साथ उन्हें गोली से उड़ा दिया ।

अब हम फिर डा० खानखोजे का वक्तव्य उद्धृत करते हैं—"हम लोगों ने प्रमथ को यह पता लगाने के लिए भेजा कि किस तरह अफगानिस्तान और बलूचिस्तात की सीमा का आविष्कार हो सकता है । रास्ते में वे अंग्रेजों की गोली से घायल हुए । उनके पैर में गोली लगी । इसके बाद हमारा दल दो भागों में बँट गया । प्रमथ और आगासे किरमान में रह गए और मैं बाम में पहुँच कर बलूचियों को संगठित करने लगा । एक बलूची कबीले के सरदार जिहान खाँ हम लोगों से मिल गए और हम लोगों ने मिलकर सीमावाले इलाके पर आक्रमण किया और वहाँ अस्थाई सरकार बनाई गई । जिहान खाँ वहाँ हमारे प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त हुए । इन्हीं दिनों टुर्की के सुलतान ने जो जिहाद फतवा दिया, वह हमें मिला । इसे लेकर हम लोग ईरान बलूचिस्तान के

अमीर से मिले। वे सुन्नी थे और कहने लगे कि अस्त्र-शस्त्र मिलना चाहिए। यह खबर अंग्रेजों को लगी और उन्होंने घूस देकर अमीर को मिला लिया और फिर अमीर ने भारतीयों पर हमला बोल दिया। मैं भाग निकला, पर एक हजार बलूचियों की सुसंगठित सेना बिखर गई।"

मैं फिर बाम में लौट गया और वहाँ खबर मिली कि प्रमथ, आगासे और उनके साथ कुछ जर्मन लड़ाई में हार कर बस्त नामक स्थान में पहुँचे हैं। मैं अपनी टुकड़ी के बाकी लोगों को लेकर बस्त पहुँचा। पर अंग्रेज सैनिकों ने हमें घेर लिया। दिन भर लड़ाई चलती रही मैं घायल होकर युद्ध बन्दी बन गया। वहाँ हमें मालूम हुआ कि प्रमथ आगासे इत्यादि शीराज लौट गए हैं। फिर मैं भी भाग निकला।

एक दरवेश मुझे नेपरिज़ ले गया। वहाँ जाकर मालूम हुआ कि स्थानीय राजधानी अंग्रेजों के अधिकार में जा चुकी है और प्रमथ, आगासे तथा उनके साथी जर्मन कैद हो गए है। मैंने उनके भागने का प्रबन्ध किया। उसके बाद हम तीन भारतीय शीराज पहुँचे। यह १६१६ की बात है। इन्हीं दिनों अंग्रेजों ने सूफी अम्बा प्रसाद की हत्या की। इसके बाद मैं ईरानी सेना में शामिल होकर १६१६ तक अंग्रेजों के खिलाफ लड़ता रहा। पर ईरानी सेना ने १६१६ में अंग्रेजों को आत्म-समर्पण कर दिया, पर अब की बार भी मैं भाग निकलने में सफल रहा।

मैं १६१६ में गुप्त रूप से बम्बई आ गया और मैंने तिलक तथा दूसरे क्रान्तिकारियों के साथ भेंट की, पर उनमें से कोई भी हमें आश्रय नहीं दे पाए, इसलिए मजबूर होकर मैं यूरोप आ गया। मैं फ्रांस से होकर जर्मनी पहुँचा। वहाँ भूपेन्द्र नाथ दत्त के साथ फिर मेरी भेंट हुई और बर्लिन कमेटी के भूत-पूर्व कार्यकर्त्ताओं के साथ भी बातचीत हुई। जिन दिनों मैं भारत में छिपकर आया था, उन दिनों तिलक महोदय ने मुझे रूस जाने की सलाह दी थी क्योंकि शायद कोई मदद मिले। मैं १६१६ में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भुपेन्द्रनाथ दत्त आदि के साथ मास्को पहुँचा और वहाँ तीन महीने रहा। वहाँ हमने यह चेष्टा की कि रूस के वैदेशिक निभाग की सहायता से प्रमथनाथ का ईरान से उद्धार किया जाए। प्रमथ ईरान के एक कबीले में छिपे हुए थे।

जिस दिन मैं, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय और एग्नेस स्मेडले मास्को से चले, प्रमथ उसी दिन वहाँ पहुँचे । इस समय वे लेनिनग्राड विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग में अध्यापक हैं । उन्होंने नहीं शादी कर ली है और ईगर दत्त नाम से उनका एक पुत्र भी है । मैंने बर्लिन में लौटकर वीन्रेद्रनाथ और भूपेन्द्रनाथ के सहयोग से प्रवास में आए भारतीय छात्रों की सहायता के लिए इंडियन न्यूज़ एण्ड इन्फरमेशन ब्यूरो नाम से एक संस्था कायम की । बाद को १६२४ में मैं मेक्सिको गया । श्री हेरम्बलाल गुप्त जो अमेरिका से बर्लिन आए थे और हम लोगों के साथ मास्को गए थे, मेरे से पहले ही मेक्सिको पहुँच गये थे । अमेरिका के लड़ाई में शामिल हो जाने के कारण बहुत से क्रान्तिकारी मेक्सिको भाग गए थे और वहीं पर हमारा केन्द्र बन गया था । मैं मेक्सिको में कृषि-विज्ञान का अध्यापक नियुक्त हुआ । मेरे पिता बहुत बीमार हैं, यह सुनकर मैंने ब्रिटिश सरकार को एक आवेदन पत्र भेजा कि मुझे भारत लौटने दिया जाए, पर यह नामंजूर कर दिया गया । अन्त में १६४६ में भारत स्वतन्त्र होने पर मध्य भारत सरकार ने मुझे भारत बुलाने की व्यवस्था की ।

आज आजाद हिन्द फौज ने जो नारा 'जयहिन्द' का दिया था, वह विशेष जनप्रिय हो गया है, पर इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि ईरान और दूसरे स्थानों पर गदर दल के सैनिक निम्नलिखित गीत गाकर युद्ध यात्रा करते थे । उसमें 'जयहिन्द' शब्द आया है—

जय जय जय जी हिन्द
तोपों बन्दूक हथियारों से
आज़ाद करो जी हिन्द
हिन्द हमारी जान है
और हिन्द हमार प्राण
भगत बने हम हिन्द के
और हिन्द के कुरबान

दस्तख़त—पांडुरंग खानखोजे, कलकत्ता, ७ जून १६४६.

१६१४ में जब प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ, उन दिनों विदेशों में रहनेवाले कुछ भारतीय एक हद तक क्रान्तिकारी कार्यों के लिए तैयार थे । अमेरिका में

गए हुए कुछ क्रान्तिकारी वहाँ के जर्मन राजदूत से मिले और उनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि भारतीयों की एक स्वयंसेवक सेना बनाई जाए और उसे जर्मनी भेजा जाए। क्रान्तिकारियों ने यह कहा कि सेना, डाक्टर और एम्बुलेंस देना तो भारतीयों के जिम्मे रहेगा, बाकी जर्मन सरकार को करना पड़ेगा। जिन लोगों ने जर्मन सरकार के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा था, उनमें डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त और डा० खानचन्द वर्मा भी थे। यहाँ यह बता दिया जाए कि उस समय तक गोरी जातियों में यह संस्कार अभी अवशिष्ट रह गया था कि गोरों के विरुद्ध लड़ने के लिए गोरे ही नियुक्त किए जाएं, पर भारतीय क्रान्तिकारियों को यह पता लग चुका था कि अब की बार इस संस्कार को तिलांजलि दे दी जाएगी। भारतीय यह समझते थे कि अंग्रेज अवश्य ही इस युद्ध में भारतीय सेना भेजेंगे और संसार के सामने यह प्रमाणित करने की चेष्टा करेंगे कि भारतीय बड़े अंग्रेज भक्त हैं। इसीलिए विशेषकर यह प्रस्ताव जर्मन सरकार के सामने रखा गया।

हम मुख्यतः विदेशों में भारतीय क्रान्तिकारियों के कार्य वाला अध्याय डा० दत्त की पुस्तकों और लेखों पर आधारित कर रहे हैं। कहीं-कहीं हमने अक्षरशः उन्हीं का वर्णन अपनाया है और कहीं उसे संक्षिप्त किया है।

जर्मन राजदूत ने इस प्रस्ताव को जर्मनी में भेज दिया। केलीफोर्निया के गदर दल के नेता रामचन्द्र को यह खबर भेजी गई कि गदर दल के सिखों में स्वयंसेवक भर्ती किए जाएँ। यह तय हुआ कि डाक्टर तथा एम्बुलेंस के लिए छात्रों से स्वयंसेवक भर्ती किए जाएँ। पर रामचन्द्र ने यह जवाब दिया कि यूरोप में स्वयंसेवक भेजने से कोई लाभ नहीं। वहाँ तो गोरों के विरुद्ध गोरे लड़ेंगे। काले सिपाहियों को काले सिपाहियों के विरुद्ध लड़ना चाहिए। सब लोग देश में लौट जाएँ। वहीं उनका असली काम है।

"रामचन्द्र अमेरिका से भारतीयों को भारत में क्रान्ति करने के लिए भेज रहे थे। दत्त और वर्मा ने जर्मन राजदूत के सामने जो प्रस्ताव रखा था, रामचन्द्र ने उसे जरूरी नहीं समझा। प्रस्ताव वहीं पर रह गया। इसके कुछ दिन बाद जर्मनीस्थित भारतीय क्रान्तिकारी वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने 'जापान एशिया का शत्रु' नाम से एक पुस्तिका प्रकाशित की। इस पुस्तिका की तरफ

जर्मन सरकार का ध्यान गया और जर्मन वैदेशिक विभाग के दफ्तर में वीरेन्द्र बुलाए गए । अब तक जर्मनी के वैदेशिक विभाग दफ्तर में यह विचार प्रबल था कि भारतीय निकम्मे हैं, पर अब कई कारणों से जर्मनों का ध्यान भारत की ओर गया । रौलट कमीशन की रिपोर्ट में यह दिखाया गया है कि कोमा गाटा मारू जहाज की तैयारी जर्मनों की मदद से हुई थी और जर्मन सेनापति बर्नहार्डी ने अमेरिका की गदर पार्टी के नेताओं के साथ मिलकर आगामी महायुद्ध का आभास दिया था । पर यह सम्पूर्ण रूप से झूठी बात है । बर्लिन कमेटी की स्थापना के पहले भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ जर्मन सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं था । कोमा गाटा मारू को अमेरिका ले जाने का उद्देश्य कनाडा के इमिग्रेशन कानून का परीक्षण करना ही था ।"

क्या भारतीय क्रान्तिकारियों ने जर्मनों को विना किसी शर्त के सहायता देना स्वीकार किया था ? इसके उत्तर में यह समझा जाता था कि (१) क्रान्तिकारी स्वतंत्रता संग्राम चलाने के लिए जर्मन सरकार से राष्ट्रीय कर्ज लेंगे और इस बात के शर्तनामे पर दस्तखत करेंगे कि सफल होने पर स्वतन्त्र भारत की सरकार की ओर से यह कर्ज चुकता कर दिया जाएगा । (२) जर्मन अस्त्र-शस्त्र देंगे और जहाँ-जहाँ उनके राजदूत या दूत हैं वे भी भारतीय क्रान्तिकारियों की सहायता करेंगे, (३) तुर्की सरकार अब तक तटस्थ थी, पर यह आशा थी कि जल्दी ही वह अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करेगी और तब साथ ही साथ जेहाद का एलान भी किया जाएगा, जिससे भारतीय मुसलमान भी अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़े होंगे ।

१९१४ के अन्त में इसी प्रकार के वातावरण में बर्लिन में इंडियन इंडिपेंडेन्स कमेटी या भारतीय स्वतंत्रता समिति की स्थापना हुई । इस अवसर पर भारतीय क्रान्ति का झंडा भी फहराया गया । इस समिति में कुछ बुजुर्ग थे, जिनमें अध्यापकों की संख्या ही अधिक थी । इन अध्यापकों में भी बम्बई के अध्यापकों की प्रधानता थी । इस समिति के सदस्यों में डा० अविनाश भट्टाचार्य एक प्रमुख व्यक्ति थे । उन्होंने उस समय का वर्णन बंगला 'युगान्तर' ३० मार्च १९५२ में इस प्रकार किया था—"लड़ाई छिड़ने के बाद ही हम लोगों ने प्रवासी जापानियों के दृष्टान्त का अनुसरण करते हुए, जापान को गालियाँ देते

हुए और जर्मनी के प्रति सहानुभूति जताते हुए एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया। जर्मन अखबारों में इसकी अच्छी प्रशंसा हुई, पर जर्मन सरकार की तरफ से किसी ने न तो हमें बुलाया और न हमसे पत्र-व्यवहार ही किया। तब मैंने अपने मित्र डा० अर्नेस्टडेलब्रुक को तार दिया और यह कहा कि वे अपने चाचा प्रूशिया के स्वराष्ट्र सचिव डा० क्लेमेन्स फानब्रुक के साथ जरूरी परामर्श के लिए हमारे मिलने की व्यवस्था कर दें। इसके उत्तर में यह कहा गया कि पर-राष्ट्र दफ्तर में बैरन फान वेयाराथाइम के साथ भेंट करें, तदनुसार चट्टोपाध्याय ने ऐसा ही किया। बैरन ने चट्टोपाध्याय से थोड़ी देर बात की और इस के बाद उन्हें गाड़ी पर बैठाकर एक कूरियर के साथ बैरन ओपेनहाइम के पास भेज दिया।

"इसी बैरन ने चट्टोपाध्याय को ५०० मार्क दिए और यह कहा कि वे मुझे (डा० अविनाश भट्टाचार्य को) लेकर बर्लिन लौट जाएँ। इसके बाद ३ सितम्बर को बैरन के द्वारा भेजे हुए हेर्नशमेन नामक भारत से लौटे हुए एक जर्मन के साथ हम लोग बर्लिन के एक मोहल्ले में श्रीमती वेस्लर के घर पहुँचे और वहाँ लम्बी आलोचना हुई। वहाँ उन्हें टाइप की हुई सारी योजना दी गई और उन्होंने कहा कि दो एक के अलावा हमारी सभी शर्तें उन्हें मान्य है। इस के बाद हम लोग काम में लग गए। पापा केरशास्प के साथ (बाद को यह अफगानिस्तान में शहीद हुए) विनयकुमार सरकार के भाई धीरेन्द्र सरकार, गोपाल परांजपे (बाद को फ़र्गूसन कालेज के अध्यापक), मराठे, डा० सुखटणकर, डा० जोशी, अध्यापक शिरीषचन्द्र सेन, सदाशिव राव, सतीश चन्द्र राय, सिद्दीकी (बाद को हैदराबाद के उस्मानिया कालेज के प्रिंसिपल), करांडकर, मन्सूर अहमद, डा० ज्ञानेन्द्र चन्द्र दास गुप्त (बाद को आजाद हिन्द फौज में भी कार्य किया), रहमान, सुभान, सी. पद्मनाभन पिल्ले दल में शरीक हुए। डा० दासगुप्त और पिल्ले ने स्वतंत्र रूप से जर्मन परराष्ट्र दफ्तर को पत्र लिखा था। दासगुप्त बैसिल में थे और पिल्ले त्सुरिख में। राजदूत के जरिये समिति बनने की बात सुनकर पिल्ले हमसे मिले। त्सुरिख में अपने ही द्वारा प्रतिष्ठित प्रोइंडियन सोसाइटी के नेता और इसी नाम की पत्रिका के सम्पादक भी थे। हम लोगों ने बैरन ओपेनहाइम की सलाह से समिति का नाम 'डाइटशेर

फेराइन डेर फायन्डे इंडियन' यानी 'भारतबंधु जर्मन समिति' रखा और हम्बुर्ग अमेरिका कम्पनी के प्रधान संचालक श्री अलबर्ट बालन को इसका सभापति चुना, जो स्वयं कैसर के वैयक्तिक मित्र थे। बैरन ओपेनहाइम और सुखटणकर सहकारी सभापति चुने गए और धीरेन्द्र सरकार प्रथम मंत्री बने। जब सुखटणकर भारत चले आए, तब चट्टोपाध्याय को सहकारी सभापतियों में कर दिया गया और जब धीरेन्द्र सरकार को मराठे के साथ अमेरिका भेजा गया तो हमारे और जर्मन सरकार के बीच जो लियेसन अफसर डा० मूलर थे (वे चीनी भाषा के विद्वान थे) मंत्री बनाए गए।

"बैरन की सहायता से काम शुरू होने के दो दिन बाद से हम लोग नित्य टैक्सी पर चढ़कर बर्लिन के पास स्पांडाऊ शिविर के बम के कारखाने में जाकर बम बनाना सीखने लगे और बम, हथ बम, टाइम बम, लैंड माइन आदि चीजों को हम मे से वैज्ञानिक जल्दी ही स्वयं तैयार करने लगे। इसी प्रकार हमारे सदस्यों को बर्लिन अस्त्रागार में ले जाकर आधुनिक अस्त्रों से परिचित करवाया गया। चट्टोपाध्याय और केरशास्प पूर्वीय देशों की भाषा जाननेवाले सदस्यों के साथ उन मुसलमान सैनिकों में प्रचार कार्य करने लगे, जो फ्रांस तथा अंग्रेजों की तरफ से लड़ते हुए कैद कर लिए गए थे।"

क्रान्तिकारी दिन-रात काम करते रहे। धीरेन सरकार और मराठे सांकेतिक आज्ञा लेकर चोरी से अमेरिका पहुँच गए। वहाँ जाकर उन लोगों ने जितेन्द्रनाथ लाहिड़ी, लाला हरदयाल, भूपेन्द्रनाथ दत्त और तारकनाथ दास को बर्लिन में और केदारेश्वर गुह (बाद को शान्ति निकेतन में कृषि विभाग के अध्यक्ष) और वीरेन्द्रनाथ मुखर्जी (शायद भूपेन्द्रनाथ मुखर्जी) को भारत भेजा। इस प्रकार गदर पार्टी के साथ बर्लिन समिति का सम्पर्क स्थापित हुआ।

बर्लिन की भारतीय स्वतन्त्रता समिति के प्रथम सभापति शायद श्री मन्सूर थे, पहले-पहल सभापति के हाथों में ही सारी शक्ति होती थी, पर बाद को लोकतांत्रिक रूप से सारे काम होने लगे। समिति ने डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त और मन्सूर को संविधान बनाने का भार सौंपा। पर ये दोनों सदस्य आपस में एकमत नहीं हो सके। प्रधान प्रश्न यह था कि जो लोग अपने को भारतवासी कहते हैं, वे सभी इसके सदस्य बनाए जाएँ, या नहीं। दत्त का कहना यह था कि सभी

बनाए जाएँ, पर मन्सूर इस पर राजी नहीं हुए। उनका कहना यह था कि केवल हिन्दू और मुसलमान भारतीयों को ही भारतीय माना जाए। समिति ने मन्सूर की बात मानी और ईसाइयों को सदस्य के रूप में न लेने का निर्णय किया गया। नए संविधान के अनुसार जो चुनाव हुआ, उसमें वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय मन्त्री चुने गए। वे १९१५-१६ में मन्त्री रहे। बाद को डा० दत्त १९१६-१८ में मन्त्री रहे। डा० दत्त का तो यहाँ तक कहना है कि यदि बर्लिन भारतीय समिति न बनाई जाती, तो भारत में १९१५-१६ में क्रान्ति की जो चेष्टा हुई थी, वह नहीं होती, विशेषकर बंगाल में क्रान्ति की चेष्टा तो नहीं ही होती।

यह कथन कुछ अतिरंजित है। पर इसमें सन्देह नहीं कि प्रथम महायुद्ध के समय बाहर के क्रान्तिकारियों का सम्बन्ध देश के अन्दर के क्रान्तिकारियों के साथ बहुत अधिक रहा। बर्लिन समिति की पुकार सुनकर ही, बहुत से भारतीय विदेशों से क्रान्तिकारी विचार लेकर देश में आए। बंगाल में बर्लिन कमेटी की स्थापना तथा जर्मन सहायता की खबर यूरोप और अमेरिका से ही भेजी गई थी। कुछ धन भी भेजा गया था, जो बिना किसी विपत्ति के पहुँच गया था। बर्लिन से ही यह योजना बनी थी कि बालेश्वर में अस्त्र-शस्त्र उतारे जाएँ। इसीलिए बंगाल के क्रान्तिकारियों ने वहाँ हैरी एण्ड सन्स नाम से यूनिवर्सल एम्पोरियम नाम की एक व्यापारिक संस्था खोली थी।

कुछ और कार्यों का विवरण इस प्रकार है। १९१५ की मई में बर्लिन समिति ने विन्सेन्ट क्राफ्ट नाम से एक जर्मन को बटाविया इसलिए भेजा था कि वहाँ से अन्दमान पर आक्रमण की व्यवस्था की जाए और वहाँ से राजनैतिक कैदियों को छुड़ाकर किसी तटस्थ देश में रख दिया जाए। क्राफ्ट ने बटाविया से यह खबर दी कि जहाज द्वारा अन्दमान पर आक्रमण करना मुश्किल नहीं है और वह इस सम्बन्ध में प्रयास कर रहे हैं। अभी क्राफ्ट कुछ कर नहीं पाए थे कि अंग्रेजों ने उन्हें सिंगापुर में पकड़ लिया।

क्या अंग्रेजों को अन्दमान पर प्रस्तावित आक्रमण की योजना का कुछ पता था? इस पर यह ध्यान देने योग्य है कि उपेन्द्र बनर्जी ने अपनी आत्मकथा में यह दिखलाया है कि जब वे अन्दमान में बन्द थे, तब सरकारी कर्मचारियों में एक

बार यह भय दिखाई पड़ा था कि अन्दमान पर आक्रमण होनेवाला है। एक अमेरिकन संवाददाता ने भी इस प्रकार की खबर अपने पत्र में लिखी थी—"अमेरिका के किसी व्यक्ति ने कहा था कि जब यह खबर आई कि जर्मन सरकार ने भारतीय क्रान्तिकारियों को सहायता का वचन दिया है, तब एमडन जहाज के कप्तान को बेतार से यह खबर दी गई कि वे अन्दमान पर हमला करें। पर इस खबर की कोई पुष्टि नहीं हुई। इसके अलावा एमडन के एक लेफ्टीनेंट ने बाद को सुमात्रा में किसी क्रान्तिकारी से यह कहा था कि मुझे इस प्रकार की कोई खबर नहीं मिली। बर्लिन समिति का मुख्य कार्य भारत में अस्त्र-शस्त्र भेजने की व्यवस्था करना था। अमेरिका से भारत में अस्त्र भेजने का रास्ता साफ करने के लिए कई युवकों को चीन, स्याम आदि स्थानों में भेजा गया था।"

शायद बर्लिन समिति तथा भारत के बाहर के क्रान्तिकारियों का ही यह असर था कि भारत के अन्दर के सब दल मिलकर काम करने लगे थे। पूर्वी एशिया में जहाँ तहाँ क्रान्तिकारियों के अड्डे बन गए थे। सौभाग्य से जापान में क्रान्तिकारियों को काउंट ओकुमा जैसे व्यक्तियों की सहायता मिली थी। ओकुमा आदि ने यह आश्वासन दिया था कि भारत में क्रान्ति शुरू होने पर जापान उसके दमन के लिए नहीं जाएगा। चीन के क्रान्तिकारी नेता सनयातसेन के साथ भी भारतीय क्रान्तिकारी कुछ सम्पर्क स्थापित कर सके थे। कहा जाता है कि इन सारी परिस्थितियों के कारण भारतीय क्रान्ति के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वयंसेवक सेना बनी थी, जिसमें उच्च घरानों के कुछ जापानी युवक भी शामिल हुए थे। इन्हीं दिनों भगवानसिंह अमेरिका से फिलीपाइन में काम करने के लिए भेजे गए, पर वहाँ से वे निकाल दिए गए, दोस्त मोहम्मद पर इस कार्य का भार पड़ा। बाद को भगवानसिंह चीन गए और रासबिहारी के साथ मिलकर काम करने लगे। इसके बाद वे आत्माराम कपूर के साथ चीन के स्वाटो से बैंकाक पहुँचे। दत्त की जानकारी के अनुसार योजना यह थी कि स्याम के जर्मन भारतीयों के साथ मिलकर मोलमीन होते हुए बर्मा पर धावा बोला जाए और चीन में रहनेवाले जर्मन दो भागों में बंटकर एक भाग स्याम की टुकड़ी के साथ मिल जाएगा और दूसरा बर्मा के राजवंश के निर्वासित

उत्तराधिकारी को सामने रखकर भामो के मार्ग से उत्तरी बर्मा पर हमला करेगा।

क्राफ्ट के सम्बन्ध में हम पहले ही बता चुके हैं कि अन्दमान पर आक्रमण करने का भी कार्यक्रम था, पर ऐसा मालूम होता है कि इसके अलावा यह कार्यक्रम भी था कि पाँच सौ जर्मन अफसर और एक हजार सैनिकों से लैस एक जहाज अन्दमान के राजनैतिक बंदियों को छुड़ाकर कलकत्ता आएगा। यह भी तय था कि बर्मा पर आक्रमण के साथ पंजाब और बंगाल में भी विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया जाएगा और साथ-ही-साथ अफगानिस्तान और बलूचिस्तान की ओर से भी भारत पर आक्रमण होगा। दुःख की बात है कि ये योजनाएँ पूरी नहीं हो सकीं और किसी न किसी कारण अधिकांश योजनाएँ केवल कागजी ही रह गईं।

सिंगापुर में सिख सिपाहियों ने विद्रोह किया था और सात दिनों तक शहर पर उनका कब्जा रहा। विद्रोहियों ने कैदी जर्मन अफसरों को छोड़ दिया था। यहाँ एक अजीब घटना यह हुई कि सिपाहियों ने जर्मन से कहा कि तुम लोग हमारा सैनिक नेतृत्व करो, पर उन लोगों ने कहा कि हम अंग्रेजों को वचन दे चुके हैं, इस लिए अस्त्र धारण नहीं करेंगे और न हम विद्रोहियों की कोई सहायता करेंगे। इसके अलावा दूसरी शक्तियों के जंगी जहाज आए और सिपाहियों को परास्त किया। इस सम्बन्ध में एक खबर यह भी है कि जापानी सेना के नौसैनिकों ने भारतीय विद्रोहियों पर गोली नहीं चलाई, पर यह खबर कहाँ तक सही है, इसमें सन्देह है। यह बताया गया है कि सिंगापुर का विद्रोह गदर पार्टी के मूलचन्द के उद्यम से हुआ। मूलचन्द ने सिंगापुर पहुँचकर जर्मन कैदियों के साथ सम्पर्क स्थापित किया और उनसे यह तय किया कि भारतीय विद्रोही जर्मनों को छोड़ देंगे। बाद को दोनों मिलकर मलय पर अपना अधिकार स्थापित करेंगे। इसके बाद वे सिंगटाउ के जर्मन जंगी जहाज की सहायता से अंग्रेजों को पहले सिंगापुर और पूर्वी एशिया से भगाएँगे, फिर भारत पर हमला करेंगे। इसी शर्त पर भारतीय सैनिकों ने विद्रोह किया था, पर जर्मन छूटकर क्रान्तिकारियों को सहायता देने के लिए तैयार नहीं हुए। नतीजा यह हुआ कि मूलचन्द ने चीन भागकर जान बचाई और विद्रोही सिपाही मारे गए।

बैंकाक में भी कुछ कार्य हुआ था। अमेरिका से जोधासिंह, चिनचिया और सुकुमार चटर्जी बैंकाक पहुँचे और वहाँ जर्मन कांसल आदि से सम्बन्ध स्थापित किया। कांसल ने इस सम्बन्ध में जो रिपोर्ट भेजी थी, वह घूमघाम कर बाद को बर्लिन पहुँची थी, जिसमें यह कहा गया था कि बैंकाकवासी एक सिख मजदूर को भारत के क्रान्तिकारियों की खबर लाने के लिए भेजा गया था और वह चटगाँव पहुँचकर क्रान्तिकारियों से मिलने के बाद बैंकाक लौटा था। इस बीच में जो तीन व्यक्ति अमेरिका से आए थे, उनसे कांसल खुश नहीं हुआ। शायद इन्हीं दिनों अंग्रेजों को कुछ पता लग गया और स्याम की पुलिस ने उन तीनों को पकड़कर अंग्रेजों के हाथों में सौंप दिया। कांसल ने रिपोर्ट में यह लिखा था कि इन लोगों ने पकड़े जाने के बाद सारी बात बता दी। जोधासिंह और सुकुमार चट्टोपाध्याय के बारे में तो यह बात सही मालूम होती है, पर मद्रासी चिनचिया ने एक भी बात नहीं कही। बाद को सुकुमार चटर्जी का छोटा भाई प्रणवेश चटर्जी काकोरी षड्यन्त्र में फंसा, तो उसने भी बहुत कमजोरी दिखाई थी।

जब दक्षिण एशिया में इस तरह सारा काम गड़बड़ हो गया तो कुछ क्रान्तिकारी चीन भाग गए। इन्हीं में से फणी चक्रवर्ती उर्फ पाईन शंघाई में पकड़े गए। पाईन को बहुत दिनों तक तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। जिसके फलस्वरूप वह खून की कै करने लगे और अवनी मुखर्जी के अनुसार उन्होंने सारी बातें बता दीं। जो कुछ भी हो, चक्रवर्ती छूट गए और बाकी लोग जापान भाग गए।

रासबिहारी ने जापान में जाकर आश्रय लिया था। वहीं पर हेरम्बलाल गुप्त भी पहुँचे। अंग्रेजों के दबाव के कारण जापानी सरकार इन लोगों को अंग्रेजों के हाथों में सौंपने के लिए तैयार हो गई थी, पर कुछ जापानी मित्रों ने इन लोगों को तोकियो के बाहर एक छोटे से कमरे में बहुत दिनों तक छिपा रखा। हेरम्ब बहुत दिनों तक इस प्रकार रहकर ऊब गए और जापानी कपड़े पहनकर बर्फ पर दौड़ते हुए तोकियो पहुँचे और वहाँ से मौका लगाकर अमेरिका भाग गए।

इस तरह पूर्वी एशिया में भारत में क्रान्ति की कुछ न कुछ चेष्टा चलती

रही । जावा के नैशनलिस्ट पार्टी के नेता डा० दाऊस देक्कर बर्लिन समिति द्वारा १९१५ की जुलाई में पूर्वी एशिया भेजे गए थे । यहाँ यह बता दिया जाए कि जावा के अधगोरे अपने को देशी लोगों में समझकर ही चलते थे । डा० दाऊस अपने देश के अच्छे नेता थे, पर डच सरकार ने उन्हें जावा से निर्वासित किया था और वह यूरोप में जाकर रहने लगे थे । इन्हीं दिनों भारत के क्रान्तिकारियों के साथ उनका सम्बन्ध था । डा० दाऊस को जावा में भारतीय क्रान्ति प्रयास के सहायक के रूप में भेजा गया था । वे अमेरिका होकर भारत लौट रहे थे । रास्ते में वह गदर दलवालों से भी मिले थ । पर जब वे चीन पहुँचे तो वहाँ अंग्रेजों ने उन्हें पकड़कर आस्ट्रेलिया भेज दिया । इस पर जर्मन समिति ने उन्हें छुड़ाने की चेष्टा की, पर उन्होंने हालैंड में अपनी बहन को लिख भेजा कि अंग्रेज उनसे अच्छा व्यवहार कर रहें हैं, इसलिए ऐसी कोई बात न की जाए, जिससे अंग्रेज उन पर नाराज हो जाएँ । यह सुनकर बर्लिन समिति ने हाथ खींच लिया, पर १९१८ के अन्त तक उनकी बहन को समिति की ओर से मासिक भत्ता दिया जाता रहा । बाद को जब सैनफ्रांसिसको में क्रान्ति के विरुद्ध मुकदमा चला तो डा० दाऊस सरकारी गवाह के रूप में रंगमंच पर आए । उन्होंने क्रान्तिकारियों की सारी योजना बता दी और साथ ही यह भी कहा कि मुझे रुपयों की जरूरत थी । मैंने देखा कि भारतीय बेअक्ल हैं और बढ़-बढ़कर की गई मेरी बातों पर विश्वास करते हैं, इसलिए मैं उन लोगों में शामिल हो गया ।

१९१५ में बर्लिन समिति के पास यह खबर आई कि तीन जहाज प्रशान्त महासागर होकर भारत की तरफ जा रहे हैं और दो या एक जहाज स्वेज नहर होकर जा रहे हैं । ऐसा मालूम होता है कि इनमें से एक जहाज पर अस्त्र-शस्त्र थे । उसी में भारतीय क्रान्तिकारी थे । दुर्भाग्य से यह जहाज सेलीबिस टापू में पहुँचा और डच सरकार ने उसे पकड़ लिया । बाद को चलकर डच समाजवादी नेता टालेस्ट्रा ने डच संसद में यह जानने की चेष्टा की थी कि उक्त जहाज का क्या हश्र हुआ ।

लार्सन नाम का एक और जहाज कैलीफोर्निया तट पर अमेरिकनों द्वारा पकड़ लिया गया था । स्टार हर्ट नामक जर्मन ने भारतीयों के लिए यह अस्त्र

खरीदा था, पर जब भारतीयों ने ठीक समय पर शस्त्र नहीं लिए तो हन्ट ने उसे मेक्सिको के क्रान्तिकारियों के हाथ बेच दिया। स्वेज नहर से जो जहाज आनेवाले थे उनका कुछ पता नहीं लगा, पर जो लोग उनमें आ रहे थे, वे जेलों में डाल दिए गए, इतना पता लगता है। कहते हैं इन्हीं सब कारणों से जर्मन सरकार को पेंकिंग और बैंकाक के राजदूतों ने यह लिख भेजा कि भारत में अस्त्र-शस्त्र भेजना बहुत सरल था, पर क्रान्तिकारियों की गलतियों के कारण ही सारा काम चौपट हो गया। उस रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि पूर्वी एशिया की तरफ से अस्त्र-शस्त्र मंगाने की चेष्टा छोड़कर अफगानिस्तान से अस्त्र भेजना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं कि कुछ भारतीयों ने कार्यकुशलता से काम नहीं किया और कुछ लोग रुपया भी मार गए, पर असल में दोष किसका रहा, इसका अन्तिम निर्णय करना बहुत कठिन है।

इन्हीं दिनों चार सौ जर्मन पादरी भारत से निकाले जाकर जर्मनी पहुँचे। लोगों ने इनसे भारत की भीतरी खबर जाननी चाही, पर ये लोग अंग्रेजों से वचन देकर गए थे कि वे भारत की कोई खबर नहीं बताएँगे, इसलिए सब के सब चुप रहे। हाँ, एक जर्मन पादरी ने यह बताया था कि जब वे भारत से जहाज पर चढ़ रहे था, उस समय एक क्रान्तिकारी ने भिखमंगे के वेश में उनसे मिलकर कहा था—तुम लोग देश लौट रहे हो, यह अच्छी बात है क्योंकि जब क्रान्ति होगी तब हम लोग अंग्रेज और जर्मनों में कोई फर्क नहीं कर पाएँगे।

पश्चिम एशिया का कार्य—बर्लिन से ही ईरान में क्रान्ति करने का काम जारी था और भारतीयों की बर्लिन समिति की तरह सैयद टकेजाद के नेतृत्व में ईरानियों की एक समिति बनी थी। यह समिति भारतीय समिति के साथ मिलकर काम करना चाहती थी और ईरान के जरिए से भारत में भारतीय क्रान्तिकारियों को भेजने की व्यवस्था की जा रही थी। १९१५ की फरवरी या मार्च में कुछ भारतीय तुर्की पहुँचे और एक टुकड़ी ईरान के रास्ते होकर बगदाद और दूसरी टुकड़ी स्वेज के जरिए से दमिश्क पहुँची। जो लोग शाम पहुँचे, वे उन दिनों के हिन्दी तकिया यानी हाजियों की सराय के अध्यक्ष अब्दुलरहमान

नामक एक भारतीय मुसलमान के साथ स्वेज की तरफ रवाना हुए, पर वे अधिक आगे नहीं बढ़ सके।

ब्रिटिश सेना के उन्नीस मुसलमान सिपाही जेहाद का एलान सुनकर तुर्की छावनी में पहुँचे, जहाँ उनकी बड़ी आवभगत हुई और वे सुलतान के बाडीगार्ड नियुक्त हुए।

"भारतीय क्रान्तिकारियों ने कन्तारा जाकर भारतीय सिपाहियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा की। यह भी तय हुआ कि मिस्र में जाकर भारत से आए हुए ब्रिटिश सिपाहियों में क्रान्ति का प्रचार किया जाए। इस काम के लिए एक बंगाली और एक तमिलभाषी युवक तैयार हुए। काम बहुत जोखिम का था क्योंकि रास्ते में बराबर गोलियाँ चल रही थीं। पर अन्त तक यह कार्यक्रम पागलपन समझकर छोड़ दिया गया और दूसरे उपाय से अंग्रेजों की तरफ से लड़ने के लिए आए हुए भारतीय सिपाहियों से सम्बन्ध स्थापित किया गया। पर इन सिपाहियों ने यह कहा कि हम सब-कुछ समझते हैं पर-कुछ करने में असमर्थ हैं।"

सच तो यह है कि अंग्रेजों ने इस प्रकार से इन सिपाहियों को रखा था कि वे कुछ कर ही नहीं सकते थे। विदेश में जाकर, विशेषकर लड़ाई के मैदान में अज्ञात लोगों के इशारे पर सब-कुछ होम देना बहुत कठिन था। १९१६ के प्रारम्भ में क्रान्तिकारियों को बगदाद भेज दिया गया। उद्देश्य यह था कि कुतुल आमारा में जिन भारतीय सिपाहियों ने आत्म-समर्पण कर दिया था, उनमें क्रान्ति का प्रचार किया जाए। पहले ही यह बताया जा चुका है कि आगासे और पांडुरंग खानखोजे ने पश्चिम एशिया में किस प्रकार काम किया था।

इस क्षेत्र में जिन लोगों ने काम किया था उनमें केदारनाथ और वसन्तसिंह पंजाबी नौजवान थे और अमेरिका से बर्लिन में क्रान्तिकारी कार्य करने के लिए गए थे। वसन्तसिंह ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, पर बताया जाता है कि वे बहुत पक्के देश-भक्त थे।

तुर्की में कार्य—१९१५ के प्रारम्भ में बरकतुल्ला किरसास आदि क्रान्तिकारी इस्ताम्बुल पहुँचे। ये लोग अनवर पाशा से मिले। जब अनवर पाशा ने इनका नाम सुना तो उसे मालूम हुआ कि ये सभी मुसलमान हैं। इस पर वह बोला—

"तुम में कोई हिन्दू नहीं है?"

इस पर उन्होंने कहा कि हम में से एक के सिवा सभी हिन्दू हैं। तब अनवर पाशा खुश होकर बोला—"मैं बहुत खुश हुआ क्योंकि मैं धर्म और राजनीति को दो अलग-अलग जेबों में रखता हूँ।"

इस के बाद उन्होंने तुर्की सरकार के हरबिया (सैनिक विभाग) के अधीन तसकिलार्ता-ई-मकमूसर (पूर्व देश सम्बन्धी दफ्तर) के अली बे नामक एक ऊँचे अधिकारी को भारतीय क्रान्तिकारियों की मदद करने के लिए नियुक्त किया। अब भारतीयों की ओर से ब्रिटिश सेना के भारतीय सिपाहियों में प्रचार कार्य होने लगा। चैतसिंह और बसन्तसिंह आदि युद्ध क्षेत्र में जाकर भारतीय सिपाहियों में पर्चे बाँट आते थे और इसके फलस्वरूप बहुत से सिपाही ब्रिटिश सेना से भगोड़े बन जाते थे। पर बीच में उनका साबका बद्दुओं से पड़ता था जो अक्सर भारतीय सिपाहियों को काफिर मानकर मार डालते थे। तुर्की अफसर अच्छी तरह सहयोग नहीं करते थे। इसीलिए सौ के करीब भागे हुए भारतीय सिपाहियों को लेकर बनाई गई स्वयं-सेवक-सेना को भी तोड़ देना पड़ा।

१९१६ में कुतुलआमारा का पतन हुआ। उस अवसर पर जो भारतीय सैनिक बन्दी हुए उनमें क्रान्तिकारी कार्य होने लगा। सैनिकों में काफी उत्साह था। यहाँ तक कि कई यह कहते थे—"बाबू जी, आप पाँच हजार सैनिकों के साथ हमें भेज दें। हम क्वेटा से कलकत्ता तक मार्च करते हुए जाएँगे और रास्ते में पाँच हजार से पचास हजार हो जाएँगे।"

पर तुर्की सरकार इस सम्बन्ध में बहुत उत्साह नहीं दिखा रही थी। इन्हीं दिनों इस्ताम्बूल में कुछ भारतीय मुसलमान मौजूद थे, जिनमें से कुछ तो हाजी थे, कुछ तुर्की गुप्तचर थे, कुछ के सम्बन्ध में यह बदनामी थी कि वे अंग्रेजों के गुप्तचर हैं, कुछ आवारा थे और कुछ पैनइस्लामी याने तुर्की के पिटठु थे। जब बर्लिन समिति के लोग पहुँचे तो ये रातों रात सब के सब क्रान्तिकारी बन गए पर इन में से कुछ पढ़े लिखे मुसलमान हिन्दुओं के इस्ताम्बूल आने का विरोध करने लगे।

यह भारतीय मुसलमानों को नापसन्द था कि हिन्दू तुर्की में आकर सम्मानित हों। जो कुछ भी हो शिक्षित और अशिक्षित सभी लोग पहले भारतीय क्रान्तिकारियों

से मिले और उनके साथ काम भी करते रहे। दो एक शिक्षित मुसलमान जिन का यह मत था कि भारत को अंग्रेजों के हाथ से लेकर तुर्कों को सौंप देना चाहिए, रुपए मारने के लिए भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ हो गए। इन में से एक महाशय दिल्ली के अब्दुल जब्बार बर्लिन में भी आये थे और उन्होंने जर्मन विदेशी दफ्तर के डा० वैसे डन्क (भारतीय कार्यों के इन्चार्ज) से हिन्दुओं की निन्दा की थी और यह कहा था कि हिन्दू नीच है और मुसलमान फिर भारत पर राज्य करेंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि वे तुर्की के लिए ही काम कर रहे हैं। भारत से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर उस जर्मन अफसर ने कहा था—"हमें हिन्दू मुसलमान के आपसी झगड़ों से कोई मतलब नहीं, न तो दुनिया भर में कभी मुसलमानों का राज्य हुआ और न कभी होगा। हिन्दुओं से मिल कर काम कीजिए।"

जब्बार ने इस प्रकार डांट खाकर बर्लिन समिति की शरण ली, पर वह अंतरंग रूप से कहता रहा कि अभी हिन्दुओं से मिलकर अंग्रेजों का नाश करूँगा, फिर हिन्दुओं को खतम करूँगा। यही महोदय जब इस्ताम्बूल गए तो वे हिन्दुओं के विरुद्ध जहर उगलने लगे। केवल यही नहीं वे क्रान्तिकारयों के विरुद्ध काम करने लगे। तब क्रान्तिकारी मुस्लिम सदस्यों के प्रस्ताव पर उन्हें समिति से निकाल दिया गया। भारतीय कार्यों के तुर्की इन्चार्ज डा० फुआद बे ने कहा—"यह तो रुपए का भूखा है।"

इस व्यक्ति के कारण इस्ताम्बूल में क्रान्ति कार्य को बहुत नुकसान पहुँचा। यह व्यक्ति प्रचार किया करता था कि हिन्दू काले होते हैं और भारत के विभिन्न प्रदेशों में बँटे हुए हैं और सुलतान पंचम महमूद भारत के भावी सम्राट हैं। जब्बार अनवर पाशा से मिला और वहाँ भी उसने हिन्दुओं की निन्दा की, पर उन्होंने उसे प्रोत्साहन नहीं दिया। उन दिनों के तुर्की नेताओं में अनवर तलात शुकरी और जावेद विश्व-मुस्लिम-साम्राज्य का स्वप्न नहीं देखते थे, पर जमाल पाशा इसी का स्वप्न देखते थे।

एक बार एक मुस्लिम ने यह खबर दी कि हिन्दुओं ने एक जगह बहुत सा अस्त्र-शस्त्र जमा किया है। इस पर पुलिस तलाशी लेने आई, पर विदेशी विभाग ने ऐसा नहीं होने दिया। फिर भी कुछ मुसलमानों ने वहाँ का वातावरण

बिलकुल खराब कर रखा था। इतने पर भी जो काम हुआ वह, कम नहीं है।

पहले ही बताया जा चुका है कि कुतुल आमारा के पतन के बाद बन्दी किए गए भारतीय सिपाहियों में काम हो रहा था। मुसलमान अफसरों को एस्की शहर में और हिन्दू अफसरों को कोनिया नगर में ले जाया गया। बर्लिन से तीन क्रान्तिकारी वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन्द्रनाथ दत्त और वीरेन्द्रनाथ दासगुप्त इस्ताम्बूल पहुँचे। ये लोग एस्की शहर में अस्सी बन्दी मुसलमान अफसरों से मिले, तो इन अफसरों ने अपनी तकलीफों की बात कही। इस पर तुर्की अफसर ने कहा कि—"ये लोग हर समय—हम मुसलमान हैं, हम मुसलमान हैं, यह रट लगाए रहते हैं और तरह-तरह की माँगें पेश करते हैं। हैं तो ये मुसलमान, पर ये अंग्रेजों के आदमी हैं और हमारे खिलाफ लड़े हैं। अंग्रेज हम लोगों के साथ जिस तरह व्यवहार करते हैं, हम भी इन लोगों के साथ वैसा ही व्यवहार करें।"

इस पर वे मुस्लिम कैदी बोले—"हम खलीफा का दर्शन करना चाहते हैं।"

मुस्लिम अफसरों से मिलने के बाद वे तीनों क्रान्तिकारी कोनिया पहुँचे, जहाँ सिख, गोरखा, मराठे आदि अफसर थे। क्रान्तिकारी वहाँ के सर्वोच्च तुर्की अफसर से मिले, जिन्होंने उनका बड़े तपाक से स्वागत किया। वहाँ क्रान्तिकारियों को यह भी पता लगा कि कुतुल आमारा पर घेरा डालने के समय जिन मुसलमान सिपाहियों ने विद्रोह किया था, उनके नेता को ब्रिटिश सैनिक अदालत में मृत्यु-दण्ड दिया गया था और बाकी विद्रोही बसरा भेजे गए थे। यह मालूम हुआ कि घेरे के दिनों में जब हवाई जहाज से खाद्य पदार्थ गिराया जाता था, तब भी गोरों और कालों में भेदभाव बरता जाता था। जब भारतीय सेना बन्दी हो गई और उन्हें मरुभूमि के जरिए से अनतोलिया लाया जा रहा था, उस समय मुसलमान सिपाही बराबर हिन्दू सिपाहियों को चिढ़ा रहे थे। वे हिन्दू सिपाहियों को सुना-सुनाकर ऐसी बातें करते थे कि आज गाय का गोश्त खाया, पर ठीक न पकने के कारण मजा नहीं आया। हिन्दू अफसरों ने बताया कि तुर्कियों ने हमारे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया, पर रास्ते में बद्दुओं ने हमारे सब कपड़े लत्ते चुरा लिए और हमारे ही आदमी हमारे साथ बुरा सलूक करते रहे। सिखों का यह कहना था कि हममें से बारह आदमियों के, बाल जबर्दस्ती काट दिए

गए थे। पर असली बात यह थी कि इन लोगों को टाईफायड हुआ था, इस लिए डाक्टरों ने बाल काट दिए थे। क्रान्तिकारियों को मालूम हो गया कि तुर्की अफसर धर्म में बिलकुल हस्तक्षेप नहीं करना चाहते।

गैर मुस्लिम अफसरों से पूछने पर उन्होंने बंगाल एम्बुलेंस कोर की बड़ी प्रशंसा की और यह कहा कि बंगालियों में एक जोश आया हुआ है। बाकी अफसरों में एक महाराष्ट्रीय युवक भी बहुत जोशीला मालूम पड़ा। इन अफसरों पर देख-रेख के लिए जो तुर्की कर्नल था, उसे समझा दिया गया कि गोश्त के लिए जीवित बकरे दिए जाएँ क्योंकि हिन्दू तथा सिख झटके का ही मांस खाते हैं। फिर मालूम हुआ कि तुर्की भारतीयों के धर्म में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। कुछ अफसर अब भी भीतर से अंग्रेज-भक्त बने हुए थे, पर अंग्रेजों के द्वारा किए हुए भेद-भावनामूलक दुर्व्यवहार के कारण वे उनसे नाराज थे।

इसके बाद तीनों क्रान्तिकारी वली (गवर्नर) और शहर के सेनापति के पास गए। क्रान्तिकारियों ने अपना परिचय दिया। इस पर वली ने पूछा—"तुम लोगों के साथ कुछ कागजात हैं?"

क्रान्तिकारियों ने बताया—"हाँ, तसकिलात के कागजात हैं।" इस पर वली बोले—"तसकिलात क्या है और उसका अध्यक्ष कौन है, शायद कोई अरब होगा।"

इस पर जब उन्हें बताया गया कि तसकिलात हरबिया याने सैनिक विभाग के अन्तर्गत है तो वे उन्हें रखने और उनकी बातों पर विचार करने के लिए तैयार हुए। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ नजरबन्द रहना था। खैरियत यह हुई कि साथ के कर्नल ने सारी बात समझा दी और तब क्रान्तिकारियों को बिना किसी विरोध के क्रान्ति-प्रचार करने का अधिकार मिला।

तुर्की सरकार में अजीब-अजीब लोग थे। यों केन्द्रीय सरकार शायद बड़ी-बड़ी समस्याओं को समझती थी और भारतीय क्रान्तिकारियों को कुछ हद तक अपने मतलब के लिए और कुछ हद तक अन्य कारणों से मदद देना चाहती थी, पर स र्वत्र इस नीति का पालन नहीं हो रहा था। मालूम हुआ कि कैद किए हुए सिपाहियों में धर्म के अनुसार काफी भेदभाव बरता जा रहा था। आठ हजार हिन्दू सिपाहियों को मरुभूमि के अन्दर बगदाद रेल बनाने का काम

सौंपा गया था और दो हजार मुसलमान सिपाहियों को तराश पहाड़ी की ठंडक में आराम से रखा गया था। हिन्दुओं को कभी रसद मिलती थी, कभी नहीं। इन सब बातों की रिपोर्ट अनवर पाशा के पास पहुँचाई गई, तो उन्होंने तार देकर यह हिदायत दी कि धार्मिक पक्षपात न किया जाए। क्रान्ति-प्रचार चलने लगा, पर जर्मन सिफ़ारतखाने में मालूम हुआ कि वहाँ के जर्मन अफसर यह समझते हैं कि सेना बनाकर भारत भेजने की बात व्यावहारिक राजनीति के बाहर है, पर छोटी-छोटी टुकड़ियाँ ईरान होकर जा सकती हैं। तुर्कीवाले यह चाहते थे कि भारतीय क्रान्तिकारी उनकी सेना के साथ चलें और उन्हें लड़ाई जीतने में मदद दें। केवल यही नहीं, वे यह चाहते थे कि कैदी सिपाहियों से मरुभूमि में काम लिया जाए। इस प्रकार बर्लिन समिति के प्रतिनिधियों को बड़ी निराशा हुई।

अजीब बात तो यह है कि पहले जर्मन सरकार इस सम्बन्ध में उत्साह रखती थी। कुतुल आमारा के पतन के पहले दक्षिण अमेरिका के मेजर डियाज यह सुनकर बहुत खुश हुए थे कि कुतुल आमारा में ग्यारह हजार ब्रिटिश पक्ष के सिपाहियों पर घेरा डाला गया है। उनका कहना यह था कि १८५७ के इतिहास को पढ़कर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि उचित नेतृत्व न मिलने के कारण ही भारतीयों का प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम असफल हुआ था। वे यही समझ कर बर्लिन आए थे कि वे प्रस्तावित सेना का नेतृत्व करें. पर जब तुर्की केवल लड़ाई जीतने के लिए भारतीय सैनिकों के इस्तेमाल पर अड़ने लगे, तब सारी आशाओं पर पानी फिर गया। मालूम हुआ कि भारतीय सिपाही मरुभूमि में काम करते हुए बुरी तरह मर रहे हैं। बर्लिन समिति ने जर्मन सरकार से तुर्की सरकार पर जोर डालने के लिए कहा, पर उसने यह कहा कि वह तुर्की सरकार पर अधिक दबाव नहीं डाल सकती।

तुर्की सरकार भारतीय सिपाहियों के साथ जिस प्रकार व्यवहार कर रही थी, उससे उन सिपाहियों में क्रान्ति-प्रचार का वातावरण नहीं बन सकता था। १९१७ के अन्त में बर्लिन समिति ने तुर्की में काम बन्द कर दिया। बात यह है कि तुर्की लोग इसमें कोई दिलचस्पी नहीं ले रहे थे और दुनिया-भर के विशेष-कर सिद्धान्तहीन मिस्री और अरब पैनइस्लामवाद का नारा देकर अपना

उल्लू सीधा कर रहे थे । इसमें सबसे अजीब बात यह है कि उन दिनों जो लोग अपने को तुर्की का भक्त दिखलाते थे, वे बाद को तुर्की का पतन होने पर भाग निकले और तुर्कियों को भला-बुरा कहने लगे । कुछ भारतीय मुसलमानों की बावत यह कहा गया है कि वे भी तुर्की के पतन के बाद पैन इस्लामवाद का नारा छोड़कर रूस में जाकर कम्युनिस्ट बन गए । उनका उद्देश्य नए ढंग से रुपया मारना ही था ।

स्वीडन में कार्य—१९१७ में हालैण्ड और स्वीडन के समाजवादी दलों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन बुलाया । बर्लिन समिति की ओर से दो व्यक्ति वहाँ गए, तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस सम्मेलन में मित्र शक्ति की तूती बोल रही है । इस पर उन क्रान्तिकारियों ने एक पुस्तिका प्रकाशित की और साथ ही स्टाकहाल्म में एक समिति बनाई । १९१७ के अक्टूबर में त्रयनास्की नामक एक रूसी वहाँ आया और भारतीयों से उसका सम्पर्क हुआ । इन्हीं दिनों रूस में लाल क्रान्ति हुई । त्रयोनास्की ने रूस लौट कर एक रूसी-भारतीय समिति स्थापित की और एक पुस्तिका भी प्रकाशित की। बाद को वह ट्राटस्की के साथ काम करते रहे। जब ट्राटस्की ब्रेस्ट लिटोवस्क वार्ता में लगे हुए थे, उस समय ट्राटस्की के पास स्टाकहाल्म की भारतीय क्रान्तिकारी समिति ने एक तार भेजा कि भारत को आत्मशासन के अधिकार दिलाने का प्रस्ताव रखें। चाहे किसी प्रभाव से ही ट्राटस्की ने सचमुच उस सम्मेलन में भारत, आयरलैण्ड और मिश्र के आत्मशासन के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा ।

इसी प्रकार स्टाकहाल्म से फिलिप स्नोडन (अंग्रेज सामाजवादी) को एक तार भेजा गया कि वह भी भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन करें । इसी प्रकार और कई जगह तार भेजे गए, जिसमें अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन को भी तार दिया गया । अमेरिका के सैनफ्रांसिस्को से सुरेन्द्रनाथ कार ने भी राष्ट्रपति विलसन को एक तार भेजा, पर इसी कारण पुलिस उनके पीछे पड़ गई ।

स्मरण रहे कि अब यूरोप के भारतीय क्रान्तिकारियों ने भारत में क्रान्ति की आशा त्याग दी थी, इस कारण वे इस प्रकार के आन्दोलन कर रहे थे। ट्राटस्की ने क्रान्ति के बाद को भारतीय क्रान्तिकारियों को पेत्रोग्राद बुलाना

चाहा, पर स्टाकहाल्म के क्रान्तिकारी रूस नहीं गए। फिर १९१८ के जून में सोवियत सरकार के प्राच्य विभाग के अध्यक्ष के रूप में त्रयनास्की ने आदमी माँगे, पर तब पासपोर्ट न मिलने के कारण जर्मनी के बाहर किसी भारतीय क्रान्तिकारी का जाना सम्भव नहीं था। स्वीडन में भी अंग्रेज भक्त ब्रांटिंग सरकार थी। वह भी भारतीय क्रान्तिकारियों को बाहर नहीं जाने देती थी। फिर भी स्टाकहाल्म में कुछ-न-कुछ काम चलता रहा। अंग्रेजों ने इसका विरोध करने के लिए यूसुफ अली को वहाँ भेजा। यह महाशय वहाँ जाकर क्रान्तिकारियों के विरुद्ध प्रचार करने लगे। पर क्रान्तिकारी भी चुप नहीं रहे। नतीजा यह हुआ कि यूसुफ अली को स्वीडन छोड़कर भागना पड़ा। १९१८ में बर्लिन समिति ने लाला हरदयाल को स्वीडन भेजा। पर उनसे समिति की आशा पूरी नहीं हुई क्योंकि उस वक्त वे स्वीडन नहीं जा सके। बाद को वे स्वीडन गए, पर वहाँ जाते ही वे गोलमाल बातें करने लगे। लड़ाई में अंग्रेजों की जीत के बाद उनकी राय पलट गई थी और वे स्वीडन से अमेरिका के पात्रों में अपने मत-परिवर्तन की बात और जर्मन सरकार के विरुद्ध लिखने लगे। डा० दत्त का कहना है कि हरदयाल ने 'जर्मनी में चार साल' नामक पुस्तक में जो बातें लिखी हैं, वे सही नहीं हैं। सच्ची बात यों है कि जर्मन सरकार उनका बराबर आदर करती थी।

वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय—पहले ही हम कई प्रसंगों में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के विषय में लिख चुके हैं। अंग्रेज सरकार उनसे इतनी परेशान थी कि उनको कई बार गुण्डों से मरवा डालने का षड्यन्त्र भी किया गया था। पर स्विस पुलिस को सारी बात पहले ही मालूम हो चुकी थी। वे गुण्डे पकड़े और बर्न की कचहरी में ये बातें सामने आईं। लन्दन से भी एक गुण्डा उनके विरुद्ध लगा था। उसने चट्टोपाध्याय के किसी मित्र के नाम पर उन्हें बुलाकर जाल में फाँसना चाहा था। अब की बार भी स्विस पुलिस ने ही चट्टोपाध्याय की जान बचाई। मजे की बात यह है कि स्विस पुलिस के पास इस व्यक्ति के विरुद्ध प्रमाण होने पर भी अंग्रेजों के प्रभाव कारण इसे स्विट्जरलैण्ड से निर्वासित ही किया गया और चट्टोपाध्याय को भी यही दण्ड मिला।

अफगानिस्तान—अफगानिस्तान में जो कार्य हुआ था, उसके नेता राजा

महेन्द्रप्रताप थे। जब महेन्द्रप्रताप घूमते-घामते बर्लिन पहुँचे, तो बर्लिन समिति ने उनकी बड़ी आवभगत की, साथ ही उच्च जर्मन अधिकारियों ने भी उनका आदर किया और जर्मन सम्राट के साथ उनकी भेंट कराई गई। एक इण्डो-जर्मन मिशन बनाया गया, जिसमें महेन्द्रप्रताप, बरकतुल्ला, जर्मनों के द्वारा पकड़े हुए ब्रिटिश फौज के कुछ पठान सिपाही और अमेरिका से आए हुए दो अफरीकी थे। इनके साथ जर्मन सरकार का एक प्रतिनिधि डा० हैंडिग और एक डाक्टर भी रखे गए।

महेन्द्रप्रताप को कुछ भारतीय राजाओं ने यह कहा था कि यदि अफगानिस्तान की ओर से हमला हो, तो वे साथ दे सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि अफगानिस्तान के अमीर जर्मन और तुर्की के साथ हो जाते, तो बहुत लाभ रहता। सच तो यह है कि ऐसी परिस्थिति होने पर शायद लड़ाई की सारी स्थिति ही बदल जाती और कम-से-कम भारत में क्रान्ति होने की अधिक गुंजाइश पैदा हो जाती।

अमीर हबीबुल्ला खाँ को अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े होने के पक्ष में दो मुख्य कारण थे। एक तो यह कि हबीबुल्ला खाँ सुन्नी थे और तुर्कियों के सुलतान सुन्नियों के खलीफा थे। इसलिए जब सुलतान ने अंग्रेजों के खिलाफ जेहाद की घोषणा कर दी तो अमीर के लिए अंग्रेजों का विरोध करना जरूरी था। दूसरा कारण यह था कि अब तक अमीर बाहरी राजनैतिक सम्बंधों के मामले में स्वतन्त्र नहीं थे, पर जर्मनों के साथ मिलने पर उनको यह मर्यादा दी जाती।

कैसर ने महेन्द्रप्रताप के हाथ अमीर के नाम एक पत्र दिया था, साथ ही भारत के स्वतन्त्र, अर्धस्वतन्त्र राजाओं और नेपाल के महाराजा के नाम भी एक पत्र दिया था, जिसमें यह कहा गया था कि वे स्वतन्त्रता की घोषणा कर दें। नेपाल के महाराजा को जो पत्र लिखा गया था, उसमें उन्हें स्वतन्त्र राज्य के राजा की मर्यादा दी गई थी।

महेन्द्रप्रताप के नेतृत्व में भारतीय जर्मन मिशन रवाना हो गया और १९१५ के अप्रैल के अन्त में इस्ताम्बूल पहुँचा। वहाँ अनवर पाशा ने उनका स्वागत किया और अमीर के नाम से एक पत्र और दिया गया। तुर्की सरकार ने इसके पूर्व अफगानिस्तान में कई मिशन इसी उद्देश्य से भेजे थे। वे ईरान से आगे

नहीं जा सके थे, पर अनवर पाशा ने यह आशा प्रकट की कि यह मिशन सफल रहेगा।

जेहाद धर्म-युद्ध है, इसलिए कहाँ तक उसमें गैर-मुस्लिमों को साथ रखा जा सकता है, इस सम्बन्ध में कुछ लोगों के मन में कुछ सन्देह था, इसलिए बरकतुल्ला ने शेख उल-इस्लाम से एक फतवा तैयार करवा लिया, जिसमें यह कहा गया कि इस संकटकाल में इस प्रकार का सहयोग उचित है। यह फतवा सार्वजनिक रूप से सोफिया मस्जिद में पढ़ा गया।

मिशन इस प्रकार फतवा और पत्रों से लैस होकर तुर्की सीमान्त पर पहुँचा जहाँ रऊफ बे इन्चार्ज थे। इन्होंने पहले तो महेन्द्रप्रताप से यह कहा कि आगे रास्ता बहुत ही खतरनाक है, महेन्द्रप्रताप इससे विचलित नहीं हुए। पर रऊफ बे अड़ा रहा। हेंटिग ने जून-जुलाई में बर्लिन में तार भेजा कि जब से महेन्द्रप्रताप रऊफ बे से इस प्रकार मिले हैं, वे आगे नहीं बढ़ रहे हैं। इस पर कहते हैं, जर्मन वैदेशिक विभाग बहुत नाराज हुआ क्योंकि उनका ख्याल यह था कि रऊफ बे अंग्रेजों का मित्र है। असल में ऐसी बात नहीं थी। बात इतनी ही थी कि रऊफ बे तुर्की सरकार के अधीन होने पर भी उस सरकार की खराबी के कारण अपने को बहुत कुछ स्वतन्त्र समझता था। उसकी राय यह थी कि तुर्की को इस लड़ाई में पड़ना ही नहीं चाहिए था। इसके अलावा एक बात यह थी कि रऊफ बे के साथ अब्दुल रब पेशावरी नाम से एक भारतीय कर्मचारी था जो इसमें अड़ंगा लगा रहा था।

बड़ी मुश्किल के बाद यह मिशन आगे रवाना हुआ। सचमुच आगे का रास्ता बहुत ही खतरनाक था क्योंकि चारों ओर अंग्रेजों के गुप्तचर और सैनिक फैले थे। एक ईरानी अखबार में इस मिशन की बात छप भी गई। इन दिनों ईरान में अंग्रेजों का बहुत प्रभाव था। यद्यपि वह प्रभाव इतना नहीं था कि बिलकुल उन्हीं की व्यवस्था हो। बहुत कुछ अराजकता थी। ईरान के पहाड़ी लोग भाड़े के टट्टू बने हुए थे। जो पैसा देता, उसी की तरफ से काम करते थे। एक दिन मिशन पर हमला भी हो गया और मिशन के पास राजाओं के नाम से जो पत्र थे, वे लूट लिए गए। पर बहुत जरूरी पत्र महेन्द्रप्रताप के साथ थे, और वे इन डाकुओं के हाथ नहीं लगे। अन्त तक यह मिशन काबुल पहुँच

ही गया ।

बाद को इस मिशन के सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद में भी बातचीत हुई थी जिसमें ब्रिटिश सचिव ने यह कहा था कि महेन्द्रप्रताप अवध का एक मामूली ताल्लुकेदार है, पर बर्लिन के अनार्किस्टों ने उन्हें कैसर के सामने एक राजा कह कर पेश किया है ।

जो कुछ भी हो, काबुल में अंग्रेज इस मिशन के विरुद्ध कार्य करते रहे, पर अमीर अंग्रेजों के दबाव के बावजूद इस मिशन को निकाल बाहर करने के लिए राजी नहीं हुए । यहीं महेन्द्रप्रताप ने अपनी अस्थायी सरकार भी बनायी थी, जिसका हम अन्यत्र उल्लेख कर चुके हैं । डॉक्टर हेंटिग चीन और अमेरिका होकर भारत लौट आए । हेंटिग के अनुसार हबीबुल्ला इस कारण अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा नहीं हुआ कि उसके पास सिर्फ आठ हजार सेना थी । उसके सब अफसर साठ से ऊपर के थे और युद्ध-सामग्री की कमी थी। कप्तान नीदर मेयर का कहना था कि अमीर किसी भी हालत में लड़ाई में नहीं उतरता । पर महेन्द्रप्रताप का कहना है कि अमीर ने जो धन-राशि अफसर और अस्त्रादि अपने हाथ से लिखकर माँगा था, वह जर्मनों से न मिल सकने के कारण वह लड़ाई में न उतर सका । इसके अलावा एक बात जिस पर सब लोग सहमत हैं, वह यह है कि अमीर सुन्नी मुसलमान होने पर भी तुर्की सरकार के विरुद्ध थे और उनका कहना यह था कि तुर्कों की ओर से जो पैन इस्लामवाद का नारा दिया जा रहा है, उसका असली उद्देश्य तुर्कों का विश्व-साम्राज्य स्थापित करना था, इस्लाम का तो नाम ही नाम था ।

अमीर धीरे-धीरे जर्मन और तुर्की मे दूर हटते गए और तटस्थ बने रहे । १९१९ में अमीर हबीबुल्ला को अपना जीवन देकर इस गलती का प्रायश्चित्त करना पड़ा था । राजा महेन्द्रप्रताप १९१८ में ही रूस होकर बर्लिन चले गए थे ।

स्वाभाविक रूप से जब जर्मनी युद्ध में हार गया, तो बर्लिन के जो भारतीय क्रान्तिकारियों की स्थिति बिगड़ गई । फिर भी समिति यह दबाव डालने लगी कि सन्धि में भारतीय स्वतन्त्रता की बात उठाई जाए । जर्मन वैदेशिक विभाग से कहा गया कि इसके लिए क्रान्तिकारियों को पेरिस में जाकर

अपना मुकदमा पेश करने का मौका दिया जाए । इस पर यह कहा गया कि यदि फ्रेंच सरकार क्रान्तिकारियों को पेरिस जाने की अनुमति देती है तो हमें कोई आपत्ति नहीं । बर्लिन समिति के अन्त का वर्णन करते हुए श्री दत्त ने बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा है—"यदि महायुद्ध का परिणाम कुछ और होता और वर्साई की सन्धि दूसरे रूप में होती तो अंग्रेज सरकार ने १६१६ की सन्धि के अवसर पर जिन जी-हुजूर भारतवासियों का चिड़ियाखाना वहाँ स्थापित किया था, उसके बदले बर्लिन समिति के सदस्य वहाँ भारतीय स्वतन्त्रता के लिए दहाड़ते होते ।"

अब थोड़े में यह बता दिया जाए कि बर्लिन समिति को अपने कार्य के दौरान में किस प्रकार बाधाओं का सामना करना पड़ा था । बर्लिन समिति समय-समय पर प्रचार के लिए कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाशित करती रहती थी जैसे—(१) क्या भारत राजभक्त है, (२) ब्रिटिश लोगों के ही द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन की निन्दा, (३) भारत पर सही मत, (४) भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के दस वर्ष का इतिहास, (५) इंग्लैण्ड ने भारत पर कैसे कब्जा किया, (६) स्वतन्त्रता के लिए भारत की माँग, (७) भारत में ब्रिटिश शासन पर समाजवादी सम्मेलन ।

इन पुस्तिकाओं के उत्तर में ब्रिटेन की ओर से भी पुस्तिकाएँ निकाली जाती थीं । इसके लिए ब्रिटिश सरकार कुछ लोगों को समय-समय पर नियुक्त करती थी । इसके अलावा यह भी प्रचार किया जाता था कि क्रान्तिकारियों के द्वारा लिखी हुई पुस्तिकाएँ असल में जर्मनों के द्वारा लिखी हुई हैं ।

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि अंग्रेज बहुत गुप्तचर रखते थे । इन गुप्तचरों में एक विशेष गुप्तचर महेन्द्रप्रताप का निजी मन्त्री हरिश्चन्द था, जिसने बर्लिन समिति को तरह-तरह से धोखा देकर बहुत रुपए लिए । यह महाशय स्वामी श्रद्धानन्द के कोई थे, ऐसा डॉ० दत्त ने लिखा है । इसके अलावा ठा० यशोराजसिंह सिसौदिया ने भी कई तरह की बेईमानियाँ कीं और अन्त तक यह तय नहीं हो पाया कि यह अंग्रेजों का गुप्तचर था या महज एक ठग था । भारत सरकार को जो खबरें मिलती थीं, वे ऐसे ही गुप्तचरों से मिलती थीं, इसलिए बहुत-सी खबरें गलत होती थीं ।

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि बर्लिन समिति के सामने भारत

के शासन का कौन-सा रूप था, यानी यदि उनका षड्यन्त्र सफल होता तो भारत में कैसा शासन स्थापित होता । इस पर बर्लिन समिति के मन्त्री श्री दत्त ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि संवैधानिक गणतन्त्र तक ही विचार गया था । यह भी ख्याल था कि भारत एक राज्यों का संघ होगा यानी जर्मनी और अमेरिका के बीचोंबीच कोई शासन तन्त्र होगा ।

८

बिहार-उड़ीसा में क्रान्तिकारी हलचल

बिहार उड़ीसा प्रान्त अब अलग-अलग हो गए हैं, किन्तु तथाकथित प्रान्तीय स्वराज्य से पूर्व दोनों प्रान्त एक थे। बिहार-उड़ीसा प्रान्त के एक तरफ बंगाल तथा दूसरी तरफ उत्तर-प्रदेश होने पर भी क्रान्तिकारी आन्दोलन की दृष्टि से यह भूमि ऊसर साबित हो चुकी है, विशेष कर शुरू के युग में यह बात और भी सत्य थी। जिस युग की बात हम लिखने जा रहे हैं उस में बंगाल और बिहार अलग हो चुके थे, सन् १९०५ तक ये दोनों प्रान्त एक थे। बिहार में क्रान्तिकारी आन्दोलन पनपा नहीं, इनकी वजह मैं यह समझता हूँ कि तब तक बिहार में अंग्रेजी शिक्षित मध्यवित्त श्रेणी की उतनी हद तक उत्पत्ति नहीं हुई थी, इसलिए न तो वे समस्याएँ थीं न उनके वे समाधान। बिहार बंगाल के बहुत से बंगाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सहायक बन कर बिहार में आकर बस गए। इनकी हालत बंगाल की उसी श्रेणी के लोगों से अच्छी थी, इसलिए उनको राजनैतिक आन्दोलन से कोई सरोकार न था। दूसरी ओर इन्हीं लोगों की वजह से बिहार की मध्यम श्रेणी पनप न सकी। एक तो वे शिक्षा में इन बंगालियों से पिछड़े हुए थे, दूसरे ये बंगाली मँजे हुए कर्मचारी थे, ब्रिटिश साम्राज्य इनका एतबार करता था। गदर के तूफानी दिनों में इनकी परीक्षा हो चुकी थी, इसलिए वे अधिक आसानी से नौकरी में ले लिए जाते थे। अप्रासंगिक होते हुए भी यह कह देना आवश्यक है कि आज दिन बिहार में जो बंगाली-बिहारी समस्या है उसका प्रारम्भ केवल बिहारी तथा बिहार में बसे हुए इन बंगालियों के अर्थात् मध्यवित्त श्रेणी के आपसी झगड़े से उद्भूत है। इनमें झगड़ा सिर्फ इतना रहा है कि बिहार के बंगाली कहते हैं हम खानदानी नौकरीपेशा हैं, हमें पहले नौकरी मिलनी चाहिए, किन्तु बिहार की मध्यवित्त श्रेणी कहती है कि नहीं यह कोई वजह नहीं हम लोगों ने भी नौकरी करने की अच्छी तालीम पाई है, हमें नौकरी पहले मिले! स्मरण रहे यह झगड़ा केवल

नौकरियों तथा टुकड़ों का झगड़ा है, जनता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु मध्यम श्रेणी के पढ़े-लिखे गुलामी के लिए लालायित बंगाली और बिहारी दूसरी श्रेणियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कैसे-कैसे नारे देते रहे हैं, कैसी बेशर्मी से वे बिहार और बंगाल की संस्कृति की कसमें खाते रहे हैं, यह देखने की बात है।

केनेडी हत्याकाण्ड—बिहार की भूमि पर जो सबसे पहला क्रान्तिकारी विस्फोट हुआ वह केनेडी हत्याकाण्ड था, किन्तु इससे बिहार निवासियों से कोई ताल्लुक नहीं था। बंगाल में किंग्स फोर्ड नामक एक जज थे। इनकी कलम से सैकड़ों देशभक्तों को सजा हो चुकी थी। कहा जाता है कि राजनैतिक अभियुक्त को सजा देने में यह महाशय इस्तगासे से कहीं अधिक जोश दिखलाते थे, कोई राजनैतिक मामला इनकी अदालत से छूटता नहीं था। लोगों में इन सब बातों से निराशा फैल रही थी, दल ने निश्चय किया कि इस प्रकार आतंकवाद को सिर नीचा करके सहते जाना गलत है, तदनुसार यह निश्चय हुआ कि आतंकवाद का जवाब आतंकवाद से दिया जाए। यहाँ पर एक बात समझ लेने की जरूरत है कि भारतीय क्रान्तिकारियों ने आतंकवाद से कभी काम नहीं लिया, इन्होंने तो निरन्तर चलनेवाले सरकारी आतंकवाद का जवाब अपनी क्षीण शक्ति के अनुसार एक आध छिटपुट हमले से देने की चेष्टा की। इस दृष्टि से वे आतंकवादी नहीं थे, बल्कि आतंकवादी थी वह सरकार, भारतीय क्रान्तिकारियों को अधिक से अधिक कहा जाए तो प्रत्यातंकवादी (Counter-terrorist) कहा जा सकता है। रहा यह कि इन छिटपुट हमलों से बनता बिगड़ता क्या है, इसके उत्तर में भारतीय क्रान्तिकारी आयरिश वीर टेरेन्स मैकस्विनी के (जिसने ७२ दिन तक अनशन कर प्राण दे दिए) इस वचन को उद्धृत करते थे—

Any man who tells you that an act of armed resistance—even if offered by ten men only—even if offered by men armed with stones—any men who tell you that such an act of resistance is premature, imprudent or dangerous, any and every such man should be spurned and spat at. For mark this and recollect it that somewhere and by somebody a beginning must

be made and that the first act of resistance is always and must be ever premature imprudent and dangerous.

भावार्थ—"कोई भी व्यक्ति जो कहता है कि सशस्त्र विरोध (चाहे दस ही व्यक्ति के द्वारा किया गया हो, चाहे उनके पास पत्थर के सिवा कोई शस्त्रास्त्र न हो) असामयिक, अपरिणामदर्शी तथा खतरनाक है, तो वह इस योग्य है कि उसका तिरस्कार किया जाए, तथा उस पर थूक दिया जाए, क्योंकि किसी न किसी के द्वारा कहीं न कहीं किसी न किसी तरह विरोध शुरू होगा ही, और वह पहला विरोध हमेशा असामयिक, अपरिणामदर्शी तथा खतरनाक प्रतीत होगा।"

मैं इस विषय पर बाद को फिर आलोचना करूँगा, अभी मैंने सिर्फ क्रान्तिकारियों के दृष्टिकोण को पाठकों के सम्मुख रख दिया।

खुदीराम तथा प्रफुल्ल—दल ने मिस्टर किंग्सफोर्ड को सजा देने के लिए दो नवयुवकों को तैनात किया। एक का नाम था खुदीराम बोस तथा दूसरे का नाम था प्रफुल्लकुमार चाकी। इस बीच में मिस्टर किंग्सफोर्ड का तबादला मुजफ्फरपुर हो गया था। यह निश्चित हुआ कि खुदीराम तथा प्रफुल्ल जाकर मुजफ्फरपुर में ही मिस्टर किंग्सफोर्ड पर चढ़ाई करें। ये दोनों एक तो कम-उम्र थे, खुदीराम की उम्र केवल सत्रह साल की थी, दूसरे ये मुजफ्फरपुर में नए थे, फिर भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी, और वे एक धर्मशाला में टिककर मिस्टर किंग्सफोर्ड का पता लगाने लगे। कुछ दिनों के अथक परिश्रम के बाद उनको पता लगा कि मिस्टर किंग्सफोर्ड किस रंग की गाड़ी में किधर और कब घूमने निकलते हैं। उन्होंने निश्चय किया कि जब इसी प्रकार मिस्टर किंग्सफोर्ड घूमने निकलें तो उन पर बम डाला जाए, और इस प्रकार अपना ध्येय पूरा किया जाय। इन नौजवानों को कोई नृशंस हत्यारा न समझें क्योंकि जिस समय उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे मिस्टर किंग्सफोर्ड पर बम डालेंगे उसी समय उन्होंने यह भी समझ लिया था कि उनकी नन्हीं-सी गर्दनें होंगी और फाँसी की रस्सियाँ होंगी। नौजवानी थी, अरे अभी तो सब उसमें विकसित भी नहीं हो पाई थी, फूल अभी खिला नहीं था, कली के अन्दर गन्ध कैद पड़ी हुई रो रही थी कि इन्होंने तय कर लिया कि यह बिना खिले ही मुरझा जाएगी। देश की बलिवेदी

को इस बलि की जरूरत लगी, बस वे तैयार हो गए।

३० अप्रैल, १९०८—३० अप्रैल की रात थी, कोई आठ बजे थे। एक गाड़ी सरकती हुई चली आ रही थी, हाँ इस गाड़ी का रंग वही था जो मिस्टर किंग्स-फोर्ड की गाड़ी का था। खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने, जो कहीं अँधेरे में क्लब के पास प्रतीक्षा कर रहे थे, बड़ी सतर्कता से इस गाड़ी की ओर देखा, हाँ वही गाड़ी थी, उन्होंने अपने बम को सम्हाल लिया, और गाड़ी निशाने के अन्दर आते ही बम चला दिया। दुर्भाग्यवश उस गाड़ी में वे जिसे मारना चाहते थे, वह नहीं था, बल्कि दो अंग्रेज रमणियाँ थीं, एक श्रीमती केनेडी, दूसरी कुमारी केनेडी, दोनों वहीं ढेर हो गईं।

खुदीराम की गिरफ्तारी—बम फेंककर ही खुदीराम भाग निकले। इधर पुलिस को खबर लगते ही सारा शहर घेर लिया गया, और तलाशियों की धूम मच गई। खुदीराम रात-भर भागकर मुजफ्फरपुर से पच्चीस मील की दूरी पर वेनी पहुँचे, यहाँ सवेरे के समय भूख से परेशान हालत में एक बनिए की दूकान पर लाई चने की तलाश पर गए थे। वहाँ उन्होंने लोगों को कहते सुना कि मुजफ्फरपुर में दो मेमें मारी गई हैं, और मारनेवाले भाग निकले हैं। इस बात को सुनकर कि किंग्सफोर्ड नहीं मारा गया है, और उसकी जगह पर दो मेमें मारी गईं, खुदीराम को इतना आश्चर्य तथा क्षोभ हुआ कि उनके मुँह से एक चीख निकल पड़ी। उनके बाल अस्त-व्यस्त हो रहे थे, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, एक भयानक दुर्घटना की छाप उनके चेहरे पर थी। लोगों ने जो खुदीराम की चीख सुनी और खुदीराम के अस्त-व्यस्त चेहरे की ओर देखा तो उन्हें एकाएक शक हो गया कि हो न हो यही हत्यारा है। बस लोग उन्हें पकड़ने को दौड़ पड़े। जनता को तो इस काम से कोई सहानुभूति नहीं थी, इसके साथ ही प्रलोभन बहुत से थे, गदर में एक-एक अंग्रेज को जिलाने पर कैसे एक-एक जिला ईनाम में मिला था यह सब लोगों को याद था। खुदीराम आसानी से आत्म-समर्पण करनेवाले नहीं थे, उनके पास गोली से भरी एक पिस्तौल थी, किन्तु वह उसका नाहक उपयोग नहीं करना चाहते थे। वे दौड़े, उनके पीछे-पीछे जनता दौड़ी। यह कितना अजीब दृश्य था, जिस जनता का राज्य लाने के लिए खुदीराम ने यह महान व्रत लिया था, वही उनको पकड़कर साम्राज्यवाद के

जल्लादों के हाथ सौंपने जा रही थी।

अन्त में खुदीराम पकड़ लिए गए। साम्राज्यवाद के अगणित किराए के गुण्डों से यह नन्हा बालक कब तक बचता ? पुलिस के सिपाहियों ने उसे पकड़ कर मुजफ्फरपुर भेज दिया। अब इसके बाद का इतिहास वही है जो सब शहीदों का है, न्याय का पर्दा रचा गया, फाँसी सुनाई गई, फिर एक दिन फाँसी दे दी गई।

प्रफुल्ल चाकी—खुदीराम तो बेनी पहुँचे, इधर उनके साथी प्रफुल्ल चाकी समस्तीपुर पहुँचे, किन्तु साम्राज्यवाद का जाल ऐसा विस्तृत था कि वहाँ भी उन्हें दुर्भाग्य ने आ घेरा। जिस डिब्बे में प्रफुल्ल चाकी बैठे थे, उसमें एक दारोगा जी भी बैठे थे। ये मुजफ्फरपुर के हत्याकाण्ड के विषय में सुन चुके थे, इन्होंने प्रफुल्ल को देखा तो इनको सन्देह हुआ। दारोगा ने पहले मुजफ्फरपुर पुलिस को तार से इत्तला दी, फिर हुलिया मालूम कर दो-तीन स्टेशन बाद उसको गिरफ्तार करना चाहा, किन्तु प्रफुल्ल भी इसके लिए तैयार था। उसने अपनी पिस्तौल निकाली, और घोड़ा दबाकर एक गोली उस व्यक्ति को मारी जो उसे पकड़ने आ रहा था, किन्तु वार खाली गया। जब ऐसी हालत हो गई, तो प्रफुल्ल चाकी ने पिस्तौल की नली का रुख बदल दिया, और अपने को ही गोली मार दी। प्रफुल्ल चाकी वहीं मुरझाकर गिर पड़ा, दारोगा जी हाथ मलते रह गए। दारोगा जी का नाम था नन्दलाल बनर्जी। नन्दलाल बनर्जी को बहुत सम्भव है सरकार से इस खून के लिए कुछ ईनाम मिला हो, किन्तु क्रान्तिकारी दल की ओर से भी उन्हें कुछ मिला। कुछ दिन बाद नन्दलाल कलकत्ते की एक सड़क पर दिन-दहाड़े मार डाले गए, बंगाल के क्रान्तिकारियों ने प्रफुल्ल चाकी का तर्पण इस प्रकार नन्दलाल के शोणित से किया।

सन् १९०८ का जमाना था, बन्देमातरम् कहने पर कोड़ों की मार पड़ती थी, ऐसे युग में खुदीराम का यह बम—एक गुमराह लक्ष्यभ्रष्ट बम ही सही, साम्राज्यवाद की आँखों में कितनी बड़ी धृष्टता थी ! यों तो साम्राज्यवाद के तरकश में बहुत से तीर थे, किन्तु इस अपराध के लिए केवल एक ही सजा थी ! मौत, जल्लाद के हाथ की मौत ! देश में वकीलों की कमी नहीं थी, स्वयं काँग्रेस एक वकीलों का गुट थी, किन्तु खुदीराम के लिए कोई वकील नहीं

मिला । केवल एक कालीदास बोस खुदीराम की ओर से पैरवी करने के लिए तैयार हुए, किन्तु खुदीराम को वकीलों की जरूरत क्या थी, उन्होंने तो स्वीकार कर लिया कि मैंने बम फेंका था । जज ने बोस को फाँसी की सजा दी । ११ अगस्त को खुदीराम को फाँसी दे दी गई ।

यह एक दिलचस्प बात है कि जिस जनता ने नासमझीवश खुदीराम को पकड़ा दिया, उसी जनता ने खुदीराम की फाँसी के बाद उन्हें एक शहीद की इज्जत दी। बात यह है इस बीच में जनता जान चुकी थी कि यह घुंघराले बालों वाला, बड़ी-बड़ी आँखोंवाला किशोर कौन है । खुदीराम की धुँधुआती चिता के चारों ओर एक विराट जनसमुदाय था । लोगों के सिर पर उस समय अहिंसा का भूत नहीं था, लोग जी खोलकर अपने प्यारे शहीद का अभिनन्दन कर रहे थे । भारत स्वतन्त्र होने पर वहाँ एक स्मारक भी बनाया गया है । यद्यपि बिहार के सभी नेताओं ने इस स्मारक की स्थापना में भाग लिया, पर श्री जवाहरलाल नेहरू ने इसमें भाग लेने से इनकार किया ।

आखिर चिता भी जल चुकी, खुदीराम की देह उसमें भस्मीभूत हो चुकी, किन्तु जनता को अपने प्यारे शहीद की स्मृति प्यारी थी, वह झपटी उसकी राख के लिए । किसी ने उसकी तावीज बनवाई, किसी ने उसको सिर से मला, स्त्रियों ने उसे अपने स्तन पर मला । एक स्वर्गीय दृश्य था, और यही क्यों ? हजारों आदमी एक साथ फूट-फूटकर रो रहे थे, कोई आँसू पोंछता था, कोई गम्भीर बन गया था । इस सार्वजनिक शोक को मैं एक दिव्य घटना समझता हूँ । ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका कम महत्त्व नहीं है । यह बात सच है कि इन सर्वस्वत्यागी अलमस्तों ने जनता को साथ में नहीं लिया था, किन्तु इनके महान त्याग और फाँसी को एक खेल समझने की मनोवृत्ति ने जनता को इनकी ओर खींच लिया । लोरियों में, कहानियों में, किम्वदन्तियों में इन लोहे की रीढ़वालों का प्रवेश हो गया । सैकड़ों अखबारों के जरिए से एक दल वर्षों में जितना जनता में प्रविष्ट नहीं हो पाता था, ये अलमस्त एक फाँसी से एक दिन के अन्दर उस से कहीं अधिक जनता के दिल में घर कर लेते थे । हिन्दुस्तान में सैकड़ों दल वर्षों से काम कर रहे हैं, जिनमें से कुछ के प्रचार कार्य का ढंग बिलकुल आधुनिक था । जहाँ देखो वे अपने आदमियों को सभा-सोसाइटियों में सभापति करके

बुलाते हैं, बढ़ाते हैं। किन्तु फिर भी उनका नाम जनता तक उतना नहीं पहुँच सका जितना खुदीराम का पहुँचा।

लोकमान्य तिलक और खुदीराम—खुदीराम का अभिनन्दन केवल आम जनता ने ही नहीं किया, बल्कि गाँधी जी के पूर्व भारत के सर्व समझदार सार्वजनिक नेता लोकमान्य तिलक ने स्वयं इस कांड पर दो लेख लिखे। रौलट साहब ने लिखा है कि ये लेख 'केसरी' में मई और जून में प्रकाशित हुए थे तथा इनमें जनता-विरोधी अफसरों को हटाने के लिए बम की प्रशंसा की गई थी। अहिंसावादी काँग्रेसजनों को शायद यह सुनकर आश्चर्य हो कि लोकमान्य को इन्हीं लेखों के कारण छः साल की सजा मिली थी।

२२ जून को मराठी 'केसरी' में जो सम्पादकीय प्रकाशित हुआ था, उसमें से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है, वह यों था—

"१८९७ की धुँधली रात को मिस्टर रैंड की हत्या के बाद से मुजफ्फरपुर के इस धड़ाके तक प्रजा के हाथों से कोई भी ऐसा काम नहीं हुआ जो अफसर वर्ग के ध्यान को हमारी ओर अच्छी तरह खींचता। १८९७ की हत्याओं में और इस धड़ाके में बहुत ही प्रभेद है। साहस तथा अच्छी तरह अपने काम को अन्जाम देने की दृष्टि से देखा जाए तो चाफेकर भाइयों के काम को बंगाल के बम पार्टी के लोगों के काम से श्रेष्ठतर मानना पड़ेगा। यदि उद्देश्य तथा उपाय (बम) को देखा जाए तो बंगालवालों को श्रेष्ठतर मानना पड़ेगा। न तो चाफेकर-बन्धुओं ने और न बम फेंकनेवाले बंगालियों ने ये काम अपने ऊपर किए गए अत्याचारों के बदलास्वरूप, वैयक्तिक झगड़े या मनमुटाव के फलस्वरूप किए। ये हत्याएँ दूसरी हत्याओं से बिलकुल दूसरी तरह की हैं क्योंकि इन हत्याओं के करनेवालों ने अत्यन्त उच्च भावुकता के वशवर्ती होकर किया था। यद्यपि कुछ हद तक इन दोनों क्षेत्रों में की गई हत्याओं का उद्देश्य एक था, किन्तु फिर भी मानना पड़ेगा कि बंगाली बम का उद्देश्य कुछ अधिक सूक्ष्म था। १८९७ में पूना निवासियों को ताऊन के बहाने खूब सताया गया था, इसी अत्याचार के बदले मिस्टर रैंड मारे गए थे, इसलिए यही कहा जा सकता है कि यह हत्या बिलकुल ही (Exclusively) राजनैतिक थी। यह शासन-पद्धति ही खराब है और जब तक कि एक एक अफसर को चुन-चुनकर डराया न जाए, तब तक

पद्धति नहीं बदल सकती, इस किस्म के महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत दृष्टिकोण से चाफेकर भाइयों ने किसी बात को नहीं देखा था । दृष्टिकोण मुख्यतः ताऊन के अत्याचारों तक सीमित था । मुजफ्फरपुरवालों की बात और है, वंग-भंग के कारण ही उनकी दृष्टि में यह विस्तृति संभव हुई थी, इसके अतिरिक्त पिस्तौल या तमंचा एक पुरानी चीज है, किन्तु बम पाश्चात्य विज्ञान का आधुनिकतम आविष्कार है । फिर भी एक आध बमों से किसी सरकार की सामरिक शक्ति नहीं विनष्ट होगी, बम से कोई सेना नहीं खतम हो जाती, न सामरिक शक्ति का कोई खास नुकसान ही होता है, बम से केवल इतना ही हो सकता है कि सरकार की दृष्टि उन अत्याचारों की ओर जाती है जो इन बमों को जन्म देते हैं ।"

ऊपर जो कुछ उद्धृत किया गया, उस पर टीका करने की आवश्यकता नहीं, आतंकवाद से जन-क्रान्ति नहीं हो सकती । यह तो इस लेख के लेखक भी मानते हैं, किन्तु बाद को फिलिस्तीन में होनेवाले अरब आतंकवाद तथा उसके फलस्वरूप ब्रिटिश परराष्ट्र नीति के बदलते हुए रुख को देखकर कौन इतिहास का विद्यार्थी कह सकता है कि आतंकवाद बेकार जाता है ? और उदाहरण भी है । अस्तु ।

'काल' नामक एक मराठी अखबार ने मुजफ्फरपुर की हत्या के बारे में एक लेख लिखा । इस लेख में लिखा गया था कि "लोग अब स्वराज्य के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं, और अब वे ब्रिटिश राज्य का गुणगान नहीं करते । अब उन पर से ब्रिटिश राज का दबदबा उठ गया, यह सारा दबदबा केवल पशुशक्ति की बदौलत है, यह सभी समझ गए हैं । भारतवर्ष तथा रूस में होनेवाले बमों के प्रयोग में कुछ प्रभेद है, वह प्रभेद यह है कि रूस में बम फेंकनेवाले के विरुद्ध भी एक बड़ा समूह है, किन्तु इसमें सन्देह है कि भारतवर्ष में कोई सरकार के साथ सहानूभूति करेगा । यदि ऐसा होते हुए भी रूस को 'डूमा' याने धारासभा मिल गई, तो इसमें तो शक नहीं कि भारतवर्ष को स्वराज्य ही मिल जाएगा । भारतवर्ष के बम फेंकनेवालों को अराजकतावादी कहना बिलकुल गलत है । यह प्रश्न तो छोड़ दिया जाए कि बम फेंकना अच्छा है या बरा, यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारतीय बम फेंकनेवालों का उद्देश्य अराजकता फैलाना नहीं, बल्कि स्वराज्य प्राप्त करना था ।"

'काल' के सम्पादक को ८ जुलाई, १६०८ को मुजफ्फरपुर के बारे में लिखे गए एक लेख के कारण सजा हुई थी।

अलीपुर षड्यन्त्र और बिहार—बिहार में देवघर नामक एक स्थान है जहाँ बंगाली लोग स्वास्थ्य के ख्याल से बहुत आया-जाया करते हैं। वारीन्द्र और अरविन्द घोष के नाना श्रीराजनारायण वसु तो यहीं बसे हुए थे। वारीन्द्र की अधिकांश शिक्षा देवघर में ही हुई। राजनारायण वसु ने किसी जमाने में एक गुप्त समिति स्वयं बनाने की चेष्टा की थी। वारीन्द्र देवघर के 'स्वर्ण-संघ' (Golden league) नामक एक संस्था के सदस्य थे, इस संस्था का उद्देश्य विदेशी-द्रव्य-वहिष्कार तथा स्वदेशी-द्रव्य-प्रचार था। अलीपुर षड्यन्त्र के लोगों द्वारा परिचालित 'युगान्तर' का एक मुद्रक देवघर का ही था। अलीपुर षड्यन्त्र के दौरान में पता लगा कि देवघर का एक मकान जिसे 'शीलेर बाड़ी' कहते हैं क्रान्तिकारियों द्वारा बम बनाने तथा ऐसे ही कामों के लिए इस्तेमाल किया गया था। प्रफुल्ल चाकी का नामांकित एक अखबार भी इसी मकान से बरामद हुआ था।

निमेज हत्याकाण्ड—मुजफ्फरपुर हत्याकाण्ड के बाद बिहार में बहुत दिनों तक कोई क्रान्तिकारी घटना नहीं हुई, हाँ कुछ बंगाली फरार बिहार में आते जाते रहे। किन्तु मालूम होता है उनका उद्देश्य संगठन करना नहीं था, बल्कि अपने को छिपाना था, क्योंकि बिहार में पुलिस का उपद्रव कम था।

निमेज हत्याकांड के नाम से जो घटना मशहूर है उसको हम बहुत राजनैतिक महत्त्व देने के लिए तैयार नहीं हैं, फिर भी यह मामला राजनैतिक था, इसमें कोई सन्देह नहीं। शोलापुर के दो जैनी युवक मानिकचन्द और मोतीचन्द पूना में पढ़ते थे, फिर बाद को ये जयपुर के एक जैनी शिक्षक श्री अर्जुनलाल सेठी के विद्यालय में पढ़ने लगे। पढ़ने तो ये धर्मशास्त्र गए थे, किन्तु राजनीति की ओर इनकी जबरदस्त अभिरुचि थी। ये लोग यहाँ आने के पूर्व ही मैजिनी का जीवन-चरित्र, तिलक के लेख तथा 'काल', 'भोला' और 'केसरी' के जोशीले लेख पढ़ चुके थे। इस विद्यालय में मिरजापुर के बिशनदत्त नामक एक सज्जन अक्सर आया करते थे, इनकी उम्र ४० साल की थी और ये लड़कों में भाषण भी दिया करते थे।

बिशनदत्त राजनैतिक विषयों पर बोला करते थे। कहा जाता है कि वह देशभक्ति का उपदेश देते थे। पुलिस का यहाँ तक कहना है कि वह 'डकैतियों से ही स्वराज्य मिलेगा' ऐसा कहते थे। कहा जाता है वह लड़कों में ही दो-दो तीन-तीन को एक साथ उपदेश देते थे, और उसमें यह कहते थे कि डकैतियों की इसलिए आवश्यकता है कि धन मिले और धन की इसलिए कि उससे हथियार मोल लिए जाएँ और हथियारों की इसलिए जरूरत थी कि डकैतियाँ की जाएँ। वे देश की दुर्दशा पर भी लोगों की दृष्टि आकर्षित करते थे। वे कन्हाईलाल दत्त की (जिन्होंने अलीपुर षड्यन्त्र के मुखबिर को जेल के अंदर मारा था) तारीफ करते थे। एक दिन बिशनदत्त इसी प्रकार बोल रहे थे, एक-एक शब्द लड़कों के दिल में चुभता जाता था, एकाएक बोलते-बोलते वे रुक गए, फिर वे अपने श्रोताओं की ओर देखकर बोले—"अब तक तो बातें ही रहीं, क्या आप कुछ करने को तैयार हैं ?"

मुखबिर के बयान के अनुसार इस पर सब लोगों ने कहा—'हाँ'। बस यहीं से डकैती का सूत्रपात होता है।

यह मुकदमा आरा में मिस्टर बी०एन० राय के इजलास में चला था। मिस्टर पी० सी० मानुक सरकारी वकील थे। इस्तगासे की ओर से वंशरोपण ने बयान दिया—"मोतीचन्द शिवरात्रि के दो दिन बाद एक मनुष्य के साथ मठ में आया था, एक रात ठहरकर वह चला गया। रविवार को मैं अपने भाई के गौने के लिए घर गया था। संध्या समय लालटेन आदि लाने को मैं मठ में गया था, उस समय एक दुबले-पतले अजनबी मनुष्य को मैंने मठ में देखा था। दूसरे दिन आने पर मैंने इस अजनबी को नहीं पाया। चार-पाँच दिन बाद फिर वही अजनबी मठ में आया। उसने कहा था कि मैं ब्राह्मण हूँ, और पंजाब से आया हुआ हूँ। वह रसोइए का काम करने लगा। आठ-दस दिन बाद मानिकचन्द तथा एक और आदमी मठ में आया। उन लोगों ने महन्त को तसवीरें आदि दी थीं तथा महन्त ने इनके भोजन आदि के प्रबंध के लिए कहा था। होली के दिन मैं घर जाना चाहता था, किन्तु महंत ने छुट्टी नहीं दी। मैं नौकरी छोड़कर चला गया, संध्या समय महंत मुझे मनाने के लिए घर आए, बहुत समझाने तथा मजबूर किए जाने पर मैंने अपने छोटे भाई वंशीधर को उस दिन भेज दिया।

दूसरे दिन दस-ग्यारह बजे दिन को मेरे चाचा सकल कहार ने कहा कि चारों मनुष्य गायब हैं। पश्चिम के कमरे में जहाँ अजनबी रहते थे वहां मेरे भाई की लाश मिली। महन्त की लाश चारपाई पर मिली, उस पर एक लिहाफ पड़ा था।"

डकैती का संक्षिप्त विवरण यह है कि मोतीचन्द, मानिकचन्द, जयचन्द और जोरावरसिंह नीमेज के लिए रवाना हो गए। इनके पास केवल लाठियाँ थीं। महन्त को तथा वंशीधर को इन्होंने मार डाला, किन्तु संदूक की कुंजी न पा सके। इस सन्दूक में १७०००) रुपए थे। कहा जाता है कि वे इस प्रकार असफल होकर लौट आए। इस बात का प्रमाण है कि इस पर बिशनदत्त बहुत रुष्ट हुए और कहा कि तुम लोगों ने व्यर्थ हत्याएँ कीं।

१९१३ की २० मार्च को ये हत्याएँ की गई थीं, किन्तु पुलिस को करीब एक वर्ष बाद इसका सुराग मिला। अर्जुनलाल जब फिर जयपुर लौटे, तो वह अपने साथ एक आदमी को लेते गए, जिसका नाम शिवनारायण था। शिवनारायण मुखबिर हो गया।

अन्यान्य हलचलें—बनारस के स्वनामधन्य क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने बाँकीपुर में अपनी बनारस-समिति की शाखा खोली थी। इस समिति में काम करने वाले वंकिमचन्द्र मित्र ने बयान देते हुए कहा—"विहार नेशनल कालिज में प्रविष्ट होने के बाद एक समिति बनाकर शचीन्द्र हमें विवेकानन्द के सम्बन्ध में उपदेश दिया करता था। जो इस समिति में भर्ती होता था उससे ईश्वर तथा ब्राह्मणों के नाम यह प्रतिज्ञा ली जाती थी कि वह समिति की वातें किसी को प्रकट नहीं करेगा। हमें यह बताया जाता था कि हम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध क्रान्ति करें, और अंग्रेजों को यहाँ से निकाल कर तभी दम लें। यह भी बताया जाता था कि हम आज से तथा अभी से इसकी तैयारी करें।" वंकिमचन्द्र ने रघुबीरसिंह नामक एक बिहारी को दल में भर्ती कर लिया, रघुबीर ने कई बार 'लिबर्टी' परचे बाँटे। बाद में रघुबीर को इलाहाबाद में ११३ नम्बर इनफैंट्री में एक मुंशीगीरी की नौकरी मिल गई, यहीं पर उसे 'लिबर्टी' परचा बांटने के सिलसिले में दो साल की सजा हुई। शायद इस प्रकार के अपराध में सजा पाने वाले यह पहले ही बिहारी थे।

बिहार में अनुशीलन समिति—बिहार में बंगाल की अनुशीलन समिति ने रेवती नाग नामक एक व्यक्ति को अपना प्रचारक बनाकर भागलपुर भेजा। रेवती ने किस प्रकार काम किया यह एक मुखबिर की जबानी सुन लीजिए। तेजनारायण ने बयान देते हुए कहा "रेवती हमको मातृ-भूमि की दुर्दशा की कहानियाँ सुनाता था। वह कहता था कि हम बिहारी छात्र देश के उद्धारार्थ कुछ भी नहीं कर रहे हैं। हमें इस सम्बन्ध में बंगाल के छात्रों से होड़ करनी चाहिए, वह बराबर मुझसे कहता था कि बिहार का जनमत न तो जोरदार है, न यहाँ कोई नेता ही है। वह हम लोगों से कहता था कि हमें हमेशा मातृ-भूमि के लिए अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि जीवन न्यौछावर करने के लिए तैयार रहना चाहिए। वह हमसे कहा करता था कि बंगाली व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं बल्कि दल के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए डाके डालते हैं। वह हमें डकैतियों, तलाशियों तथा राजनैतिक मुकदमों के विषय में पढ़ने के लिए उत्तेजित करता था, और कहता था कि इन सब बातों को पढ़कर हमें सोचना चाहिए कि क्या इसमें हमारा भी कुछ कर्त्तव्य है या दूर खड़े होकर हम केवल इसका तमाशा ही देखें। संक्षेप में वह हमें उन्हीं कामों को करने की सलाह देता था जो बंगाल के अराजकवादी कर रहे थे। वह यह भी कहता था कि बंगालियों के लिए यह सम्भव नहीं कि वे बिहार में आकर काम करें, बिहारी लोगों को चाहिए कि वे अपना काम आप सम्हालें। बंगाली केवल इतना ही कर सकते हैं कि काम का सूत्रपात कर जाएँ। रेवती इन बातों को केवल अकेले में ही कहता था, उसने मुझे दूसरों के सामने इन विषयों पर बात छेड़ने से मना कर दिया था।

रेवती बाद में अनुशासन भङ्ग करने के अपराध में अपने साथियों द्वारा मारा गया।

एक दूसरे मुखबिर ने रेवती के बारे में यों बयान दिया—"रेवती ने मुझे समझाया कि अंग्रेजों ने भारत में राष्ट्रीयता की प्रगति तथा शिक्षा आदि में बाधा पहुँचाकर हमें पंगु बना रखा है। रेवती ने यह भी कहा कि अंग्रेज लोगों ने सब अच्छी-अच्छी नौकरियाँ हथिया रखी हैं, और वे हमारी मातृ-भूमि के सारे धन को लूट रहे हैं। अंग्रेजों की सारी कार्रवाई का मकसद यह था कि हम हमेशा इनके गुलाम रहें।......उसने हमसे यह भी कहा कि ३३ करोड़ में केवल

३ करोड़ को रोटी मिल रही है, और बाकी लोग भूखे रहते हैं, इसका कारण है अंग्रेजों की शरारत और लूटखसोट ।"

आगे इस मुखबिर ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही, केवल महात्मा गांधी ही नहीं, उस जमाने के जिम्मेदार क्रान्तिकारी भी (रेवती नाग को हम जिम्मेदार ही कहेंगे, क्योंकि अनुशीलन द्वारा वह बिहार का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया था) रामराज्य का स्वप्न देखा करते थे ।

"रेवती मुझसे यह कहता था कि इस सरकार को भगाकर रामचन्द्र या जनक की तरह राज्य, जिसमें विश्वामित्र जैसे ऋषि मंत्री हों, स्थापित करना चाहिए । संक्षेप में वह कहता था कि हमें ऐसी राज्य-पद्धति की स्थापना करनी चाहिए जिसमें न दुर्भिक्ष हो, न शोक हो, और न पाप हो । उसने अपनी बातों से मुझे प्रभावित करने के लिए रामायण के श्लोक उद्धृत किए ।"

रेवती नाग को कुछ युवक मिल गए थे, किन्तु उन लोगों ने न कोई डकैती डाली न अन्य कोई खतरनाक काम किया ।

उड़ीसा की हलचल—उड़ीसा एक बड़ा प्रान्त नहीं तो एक महत्त्वपूर्ण प्रान्त अवश्य है । उड़ीसा की भाषा शायद बंगला के सबसे करीब है, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उड़ियों ने क्रान्तिकारी कामों में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली । फिर भी उड़ीसा का बालासोर नामक स्थान भारत के क्रान्तिकारी इतिहास में अमर रहेगा । आजाद के कारण इलाहाबाद का अलफ्रेड पार्क, जगदीश के कारण लाहौर का शालीमार बाग और भारत के अन्य बहुत से कोने जिस कारण अमर हुए हैं, बुड़ियाबालाम का किनारा उसी भारत के इतिहास में अमर रहेगा । उस छोटी-सी नदी के किनारे यतीन्द्र मुकर्जी, मनोरञ्जन, प्रिय और नरेन्द्र ने अपने गरम लहू से जो अक्षर लिखे हैं उन्हें कोई नहीं मिटा सकता ।

यतीन्द्रनाथ मुखर्जी—यतीन्द्र नाम से भारतवर्ष में दो प्रसिद्ध शहीद हुए हैं, एक साम्राज्यवाद की गोलियों के शिकार हुए, दूसरे ने भूख में तड़पते-तड़पते ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध तिल-तिलकर अपने को कुर्बान कर दिया । यतीन्द्र मुखर्जी का जन्म बंगाल के नदिया जिले के कालाग्राम नामक गाँव में सन् १८७८ ई० में हुआ था । कम उम्र में ही वे पितृहीन हो गए । इसलिए उनकी माता पर ही उनके पालन का भार पड़ा । यतीन्द्र लड़कपन से

ही खेल-कूद में सर्वप्रथम रहते थे, इसका अर्थ यह नहीं कि वे पढ़ने-लिखने में कच्चे थे। उन्होंने एफ० ए० तक तालीम पाई थी, किन्तु साइकिल चढ़ना, घोड़ा चढ़ना, कुश्ती, व्यायाम आदि में उनका मन सबसे ज्यादा लगता था। ७०-७५ मील तक एक साथ साइकिल पर चले जाते थे, रात-रात भर घोड़े की पीठ पर बीत जाता था। शिकार के भी वे शौकीन थे, एक बार वे एक जिन्दा चीता पकड़ लाए तो देखने वाले दङ्ग रह गए। यतीन्द्र में वे सभी योग्यताएँ थीं, जिनसे एक सफल जनरल बनता है, किन्तु वह तो एक गुलाम मुल्क की निम्न मध्यम श्रेणी में पैदा हुए थे, फलस्वरूप उनको शार्टहैंड सीखकर एक दफ्तर में मुंशी बनना पड़ा। यह नौकरी सरकारी थी। केवल इतना ही नहीं, यह तत्कालीन लाट साहब के दफ्तर की थी।

यतीन्द्र के अतिरिक्त कोई भी आदमी इसमें अपना सौभाग्य मानता, किन्तु उनका मन तो कहीं और की उड़ानें भरने में मस्त था। नौकरी की उन्हें न परवाह थी, न फिक्र। एक बार वे ट्रेन में जा रहे थे तो गोरे सैनिकों से झगड़ा हो गया, और उन्होंने उनको पीट डाला। गोरों ने पहले तो मुकदमा चलाया, तैश में थे ही, किन्तु जब देखा कि इसमें हँसी होगी, एक हिन्दुस्तानी ने कई गोरे तथा और भी युद्ध पेशे के लोगों को मारा यह कैसे हो सकता है, बस उन्होंने मुकदमा वापस कर लिया। फिर भी साम्राज्यवाद इस बात को भुला कब सकता था, उनको नौकरी से अलग कर दिया गया। यतीन्द्र जैसा आदमी नौकरी के लिए पैदा नहीं हुआ था, केवल बुद्धिबालाम जानती थी वह क्यों पैदा हुए थे।

रोटी के लिए धन्धा करना जरूरी था, यतीन्द्र ने ठेकेदारी कर ली। इसमें उनको अच्छी सफलता मिली।

बंगाल में इन दिनों क्रान्तिकारी आन्दोलन जोरों पर था। यतीन्द्र भी एक दिन इसमें शामिल हो गए, कितने दिनों से, हाय कितने वर्षों से जिस बात के लिए उनका हृदय तड़प रहा था, अब उन्होंने उसे पा लिया था। अब तक यतीन्द्र मनचले थे, कभी इधर बहक जाते थे, कभी उधर, किन्तु जिस प्रकार सागर को प्राप्त करके नदी के सब अल्हड़पन दूर हो जाते हैं उसी प्रकार यतीन्द्र अब एक शांत, स्थिर, धीर, गम्भीर और जिम्मेदार क्रान्तिकारी नेता हो गए

थे, मानो सारी दुनिया की जिम्मेदारी ही उन पर एकाएक आ पड़ी हो । थीं भी बहुत जिम्मेदारियाँ । बंगाल छोटे-छोटे दलों में विभक्त था, इन सबको एक सूत्र में बाँधकर एक जबर्दस्त क्रान्तिकारी संगठन करना था । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध जो दुनिया की शक्तियाँ थीं, उनसे भारतीय क्रान्ति-चेष्टा के लिए सहायता प्राप्त करनी थी ।

भारत के क्रान्तिकारियों ने लड़ाई के जमाने में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध दूसरे साम्राज्यवादों की सहायता के उपयोग करने की चेष्टा की थी, यह पहले ही आ चुका है ।

संगठन को सफल बनाने के लिए यतीन्द्र मुखर्जी ने कई डकैतियाँ भी की थीं, जिनमें से गार्डनरीच वाली डकैती उल्लेख योग्य है । साउथ इंडिया जूट-मिल के वेतन-दिवस पर कम्पनी का खजांची दो दरबानों के साथ एक घोड़ागाड़ी पर अठारह हजार रुपए लेकर बदरतला की तरफ जा रहा था । १९१५ की १२ फरवरी थी । क्रान्तिकारियों को पहले से ही मालूम था कि रुपया इस प्रकार से जाएगा । इसलिए वे हिसाब लगाकर हावड़ा स्टेशन पर पहुँचे । यहाँ एक पंजाबी ड्राइवर की टैक्सी किराए पर लेकर सियालदा स्टेशन होकर लगभग ढाई बजे के समय गार्डनरीच सर्कुलररोड और गार्डनरीच रोड के मोड़ पर पहुँचे । वह घोड़ागाड़ी पहले ही रवाना हो चुकी थी, कुछ देर में वह वहाँ पहुँची । टैक्सी आकर घोड़ागाड़ी के सामने खड़ी हो गई और टैक्सी से क्रान्तिकारी उतर पड़े । यतीन्द्र मुखर्जी के आदेश के अनुसार नरेन्द्र भट्टाचार्य, अतुल घोष, मदारीपुर दल के चित्तप्रिय, मनोरंजन, पतितपावन घोष आदि इसमें भाग ले रहे थे । क्रान्तिकारियों ने घोड़ागाड़ी ठहरा कर थैलियाँ अपने कब्जे में कर लीं और टैक्सी पर सवार हो गए । इस समय रास्ते में भीड़ इकट्ठी हो गई थी, पर क्रान्तिकारियों के हाथों में आग्नेयास्त्र देखकर वह पास नहीं फटकी, पर अब टैक्सी चलाने की समस्या सामने आई क्योंकि पंजाबी ड्राइवर ने टैक्सी चलाने से इन्कार कर दिया था । इसलिए क्रान्तिकारियों ने देर करना उचित न समझ कर ड्राइवर को मारकर टैक्सी से बाहर निकाल दिया और पतितपावन टैक्सी को चलाकर जल्दी से बारुइपुर पहुँचा । पर बारुइपुर में एक विपत्ति और आई । टैक्सी का टायर फट गया । इसके बाद उन लोगों ने किसी व्यक्ति के जिम्मे

यह कहकर टैक्सी छोड़ दी कि टायर लेने जा रहे हैं और घोड़ागाड़ी पर जयनगर पहुँच गए। बाद को उत्तरी हिस्से से नाव से वे टाकी पहुँचे।

इस बीच दो ट्रंक खरीदे गए थे और रुपए उनमें रखे गए थे। वहाँ से क्रान्तिकारी मार्टिन की छोटी लाइन में पातीपुकुर गए। वहाँ से वे घोड़ा गाड़ी पर २० नम्बर फकीरचाँद स्ट्रीट में पहुँचे जो उन दिनों क्रान्तिकारियों का एक खास अड्डा था।

पुलिस ने पंजाबी से टैक्सी का नम्बर पा लिया। फिर टैक्सी ए ३४ देकर अखबारों में इश्तहार निकाला गया। वारुइपुर के जिस आदमी के जिम्मे टैक्सी छोड़ी गई थी, उसने जब टैक्सी का नम्बर देखा तो वह डर गया और उसने पुलिस को खबर कर दी। अब पुलिस खोजते-खोजते घोड़ागाड़ी के ड्राइवर को लेकर फकीरचाँद स्ट्रीट में पहुँच गई। पुलिस वालों ने गाड़ीवान को ही बाबुओं को बुलाने भेजा। ज्योंही गाड़ीवान ने बुलाना शुरू किया, त्योंही राधाचरण प्रामाणिक ने जंगले के अन्दर से झाँका। इस पर गाड़ीवान चिल्ला उठा, वह रहे बाबू। इस डकैती में पतितपावन और राधारमण को सात साल की सजा हुई। राधारमण और हीरालाल विश्वास को अस्त्र कानून में दो साल की सजा हुई।

उक्त डकैती के ठीक दस दिन बाद बलियाघाट के एक धनी व्यापारी की गद्दी पर इसी गिरोह के लोगों ने डाका डाला था। इस डकैती में भी टैक्सी काम में लाई गई थी। जब टैक्सी वाले ने टैक्सी चलाने से इन्कार कर दिया तो क्रान्तिकारियों ने उसे वहीं ढेर कर दिया था। डकैती का धन दूसरे ही मार्ग से क्रान्तिकारियों के खजाने में पहुँच गया।

पथुरियाघाटे में खुफिए का गोली से स्वागत—यतीन्द्र मुखर्जी का घर पथुरियाघाटा में था। जैसा कि होता है इनका घर फरार तथा अन्य क्रान्तिकारियों का अड्डा था। यों ही बातचीत चल रही थी, किन्तु प्राय: हरेक आदमी के पास भरी पिस्तौलें थीं, जो एक मिनट के अन्दर आग बरसाने को तैयार थीं। इतने में क्रान्तिकारियों के झुंड में एक ऐसा आदमी घुस आया, जिसके सम्बन्ध में लोगों को तो सन्देह ही नहीं निश्चय था कि वह खुफिया पुलिस का था। बस यतीन्द्र तो मेजवान थे ही। हरेक का यथा योग्य

स्वागत करने का भार उन्हीं पर था, कहा जाता है उन्होंने आव देखा न ताव पिस्तौल उठाकर उसको गोली मार दी। कम से कम मरते वक्त उसने ऐसा ही बयान दिया। जानने वालों का कहना है कि यतीन्द्र ने स्वयं गोली नहीं मारी थी।

उसी दिन से यतीन्द्र के पीछे साम्राज्यवाद की सारी दानवी शक्ति हो गई, यतीन्द्र की जान अब जब्त हो चुकी थी, यतीन्द्र आसानी से हाथ आने वाले जीव नहीं थे। बहुत दिनों तक साथियों सहित इधर-उधर घूमते रहे, कई मामलों में उनकी तलाश थी। अन्त में पुलिस को उनके अड्डे का पता लग गया, किन्तु पुलिस के दल-बल सहित वहाँ पहुँचने के पहले ही वह अपने साथियों सहित बारह मील दूर एक जंगल में चले गए। पुलिस ने वहाँ भी पता पा लिया, किन्तु ये भाड़े के टट्टू सहसा उनके सामने जाने का साहस नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने बड़ी लम्बी तैयारी की। चारों ओर के गाँवों में प्रचार करवा दिया कि चार-पाँच डाकू जंगल में छिपे हुए हैं, इनको पकड़वाने पर बड़ी अच्छी रकम इनाम में मिलेगी। यह कितनी अनोखी बात थी कि जो डाकू थे, लुटेरे थे, वे ही दूसरों को डाकू बताते थे। गाँव वालों ने भी उन पर एतबार कर लिया, और जिसके पास जो अस्त्र था उसे लेकर वह दौड़ पड़ा! कितनी भयंकर दुख-गाथा है? जिनको गुलामी रूपी महापातक के गार से उबारने के लिए माँ के लाल अपना सर्वस्व न्यौछावर करने पर तैयार हुए थे, वे ही अब इन्हें पकड़कर साम्राज्यवाद के खूनी हाथों में सौंपने को तैयार हो गए? इस मामले में हम केवल इन सरल ग्रामवासियों को दोष देकर चुप नहीं हो सकते, बहुत कुछ दोष स्वयं क्रान्तिकारियों का है। उन्होंने त्याग किया, फाँसी पर चढ़े, किन्तु जनता में प्रचार क्यों नहीं किया? अस्तु, यही सारे क्रान्तिकारी आन्दोलन की दुःख-गाथा है!······भविष्य के क्रान्तिकारी इनसे शिक्षा लेंगे।

घेरा शुरू—यतीन्द्रनाथ इस भाँति घिर जाने पर भी न घबराए, एक तरफ केवल पाँच नवयुवक थे—यतीन्द्र, चित्तप्रिय, नीरेन, मनोरंजन और ज्योतिष; दूसरी ओर महाधूर्त तथा भयानक से भयानक अस्त्र से लैस ब्रिटिश साम्राज्यवाद, उसके असंख्य बड़े भाड़े के टट्टू और गुमराह किए हुए गाँव वाले थे। इन नवयुवकों का साहस कितना अनुपम था। क्या वे समझते नहीं थे कि वे कितनी

क्रूर शक्ति से मुकाबला कर रहे हैं, फिर भी वे न दबे, न हिचकिचाए। उनके माथे पर एक बल आया, एक बार शायद उनको अपने प्रियजनों की याद आई, किन्तु पीछे हटने की चिन्ता असह्य थी।

मल्लाह का धर्मसंकट—यतीन्द्र आगे बढ़ते चले जा रहे थे, उनके साथ उनके तीन परखे हुए साथी थे, भूख-प्यास से वे व्याकुल थे, फिर भी चलने का विराम नहीं था। एक जगह एक मल्लाह मिला तो उससे उन लोगों ने कुछ खिलाने के लिए कहा, किन्तु वह अपने को नीच जाति का समझता था, इसलिए भात बनाकर खिलाने या उन्हें अपनी हांडी देने से उसने इन्कार कर दिया। इस प्रकार उसके उस कट्टरपन की रक्षा तो हो गई, किन्तु इन लोगों के प्राणों की रक्षा नहीं होती मालूम होती थी, इस बेचारे के पास चावल और हाँडी के सिवा कोई और खाना था ही नहीं। क्या हम इस जगह पर उस अज्ञात नाम मल्लाह को कोसेंगे और कहेंगे कि जान में या अनजान में वह साम्राज्यवाद का दोस्त साबित हुआ, नहीं हम तो उस धर्म और कट्टरपन को कोसेंगे जो मूर्खता का दूसरा नाम है, जिसने मनुष्य और मनुष्य के अन्दर इस प्रकार एक खाई की सृष्टि कर मनुष्य को ठीक तरह से विकसित होने नहीं दिया, तथा उसे मानसिक रूप से इस प्रकार गुलाम बना रखा है।

गोली का जवाब गोली से—अन्त में इस लुका-छिपी का अन्त हो गया, पुलिस ने चारों ओर इस प्रकार जाल बिछाया था कि उससे बचना असम्भव था। आखिर सामना हो ही गया, दोनों तरफ से गोलियाँ चलीं। सबसे पहले चित्तप्रिय गिरे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पहले शिकार होने का सौभाग्य इन पाँचों में उन्हीं को प्राप्त हुआ। आशा है चित्तप्रिय तुम जिस जगह पर शहीद हुए वह कभी लोगों के लिए एक महान् पवित्र स्थान होगा। यतीन्द्र का भी शरीर गोलियों से छिद चुका था, वह जानते थे कि अब वह कुछ मिनटों के ही मेहमान हैं। चित्तप्रिय को गिरते देखकर उन्होंने समझ लिया कि यही अन्त सब का होगा। अपना तो वह जानते ही थे कि अन्तिम समय आ गया है, वह नहीं चाहते थे कि उनके बाद उनके और भी साथी मारे जाएँ। अतएव उन्होने अपने साथियों को लड़ाई रोकने के लिए कहा, किन्तु इसमें उन्होंने गलती की। उन्होंने शायद सोचा हो कि साम्राज्यवाद की रक्त-पिपासा चित्तप्रिय तथा उनका बलि-

दान लेकर ही तृप्त हो जाएगी, किन्तु ऐसा कहाँ हो सकता था ? साम्राज्यवाद से मनुष्यता की उम्मीद कैसे की जा सकती थी । साम्राज्यवाद के भाड़े के टट्टू भले ही द्रवित हो जाएँ, ऐसा हुआ भी । जब यतीन्द्र गोलियों से छिदकर गिर पड़े तो उनके बदन से खून की धारा निकल रही थी, उनके मुँह से 'पानी' शब्द निकला । मनोरंजन के शरीर से भी धारा बह रही थी, उसका भी रक्त उड़ीसा की वीरभूमि पर गिरकर उस रेत को लाल कर रहा था, किन्तु जब उसने अपने सेनापति को इस प्रकार गिरते देखा और पानी माँगते सुना तो वह शेरदिल अपना सब दुःख भूलकर उठा और स्वयं पास की नदी से पानी लेने गया । क्या इस दृश्य से कोई दृश्य सुन्दर हो सकता है, क्या इससे बढ़कर कोई बंधुत्व का उदाहरण दुनिया के इतिहास में है ? एक साथी शहीद की नींद सो रहा है, दूसरा सिसक रहा है, तीसरा जिसके बदन से रक्त की धारा जारी है, किन्तु अभी लड़खड़ाकर चल सकता है; उठता है और पानी लेने जाता है । इस स्वर्गीय दृश्य को देखकर पुलिस वाले रो दिए, नैतिक विजय थी । इस मुठभेड़ में पुलिस वाले विजयी हुए, किन्तु जब वे अपने द्वारा हराए हुए इन पाँचों क्रान्तिकारियों के सामने आते हैं, तो वह रो देते हैं । एक पुलिस अफसर मनोरंजन को रोककर स्वयं पानी लेने गया । आखिर वह हिन्दुस्तानी ही था, एक क्षण के लिए उसे जोश आ गया, किन्तु साम्राज्यवाद तो एक पद्धति है, उसमें भला दया की गुन्जाइश कहाँ ? वह तो ऐसे मौकों पर और भी क्रूर हो जाती है । इस क्रूरता का नाम ब्रिटिश न्याय था ।

यतीन्द्र शहीद हुए, अन्य को फाँसी—यतीन्द्र मुखर्जी को उठाकर कटक के अस्पताल में ले जाया गया, वहीं उनकी मृत्यु हुई । मनोरञ्जन और नीरेन को फाँसी दे दी गई, ज्योतिष पागल हो गए थे, इसलिए पागलखाने भेज दिए गए, वहीं वह वर्षों बाद मर गए । कैसा सुन्दर पुरस्कार था, इन परम देशभक्तों की कैसी परिणति हुई ?

पहले ही कहा जा चुका है कि जर्मनी आदि ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध शक्तियों से भारत की स्वधीनता के लिए सहायता प्राप्त करने के षड्यन्त्र में यतीन्द्र का बहुत बड़ा हाथ था । गार्डनरीच में जो मोटर डकैती हुई उसके नेता भी यतीन्द्र मुखर्जी थे, मोटर डकैती के वह विशेषज्ञ समझे जाते थे । इन्होंने

कई लाख रुपया इस प्रकार क्रान्तिकारियों के खजाने में दिया। इसके अतिरिक्त कई हत्याओं में भी यतीन्द्र ने भाग लिया था, ऐसा समझा जाता है। इन्हीं सब गुणों के कारण यतीन्द्र एक बहुत ही खतरनाक क्रान्तिकारी समझे जाते, अतएव उनकी हत्या से ब्रिटिश सिंहासन का एक काँटा दूर हुआ। जिस दिन यतीन्द्र मुखर्जी मरे, उस दिन ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने आराम की एक गहरी साँस ली, आह एक खतरनाक दुश्मन मरा, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद की यह हिमाकत थी। शहीदों का वंश कभी निर्वंश नहीं होता, वह तो हमेशा हरा-भरा रहता है। मैजिनी के वचन (Ideas ripen quickly when nourished by the blood of martyrs) 'शहीदों के खून में सींचे जाने पर भावनाएँ जल्दी परिपक्व होती हैं।'

९

बर्मा और सिंगापुर में क्रान्तिकारी लहरें

बर्मा में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के साथ-साथ काफी हिन्दुस्तानी जाकर नाना प्रकार से बस गए थे। बर्मा के साम्राज्यवाद के चंगुल में लाने के घृणित कार्य में हिन्दुस्तानियों का काफी हिस्सा था, केवल बर्मा में ही नहीं सारे दूर तथा मध्य-पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जहाँ-जहाँ अपना मनहूस हाथ फैलाया, वहाँ-वहाँ हिन्दुस्तानियों का हिस्सा बहुत ही घृणित था। बर्मा की स्वाधीनता हरी जाने के बाद बर्मा के कुछ सरदारों ने फिर से अपना राज्य वापस करने के लिए षड्यन्त्र वगैरह किए, किन्तु वे कुचल दिए गए। भारतवर्ष के क्रान्तिकारी जो जर्मनी आदि शक्तियों से ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध मदद प्राप्त करते थे, वह दूरपूर्व के जर्मन कान्सल-जनरल के जरिए से करते थे, इसमें उन्हें बर्मा-निवासी भारतीयों से बहुत सहायता मिली। बर्मा में तीन तरीके की क्रान्तिकारी क्रियाएँ हुईं, एक जिसका सम्बन्ध जर्मनी वगैरह से था किन्तु जिसका रास्ता सामुद्रिक था, दूसरा श्याम वगैरह के जरिए से जो काम हुआ और जिसका सम्बन्ध गदर दल से था, तीसरा हिन्दुस्तानी फौजों को भड़काना। सिडिशन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार फौजों को भड़काने की बड़ी संगठित चेष्टा की गई।

अलीअहमद सिद्दीकी—तुर्की के साथ इटली का जो युद्ध हुआ था, उस समय भारतीय मुसलमानों की ओर से युद्ध में जख्मी लोगों की सेवा के लिए एक मिशन भेजा गया था। यह मिशन उसी किस्म का था जैसा कांग्रेस ने चीन को भेजा था, अन्तर सिर्फ इतना है, और यह बहुत बड़ा अन्तर है कि काँग्रेस का मिशन मानवता के नाम पर गया हुआ मिशन था और वह एक सर्वइस्लामी ख्याल से भेजा हुआ मिशन था। अली अहमद नामक एक नौजवान इस मिशन में घर से छिपकर गए थे। काम ऐसा पड़ गया कि अली अहमद को चार महीने तक लगातार अनवरपाशा के पास रहने का मौका मिला। इस दौरान में उनके विचार-जगत पर अनवर की आपबीती का बड़ा प्रभाव पड़ा। सभी

बड़े आदमियों की तरह अनवर को आपबीती सुनाने का मर्ज था, उन कहानियों से अली अहमद को मालूम हुआ कि अंग्रेज राजनीतिज्ञ कैसे मक्कार और खूँख्वार हैं। साथ ही उन्होंने यह भी सुना कि नौजवान तुर्क दल की कैसे उत्पत्ति हुई, तथा कैसे वह धीरे-धीरे पनपी और अन्त में अब्दुल हमीद की तरह मनचले सुलतान को निकालकर अधिकार प्राप्त किया गया।

इन बातों को सुनकर अलीअहमद को जोश आता था, किन्तु ज्योंही वे हिन्दुस्तान की ओर उसकी गिरी हुई हालत की बात सोचते थे, त्योंही उनको अपार दुःख होता था और वे अंग्रेजों को कोसते थे। बाद को जब इस मिशन का काम खतम हो गया, तो अलीअहमद आदि कुछ भारतीयों ने कहा कि उन्हें तुर्की भ्रमण करने की इजाजत दी जाए। भला इसमें क्या अड़चन हो सकती थी। बड़ी धूमधाम से इन्हें तुर्की घुमाया गया। बस इस प्रकार जो कुछ कसर थी वह भी जाती रही। अलीअहमद एक क्रान्तिकारी हो गए।

तुर्की इतालियन युद्ध के समय अबूसैयद नाम का एक व्यक्ति रंगून से मिश्र और मिश्र से तुर्की गया। कहा जाता है कि इसी अबूसैयद के अनुरोध के अनुसार तरुण तुर्क दल का एक नेता तौफीक बे १९१३ में रंगून भेजा गया। यह तौफीक के रंगून के एक मुसलमान व्यापारी अहमद मुल्लादाऊद को तुर्की का कांसल बना गए। लड़ाई के समय यही मुल्लादाऊद रंगून के तुर्की कांसल के रूप में कायम रहे।

बल्कान-युद्ध खतम हो जाने के बाद अलीअहमद देश में लौट आए, किन्तु एक व्यक्ति जो कि इतने दिनों तक स्वाधीन देश के स्वाधीन वातावरण में रह चुका था, जिसकी चारों ओर मशीनगनें चटकती थीं, फौजें आती और जाती थीं, एक सनसनी-सी हमेशा बनी रहती थी, उसे भला हिन्दुस्तान की गुलामी की जिन्दगी क्यों पसन्द आती। उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन पर लात मारकर बीबी के सब गहने बेच डाले और रंगून का रास्ता लिया जो तरुण तुर्कदल का एक केन्द्र था, और जहाँ से सर्व-इस्लामी प्रचार-कार्य होता रहा। यों तो दिखाने के लिए वे रंगून व्यापार करने गए थे। इन दिनों फहमअली नामक तरुण तुर्कदल के प्रतिनिधि होकर आए थे। फहमअली के नेतृत्व में अर्थात् तरुण तुर्कदल की देख-रेख में बर्मा में क्रान्तिकारी षड्यन्त्र शुरू हुआ और मुसलमानों से चन्दा

माँगकर काम चलने लगा। तरुण तुर्कदल के नेतृत्व में यह जो षड्यन्त्र हो रहा था, इसको हम राष्ट्रीय नहीं कह सकते, क्योंकि वह 'चीनों अरब हमारा, सारा जहाँ हमारा, मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा' इसी आदर्श से परिचालित होता था, जो एक गलत, मूर्खतापूर्ण तथा प्रतिक्रियावादी आदर्श था। अतएव ये लोग भी ब्रिटिश साम्राज्य के विरोधी थे, किन्तु ये लोग जो स्वप्न देख रहे थे वह इस्लाम का साम्राज्य था। ये लोग चाहते थे कि इस्लाम का चाँद और सितारा वाला झण्डा सारी दुनिया में लहराए। असल में धर्म की आड़ में यह तुर्की साम्राज्यवाद का हथकंडा था, पर इसकी भी एक क्रान्तिकारी दिशा थी।

इस सम्बन्ध में तुर्की से बहुत-सा साहित्य भी भारतवर्ष में आया। १९१४ में कुस्तुन्तुनिया से 'जहान-इ-इस्लाम' नाम से एक अखबार निकला। यह अरबी, तुर्की और हिन्दुस्तानी में छपता था। पहले तो यह खुल्लमखुल्ला लाहौर और कलकत्ते में आता था, किन्तु ईसाइयों के विरुद्ध बनाकर 'सी-कस्टम ऐक्ट' के अनुसार हिन्दुस्तान में इसका आना रोक दिया गया। अबूसैयद नाम के जिस व्यक्ति का पहले उल्लेख किया गया है, वही इसके उर्दू हिस्से को तैयार करते थे।

गदर-दल भी—इसी जमाने में गदर दल ने भी अपना काम बर्मा में शुरू कर दिया था। दोनों षड्यन्त्र एक साथ काम करने लगे। यह बहुत ही अच्छा हुआ, क्योंकि सर्व-इस्लामवाद का जो जहर तरुण तुर्कदल के कार्यक्रम में था, वह गदर दल के ऐसे प्रबल रूप से विशुद्ध राजनैतिक दल के संसर्ग से दूर हो गया। होते-होते यहाँ तक हो गया कि जहान-इ-इस्लाम का मुख्य सम्पादकीय लाला हरदयाल लिखने लगे। इसके अतिरिक्त मिश्र के फरीदबे तथा मनसूर अरीफत इसमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध बड़े जोरदार लेख लिखने लगे। २० नवम्बर, १९१४ को अनवरपाशा की एक वक्तृता का जिक्र इसमें था, जिसमें उन्होंने बताया था, "अब हिन्दुस्तान में इनकलाब का एलान होना चाहिए, अंग्रेजों की मैगजीनें लूट ली जाएँ, उनके हथियार छीन लिए जाएँ और वे उन्हीं से मारे जाएँ। हिन्दुस्तानियों की संख्या ३२ करोड़ है और अंग्रेजों की संख्या ज्यादा से ज्यादा २ लाख है, उनकी हत्या कर डाली जाए, उनकी फौज है नहीं, स्वेज-

नहर को तुर्क जल्दी ही बंद कर देंगे, जो अपने देश की आजादी के लिए लड़ेगा-मरेगा, वह तो अमर हो जायगा। हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई हैं, और ये पतित अंग्रेज उनके दुश्मन हैं। मुसलमानों को चाहिए कि अंग्रेजों के विरुद्ध जेहाद का एलान करें और अंग्रेजों को मारकर गाजी हो जाएँ। उनको चाहिए कि वे हिन्दुस्तान को आजाद करें।"

बेलूची फौज में गदर—नवम्बर १९१४ में १३० नम्बर बेलूची फौज बर्मा भेजी गई। इसको वहाँ भेजने का कारण यह था कि बम्बई में इन्होंने अपने एक अफसर की हत्या कर डाली थी, इसलिए सजा के तौर पर ये यहाँ भेजे गए थे। यहाँ आते ही उसमें 'गदर' नामक पत्र फैलाया गया और बाकायदा प्रचार-कार्य किया गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि १९१५ तक यह गदर करने को तैयार हो गए, किन्तु गदर करने के पहले ही २१ जनवरी को ये लोग दबा दिए गए और २०० षड्यन्त्रकारियों को सजाएँ हुईं।

सिंगापुर में गदर का आयोजन—२८ दिसम्बर १९१४ को सिंगापुर के एक गुजराती मुसलमान कासिम मनसूर का उसके बेटे के नाम रंगून में लिखा हुआ एक पत्र पकड़ा गया, जिसमें यह लिखा था कि एक फौज गदर करने के लिए तैयार है। उसमें तुर्की कौन्सिल से यह अपील की गई थी कि एक लड़ाकू जहाज सिंगापुर में भेजा जाए तो सब काम बन जाए। इस पत्र के पकड़े जाने का नतीजा यह हुआ कि Malay State Guides नाम की इस फौज को दूर स्थान पर तबादला कर दिया गया, किन्तु इससे सिंगापुर में गदर न रुक सका। इसी समय बैंकाक से रंगून में सोहनलाल पाठक तथा हसन नामक गदरदल के दो व्यक्ति आए और उन्होंने रंगून को अपना अड्डा बनाया। इन दोनों ने १६ डफरिन स्ट्रीट में एक मकान भाड़े पर लिया, और २४० नम्बर का पोस्ट बॉक्स चिट्ठी-पत्री के लिए भाड़े पर ले लिया। हम यहाँ सोहनलाल के इतिहास का अनुसरण करेंगे।

सोहनलाल पाठक—सोहनलाल सैनफ्रेंसिसको से गदर पार्टी के दूत बनाकर भेजे गए थे। वह विशेषकर फौजों को क्रान्ति की वाणी सुनाने में ही लगे रहे। एक दिन जब कि वह इसी प्रकार तोपखाने की पलटन को अपनी वाणी सुना रहे थे और कह रहे थे—'भाइयो! क्यों फजूल के लिए इन अंग्रेजों के लिए जान

दोगे, यदि मरना ही है तो देश के लिए मरो। तुम्हारी भुजाओं के बल से तुम्हें आजादी मिले, यह अच्छा है या यह कि तुम अंग्रेजों के लिए मर जाओ यह अच्छा है ?" तब एक जमादार उन्हें बैठे-बैठे ताड़ रहा था। इस जमादार पर उनकी बातों का कोई असर नहीं हो रहा था, वह तो केवल उन्हें पकड़वाने की फिक्र में था। यह एक देशद्रोही, कृतघ्न पशु था। सिपाहियों के बीच में सोहनलाल बेखटके विचरते थे, उनसे उनको कोई डर न था, फिर सोहनलाल को डर ही क्या था, क्या उन्होंने अपना सर्वस्व अपने आदर्श के लिए अर्पण नहीं कर दिया था ? फिर डर किस बात का होता ? किन्तु वह जमादार और उसकी क्रूर आँखें ? सोहनलाल जब बोल चुके, तो सब सिपाही चले गए, किन्तु वह जमादार उनके और करीब आ गया था। सोहनलाल ने सोचा कि जमादार कोई भेद की बात बताने आया है, वह बोले—'बोलो।' बड़ी देर तक दोनों एक-दूसरे को आँखों से वजन करते रहे, जमादार की आँखों में खून था, वह महापापी थर-थर काँप रहा था। एकाएक उसने सोहनलाल के एक हाथ को पकड़ लिया और भर्राई हुई आवाज में कहा—"साहब के पास चलो।" सोहनलाल तो भारतीय क्रान्ति का सुख-स्वप्न देख रहे थे, एकाएक वह चौंक पड़े, किन्तु उन्होंने न तो हाथ छुड़ाने की कोशिश की और न भागने की। फिर वह भागते क्यों ? जमादार उनसे तगड़ा जरूर था किन्तु निहत्था था। उनकी जेब में तीन ऑटोमैटिक पिस्तौल और २७० कार्तूस थे, चाहते तो उस बदमाश को उसके पाप की सजा दे देते, और उसकी लाश की छाती पर बैठकर कहते—"चलो चलें, चलते क्यों नहीं !" किन्तु सोहनलाल उस समय किसी और ही सतह पर थे, वह बोले—"क्यों तुम हमें पकड़ाओगे ? तुम ? तुम ? जरा सोचो तो सही, तुम क्या कर रहे हो, भाई होकर भाई को पकड़ा दोगे ? कैसे भाई हो ? क्या गुलामी में ही तुम्हें मजा आता है ?" किन्तु उस पशु-प्रकृति जमादार पर कोई असर न हुआ, वह उनका हाथ पकड़कर खींचने लगा।

सोहनलाल ने इतने पर भी बाँया हाथ जेब में नहीं डाला। उनकी पिस्तौलें आग से भरी हुई उनके इशारे की प्रतीक्षा कर रही थीं, किन्तु सोहनलाल ने जेब में हाथ न डाला। इस विश्वासघात से शायद उनका मन खिन्न हो गया हो, शायद वह अपनी परीक्षा ले रहे थे। एक बार उनका बाँया हाथ जेब की

ओर गया भी किन्तु ··· वह लौट आया। अपने ही एक भाई को क्या मारें।

सोहनलाल गिरफ्तार हो गए—तलाशी ली जाने पर उनके पास जहान-इ-इस्लाम की एक प्रति मिली, जिसमें हरदयाल का एक लेख था, कुछ फतवे थे, जिसमें मुसलमानों से अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने को कहा गया था। बम का एक बहुत ही अच्छा नुस्खा था और गदर-पत्रिका का एक अंक था।

सोहनलाल जेल में गए जरूर, किन्तु जेल के न हो सके। वहाँ उन्होंने जेल के किसी भी नियम को मानने से इन्कार किया। जेल के अधिकारी जब जेल देखने आते थे, तो वह उनसे एक भद्र पुरुष की भाँति मिलते थे, किन्तु यह नहीं कि उनकी खुशामद करें। वह कहते थे, जब हम अंग्रेजी सल्तनत को ही नहीं मानते तो उनकी जेल के कानून को ही क्यों मानने लगे। जब 'बड़े साहब' आते थे वह उठकर खड़े नहीं होते थे। जब बर्मा के लाट साहब आने वाले हुए, तो जेलर ने उनसे कहा कि कम-से-कम उनकी ताजीम में तो खड़े हो जाइएगा; किन्तु वह राजी नहीं हुए। हाँ, उनका यह कायदा था कि जब कोई खड़े-खड़े उनसे बातें करता था, तो वह भी खड़े हो जाते थे। अब लाट साहब के सामने वह खड़े नजर आएँ, इसके लिए जेलर ने यह जाल रचा कि वह लाट साहब के पहले स्वयं आकर खड़े-खड़े उनसे बातें करने लगा। इस प्रकार लाट साहब की इज्जत बच गई।

फाँसी या माफी—लाट साहब ने दो घंटे तक सोहनलाल से बातचीत की। उन्होंने कहा, यदि तुम माफी माँगो, तो तुम्हारी फाँसी मैं अपनी कलम से रद्द कर दूँ। इस पर सोहनलाल हँसे, यह हँसी वह हँसी थी, जिसको केवल शहीद लोग ही हँस सकते हैं। वह बोले—महाशय, यह अच्छी रही कि मैं आपसे माफी माँगूँ। माफी तो आपको मुझसे माँगनी चाहिए, क्योंकि जो कुछ जोरो-ज़ुल्म है, वह तो सब आपकी ओर से हुआ है, और हो रहा है। मुल्क हमारा है, आप उस पर राज्य कर रहे हैं, उसे हम आजाद करना चाहते हैं, आप उसमें रोड़े अटकाते हैं। अब उलटा मुझ से ही माफी माँगने को कहा जा रहा है। यह खूब रही! **लाट साहब! भलमन्साहत और इन्साफ का तकाजा तो यह है कि आप मुझसे माफी माँगें।**—क्या इस कथन में कुछ झूठ था? किन्तु न्याय की बातें साम्राज्य-वाद के एक एजेण्ट को क्यों भातीं? ये बातें केवल बातें ही नहीं थीं, इन बातों

को कहने के लिए कहनेवालों को दाम देना पड़ा था, और वह दाम भी कैसा ? अपने जीवन का दाम । वीरता की यह पराकाष्ठा थी ।

यह कहा जाता है कि मामूली जल्लाद ने सोहनलाल के गले में फाँसी का फन्दा डालने से इन्कार किया । उनका कहना था—मुझे गोली मार दो । मैं इस देवता के गले में फंदा नहीं डालूँगा । इससे मेरा वंश नष्ट हो जाएगा—उसे लालच दिया गया, डराया-धमकाया गया, पर वह राजी नहीं हुआ । फिर अन्य जेल कर्मचारियों से कहा गया, वे भी राजी नहीं हुए । अन्त में विलियम नामक एक ईसाई इसके लिए तैयार हुआ, पर यह कहाँ तक सत्य है, पता नहीं । एक जीवनी लेखक ने तो यहाँ तक लिख डाला कि बाद को क्रान्तिकारियों ने उसे बाल-बच्चों के साथ मार डाला । पर इसका प्रमाण नहीं मिलता ।

फाँसी के दिन—फाँसी का सब समान तैयार था, प्लेटफार्म के भाषण का मौका नहीं था कि जोशीली बातें कहीं और तालियाँ पट-पट बज गईं । माँ का एक लाड़ला सोहनलाल फाँसी के तख्ते पर खड़ा था, जल्लाद एक इशारे पर गले में रस्सी डालने को तैयार था, उसके बाद एक इशारे पर तख्ता पैर के नीचे से हटाने को दूसरा व्यक्ति तैयार था, यह कोई नाटक नहीं था, एक सत्य घटना थी—निर्मम, भयानक, क्रूर सत्य । साम्राज्यवाद की सब तैयारी सम्पूर्ण थी । बाहर फौज खड़ी थी । सोहनलाल इस भीड़ में अकेला था, भारतवर्ष में यहाँ से एक हजार मील की दूरी पर उसका जन्म हुआ था, जन्मभर वह क्रान्ति की मशाल हाथ में लेकर भटकता रहा, कितने उसके साथी थे, किन्तु आज वह अकेला था । अपने स्वप्न में वह विभोर खड़ा था, क्या उसे पता था कि उसकी हत्या होने जा रही थी । शायद पता था, किन्तु उसके चेहरे पर, अरे एक बल भी तो नहीं था ।

अपने नजदीक वह शायद अमर थे, उनका सिर ऊँचा था, छाती तनी हुई थी, क्यों न होती वह एक क्रान्तिकारी था । जल्लाद चारों ओर देख रहा था, यह देरी क्यों ? साहब हुक्म क्यों नहीं देते ! सभी लोग आश्चर्य में थे, इस दृश्य को जल्दी खतम क्यों नहीं किया जाता ? इतने में वहाँ जो सबसे बड़े राजपुरुष थे, वह एक कदम आगे बढ़े, और पुकारा—सोहनलाल !

सोहनलाल अपने स्वप्न से चौंक पड़े, बोले—'कहिए ।'

—अब भी यदि तुम जबान से माफी माँगो, तो मुझे यह अधिकार है कि मैं फाँसी को रद्द कर दूँ, सोचो।

सोहनलाल यों तो बड़ी शान्त प्रकृति के थे, किन्तु शहीद होने के समय ऐसी अजीब बात सुनकर उनका चेहरा तमतमा गया, आँखों से मानो खून निकलना ही चाहता था, वह बोले—गुस्ताख अंग्रेज, जो माफी माँगनी ही है तो तुम्हें हमसे माफी माँगनी चाहिए, न कि मुझे तुमसे !—इस पर अंग्रेज ने फिर समझाया कि व्यर्थ प्राण गँवाने से लाभ नहीं, तो वह जरा ठिठके और पूछा कि अच्छा यदि वह माफी माँगें तो क्या वह फौरन छोड़ दिए जाएँगे। इस पर उस अंग्रेज ने कहा कि यह अधिकार उसे प्राप्त नहीं है ! तब उन्होंने झट से अपने हाथ से गले में फन्दा डाल दिया। जब लोगों को ठीक तरह से होश आया, तो उन्होंने देखा कि सोहनलाल फाँसी पर झूल चुके हैं।

आज तक किसी क्रान्तिकारी को इस प्रकार फाँसी के तख्ते पर ऐसा प्रलोभन नहीं दिया गया, सोहनलाल की शहादत का इतिहास इस दृष्टि से शहीदों में विशिष्टता रखता है।

दूसरे क्रान्तिकारी—मुजतबाहुसैन नाम के एक क्रान्तिकारी गदर पार्टी की ओर से रंगून भेजे गए थे। यह महाशय जौनपुर के रहनेवाले थे, मामूली काम से विदेश गए थे, वहीं गदर पार्टी के सदस्य हो गए थे। मुजतबाहुसैन कानपुर के कोर्ट ऑफ वार्ड्स में नौकर थे। वहाँ से वह मनीला गए, फिर सिंगापुर में गदर में मदद दी, जब वहाँ गदर असफल हो गया तो वह वहाँ से भाग निकले। बाद को वह चीन में गिरफ्तार हुए, और उन्हें मांडले षड्यन्त्र में पहले फाँसी, फिर कालापानी हुआ। १७ साल जेल में रहने के बाद वह छूटे।

श्री अलीअहमद सिद्दीकी को भी इसी मुकदमे में कालेपानी की सजा हुई थी।

बकरीद में बकरे के बदले अंग्रेज—रंगून के मुसलमानों ने यह तय किया था कि १९१५ के बकरीद के दिन गदर किया जाए। कहा जाता है कि तैयारी कम होने की वजह से यह तारीख हटाकर २५ दिसम्बर कर दी गई। कहते हैं कि बकरीद के दिन यह तय था कि बकरों के बदले अंग्रेजों की कुर्बानी की जाए। Pyawbwe नामक स्थान में डिनामाइट, रिवाल्वर आदि चीजें

बरामद हुई। इस पर सरकार ने जिन पर भी शक हुआ उन्हें गिरफ्तार किया, मांडले में कई षड्यन्त्र चले। इस प्रकार सब आन्दोलन संगीनों से दबा दिया गया।

सिंगापुर में गदर—सिंगापुर में इस जमाने में दो हिन्दुस्तानी रेजिमेंट तैनात थे। एक के साथ मुसलमान तरुण तुर्क दल का सम्बन्ध था। पहले ही बताया जा चुका है कि किस प्रकार इसका भंडा फूट जाने से उस पलटन का तबादला कर दिया गया। फिर भी दूसरे रेजिमेंट में सचमुच गदर हो गया। यद्यपि सिंगापुर के गदर के साथ पंजाब के गदर का कोई बाहरी सम्बन्ध नहीं था, फिर भी १६१५ की २१ फरवरी क्रान्ति का दिन ठीक हुआ था। पंजाब में इस २१ तारीख को जो हुआ, वह पहले ही लिखा जा चुका है, किन्तु सिंगापुर में उस दिन गदर हो ही गया। इस गदर के कराने में हमीरपुर राठ के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री परमानन्द का बड़ा जबर्दस्त हाथ था, उनकी ओजस्विनी वक्तृता ने उस दिन बड़ा काम किया था। हमारे राष्ट्र के बड़े-बड़े नेता इस घटना को नहीं जानते, किन्तु लगातार सात दिन तक सिंगापुर पर इन गदर वालों का अधिकार था, और वहाँ आजाद हिन्द सरकार का राज्य था। अफसोस कि सिंगापुर भारत के अन्दर नहीं था, नहीं तो क्रान्ति की यह चिनगारी सारे भारत में फैल जाती और उस अग्नि में ब्रिटिश साम्राज्य दग्ध हो जाता। बड़ी मुश्किल से रूसी, जापानी, अंग्रेजी जंगी जहाजों की सहायता से यह गदर दबाया गया। इन सात दिनों के आरम्भ में गोरी फौजों और हिन्दुस्तानी फौजों में जहाँ-जहाँ मुठभेड़ हुई, वहाँ-वहाँ हिन्दुस्तानियों ने गोरों को बुरी तरह हराया। जब रूसी, जापानी और अंग्रेजी जहाजी बेड़े इस प्रकार आ गए, तो भी दो दिन तक हिन्दुस्तानी फौज उनसे बड़ी बहादुरी से लड़ती रही, किन्तु इतनी बड़ी फौज के साथ वे कब तक लड़ते ? वे धीरे-धीरे इधर-उधर के जंगलों में भाग निकले।

१०

मद्रास में क्रान्तिकारी आन्दोलन

और प्रान्तों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो मद्रास का प्रान्त बहुत ही शान्त रहा है। सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में दिखलाया गया है कि मद्रास में राजद्रोह की भावनाओं का सूत्रपात विपिनचन्द्र पाल नामक प्रख्यात बंगाली नेता के दौरे से हुआ, उन्होंने विशेषकर स्वदेशी, स्वराज्य तथा बॉयकाट पर भाषण दिए। इसमें संदेह नहीं कि विपिन बाबू एक बहुत बड़े वक्ता थे। कहा जाता है कि राजमहेन्द्री में उन्हीं के जाने के फलस्वरूप सरकारी कालेज में लड़कों की एक हड़ताल हुई। २ मई को विपिन बाबू ने जो वक्तृता दी थी, उसमें उन्होंने बतलाया था कि अंग्रेजों की यह चाल है कि वे इस देश में अपने को जनप्रिय बनाएँ, किन्तु हमारा यह कर्तव्य है कि हम सरकार की इस माया को चलने न दें, इस चाल को व्यर्थ कर देने में ही हमारे आन्दोलन की भलाई है!

१०८ अंग्रेजों की कुर्बानी की योजना—कहा जाता है कि विपिनचन्द्र के पीछे एक मद्रासी सज्जन बम बनाना सीखने के लिए पड़ गए थे। वे कहते थे कि हमें विदेशों में जाकर बम बनाना सीखना चाहिए, क्योंकि बम ऐसी चीज है जिससे अखिल रूस के जार भी थर-थर काँपते थे। वे यह भी कहते थे कि किसी अमावस्या की रात्रि को कोई योजना बनाई जाए, जिसमें १०८ अंग्रेजों की कुर्बानी की जाए। कहा जाता है कि विपिनपाल के दौरे के बाद मद्रास में राजद्रोह की एक लहर दौड़ गई। सुब्रह्मण्यशिव और चिदम्बरम पिल्ले को राजद्रोहात्मक वक्तृताओं के सम्बन्ध में सजाएँ दी गईं। इन वक्तृताओं में से एक का सम्बन्ध विपिनचन्द्र पाल से था, उस वक्तृता में विपिन बाबू को स्वराज्य का सिंह बताया गया था। ९ मार्च को चिदम्बर पिल्ले ने टिनेवेली नामक स्थान में एक वक्तृता दी, जिसमें विपिनचन्द्र की प्रशंसा की गई थी, और लोगों से कहा गया था कि वे सब विदेशी वस्तुओं का बॉयकाट करें। यह भी बताया

गया था कि ऐसा करने पर दो माह के अन्दर स्वराज्य मिल जाएगा। पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार सरकारी जायदाद को भी इस अवसर पर नुकसान पहुँचाया गया और करीब-करीब हरेक सरकारी इमारत पर ईंट-पत्थर फेंके गए। कई जगह आग भी लगा दी गई।

बताया जाता है कि १७ मार्च १९०८ को कृष्णास्वामी नामक एक व्यक्ति ने कोयम्बटूर के करूर नामक स्थान में एक वक्तृता दी, जिसमें बतलाया कि जब टिउटिकोरिन के लोगों ने इतना उत्साह दिखलाया कि सरकारी इमारतों तक पर विदेशी होने के कारण हमला कर दिया तो क्या वजह है कि कसूर में भी ऐसा न हो। कहा जाता है कि उसने यह भी कहा कि यहाँ पर एक देशी फौज है, जिसके लोगों को बहुत कम वेतन मिलता है। फिर क्या वजह है कि वे स्वदेशी आन्दोलन के लिए अपनी मातृभूमि के संरक्षणार्थ अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत नहीं करते। कराने में

चिदम्बरम पिल्ले की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में हाथ था, नामक एक तेलगू साप्ताहिक ने लिखा—"अरे फिरंगी! निष्ठुर बाघ! तुमने एक साथ तीन भले-मानुस भारतीयों को ग्रस लिया और सो भी बिना कारण। तुमने स्वयं जो कानून बनाए, तुम उन्हें भी तो मानते नहीं जान पड़ते! भय से व्याकुल होकर तुमने न मालूम क्या-क्या शरारतें की हैं, न मालूम तुम्हारे ख्याल कहाँ हैं। तुमने स्वयं अपना भंडाफोड़ कर दिया है क्योंकि तुम मान चुके हो कि भारत में राष्ट्रीयता की हवा उठते ही तुम्हारी सारी जड़ हिल चुकी है।"

वंची ऐयर—ऐसे ही बहुत से जोशीले राष्ट्रीय साहित्य का उद्भव हुआ, किन्तु यह केवल साहित्य में ही न रहा, बल्कि कार्य-क्षेत्र में भी यह विद्रोह फूट निकला। नीलकंठ ब्रह्मचारी नाम का एक व्यक्ति शंकरकृष्ण ऐयर के साथ सारे मद्रास प्रान्त का दौरा कर रहा था और लोगों से स्वदेशी धारण करने और स्वराज्य के लिए युद्ध-क्षेत्र में उतर पड़ने के निमित्त कहता था। जून १९०९ में शंकर कृष्ण ने नीलकण्ठ से वंची ऐयर नामक एक व्यक्ति का परिचय कराया। दिसम्बर १९१० में वी० एस० ऐयर नामक एक व्यक्ति कर्मक्षेत्र में आया। यह व्यक्ति इंग्लैण्ड में भी रह चुका था. विनायक सावरकर और श्यामजी कृष्ण वर्मा से उसकी काफी घनिष्टता थी। यह व्यक्ति आकर

पांडिचेरी में ठहरा। ६ जनवरी १६११ को वंची ने तीन माह की छुट्टी ली और पांडिचेरी गए। वहाँ वे पिस्तौल चलाना सीखते रहे। बाद को टिनेवेली षड्-यन्त्र के गवाहों से पता लगा कि वंची लोगों से कहा करते थे कि अंग्रेजों को मारने से ही स्वराज्य मिलेगा, वह यह भी कहते थे कि यह पवित्र काम उस जिले के मजिस्ट्रेट मिस्टर ऐश को मारकर के ही शुरू किया जाए। वंची यह भी कहा करते थे कि जरूरत पड़ने पर पांडिचेरी से अस्त्र मिल सकते हैं।

टिनेवेली-षड्यन्त्र के दौरान में जो तलाशियाँ ली गईं, उनमें दो परचे मिले, जिनके सम्बन्ध में यह लिखा गया था कि वे 'फिरंगी हत्यारे' प्रेस में छपे हैं। एक परचे का नाम था 'आर्यों को सन्देश', जिसमें कहा गया था—"ईश्वर के नाम पर प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने देश से फिरंगी पाप को दूर करोगे, और स्वराज्य कायम करोगे। यह प्रतिज्ञा करो कि जब तक भारतवर्ष में फिरंगियों का राज्य है तब तक अपने जीवन को व्यर्थ समझोगे। जैसे तुम कुत्ते को मारते हो, उसी प्रकार तुम फिरंगी का बध करो, तुम यदि छूरी पाओ तो उसी से मारो, यदि कुछ भी न मिले तो ईश्वर के दिए हाथ से ही उसको मारो।"

दूसरे परचे का नाम था 'अभिनव भारत समाज में प्रवेश के नियम' इस नाम से भी जाहिर होता है कि सावरकर का प्रभाव इस षड्यन्त्र पर था।

मिस्टर ऐश की हत्या—१७ जून १६२२ को वंची ऐयर ने टिनेवेली के जिला मजिस्ट्रेट को एक रेल के जंकशन पर गोली से मार दिया। जिस समय वंची ऐयर ने मजिस्ट्रेट को मारा था, उस समय शंकरकृष्ण भी आस-पास ही था। वंची ऐयर की जेब में तामिल में लिखा हुआ एक पर्चा मिला, जिसमें यह लिखा हुआ था कि प्रत्येक भारतीय स्वराज्य और सनातन धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए अंग्रेजों को यहाँ से निकालना चाहता है। उस पर्चे में यह भी लिखा था कि जिस देश पर राम, कृष्ण, अर्जुन, शिवाजी, गुरु गोविन्द सरीखों का राज्य था, उसी पर एक गो-मांस-भक्षी जार्ज पंचम का का राज्य है, यह कितनी शर्म की बात है? इस परचे में यह भी लिखा था कि तीन हजार मद्रासी यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं, अर्थात् उन्होंने जार्ज पंचम को मारने की प्रतिज्ञा की है।

पेरिस के क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध—मादामकामा नामक एक क्रान्ति-कारिणी पेरिस से एक पत्रिका निकालती थी। इस पत्रिका का नाम 'वन्दे-

मातरम्' था । श्रीमती कामा सावरकर और श्याम जी कृष्ण वर्मा के सहयोग में काम करनेवाली क्रान्तिकारिणी थी । कहा जाता है कि 'वन्देमातरम्' के मई १९११ के अंक में ऐसी बात थी, जिससे आभास मिलता था कि ऐसी एक वारदात होने वाली है । इस लेख का उपसंहार यों किया गया था—"सभा में, बंगले में, रेल के स्टेशन पर, गाड़ी पर जहाँ भी मौका मिले अंग्रेजों का वध किया जाए, इसमें अफसर और साधारण अंग्रेजों में कोई भेद-भाव न किया जाए । नानासाहब ने इस रहस्य को समझा था और अब हमारे बंगाली दोस्त भी इस बात को कुछ-कुछ समझने लगे हैं । जो लोग ऐसे प्रयत्न करते हैं उनकी प्रचेष्टाएँ जययुक्त हों तथा उनके अस्त्र विजयी हों । अब हम अंग्रेजों से यह कह सकते हैं—'Don't shout till you are out of the wood'.

जुलाई, १९११ के अंक में श्रीमती कामा ने यह लिखा कि हाल में जो हत्याएँ हुई हैं, भागवतगीता से उनका समर्थन होता है । उन्होंने लिखा कि जब हिन्दुस्तान के कुछ गुलाम लन्दन की सड़कों पर सीना फुलाकर घूम रहे हैं और राजकीय सरकस में जार्ज पंचम के सामने दुनिया को दिखाकर सिजदा कर रहे हैं, उस समय हमारे दो नौजवानों ने टिनेवेली और मैंमनसिंह में अपने साहसपूर्ण कार्यों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि भारतवर्ष सो नहीं रहा है । टिनेवेली की हत्या का पहले ही वर्णन हो चुका है, दारोगा राजकुमार राय भी इसी जमाने में मैंमनसिंह में अपने घर से लौटते समय गोली से मार दिए गए थे ।

सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार मद्रास प्रान्त में जो कुछ भी हुआ वह बाहर के लोगों के कारण ही हुआ, अर्थात् उन्होंने विपिनचन्द्र पाल और पेरिस-पांडिचेरी के क्रान्तिकारियों को ही यहाँ की बातों के लिए जिम्मेदार ठहराया ।

११

मध्य प्रान्त का क्रान्तिकारी आन्दोलन

जहाँ तक क्रान्तिकारी आन्दोलन का सम्बन्ध है, मध्य प्रान्त बहुत पिछड़ा हुआ रहा। १६०६ में नागपुर में काँग्रेस का अधिवेशन होने वाला था, किन्तु काँग्रेस के नरम और गरम दल में झगड़ा यहाँ तक पहुँच गया था कि वहाँ से काँग्रेस का अधिवेशन हटा कर सूरत में कर देना पड़ा। नागपुर में गरम दल वालों का जोर था, स्थानीय अखबार सरकार की समालोचना में चूकते नहीं थे, लोकमान्य तिलक की 'केसरी' के अनुकरण पर १ मई १६०७ से 'हिन्दी केसरी' नाम से एक अखबार निकलने लगा। 'देश सेवक' नाम का दूसरा राष्ट्रीय अखबार भी इसी युग में निकलता था, छात्रों में बड़ी बेचैनी थी। वह बेचैनी इतनी बढ़ी हुई थी कि चीफ कमिश्नर ने पुलिस के आई० जी० के २२ अक्टूबर, १६०७ के पत्र में लिखा, "जिस प्रकार से पुलिस नागपुर के छात्रों की उद्दण्डता का मुकाबला कर रही है, वह मुझे बहुत नरम जान पड़ता है। यदि इसी प्रकार होता रहा तो नागपुर से सभी जिम्मेदार सार्वजनिक व्यक्ति भाग जाएँगे। भविष्य के लिए मैंने यह निश्चय कर लिया है कि इस प्रकार की उद्दण्डता दबाई जाए। मैंने कमिश्नर को लिखा है कि वह तमाम प्रधान शिक्षकों और कालिजों के अध्यक्षों की एक सभा बुलाएँ, जिसमें इस बात पर वादविवाद हो कि किस प्रकार से अनुशासन कायम किया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि उद्दण्ड छात्रों के साथ पुलिस सख्ती से पेश आए और उन्हें गिरफ्तार करे, तभी हम छात्रों में अनुशासन कायम करने में सफल होंगे। जिस प्रकार की घटनाएँ आज नागपुर में हो रही हैं उससे बड़ी बदनामी होती है और वे बन्द हो जानी चाहिएँ।"

अरविन्द घोष का आगमन—सूरत-काँग्रेस जाते हुए अरविन्द घोष २२ दिसम्बर को नागपुर आए, और उन्होंने स्वदेशी और बहिष्कार का समर्थन करते हुए वक्तृता दी। कांग्रेस से लौटते समय भी वह नागपुर में उतरे, और

उन्होंने फिर इन्हीं विषयों पर वक्तृता दी। इसके अतिरिक्त सूरत में जो तिलक तथा गरम दल वालों की नीति और ढंग था, उसका भी उन्होंने समर्थन किया। उन्होंने कहा, "बंगाली और मराठे भाई-भाई हैं और उनको एक-दूसरे के दुख में शामिल होना चाहिए। इस समय बंगाल में स्वदेशी और बहिष्कार का जोर है, महाराष्ट्र में भी ऐसा ही होना चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा—"बंगाली बड़े जोरों से तकलीफ उठा रहे हैं, मराठों को भी ऐसा ही करना चाहिए।"

खुदीराम और मध्य प्रान्त—बंगाल में जो तुमुल आंदोलन चल रहा था, उसका प्रभाव मध्य प्रान्त पर भी पड़ा। 'देशसेवक' नामक जिस अखबार का पीछे उल्लेख किया जा चुका है, उसमें कई गरम लेख निकले। यदि रौलट साहब पर विश्वास किया जाए, तो इस अखबार में एक लेख निकला था, जिस में कहा गया था कि भारतीयों की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वे बम बनाना नहीं जानते। इस अखबार में छपा था—"अंग्रेजों के साथ इतने सालों रहने के बाद हम इतने गुलाम हो गए हैं कि छोटी-छोटी बातों को देखकर ताज्जुब में आ जाते हैं। शिमला से लेकर सिंहल तक कुछ बंगालियों ने जो दो-तीन गोरों को मारा, लोग इस पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, किन्तु बम बनाना इतना आसान है कि प्रत्येक व्यक्ति इसे बना सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अस्त्र-शस्त्र का व्यवहार करे, या बम बनाए। यदि मनुष्य के द्वारा बनाए हुए कानून हमें इस बात से रोकते हैं तो मजबूरन हमें उन्हें मानना भले ही पड़े, किन्तु हमें उन पर आश्चर्य करने की कोई जरूरत नहीं। यदि यह बात सच है कि खुदीराम के लिए बम कलकत्ते ही में बने थे, तो हमें बड़ी खुशी है। यह तो बहुत ही अच्छी बात है कि कोई भी किसी प्रकार का अपराध न करे, किन्तु जब हमें मजबूरी से अपराध करना पड़ता है तो उसके लिए हम सरकार को ही जिम्मेदार ठहराते हैं जो कि इस प्रकार हमें हथियार तक रखने की इजाजत नहीं देती।"

खुदीराम की अद्भुत् प्रकार से निन्दा—इसके साथ ही इस अखबार ने खुदीराम की निन्दा भी की। उसने लिखा—"खुदीराम बसु ने जो मिस्टर किंग्सफोर्ड की जान लेने की कोशिश की, वह कोई अच्छा काम नहीं था। और उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए। हम खुदीराम बसु के कृत्य की निन्दा करते हैं, किन्तु

साथ ही हम सरकार से यह अनुरोध करते हैं कि वह हमें खुल्लमखुल्ला बम बनाने का अधिकार दे। कानून तोड़कर बम बनाना निंदनीय है, और नौकरशाही के पिठ्ठुओं को मारने से हमारी जाति का पुनरुद्धार नहीं हो सकता। पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम नौकरशाही के पिठ्ठुओं की गुप्त हत्या करें। हमारे बंगाली दोस्तों ने इस बात को याद नहीं रखा, इसका हमें दुख है। इसके साथ ही हम मिस्टर किंग्सफोर्ड को बधाई देते हैं कि वह इस हमले से बच गए। फिर भी हम यह साफ कर देना चाहते हैं कि मिस्टर किंग्सफोर्ड ने मजिस्ट्रेट की हैसियत से देशभक्तों को जो सजाएँ दीं, वह न्याय का गला घोंटना था, और उनकी सारी कार्रवाई शैतानी की थी।"

'देश-सेवक' के इस लेख का यदि विश्लेषण किया जाए तो यह मालूम होगा कि लेखक ने इसमें बहुत-सी बातें तो इसलिए लिख दीं कि कहीं वह कानून के पंजे में न आए। यह लेख ११ मई १६०८ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

'हिन्दी केसरी' का मत—१६ मई की 'हिन्दी केसरी' ने लिखा था कि 'युगान्तर' के सम्पादक पर मुकदमा चल रहा है, किन्तु इससे क्या। 'युगान्तर' तो बराबर जारी है। मानिकतल्ला में बम पाए जाने के सिलसिले में इसमें लिखा था कि यह तो भारत में क्रान्ति करने का प्रयास है। "क्या यह कहा जा सकता है कि यदि हम डकैत, चोर, गँठकटे और लुटेरों के खिलाफ विद्रोह करें तो वह कोई अपराध है? अंग्रेज हिन्दुस्तान के बादशाह नहीं हैं, इसलिए वे लुटेरों की श्रेणी में आते हैं।"

लोकमान्य का जन्म-दिवस—१८ जुलाई को लोकमान्य का जन्म-दिवस पड़ता था। उस दिन कुछ झगड़े इधर-उधर हो गए। लोकमान्य के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए जो सभा बुलाई गई थी, उसको सरकार ने बन्द कर दिया। ६ व्यक्तियों को इसी दिन के सम्बन्ध में सजाएँ हुईं, कुछ अखबारों के सम्पादकों पर मुकदमे चले, और प्रान्तीय सरकार की तरफ से जिले वालों को हिदायत की गई कि चलते-फिरते वक्ताओं पर रोक-टोक लगाई जाए।

मलका की मूर्ति पर हमला—बंगाल की घटनाओं से मध्य प्रान्त पर कोई ऐसा प्रभाव इस समय नहीं पड़ा, जिससे कोई अफसर आदि मारा गया हो,

किन्तु फिर भी इतना तो हो गया कि १९०९ में मल्का विक्टोरिया की मूर्ति के हिस्सों को लोगों ने तोड़ा और उसके मुँह में कोलतार लगाया। इसके अतिरिक्त कोई हमले आदि नहीं हुए।

नलिनीमोहन मुखर्जी—१९१५ में जिस समय उत्तर भारत में रासबिहारी एक विराट् क्रान्ति का आयोजन कर रहे थे, उसी के सिलसिले में एक युवक नलिनीमोहन मुकर्जी जबलपुर की फौज को गदर के लिए तैयार करने के लिए भेजे गए, किन्तु नलिनी को कोई सफलता नहीं मिली। बाद को नलिनी मोहन को बनारस षड्यन्त्र में सजा दी गई थी। इस सिलसिले में हम बनारस-षड्यन्त्र का थोड़ा-सा वर्णन करेंगे।

बनारस-षड्यन्त्र और मध्य प्रान्त—जैसे नलिनीमोहन को जबलपुर का चार्ज दिया गया था, उसी प्रकार श्री दामोदरस्वरूप सेठ को प्रयाग केन्द्र सौंपा गया था। विभूति और प्रियनाथ को बनारस छावनी का काम सौंपा गया था। रासबिहारी स्वयं, शचीन्द्रनाथ सान्याल और पिंगले लाहौर, दिल्ली, मेरठ आदि में काम करने वाले थे। मनीलाल तथा विनायकराव कापले बम लाने के लिए बंगाल भेजे गए। विप्लव की तारीख २१ निर्दिष्ट हुई थी, किन्तु इस तारीख को बदलकर १९ फरवरी कर दिया गया था। बनारस में काम करने वालों को इस परिवर्तन का पता नहीं लगा, और वे यह देखते रहे कि तार कब कटता है ताकि पता लगे कि क्रान्ति हो गई। जैसा कि पहले बताया जा चुका है यह प्रयत्न असफल रहा और लोग पकड़े गए। बनारस षड्यन्त्र में विभूति मुखबिर हो गया। इन सबके ऊपर भारत-रक्षा कानून के अनुसार मुकदमा चला और शचीन्द्र बाबू को आजन्म कालेपानी का दंड दिया गया। रासबिहारी पुलिस के हाथ न लग सके, शचीन्द्र और गिरजा बाबू जाकर उन्हें जहाज पर चढ़ा आए।

इस मुकदमे की तलाशी में बहुत से अस्त्र-शस्त्र और पर्चे मिले। सब व्यक्तियों को सजाएँ हुईं। शचीन्द्र बाबू इसके नेता माने गए। इस षड्यन्त्र में कोई डकैती या हत्या नहीं थी, किन्तु इससे भी जो खतरनाक बात है फौजों को भड़काना, यह इसका मुख्य अभियोग था।

नलिनीमोहन के बाद नलिनीकान्त घोष भी जबलपुर गए। यह नलिनी

कान्त वही व्यक्ति है, जिसकी बाद को आसाम की गोहाटी में गिरफ्तारी हुई। नलिनी के अतिरिक्त विनायकराव कापले भी जबलपुर गए, और वहाँ उन्होंने फरारी के लिए जगह प्राप्त करने की और एक शाखा खोलने की चेष्टा की। इन्होंने ७ व्यक्तियों को अपने दल में भर्ती किया। इसमें दो छात्र, दो शिक्षक, एक वकील, एक मुंशी, और एक दर्जी था। बाद को ये सातों गिरफ्तार कर लिए गए, किन्तु इसमें से एक छात्र और दर्जी छोड़ दिया गया और पाँच व्यक्तियों को नजरबन्द कर लिया गया। विनायकराव स्वयं प्रान्त से चले गए, और उनके किसी साथी ने उनको लखनऊ में गोली मार दी। कहा जाता है इसका कारण यह था कि विनायक के ऊपर दल का सन्देह था कि वह चरित्र-भ्रष्ट हो गया है, और दल का रुपया खा गया है। इसी हत्या के सम्बन्ध में सुशीलचन्द्र लाहिड़ी एम० ए० को फाँसी हुई।

१२

मुसलमान क्रान्तिकारी दल

हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज—भारतवर्ष का साम्राज्य मुसलमान शासकों के हाथ से अंग्रेजों के हाथ में आया, इसलिए होना तो यह चाहिए था कि मुसलमानों में और अंग्रेजों में चिर शत्रुता होती, और मुसलमान अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध बार-बार विद्रोह और षड्यन्त्र करते, किन्तु हुआ ठीक इसके विपरीत। इसके कई कारण बताए जाते हैं। एक उसमें से यह है कि मुगल तथा पठान साम्राज्य के युग में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर बहुत-कुछ ज्यादती की, इसलिए वे सोचते थे कि हिन्दुओं का राज्य हुआ तो कहीं वे बदला न लेने लगें। यह स्वाभाविक है कि इस कारण वे हिन्दू राज्य के बदले अंग्रेजी राज्य को अधिक पसन्द करते थे।

मैं इस कारण को ठीक नहीं समझता, वस्तुस्थिति यह थी कि जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारतवर्ष में आया तो उसे अपने लिए एक मित्र की आवश्यकता पड़ी। वर्गों में तो उसने पहले सामन्तवादी राजाओं तथा नवाबों को अपनाया, किन्तु इससे काम न चला, क्योंकि जनता में फूट इस प्रकार के विभाजन से नहीं कराई जा सकी, जनता तो हमेशा इन राजाओं को अपने से अलग समझती थी। इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने दूसरा रास्ता ढूँढा, और वह रास्ता यह था कि किसी एक खास धर्म के लोगों को नौकरी आदि में तरजीह दी जाए, जिससे कि हमेशा इनमें आपस में लात-जूता होता रहे। शुरू में तो अंग्रेजों ने हिन्दुओं को अपनाया, तथा हिन्दुओं ने अर्थात् हिन्दू माने बंगाली मध्यम श्रेणी ने तथा बाद को सभी जगह अंग्रेजी शिक्षित नई मध्यम श्रेणी ने अंग्रेजी राज्य तथा उसकी शिक्षा आदि को अपनाया। इसका फल इस श्रेणी के हक में बहुत अच्छा हुआ अर्थात् इस श्रेणी को नौकरियाँ आदि मिलीं। नतीजा यह हुआ कि यह श्रेणी अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का साझेदार समझने लगी, किन्तु नौकरियों की

विजय प्राप्त कर रहा था, तथा नए-नए विभाग खोलकर अपने नागपाश से भारतवर्ष की गुलामी को और दृढ़ कर रहा था, उस समय नौकरियाँ बढ़ती थीं, सरकार मध्यवित्त श्रेणी को खुश कर सकती थी; किन्तु जब नौकरियों का बढ़ना बन्द हो गया, और उधर मध्यम श्रेणी की संख्या बढ़ने लगी, केवल इतना ही नहीं उसका हौसला और माँगें बढ़ने लगीं, तब सरकार को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा। धीरे-धीरे इस श्रेणी में असन्तोष बढ़ने लगा। यह श्रेणी यों ही बहुत अग्रसर और शिक्षित थी, साथ ही साथ यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हथकंडों से परिचित थी। इसका हौसला भी बढ़ा हुआ था, अतएव यह जब बिगड़ खड़ी हुई तो ब्रिटिश सामाज्यवाद को बहुत बुरा मालूम हुआ, क्योंकि इस विद्रोह को उसने एक प्रकार से नमकहरामी के तरीके पर लिया।

मुसलमान मध्यम श्रेणी—जब मुसलमान मध्यम श्रेणी ने शिक्षा तथा शासन को अपनाने से हिन्दू मध्यम श्रेणी को जो फायदे हुए उनको देखा, तो वह भी इस क्षेत्र में आगे बढ़ी। बहुत दिनों तक तो मुसलमान मध्यम श्रेणी खोए हुए साम्राज्य को लौटा पाने का स्वप्न देख रही थी, इसलिए उसने शुरू में अंग्रेजी शिक्षा तथा शासन को नहीं अपनाया, किन्तु जब यह स्वप्न भंग हो चुका, तब नौकरियों के लिए वह भी दौड़ने लगी। सरसैयदअहमद ने इस नए रुख का नेतृत्व किया। भारतीय मुसलमानों में इस प्रकार के झुकाव के कारण अलीगढ़ विश्वविद्यालय तथा मुस्लिम लीग ऐसी संस्थाओं की उत्पत्ति हुई। इस झुकाव के फलस्वरूप मुसलमानों में राजभक्ति की एक लहर-सी दौड़ गई। मुस्लिम लीग के उद्देश्यों में एक यह भी था "मुसलमानाने हिन्द के दिल में ब्रिटिश गवर्नमेंट की निस्बत वफादाराना ख्यालात पैदा करना, और हुकूमत की कार्रवाई के मुतल्लिक जो गलतफहमी पैदा हो जाए, उसको रफा करना।"

मुसलमान मध्यम श्रेणी चूँकि राज-भक्ति के क्षेत्र में देर से आई, इसलिए वह हिन्दू मध्यम श्रेणी से कहीं अधिक खैरख्वाही दिखाने लगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने मुसलमानों के इस नए झुकाव को खूब अपनाया, और धीरे-धीरे हिन्दू मध्यम श्रेणी की जगह मुस्लिम मध्यम श्रेणी सरकार की सुहागिन हो गई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की चाल सफल हो गई। दोनों सम्प्रदायों में फूट का एक अच्छा सिलसिला निकल आया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भी मुस्लिम

मध्यम श्रेणी को अपनाने में फायदा था, क्योंकि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के साथ दोस्ती करने में ही फायदा रहता है, अधिक संख्या के साथ रियायत करने पर शोषण किसका होना ?

बंग-भंग और मुसलमान मध्यम श्रेणी—वंग-भंग एक तरह से भारतवर्ष का सबसे पहला व्यापक आन्दोलन था, किन्तु इसमें मुख्यतः बंगाली हिन्दुओं ने भाग लिया, मुसलमान मध्यम श्रेणी इस के विरुद्ध थी। १९०६ के मुस्लिम लीग के अधिवेशन में एक प्रस्ताव इस आशय का पास हुआ—"तकसीमेबंगाल मुसलमानों के लिए निहायत मुफीद है, इसके खिलाफ शोरिश और बॉयकाट की तहरीकें बिलकुल बेजा और मजमूम हैं।" यह चर्चा केवल एक ही अधिवेशन में नहीं आई, बल्कि बाद को जब वंग-भंग रद्द कर दिया गया, तब भी इसकी निंदा की गई। मार्च १९१२ को मुस्लिम लीग का वार्षिक अधिवेशन ढाके में नवाब सलीमुल्ला खाँ के सभापतित्व में हुआ। नवाब साहब ने अपने अभिभाषण में वंग-भंग को रद्द करने की निन्दा की, और हिज हाइनेस सर आगाखाँ पर कड़े शब्दों में आपत्ति की कि वह सारे मुस्लिम जनमत का विरोध होते हुए भी वंग-भंग की मनसूखी को मुसलमानों के लिए अच्छी समझते हैं। इसी के बाबत उस जमाने में मौलाना शिबली ने लिखा—"हिज हाइनेस सर आगा खाँ को हम जरूर बदगुमानी की नजर से देखते हैं, इसलिए नहीं कि उनके किसी व्यक्तिगत कार्य से हमें घृणा है, बल्कि हम उनसे इसलिए नाराज हैं कि वह तकसीमेबंगाल की मनसूखी और ढाका युनिवर्सिटी का मुसलमानाने बंगाल के हक में मुफीद समझते हैं, और इसकी कोई माकूल वजह बयान नहीं करते, ताहम मुसलमानों को गवर्नमेंट का शुक्रिया अदा करने की हिदायत फरमाते हैं ?"

सर्व-इस्लामवाद—इस प्रकार देखा गया कि मुस्लिम मध्यवित्त श्रेणी का रवैया शुरू से ही कुछ और था, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से वे बराबर खुश रहे। वंग-भंग को वे भले ही अपने लिए अच्छा समझते किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा की हुई बहुत-सी अन्तर्राष्ट्रीय बातें उन्हें बिलकुल नागवार गुजरती थीं। बात यह है कि हिन्दुस्तान के बाहर भी मुसलमान थे। यहाँ के पढ़े-लिखे मुसलमान उनसे सहानुभूति रखते थे, और यदि भारत के बाहर की मुसलमान ताकतों के विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्यवाद से कोई बात सर-

जद होती तो उनको ठेस लगती, और वे ब्रिटिश साम्राज्य से अपनी खैरख्वाही की प्रतिज्ञा भूलकर असंतुष्ट हो जाते । यहाँ के पढ़े-लिखे मुमलमानों में यह सर्व-इस्लामी भावना इतनी जोरदार थी कि श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अपनी पुस्तक में तो यहाँ तक लिख डाला—"मुसलमानों के साथ मिलकर हमारी यह धारणा हो गई है कि हमारे देश के मुमलमान तुर्की, अरब ईरान या काबुल की ओर जितना ध्यान रखते हैं, उतना भारत की ओर नहीं रखते । वे तुर्की के गौरव से अपने को जितना गौरवान्वित समझते हैं, भारतवर्ष या हिन्दुओं के गौरव से उतना गौरवान्वित नहीं समझते ···मुसलमान भारतवर्ष को हिन्दुओं की तरह प्यार नहीं करते ।"

मुस्लिम मध्य श्रेणी तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रचार-कार्य के फलस्वरूप संकुचित भावनाएँ बहुत-कुछ मुस्लिम जनता में फैल गई हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी जगत की घटनाएँ—क्रिमीयन युद्ध के समय में ही भारतीय पढ़े-लिखे मुसलमान तुर्की के साथ हमदर्दी रखने लगे थे । इटली और तुर्की में युद्ध से बल्कान प्रायद्वीप की इधर की घटनाओं से यह हमदर्दी और भी दृढ़ हो गई थी । ईरान को जिस प्रकार जार ने तथा ब्रिटिश सरकार ने ईरान की राय के बिना तथा एक तरह से उसे पराधीन बनाकर अपने-अपने प्रभाव-केन्द्रों में बाँट लिया था, उससे भी मुसलमान जगत् काफी असंतुष्ट हुआ था । फिर बल्कान प्रायद्वीप के बखेड़ों में तुर्की जब अकेला पड़ गया तो मुसलमान जगत् में ब्रिटेन की निष्पक्षता की बहुत शिकायत की गई, क्योंकि कई बार ब्रिटेन तुर्की की तरफदारी कर चुका था । ये शिकायतें इसलिए हुईं कि भोले-भाले मुसलमान यह नहीं समझते थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जो तुर्की को मदद दी थी, वह तुर्की की भलाई के लिए नहीं बल्कि अपने हक में Balance of Power यानी शक्ति-संतुलन कायम करने के लिए थी । बहुत से लोगों ने तो साफ कहा कि ब्रिटेन किसी की तरफ भी नहीं है । वह तो अपना ही मतलब हल करना चाहता है । कुछ मुस्लिम मध्यम श्रेणी के अखबारों ने तो यहाँ तक कहा कि यदि में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का यही रवैया रहा तो एशिया यूरोप, कहीं भी इकुछ भी की ताकत नहीं रहेगी । भारत के बाहर की इस्लाम दुनिया ने इस(था, इस- इतना प्रचार किया कि कुछ लोग ब्रिटेन को खासकर इस्लाम की अ

पानी फेरनेवाला समझने लगे। हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि सर्व इस्लाम-वाद के अपने जमाने के सबसे बड़े हामी अनवरपाशा ब्रिटेन के सम्बन्ध में क्या ख्याल रखते थे।

महायुद्ध का समय—प्रथम महायुद्ध में रणक्षेत्र के जर्मनों का पक्ष लेकर तुर्की के प्रवेश करते ही हिन्दुस्तान के कुछ मुसलमानों में एक बिजली-सी दौड़ गई। सरकार ने भी इस बात को महसूस कर लिया कि भारत में इस युद्ध-घोषणा के विकट परिणाम हो सकते हैं। ब्रिटिश सरकार की ओर से फौरन यह एलान किया गया कि ब्रिटेन तुर्की से लड़ना नहीं चाहता है, तुर्की तो व्यर्थ ही जर्मनी के इशारे पर इस युद्ध में कूद पड़ा। सरकार भी वायदा करती है कि वह किसी भी हालत में अरब के तीर्थों तथा इराक के बाजारों पर हमला नहीं करेगी, किन्तु वह चाहती है कि हिन्दुस्तान के मक्का-यात्री सुरक्षित रहें। इसके साथ ही सरकार के इशारे पर निजाम ने एक पत्र प्रकाशित कराया, जिसका उद्देश्य मुस्लिम जनता को शान्त करना था किन्तु सब लोग सरकार के इस चकमे में नहीं आए, असन्तोष बढ़ता ही गया।

क्योंकि यह दारुल हरब है, अर्थात् ऐसा देश है जहाँ पर मुसलमानों का राज्य नहीं है। ये लोग हमेशा जेहाद-प्रचार करते रहे है, और इनको भारतवर्ष के कट्टर मुसलमानों से बराबर कुछ न कुछ सहायता मिलती रही है। गदर के जमाने में ये लोग गदर करनेवालों के साथ मिल गए, और यह कोशिश की कि सीमा प्रान्त पर आक्रमण किया जाए, किन्तु इनकी यह चेष्टा सफल नहीं हुई। सन १९१५ में इन लोगों ने ब्रिटिश फौज के खिलाफ लड़ाई की, जिसके फलस्वरूप रुस्तम और शब्कदर नामक स्थानों में लड़ाइयाँ हुई। शब्कदर की लड़ाई के बाद देखा गया कि उनमें से १५ जो कि काले कपड़े पहने हुए थे रणक्षेत्र में मरे पड़े हुए थे। इन लोगों की वजह से ब्रिटिश सरकार को काफी परेशानी रही।

मुहाजिरीन—सन् १९१५ में लाहौर के १५ छात्रों ने अपना कालिज छोड़ दिया और जाकर मुजाहिदीन में मिल गए। यहाँ से ये काबुल गए, किन्तु काबुल की सरकार ने इन्हें सन्देह पर गिरफ्तार कर लिया। बाद को जब इन लोगों ने सबूत दिया कि ये ब्रिटिश खुफिया नहीं हैं, तब ये छोड़े गए, किन्तु फिर भी इन पर बराबर निगरानी बनी रही। दो तो भारत लौट आए। तीन रूस की जारशाही सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए, और अंग्रेजों के हाथ सौंप दिए गए। इन लोगों ने सरकार से माफी माँगी और इसलिए ये माफ कर दिए गए। इन १५ आदमियों को उनके प्रशंसक मुहाजिरीन कहते हैं, इसका मतलब यह है कि ये लोग रसूले-इस्लाम का अनुकरण कर अपने घर से भाग गए थे। सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में रौलट साहब लिखते हैं कि उन्होंने इनमें से दो के बयान पढ़े। एक ने यह बतलाया था कि नेमैं जो कुछ भी किया वह एक पुस्तिका के प्रभाव में आकर किया जिसमें यह लिखा था कि तुर्की के सुल्तान को यह डर है कि ब्रिटिश सरकार मक्का और मदीना पर हमला करेगी, इसलिए सब मुसलमानों का कर्तव्य है कि वे इस काफिर शासित मुल्क को छोड़कर इस्लामी देशों में चले जाएँ और वहाँ से सब गैर मुसलमानों के विरुद्ध जेहाद की घोषणा करें। दूसरे छात्र को इस वजह से जोश आया था कि उसने सुल्तान के एक एलान को पढ़ा था, और एक ब्रिटिश अखबार में एक तसवीर देखी थी जो मुसलमानी भावों को ठेस पहुँचाती थी। जो कुछ भी हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि इन छात्रों का असंतोष कोई गहरा नहीं था, इस-

लिए जो कुछ भी इन्होंने किया उसमें नौजवानी के जोश के अलावा कोई बात नहीं थी, इसलिए उन लोगों ने जो कुछ भी किया, उसमें कोई गहराई न आ सकी, न वे किसी प्रकार कुछ कर ही सके।

१९१७ की जनवरी में पता लगा कि पूर्वी बंगाल के रंगपूर और ढाका के जिलों से ८ मुसलमान नौजवान जाकर मुजाहिदीन में मिल गए। १९१७ की मार्च में दो बंगाली मुसलमान सीमा प्रान्त में गिरफ्तार हुए जिनके पास ८ हजार रुपए पाए गए। ये रुपए इसी मुजाहिदीन उपनिवेश में गुप्त रूप से भेजे जा रहे थे। ये दो नौजवान कुछ दिनों तक मुजाहिदीन के उपनिवेश में रह चुके थे और वहाँ रहने के बाद अपने जिलों में चन्दा इकट्ठा करने गए थे।

केवल यह कहना कि सारे सीमा प्रान्त का झगड़ा इन्हीं कट्टरपंथियों का उठाया हुआ था, गलत होगा, क्योंकि सीमा प्रान्त में ब्रिटिश नीति से काफी असंतोष था। सरकार की सीमा प्रान्त के बारे में बराबर यही नीति रही कि धीरे-धीरे आगे बढ़ा जाए, जिसको अंग्रेजी में 'Peaceful Penetration' की नीति कहते हैं। वे लोग नहीं चाहते थे कि वे गुलाम हों, और इसलिए सरकार के आक्रमण के विरुद्ध हर तरीके से लड़ने के लिए तैयार रहते थे।

रेशमी चिट्ठियों का षड्यन्त्र—सन् १९१६ में सरकार को यह पता लगा कि भारतवर्ष के अन्दर एक विराट् षड्यन्त्र इस उद्देश्य से हो रहा है कि ब्रिटिश शासन का तख्ता उलट दिया जाए। यह षड्यन्त्र मुसलमानों का ही षड्यन्त्र था। योजना यह थी कि सीमान्त प्रदेश से भारतवर्ष पर मुसलमानों का हमला होगा, और उसके साथ ही यहाँ मुसलमान विद्रोह में उठ खड़े होंगे। यह एक मजे की बात है कि इस प्रकार भारत में ब्रिटिश शासन को उलटने के षड्यन्त्र में केवल मुसलमानों से ही उम्मीद की गई कि वे विद्रोह करेंगे। बात यह है कि यह आन्दोलन राजनैतिक होने पर भी इसका दृष्टिकोण धार्मिक यानी सर्व-इस्लाम था, इसलिए यह आन्दोलन ही बहुत-कुछ गलत था।

१९१५ की अगस्त में मौलवी ओबेदुल्ला सिंधी कुछ साथियों के साथ अर्थात् ओबेदुल्ला, फतहमुहम्मद और मुहम्मदअली के साथ सरहद पार कर गए। ओबेदुल्ला का पूर्व परिचय यह है कि वे पहले सिख थे, बाद को मुसलमान हो गए, और देवबन्द के मुस्लिम-विद्यापीठ में मौलवी होने की तालीम पा चुके थे।

वहाँ पर ओबेदुल्ला ने अपने विचारों को अपने सहपाठियों के सामने रखा। ये विचार कुछ सुलझे हुए तो नहीं थे, किन्तु इनमें ब्रिटेन के विरुद्ध विद्वेष था। ये विचार बहुत से सहपाठियों को पसन्द आये, यहाँ तक कि मौलाना महमूद हुसेन जो इस मुस्लिम विद्यापीठ के सबसे बड़े अध्यापक थे, उनके प्रभाव में आ गए। ओबेदुल्ला की योजना कुछ इस प्रकार थी कि मौलवियों के जरिए से भारत-भर में सर्वइस्लामवाद और ब्रिटिश विद्वेप का प्रचार किया जाए, और इस प्रकार एक वातावरण पैदा किया जाए जिसमें अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह सफल हो सके। किन्तु उनकी इस योजना को संस्था के मैनेजर और कमेटी ने पसन्द न किया, और उन्हें और उनके कुछ खास साथियों को निकाल बाहर किया। इस प्रकार ओबेदुल्ला की यह योजना, जिस रूप में वे चाहते थे, उस रूप में कार्यरूप में परिणत न हो सकी, किन्तु ओबेदुल्ला इससे दबने वाले नहीं थे।

मौलाना महमूदहुसेन उस संस्था में ही रह गए थे, इसलिए ओबेदुल्ला बराबर उनसे मिलते रहे। केवल यही नहीं, सीमा प्रान्त के बाहर के लोग भी आ-आकर मिलते-जुलते रहे। १६१५ की १८ सितम्बर को मौलाना महमूद हुसेन भारतवर्ष के बाहर चले गए, किन्तु वे ओबेदुल्ला की तरह उत्तर से न जाकर समुद्र-मार्ग से हेजाज गए।

बाहर जाकर मौलाना ओबेदुल्ला तथा उनके साथी बराबर यह कोशिश करते रहे कि मुसलमान स्वतंत्र राष्ट्र भारतवर्ष पर हमला करें और उसके साथ ही साथ हिन्दुस्तान में एक विद्रोह हो। भारत के बाहर जाने के पहले ओबेदुल्ला ने दिल्ली में एक मकतब खोला था, जिसका उद्देश्य इन्हीं सब बातों का प्रचार करना था। ओबेदुल्ला ने पहले तो मुजाजिद्दीन से भेंट की, फिर वह काबुल गया। यहाँ पर उसने तुरकी और जर्मनी के एलचियों से भेंट की और उनसे अपना उद्देश्य बतलाया। लड़ाई का जमाना था, इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध करने वाले देशों के इन एलचियों ने उन्हें काफी उत्साह दिया। इसी बीच में मौलवी मुहम्मदमियाँ अंसारी भी आकर वहाँ मिल गए। यह भी देवबन्द के थे और मौलाना महमूदहुसेन के साथ अरब गए थे। सन् १६१६ में मौलाना को हिजाज के तुर्की सामरिक गवर्नर गालिबपाशा के हाथ का लिखा हुआ जेहाद का एक एलान प्राप्त हुआ। रास्ते में सब जगह महमूद मियाँ इस

एलान की प्रतियों को भारतवर्ष तथा सीमा-प्रान्त में खूब बाँटते रहे ।

ओबेदुल्ला ने विद्रोह के बाद क्या होगा इसके विषय में एक योजना बनाई थी, इस योजना के अनुसार राजा महेन्द्रप्रताप स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रपति होने वाले थे। वे १६१४ के अन्त में इटली आदि देशों के भ्रमण के लिए निकले थे । जेनेवा में इनकी लाला हरदयाल से भेंट हो गई और वे बर्लिन जाकर भारतीय क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गए ।

ओबेदुल्ला ने राजा महेन्द्रप्रताप को योजना में राष्ट्रपति का पद दिया था । इससे स्पष्ट है कि उन्होंने जिन सर्व-इस्लामी भावनाओं से प्रेरित होकर इस क्रान्ति के आयोजन का बीड़ा उठाया था, वे भावनाएँ अब शिथिल हो गई थीं, क्योंकि विदेश में जाने के बाद उन्होंने देखा था कि वे अकेले ही क्रान्ति के आयोजन के लिए काम नहीं कर रहे हैं ।

सूफी अम्बाप्रसाद—सूफी अम्बाप्रसाद का उल्लेख पहले हो चुका है । वे मुरादाबाद जिले के रहने वाले थे, उनका दाहिना हाथ जन्म से ही नहीं था । इस पर वे कहा करते थे, "अरे भाई सन् ५७ में मैंने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई की थी, हाथ उसी में कट गया, फिर जन्म हुआ, किन्तु हाथ कटे का कटा रह गया ।"

विशेषकर वह एक बहुत अच्छे लेखक थे । हमेशा उनकी लेखनी अंग्रेजों के विरुद्ध आग उगला करती थी । सन् १८६७ ई० में उन्हें राजविद्रोह के अपराध में डेढ़ साल की सजा हुई । १८६६ में उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सरकार की नीति रियासतों की तरफ से कुछ खराब है, बस उन्होंने सरकार की अपनी लेखनी से खबर लेनी शुरू कर दी । इस पर उनकी सारी जायदाद जब्त कर ली गई और फिर उन्हें दो साल की सजा दी गई । फिर छूटे, तब सरदार अजीतसिंह के साथ काम करते रहे । जब १६०७ में पंजाब में तूफानी जमाना आया और सरकार घबड़ा गई, उस समय सरदार अजीतसिंह के भाई सरदार किसनसिंह और मेहता आनन्दकिशोर के साथ वह नैपाल भाग गए । वहाँ से पकड़कर लाहौर लाए गए । फिर एक किताब लिखी, जो जब्त हो गई । इस प्रकार परेशान होकर सूफीजी, सरदार अजीतसिंह और जियाउलहक ईरान भाग गए । वहाँ ये लोग बराबर काम करते रहे ।

सूफीजी ने एक अखबार 'आबे हयात' नाम से निकाला और ईरान के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे। प्रथम महायुद्ध के समय जिस समय ईरान में अंग्रेजों ने अपना रंग जमाना चाहा, उस समय सूफीजी शीराज में थे। शीराज पर अंग्रेजों ने घेरा डाल रखा था। लड़ाई हुई और उसमें सूफीजी बाएँ हाथ से ही लड़ते रहे, पर लड़ते-लड़ते अन्त में पकड़े गए। फौजी अदालत में उनको गोली से उड़ा देने की सजा हुई, किन्तु जब दूसरे दिन गोली से उड़ाने के लिए उनकी कोठरी खोली गई तो देखा गया कि वे पहले ही प्राण तज चुके हैं। सूफीजी ने ईरान में अपने को इतना जनप्रिय बना लिया था कि उन्हें लोग आका सूफी कहते थे। मरने के बाद उनकी कबर बनाई गई और अब भी ईरान के लोग वहाँ बड़ी श्रद्धा से हर साल जाते हैं।

हमने इस जगह पर सूफीजी के विषय में इसलिए लिखा कि हम दिखाना चाहते थे कि कैसी-कैसी बातों की वजह से ओबेदुल्ला ऐसे व्यक्तियों के विचारों में परिवर्तन या यों कहिए प्रौढ़ता आई थी, फिर इसके अतिरिक्त बाहर के मुसलमानों ने भी इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर क्रान्ति का प्रयास करें, तभी वह सफल हो सकता है।

बरकतुल्ला—ओबेदुल्ला की योजना के अनुसार वह स्वयं एक मंत्री होने वाले थे। बरकतुल्ला प्रधान मंत्री होने वाले थे। बरकतुल्ला बर्लिन होकर काबुल आए थे और गदर पार्टी के सदस्य थे। वह भूपाल रियासत के रहने वाले थे। विदेशों में खूब घूम चुके थे। कुछ दिनों तक वे जापान के टोकियो विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी के अध्यापक थे। वहाँ वे एक अखबार का संपादन भी करते थे, जिसका नाम 'The Islamic fraternity' था। यह अखबार बाद को जापानी सरकार द्वारा बन्द कर दिया गया। मालूम होता है ब्रिटिश सरकार के अनुरोध पर ही जापानी सरकार ने ऐसा किया था। टोकियो विश्वविद्यालय में अध्यापक पद से अलग कर दिए जाने पर वे दिन-रात गदरदल का कार्य करने लगे।

जार के पास चिट्ठी—काबुल स्थित भारतीय मुसलमान अपने कार्य को बड़ी तत्परता के साथ करते रहे, तथा अस्थायी सरकार (Provisional Government) की ओर से बराबर चिट्ठियाँ भेजी गईं। कुछ चिट्ठियाँ तो रूसी तुर्किस्तान और रूस के जार को भेजी गईं, जिसमें उनसे यह अनुरोध किया गया

था कि वे इंगलैंड के साथ अपनी दोस्ती को खत्म कर दें, और अपनी सारी शक्ति भारत से अंग्रेजी राज को उखाड़ने में लगा दें। जो चिट्ठी रूस के जार को भेजी गई थी, वह सोने की तश्तरी पर अंकित थी। इन चिट्ठियों पर राजा महेन्द्रप्रताप के दस्तखत थे, क्योंकि वे ही इस षड्यन्त्र के अनुसार भावी राष्ट्रपति थे। इस भारतीय अस्थायी सरकार ने तुर्की सरकार से भी मित्रता स्थापित करनी चाही, तदनुसार ओबेदुल्ला ने मौलाना महमूदहुसेन को इसके लिए लिखा। यह चिट्ठी सिंध हैदराबाद के शेखअब्दुल रहीम के पास एक दूसरी चिट्ठी के साथ जो मुहम्मद मियाँ अन्सारी को लिखी गई थी, भेजी गई। शेख अब्दुल रहीम को यह लिखा गया था कि वे इन चिट्ठियों को किसी विश्वासपात्र हजयात्री के हाथ भेज दें और मक्का में महमूद हुसेन को पहुँचा दें। ये चिट्ठियाँ पीले रेशम पर बहुत साफ तरीके से लिखी गई थीं। इन चिट्ठियों में अब तक की हुई सब कार्रवाइयों का उल्लेख था, यानी गालिबनामा और भारतीय अस्थायी सरकार तथा खुदाई फौज का उल्लेख था। महमूदहुसेन के ऊपर यह भार था कि वे ये सब खबरें तुर्की सरकार को पहुँचा दें। ओबेदुल्ला की चिट्ठी में खुदाई फौज का भी विवरण था। इस फौज का केन्द्र स्थल मदीना होने वाला था। तथा महमूदहुसेन इसके प्रधान सेनापति होने वाले थे। कुस्तुन्तुनियाँ, तेहरान, काबुल आदि जगहों पर इसकी शाखाएँ होने वाली थीं, ओबेदुल्ला स्वयं काबुल केन्द्र के सेनापति होने वाले थे। लाहौर के छात्रों में एक मेजर जनरल, एक कर्नल और ६ लेफ्टिनेन्ट कर्नल होने वाले थे।

ये चिट्ठियाँ सरकार के हाथ लग गईं और सरकार ने तदनुसार यह चेष्टा की कि यह आन्दोलन पनप न सके।

१९१६ में मौलाना महमूदहुसेन चार साथियों सहित ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खूँखार पंजों में फँस गए और नजरबन्द कर दिए गए, गालिबपाशा भी पकड़ लिए गए।

गालिबनामा क्या था?—गालिबनामे में लिखा था, "एशिया, यूरोप, तथा अफ्रीका के मुसलमानों ने सब प्रकार के हथियारों से लैस होकर यह निश्चय किया है कि खुदा की राह पर जेहाद किया जाए। खुदा का शुक्र है कि तुर्की-सेना तथा मुजाहिदीन ने इस्लाम के दुश्मनों का धुर्रा उड़ा दिया। ऐ मुसलमानो!

तुम्हारा फर्ज यह है कि तुम इस जालिम ईसाई सरकार के खिलाफ, जिसकी गुलामी में तुम हो, उठ खड़े हो । इस काम में देर की जरूरत नहीं है, सच्ची लगन के साथ दुश्मन की जान लेने के लिए आगे बढ़ो, उनके प्रति जो तुम्हारे जजबात हैं, उनका प्रदर्शन करो। तुमको मालूम होना चाहिए कि देव-बन्द मदरसा के मौलवी महमूदहुसेन अफंदी हमारे पास आए और उन्होंने हमारी सलाह माँगी। हमारी उनकी राय एक है, इसलिए वे अगर आपके पास आएँ तो आप उनको आदमी, रुपए-पैसे और हर-एक तरीके से मदद कीजिए।"

पहले ही उल्लेख हो चुका है कि १९१५ सन् में तुर्की के साथ इटली के युद्ध में हिन्दुस्तान से एक मेडिकल मिशन भेजा गया था। इस मिशन में मौलाना जफरअली खाँ भी थे, एक अन्य अध्याय में इन लोगों का उल्लेख आ चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि क्रान्ति करने का यह मुसलमानी आयोजन भारतवर्ष के क्रान्तिकारी इतिहास का एक रोमांचकारी अध्याय है। यह देखने की बात है कि किस प्रकार यह आन्दोलन एक साम्प्रदायिकता के घेरे में पैदा हुआ था, किन्तु धीरे-धीरे इस आन्दोलन का रुख व्यावहारिक जगह में आने की वजह से किस प्रकार पलटता गया।

१३

क्रान्तिकारी समितियों का संगठन तथा नीति

क्रान्तिकारी समितियाँ गुप्त समितियाँ होती थीं, यह तो सभी जानते हैं। किन्तु इनका संगठन किस भाँति होता था, इसके सम्बन्ध में लोगों की स्पष्ट धारणाएँ नहीं हैं। मैं इसके पहले लिख चुका हूँ कि हिन्दुस्तान में एक ही साथ कई समितियाँ काम करती थीं, किन्तु ये किस प्रकार सहयोग से काम करती थीं, यह भी समझना आवश्यक है। इन समितियों में बंगाल की अनुशीलन समिति प्रमुख थी, इसके नेता श्री पुलिनदास न केवल एक कट्टर अनुशासन के माननेवाले सुदक्ष नेता थे, बल्कि अच्छे लाठी, तलवार, बल्लम, बन्दूक चलाने वाले भी थे। बंगाल की समितियों में अनुशीलन का अनुशासन सब से जबर्दस्त था, इसकी प्रतिज्ञाएँ चार प्रकार की थीं।

(१) प्राथमिक प्रतिज्ञा (आद्य)

(२) अन्त्य प्रतिज्ञा

(३) प्रथम विशेष प्रतिज्ञा

(४) द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा

प्रतिज्ञाएं बड़ी कठिन थीं, प्राथमिक प्रतिज्ञा में यह बातें भी कहनी पड़ती थीं।

(क) मैं कभी भी इस समिति से अलग न हूँगा।

(ख) मैं हमेशा समिति के नियमों के अधीन रहूँगा।

(ग) मैं नेताओं का हुक्म बिना कुछ कहे मानूँगा।

(घ) मैं नेता से कुछ भी नहीं छुपाऊँगा, उसके निकट सत्य के सिवा कुछ न बोलूँगा।

अन्त्य प्रतिज्ञाओं में ये बातें भी थीं।

(क) मैं समिति का कोई भी अंतरंग मामला किसी से नहीं खोलूँगा, न उन पर व्यर्थ की बहस करूँगा।

(ख) मैं परिचालक को बिना बताए कहीं बाहर न जाऊँगा। मैं हर समय कहाँ हूँ, इसकी परिचालक को इत्तला देता रहूँगा, यदि दल के खिलाफ किसी षड्यन्त्र के होने का पता लगा तो मैं फौरन परिचालक को इत्तला दूँगा।

(ग) परिचालक की आज्ञा पाने पर मैं जहाँ भी जिस परिस्थिति में हूँ, फौरन लौट आऊँगा।

(घ) मैं उन बातों को, जिनकी कि दल से शिक्षा पाऊंगा, लोगों पर न खुलने दूंगा।

प्रथम विशेष प्रतिज्ञा यों थी—

ओ३म् वन्दे मातरम्—ईश्वर, पिता, माता, गुरु, नेता तथा सर्वशक्तिमान के नाम यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि (१) मैं इस समिति से तब तक अलग न हूँगा जब तक कि इसका उद्देश्य पूर्ण न हो जाए। मैं पिता, माता, भाई, बहिन, घर गृहस्थी किसी के बन्धन से नहीं बधूंगा और मैं कोई भी बहाना न बनाकर दल का काम परिचालक की आज्ञा के अनुसार करूँगा। मैं वाचालता तथा जल्दबाजी छोड़ दल के हरेक काम को ध्यान से करूँगा।

(ख) यदि मैं किसी प्रकार इस प्रतिज्ञा को तोड़ूँ, तो ब्राह्मण, पिता, माता तथा प्रत्येक देश के देशभक्तों का अभिशाप मुझे भस्म में परिणत कर दे।

द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा यों थी—

ओ३म् वन्दे मातरम्— १. ईश्वर, अग्नि, माता, गुरु तथा नेता को गवाह मानकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं दल की उन्नति के हरेक काम को करूँगा, इसके लिए यदि जरूरत हुई तो प्राण तथा जो कुछ मेरे पास है सब को बलिदान कर दूँगा। मैं सभी आज्ञाओं को मानूँगा तथा उन सभी के विरुद्ध काम करूँगा जो हमारे दल के विरुद्ध हैं और उनको जहाँ तक हो नुकसान पहुँचाऊँगा?

२. मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दल की भीतरी बातों को लेकर किसी से तर्क नहीं करूँगा और जो दल के सदस्य हैं उनसे भी बिना जरूरत नाम या परिचय भी न पूछूंगा।

यदि मैं इस प्रतिज्ञा से च्युत हो जाऊँ तो ब्राह्मण, माता तथा प्रत्येक देश के देशभक्तों के कोप से मैं विनाश को प्राप्त हो जाऊँ।

सदस्य किस प्रकार भर्ती किए जाते थे, वह मुखबिरों ने बतलाया है। प्रियनाथ आचार्य नामक (बरिशाल षड्यन्त्र) एक मुखबिर ने अदालत में बयान देते हुए कहा था, "दुर्गा पूजा की छुट्टी के दिनों में महालया दिवस को रमेश, मैं, और कुछ आदमी रामना सिद्धेश्वरी की काली वाड़ी में पुलिनदास द्वारा दीक्षित किए गए थे। हमारी संख्या कोई १० या १२ थी। हम लोग पहिले ही प्राथमिक, अन्त्य तथा विशेष प्रतिज्ञाएँ कह चुके थे। कोई पुरोहित उपस्थित नहीं था, किन्तु सारी कारंवाई कालीमाई की मूर्ति के सामने सुबह ८ बजे की गई। पुलिनदास ने देवी के सामने यज्ञ तथा दूसरी पूजाएँ कीं। प्रतिज्ञाएं, जो कि छपी हुई थीं, हमें पढ़ कर सुना दी गईं, हम सब लोगों ने कहा कि हाँ, हम प्रतिज्ञाओं को लेना चाहते हैं। काली के सामने सिर पर तलवार तथा गीता रख कर तथा बायाँ घुटना टेक दिया। इस आसन को प्रत्यालिढ़ आसन कहते हैं। कहते है कि शेर इसी आसन से अपने शिकार पर कूदता है।"

मालूम होता है हर हालत में एक ही तरह से भर्ती नहीं होती थी क्योंकि कोमिल्ला के एक लड़के ने गवाही देते हुए कहा कि काली पूजा के दिन वह घर से पूर्ण नामक सदस्य के द्वारा बुलाया गया। "पूर्ण की आज्ञा के अनुसार मैंने तथा दूसरों ने दिन भर उपवास किया। रात आने पर पूर्ण हम चारों को मरघट में ले गया। वहाँ पर पूर्ण ने पहले से ही काली की मूर्ति मँगा रक्खी थी, काली की मूर्ति के चरणों के पास दो रिवालवर रक्खे हुए थे। हम लोगों से काली की मूर्ति छूने को कहा गया है और समिति के प्रति विश्वस्त रहने की प्रतिज्ञा कराई गई, यहीं पर हमें समिति के नाम भी दिए गए।"

तलाशियों में जो पर्चे आदि मिले, उनसे पता चलता है कि १६०८ के पहले भी क्रान्तिकारी किसी बात को बड़े पैमाने पर ही सोचते थे। जिस जगह पर अब तक समिति नहीं है, वहाँ किस प्रकार समिति खोली जाए, इस बात से लेकर सभी संगठन-सम्बन्धी बातों पर इन पर्चों में चर्चा की गई है। षड्यन्त्र के नेताओं का उद्देश्य एक भारतव्यापी षड्यन्त्र करना और ब्रिटिश साम्राज्य के तख्ते को तबाह करना था, न कि छोटे-छोटे गुट बनाकर तमाशा करना। तलाशी में मिले हुए हर पर्चे में हम देखते हैं कि सदस्यों के नैतिक चरित्र पर बहुत जोर दिया गया है। नेता का हुकुम मानना तथा उससे कुछ

न छिपाना एक अनिवार्य बात थी । गाँवों की मर्दुमशुमारी, पैदावार स्थानीय अन्य ज्ञातव्य बातों के सम्बन्ध में आँकड़ों के संग्रह करने के लिए गम्भीर चेष्टा की गई थी, इसका प्रमाण मिला है । सच बात तो यह है कि इन आँकड़ों के संग्रह के लिए दल की ओर से छपे हुए फार्म तलाशियों में निकले हैं । (सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट पृ० ९६) इस हालत में इन क्रान्तिकारियों को केवल आतङ्क-वादी कहना झूठ है ।

१९०९ के दूसरी सितम्बर को १५ जोराबागान स्ट्रीट कलकत्ता में तलाशी हुई, दूसरी चीजों के साथ वहाँ पर्चे मिले । एक का नाम था 'सामान्य सिद्धान्त ।' हम इस पर्चे का वह हिस्सा जो सिडीशन रिपोर्ट में है, उद्धृत करते हैं—

सामान्य सिद्धान्त—रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास से पता चलता है कि जो लोग जनता को एक क्रान्तिकारी विद्रोह के लिए तैयार कर रहे हैं, वे इन सामान्य सिद्धान्तों को अपनी आँख के सामने रखे हुए हैं—

(क) देश की क्रान्तिकारी शक्तियों का ठोस संगठन तथा दल की शक्तियों का ऐसी जगह पर विशेष जोर देना, जहाँ उसकी सब से बड़ी जरूरत है ।

(ख) दल के विभागों का बहुत बारीकी से विभाजन यानी एक विभाग में काम करने वाला आदमी दूसरे को न जाने, किसी भी हालत में एक आदमी दो विभागों का नियन्त्रण न करे ।

(ग) खास करके सैनिक तथा आतङ्कवादी विभागों के लोगों में कड़ा से कड़ा अनुशासन ही यहाँ तक कि बहुत त्यागी सदस्य भी इससे बरी न हों ।

(घ) बातें बहुत ही गुप्त रखी जाएँ, जिसको जिस बात की जानने की जरूरत नहीं, वह उसे न जाने, किसी विषय में बातचीत दो सदस्यों में उतनी ही हद तक हो जितनी कि सख्त जरूरत हो ।

(ङ) इशारों का तथा गुप्त लिपि का प्रयोग हो ।

(च) दल एकदम से सब काम में हाथ न डाल दे अर्थात् धीरे-धीरे दृढ़ता के साथ आगे बढ़ता जाए । (१) पहले तो पढ़े-लिखे लोगों में एक केन्द्र की सृष्टि की जाए । (२) फिर जनता में प्रचार भावनाओं की जाग्रति की जा (३) फिर सैनिक तथा आतंकवाद विभाग का संगठन किया जाए । (४) फिर

साथ आन्दोलन करें। (५) फिर विद्रोह हो, जो क्रान्ति का रूप ले ले।

यह पर्चा बहुत लम्बा था, सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में इसका केवल सार दिया गया है, किन्तु इस पर्चे में यह भी था कि दल के उद्देश्य की पूर्ति के लिए डकैतियाँ तथा गुप्त हत्याएँ भी की जाएँगी। डकैतियों के सम्बन्ध में यह बताया गया था कि यह धनियों से टैक्स वसूल करना है। बाद को इसे 'forced contribution' यानी दल के लिए जबर्दस्ती चन्दा वसूल करना बताया जाता था।

स्मरण रहे कि १९०६ में मिले हुए एक पर्चे में ये बातें थीं।

जिले का संगठन, कुछ नियम—जिला संगठन के कुछ नियम ये थे—

(क) एक छोटे केन्द्र का काम उस केन्द्र के नेता की देख-रेख में चलाया जाएगा। संस्था के कार्य-क्रम को पाँच बार पढ़ने के बाद ही वह काम में हाथ डालेगा।

(ख) एक छोटे केन्द्र का नेता फिर अपने केन्द्र को भी कई केन्द्रों में बाँट देगा, यह बँटाई जिले की सरकारी बँटाई के अनुसार होगी।

(ग) यदि किसी जिला केन्द्र के परिचालक को यह मालूम हो कि दूसरे दल के पास हथियार हैं और उसे ऐसा मालूम है कि उनका गलत इस्तेमाल हो सकता है, तो वह उच्च अधिकारी की आज्ञा प्राप्त कर जल्दी से जल्दी किसी तरह उन हथियारों को हथिया ले। यह काम इस प्रकार से हो कि दूसरे उसे न भाँप पाएँ।

(घ) अपने नायक के हुक्म के सिवा कोई किसी किस्म का गुप्त पत्र कहीं न भेजेगा।

(ङ) जिन सदस्यों के पास हथियार तथा दल के कागज-पत्र रखे जाएँ, वे किसी खतरनाक काम में भाग न लें या किसी ऐसे स्थान में न जाएँ, जहाँ खतरे की संभावना हो।

भवानी-मन्दिर-पर्चा—१९०६ में 'भवानी-मन्दिर' नाम का एक पर्चा बँटा था, इसमें क्रान्तिकारियों के उपाय तथा उद्देश्यों पर रोशनी डाली गई थी। कई दृष्टियों से यह एक महत्त्वपूर्ण पर्चा था, इसमें धर्म तथा राष्ट्रीयता के नाम पर अपील की गई थी। रौलट साहब के अनुसार "इस पर्चे में काली की शक्ति तथा भवानी नाम से प्रशंसा की गई थी और राजनैतिक स्वाधीनता

के लिए शक्ति की उपासना करने को कहा गया था। जापान की सफलता का रहस्य इस बात में बतलाया गया है कि धर्म से शक्ति मिली है, इस नींव पर कहा गया है कि भारतवासी भी शक्ति की पूजा करें। 'भवानी-मन्दिर' में यह भी कहा गया था कि एक भवानी का मन्दिर बनाया जाए जो आधुनिक शहरों की गंदी आब-हवा से दूर किसी एकान्त में हो, जहाँ का वातावरण शक्ति तथा ओज से ओतप्रोत हो। इस पर्चे में एक राजनैतिक सम्प्रदाय की स्थापना की बात कही गई थी, किन्तु सम्प्रदाय के लोगों के लिए आवश्यक नहीं था कि सभी संन्यासी हों। अधिकतर तो इनमें से ब्रह्मचर्याश्रम के होने वाले थे, किन्तु कार्य पूर्ण होने के बाद ये गृहस्थ हो सकते थे। कार्य क्या था, यह साफ नहीं था, किन्तु भारत-माता को परतंत्रता की जंजीरों से छुड़ाना ही काम था। वे सभी धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक नियम दे दिए गए थे, जिनके द्वारा नया सम्प्रदाय परिचालित होता। सारांश यह था कि राजनैतिक संन्यासियों का एक गिरोह स्थापित होने वाला था, जो क्रान्तिकारी कामों के लिए तैयारी करते। मालूम होता है कि इसकी केन्द्रीय बात अर्थात् राजनैतिक संन्यासियों की बात बंकिमचन्द्र के 'आनन्द-मठ' से लिया गया था। आनन्द-मठ एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो १७७४ के संन्यासी-विद्रोह के आधार पर लिखा गया था।

अनेक समितियाँ—बंगाल में शुरू से ही क्रान्तिकारियों के बहुत से दल थे। इन दलों में सिद्धान्त या तरीकों का कोई विशेष प्रभेद नहीं था। एक तरह से ये सब प्रभेद लीडरी की चाह से हुए थे, किन्तु इस प्रकार अलग-अलग दल का होना कई मामलों में बड़ा हितकर साबित हुआ, क्योंकि एक दल का यदि कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी मुखबिर हो गया तो वह केवल अपने ही दल के व्यक्तियों को पकड़ा सकता था। इस प्रकार गुप्त दल होने की वजह से जो बात एक महान् बुराई थी, वह भलाई साबित हो गई। फिर भी इन सब दलों में काफी हद तक सहयोग रहता था, महायुद्ध के समय रडा कम्पनी से एक साथ जो पचास पिस्तौलें चुराई गई थीं, वे बाद को विभिन्न दलों के सदस्यों के पास से बरामद होती रहीं, इस ख्याल से देखा जाए तो इन दलों में बड़ा गहरा सहयोग था।

१४

प्राक-असहयोग युग का परिशिष्ट

अब हम करीब-करीब असहयोग के पहले के युग की सब घटनाओं का तथा धाराओं का वर्णन कर चुके, कुछ बातें फिर भी छूट गई होंगी। बात यह है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन एक अत्यन्त व्यापक आन्दोलन रहा है, यद्यपि वह बहुत कुछ केवल मध्यवित्त श्रेणी में ही फैला हुआ था। इस सम्बन्ध में बहुत-सी हत्याएँ हुईं, बहुत से डाके डाले गए, बहुत से लोगों को फाँसियाँ तथा कालेपानी की सजाएँ हुईं, बहुत से षड्यन्त्र हुए, जिनका विस्तार अमेरिका, योरप तथा एशिया में था, फिर यह किस प्रकार हो सकता है कि एक चार-पाँच सौ पन्ने की पुस्तक में सब बातों का वर्णन आ जाए। न तो किसी लेखक को ही आशा करनी चाहिए कि वह सब कुछ लिख डालेगा, न किसी पाठक को ही आशा करनी चाहिए कि सब घटनाएँ एक पुस्तक में मिल जाएँगी। मैंने क्रान्तिकारी आन्दोलन में जो बड़ी-बड़ी धाराएँ हैं, उन्हीं को पकड़ने की कोशिश की है तथा यह कोशिश की है कि सब धाराओं के साथ न्याय किया जाए। मैंने विशेषकर क्रान्तिकारियों के क्या विचार थे, तथा उनमें किस प्रकार शनैः शनैः परिवर्तन या विकास हुआ है यह दिखलाने की चेष्ठा की है। केवल कुछ हत्या तथा डाकों का इतिहास लिखना मेरा उद्देश्य नहीं था। मैं तो क्रान्तिकारी आन्दोलन को भारत की सारी सामाजिक विशेषकर आर्थिक अवस्था की ही एक कड़ी समझता हूँ। उसके अनुसार मैंने यह सारी कहानी लिखी है। मैं समझता हूँ इसी प्रकार के इतिहास की इस समय जरूरत थी।

क्रान्तिकारी आन्दोलन असफल रहा या सफल ?—प्राक-असहयोग युग का क्रान्तिकारी आन्दोलन कोई मजाक नहीं था। सच कहा जाए तो उसका जाल बाद के क्रान्तिकारी आन्दोलन से कम विस्तृत नहीं था, किन्तु फिर भी जो यह असफल हुआ इसके बहुत से कारण थे। सब से बड़ा कारण तो यह था कि क्रान्तिकारियों ने जनता में करीब-करीब काम नहीं किया, किन्तु इसके साथ-ही-साथ

मानना पड़ेगा कि उस जमाने में जिस माने में आज जनता में काम करना सम्भव है, उस माने में जनता में काम करना सम्भव नहीं था । यह भी यहाँ पर साफ कर देना चाहिए कि क्रान्तिकारी आन्दोलन बिलकुल ही असफल रहा ऐसा कहना इतिहास की अनभिज्ञता जाहिर करना होगा । क्या यह बात सच नहीं है कि हम आगे बढ़े हैं, तथा दिन-दिन हमारी चेतना बढ़ती गई है ? इसी प्रकार क्रान्तिकारी आन्दोलन भी अपनी बाह्य व्यर्थता के बावजूद हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन पर एक गहरी छाप छोड़ता जा रहा था । सन् २१ तक जितने भी सुधार ब्रिटिश सरकार की ओर से दिए गए, वे केवल क्रान्तिकारियों की वजह से दिए गए । सबसे पहले पूर्ण स्वतन्त्रता का नारा देने वाले ये क्रान्तिकारी ही हैं। कांग्रेस जब एक लिबरल फेडरेशन या उससे भी गए-गुजरे रूप में थी उस समय इन क्रान्तिकारियों ने न केवल पूर्ण स्वतन्त्रता को ही अपना उद्देश्य करार दिया, बल्कि उसके लिए लड़ाइयाँ लड़ीं, षड्यन्त्र किए, घर फूँका, जेल गए, और फाँसी चढे । केवल त्याग की दृष्टि से ही नहीं बल्कि विचार जगत में भी इन क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय प्रगति को आगे बढ़ाया और उसके लिए जो कुछ भी कुर्बानियों की जरूरत पड़ी, वह कीं । एक जमाना था जब भारतवर्ष का क्षितिज बिलकुल अंधकारमय था, कहीं रोशनी की एक भी रौप्य रेखा नहीं थी, उस समय इन क्रान्तिकारियों ने अपने शरीर को मशाल बनाकर थोड़ी देर के लिए ही सही, एक प्रकाश की सृष्टि की······।

बाद को कैसे इसी आन्दोलन से रौलट रिपोर्ट की सृष्टि हुई, उसमे रौलट थे। ऐक्ट बना और उसी के विरोध में क्रान्तिकारी आन्दोलन एक नई धारा की गवाए। गया, यह हम बाद को लिखेंगे । यहाँ पर हम केवल नलिनी बाक्ची राह चलने एक क्रान्तिकारी के आत्मोत्सर्ग का पवित्र वर्णन कर इस अध्याय को कि स्कूल के करते हैं। च्चों से प्रतिज्ञा

नलिनी बाक्ची—नलिनी बाक्ची का इतिहास समय की पश्चात्ताप कराया असहयोग युग की एक तरह से अन्तिम घटना है । नलिनी बाक लिए गए तथा उन्हें जैसे प्राक-असहयोग युग का क्रान्तिकारी आन्दोलन अपने र्णन किया जाए। आ गया। नलिनी बाक्ची बहुत अच्छे छात्र थे, यानी प बातें सुनीं तो उन्होंने थे और उनके घरवालों को कभी यह डर नहीं लय के समान गलती की है

क्रान्तिकारी होंगे।

१९१६ में क्रान्तिकारी दल से वीरभूमि निवासी नलिनी को बिहार में क्रान्ति का प्रचार करने के लिए भागलपुर कालेज में पढ़ने के लिए भेजा गया, किन्तु शीघ्र ही पुलिस को उनका पता लग गया और उन्हें पढ़ना छोड़कर फरार हो जाना पड़ा। इस प्रकार पुलिस की नजरों पर चढ़ जाने से यह डर बहुत भारी था कि बिना सबूत के भी वे नजरबन्द कर लिए जाएँगे। इसलिए उन्होंने यह सोचा कि इससे अच्छा तो यही है कि डुबकी लगाकर काम किया जाए। तदनुसार वे बिहार के शहर में बिहारी बनकर घूमने लगे, किन्तु 'बकरे की माँ कब तक खैर मनाए'। साम्राज्यवाद के पास असंख्य भाड़े के टट्टू थे, फिर पुलिस की उन पर नजर पड़ गई। अबकी उन्होंने बिहार छोड़कर बंगाल जाने में ही अपनी भलाई समझी। केवल बंगाल में ही नहीं उस समय सारे हिन्दुस्तान में मेला उखड़ चुका था, चारों ओर साम्राज्यवाद का दमनचक्र बड़े जोर से घूम रहा था। कुछ थोड़े से क्रान्तिकारी पुराने झंडे को हाथ में लेकर चारों तरफ की तुमुल आँधी से उसको बचा कर आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु पथ काँटों से भरा हुआ था, सैकड़ों रोड़े थे, अपने ही साथी पीछे से टाँग पकड़कर घसीट रहे थे और घसीट रहे थे उस खंदक में जहाँ वे खुद गिर चुके थे। स्वयं चलने वालों का अङ्ग-अङ्ग ढीला हो रहा था और पुराने साथियों की, जो फाँसी के तख्तों पर चढ़ चुके थे, याद उनको भीतर-भीतर कुरेद रही थी। फिर भी कुछ लोग चले जा रहे थे, चले जा रहे थे, चले जा रहे थे। ये सारे राष्ट्र के अग्रदूत थे। नलिनी भी जाकर उनमें शामिल हो गए।

बंगाल में भी उस वक्त रहना बहुत ही कठिन हो रहा था, इसलिए दल ने तय किया कि इनको तथा ऐसे ही लोगों को हटाकर आसाम के किसी स्थान में राष्ट्र की धरोहर की भाँति सुरक्षित रखा जाए, क्योंकि इनमें आदमी तपकर सोना हो चुका था और वे एक-एक चाभी के रूप में एक प्रान्त का क्रान्तिकारी आन्दोलन खोला जा सकता था। गौहाटी नामक स्थान में नलिनी बावची के अतिरिक्त नलिनी आदि कई आदमी डट गए।[6] ये लोग सोते समय भी अपने रखते थे, ये लोग समझते थे कि या तो वातावरण कुछ

या वि
डाकों का
को भारत
समझता हूँ।
इसी प्रकार के इ
क्रान्तिकारी श्र
क्रान्तिकारी आन्दोलन
बाद के क्रान्तिकारी आन्
असफल हुआ इसके बहुत से
कारियों ने जनता में करीब-क

ठंडा होने पर लौटकर फिर से क्रान्ति-यज्ञ में ऋत्विक का काम करेंगे और या फिर सम्मुख युद्ध में प्राणों की आहुति देंगे।

कलकत्ते की पुलिस ने किसी गिरफ्तार व्यक्ति से पता पाकर ९ जनवरी, सन् १९१७ को यह मकान घेर लिया। क्रान्तिकारियों की यह टुकड़ी नहीं घिरी, बल्कि उनकी बची-खुची आशा ही घिर गई। जो व्यक्ति उस समय पहरे पर था, उसने सबको चुपके से यह खबर दी कि पुलिस आ गई है। सब लोगों ने अपनी भरी हुई पिस्तौलें उठालीं, फिर बाहर निकल पड़े और उन्होंने एकदम से पुलिस के ऊपर गोली चलानी शुरू कर दी। पुलिस इसके लिए तैयार न थी और इसके फलस्वरूप वह तितर-बितर हो गई। इस घबड़ाहट का फायदा उठाकर क्रान्तिकारी पहाड़ में भाग गए। शाम तक पहाड़ भी घेर लिया गया और दोनों तरफ से खूब गोलियाँ चलीं। बहुत से क्रान्तिकारी घायल हो गए और पुलिस के पंजे में फँस गए, फिर भी दो व्यक्ति किसी प्रकार पुलिस की आँख बचा कर भाग निकले।

इनमें से एक नलिनी बाक्ची भी थे। नलिनी बाक्ची किसी प्रकार चलते, रेंगते बिना खाए इधर-उधर चक्कर काटते रहे, इसी बीच में एक पहाड़ी कीड़ा उनके सारे बदन पर चिपक गया था, जिससे उन्हें बहुत कष्ट हुआ, फिर भी उन्होंने आशा न छोड़ी और आसाम की पुलिस की आँख बचाकर बिहार पहुँचे। बिहार
की पुलिस उन्हें पहचानती थी, इसलिए बिहार में रहना भी उनके लिए कठि डा
था। इन्हीं सब बातों को सोचकर वे बंगाल चल पड़े, किन्तु वहाँ भी व थे।
साथी न मिला, तब वह किले के मैदान में जाकर सो रहे! इस पर भी गवाए।
कारा नहीं मिला, उनके बदन पर चेचक निकल आई। चेचक नि ाह चलने
उनका बुरा हाल हो गया। बिना खाए कई दिन हो चुके थे और इस कि स्कूल के
लीफें। भारत की आजादी के लिए लड़ने वाला वह होनहार छात्र र्चों से प्रतिज्ञा
दल का एक नेता, एक भिखारी की भाँति सड़क पर पड़ा था। श्चात्ताप कराया
सेवा करने वाला था, न कोई उसकी बात पूछने वाला था। लए गए तथा उन्हें

ऐसे समय में एक परिचित क्रान्तिकारी ने उसको देख ान किया जाए।
घर पर ले गया। चेचक से मुँह भी ढँक गया, आँखें बातें सुनीं तो उन्होंने
बेकार हो गई। तीन दिन तक बोली बन्द रही। य के समान गलती की है

के लिए न पैसा था, न कोई अर्थी उठा ले जानेवाला ही था। यह एक क्रान्तिकारी का जीवन था।

पर नलिनी मरे नहीं।

नलिनी अच्छे हो गए और फिर उन्होंने क्रान्ति के उस टिमटिमाते दीपक को, जिसका तेल उस समय समाप्त हो चुका था, बत्ती जल चुकी थी, अपने हाथ में लिया और फिर से संगठन करना प्रारम्भ किया। वह ढाका में जाकर रहने लगे। उनके साथ एक और व्यक्ति रहता था। इसका नाम तारिणी मजुमदार था। १९१८ ई० के १५ जून को सवेरे पुलिस ने आकर फिर एक बार उनके मकान को घेर लिया। दोनों तरफ से फिर गोलियाँ चलीं। तारिणी मजुमदार तो वहीं पर शहीद हो गए। गोली खाकर भी नलिनी भाग निकलना चाहते थे कि पुलिस की एक गोली और लगी और वह वहीं पर गिर पड़े। पुलिस ने उनको इस पर गिरफ्तार कर लिया और अस्पताल ले गई। जीने की कोई आशा नहीं थी। शरीर यों ही बहुत दुर्बल था, तिस पर रक्त बहुत जा चुका था। पुलिस बार-बार उनसे पूछ रही थी कि तुम्हारा नाम क्या है? कोई साधारण व्यक्ति होता तो नाम बता देता क्योंकि अब इसमें क्या हानि थी, किन्तु साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने वाला यह वीर योद्धा लड़कर ही सुखी रहा, सारी जिन्दगी इसने इस राक्षसी शक्ति के विरुद्ध लड़ाई ही की, लड़ने में ही उसको तृप्ति थी। वह नाम का भूखा नहीं था। उसने अन्त तक पुलिस की बातों का उत्तर नहीं दिया और बार-बार पूछे जाने पर सिर्फ इतना कहा—मुझे परेशान मत करो, शान्ति से मरने दो।

१५

असहयोग का युग

भारत का पुराना क्रान्तिकारी आन्दोलन बहुत कुछ शांत हो चुका था, किन्तु इसके साथ ही एक दूसरे आन्दोलन का आभास मिल रहा था, जो ब्रिटिश साम्राज्य को एक दफे बड़े जोरों से हिला देने वाला था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति दुरंगी थी, एक हाथ से वह दमन करता था, और दूसरे हाथ से सुधारों का प्रलोभन दिखाता था। बहुत पिछले इतिहास में जाने की आवश्यकता नहीं है, सारे ब्रिटिश युग में ही यह नीति बार-बार खेली गई है। ऐसा ही जमाना सन् १९१८ का था। एक तरफ तो सरकार ने १० दिसम्बर १९१७ को एक कमेटी बैठाई, जिसके अध्यक्ष माननीय जस्टिस एस० ए० टी० रौ-
...नके
हुए और दूसरी तरफ सरकार सुधार की चर्चा करने लगी।
...गए।

रौलट कमेटी—रौलट कमेटी के निम्नलिखित सदस्य थे।
...हर एक

१. बेसिल स्काट (बम्बई के चीफ जस्टिस)
...को एक साथ

२. कुमारस्वामी शास्त्री (मद्रास हाईकोर्ट के जज)
...लमान एकता की

३. बर्ने लावेट (उत्तर प्रदेश के बोर्ड आफ रेवेन्यू के मे...
...ने एक बड़ा पिंजड़ा

४. प्रभात चन्द्र मित्र (वकील हाई कोर्ट कलकत्ता)
...तरह बंद रहते थे।

इस कमेटी को मुकर्रर करते वक्त इसका उद्देश्य
...सब को बेंत लगवाए।
(क) भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्ध रखने
...वाए गए। राह चलने
तथा विस्तार का पता लगाना और (ख) इन षड्यन्त्रों
...यह भी था कि स्कूल के
पेश आईं, उनका कानून बनाकर इन्हें दबाया जा स...
...मी करें, बच्चों से प्रतिज्ञा

इसीके अनुसार रौलट कमेटी ने दो सौ
...था उनसे पश्चात्ताप कराया
रिपोर्ट तैयार की। इसमें भारतीय पुलिस को
...जब्त कर लिए गए तथा उन्हें
करीब सभी आ गईं। रिपोर्ट में अजीब-अजी...
...हाँ तक वर्णन किया जाए।
गई। एक तो भारतवासियों की स्वाधीनता
...यह सब बातें सुनीं तो उन्होंने
और भी कमी की गई। यह समझना भ...
...हिमालय के समान गलती की है

केवल क्रान्तिकारी आन्दोलन को ही धक्का पहुँचता था। इस कमेटी का नाम सिडीशन कमेटी था। इसीसे जाहिर है कि सब प्रकार के राजनैतिक आन्दोलनों को राजद्रोह या सिडीशन कह कर दबाना इसका उद्देश्य था। इसकी सिफारिशों से भी यही बात जाहिर होती है। खैरियत यह है कि उस जमाने में हिंसा-अहिंसा का कोई बखेड़ा खड़ा नहीं था, सारा राष्ट्रीय आन्दोलन ही एक और अविभाज्य समझा जाता था। सरकार भी ऐसा समझती थी, जनता भी ऐसा समझती थी, पुलिस का भी यही ख्याल था। सारी सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट को पढ़ जाइए, आपको यह मिलेगा कि सदस्यों ने लोकमान्य तिलक तथा [illegible] और विपिनचन्द्र पाल तथा खुदीराम को एक ही बाँट से तोला है और हमेशा उसको एक ही दृष्टि से देखा तथा उनके लिए एक ही दवा तजवीज की है। सच्ची बात तो यह है कि उन्होंने एक को दूसरे का पूरक समझा है। इसी कारण एक लाठी से हाँकने की नीति भी रही।

सूचना ठीक समय पर न पहुँची, इससे वहाँ पर बाकायदा हड़ताल हुई और जुलूस निकला। श्रद्धानन्द जी जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। कुछ गुस्ताख़ गोरों ने उनको गोली से मार देने की धमकी दी, इस पर उन्होंने अपनी छाती खोल दी, और इस प्रकार वह धमकी देने वाला ठण्डा पड़ गया। दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर इससे कहीं संगीन मामला हो गया। गोलियाँ चलीं, पाँच मरे और कोई बीस आदमी घायल हुए। ब्रिटिश सरकार इस बढ़ती हुई जागृति को कुचल डालना चाहती थी, उसको यह सहन नहीं हो रहा था कि जनता इस प्रकार उसकी आज्ञाओं की अवज्ञा करने पर तुली रहे। इस आन्दोलन की सबसे अच्छी बात यह थी कि हिन्दू-मुसलमानों में बड़ा मेल था। १९१९ की इंडिया बुक में भी इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि किस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों में इतना मेल हो गया। हिन्दुओं ने खुले-आम मुसलमानों के हाथ से पानी पिया और हिन्दू नेताओं ने मस्जिदों के अन्दर जा-जाकर वक्तृताएँ दीं। बा॰ यह भी कि खलीफतुलइस्लाम के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जो व्यवउनके किया था, उनसे भारतीय मुसलमान बहुत नाराज थे, हिन्दुओं की उनए गए। सहानुभूति थी। ।। हर एक

१९१९ की कांग्रेस पंजाब के अमृतसर में होने वाली थी। को एक साथ और सत्यपाल उसके लिए उद्योग कर रहे थे। इतने में उन्लमान एकता की किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया गया। जनता इस पने एक बड़ा पिंजड़ा मजिस्ट्रेट के पास जाना चाहती थी कि वह बीच ही में। तरह बंद रहते थे। पर, कहते हैं, ढेले फेंके गए। इसी सिलसिले में नेशनल सब को बेंत लगवाए। मारा गया। सब समेत पाँच गोरे उस दिन मरे, औगवाए गए। राह चलने लगा दी गई। जनता बहुत उत्तेजित थी। गुजरा यह भी था कि स्कूल के काफी गड़बड़ी हो गई। महात्मा गांधी ८ अप्रैल ामी करें, बच्चों से प्रतिज्ञा निमंत्रण पर पंजाब के लिए रवाना हो चुके थे, तथा उनसे पश्चात्ताप कराया किया गया और जब उन्होंने उसे मानने से इनकार, जब्त कर लिए गए तथा उन्हें एक स्टेशन पर गिरफ्तार कर बम्बई वापस भेजहाँ तक वर्णन किया जाए।

जलियानवाला हत्याकाण्ड—१३ अप्रैल यह सब बातें सुनीं तो उन्होंने उस दिन अमृतसर के जलियान वाला बाग में प हिमालय के समान गलती की है

वाला एक ऐसा स्थान है, जिसकी चारों तरफ दीवारें हैं, केवल एक तरफ से एक पतला रास्ता है और वह भी इतना पतला कि उसके अन्दर से एक गाड़ी भी नहीं जा सकती। सभा बिलकुल शान्तिपूर्वक हो रही थी, बीस हजार व्यक्ति उपस्थित थे, जिनमें मर्द, औरत और बच्चे सभी थे।

अमृतसर का पानी और बिजली बन्द करा दिया। रास्ते में चलने वालों को पकड़-पकड़कर बेंत लगवाए गए, लोगों को छाती के बल रेंगवाया गया, साइकिलें छीन ली गईं, दूकानों की चीजों के भाव सिपाहियों की आज्ञा के अनुसार रखे गए। शहर के विभिन्न भागों में टिकटी बाँधकर बेंत लगाने का दृश्य सवेरे से शाम तक होता रहा, सैनिक कानून के अनुसार सैकड़ों आदमियों को जेलखाने भेज दिया गया।

सरकार का समर्थन—जैसा मैंने पहले ही लिखा है जनरल डायर के जोश में आ जाने ही से यह हत्याकाण्ड नहीं हुआ, इसका प्रमाण यह है कि इसके बाद शीघ्र सर माइकल ओडायर ने, जो पंजाब के गवर्नर थे, एक तार जनरल डायर को भेजा—

'Your action correct, Lieutenant Governor approves'
'तुम्हारी कार्यवाही ठीक है, लेफ्टिनेन्ट गवर्नर समर्थन करते हैं।'

इसी प्रकार पंजाब के अन्य स्थानों में भी भयङ्कर अत्याचार हुए, जिनके वर्णन पढ़ते हुए रोंगटें खड़े हो जाते हैं। कहीं-कहीं पर तो बम भी बरसाए गए। बहुत-सी जगहों पर यह नियम बनाया गया कि हर एक हिन्दुस्तानी हर एक गोरे को सलाम करे। कहीं-कहीं एक हिन्दू और एक मुसलमान को एक साथ बाँध कर जुलूस निकाला गया, सरकार का मतलब हिन्दू-मुसलमान एकता की हँसी उड़ाना था। कसूर में जो साहब इंचार्ज थे, उन्होंने एक बड़ा पिंजड़ा बनाया, जिसमें १५० आदमी सार्वजनिक रूप से बंदरों की तरह बंद रहते थे। कर्नल जानसन साहब ने एक बरात पार्टी को पकड़वा कर सब को बेंत लगवाए। कहीं-कहीं भले आदमियों को रण्डियों के सामने बेंत लगवाए गए। राह चलने वालों से कुलियों का काम लिया गया। एक हुक्म यह भी था कि स्कूल के लड़के दिन में आकर तीन बार ब्रिटिश झंडे की सलामी करें, बच्चों से प्रतिज्ञा कराई गई कि वे कभी कोई अपराध नहीं करेंगे तथा उनसे पश्चात्ताप कराया गया। लाला हरकिशनलाल के चालीस लाख रुपए जब्त कर लिए गए तथा उन्हें कालेपानी की सजा हुई। इन अत्याचारों का कहाँ तक वर्णन किया जाए।

महात्मा जी का मत—महात्माजी ने जब यह सब बातें सुनीं तो उन्होंने कहा कि भद्र अवज्ञा का प्रारम्भ कर उन्होंने हिमालय के समान गलती की है

क्योंकि लोग सच्चे भद्र अवज्ञाकारी नहीं थे। १६१६ की कांग्रेस का अधिवेशन पंडित मोतीलाल की अध्यक्षता में अमृतसर में हुआ, इसमें पंजाब के हत्याकाण्ड की बहुत निन्दा की गई। कांग्रेस ने पंजाब के हत्याकाण्ड के विषय में एक कमेटी बैठाई, इसके सदस्य महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, अब्बास तैयबजी, फजलुलहक और मि० के० सन्तानम् हुए। बाद को पंडित मोतीलाल की जगह मि० जयकर इसके सदस्य हुए।

मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार—जिस समय रौलट रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसीके करीब मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई, किन्तु उससे कुछ नरम दल वालों ही को संतोष हुआ। एक मजे की बात यह है कि अब तक के भारतवर्ष के गरम दल के सार्वजनिक नेता लोकमान्य तिलक जब इसी बीच में सर वालनटाईन चिरोल से मुकदमा लड़ने के लिए विलायत गए थे, उस समय उन्होंने कुछ इस किस्म की बातें कही थीं जिनसे यह ध्वनि निकलती थी कि जो कुछ भी मिला है वे उसे ले लेंगे और बाकी के लिए लड़ेंगे, किन्तु बम्बई में उतरते ही उन्होंने कह दिया कि सुधार बिल्कुल नाकाफी है। फिर भी उन्होंने बादशाह को एक बधाई का तार भेजा और उत्तरमूलक सहयोग के लिए तैयारी दिखलाई। कांग्रेस में इस सुधार को लेकर काफी झगड़ा हुआ। मालवीयजी और गांधी जी ने यह कहा कि सरकार के साथ उसी हद तक सहयोग किया जाय जिस हद तक सरकार करे। सी० आर० दास इस योजना के बिल्कुल विरुद्ध थे और उन्होंने एक प्रस्ताव मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड योजना को अस्वीकार करते हुए रखा। गांधीजी ने इस पर एक संशोधन रखा, जिससे मूल प्रस्ताव बहुत नरम हो जाता था। अन्त में एक ऐसा प्रस्ताव बनाया गया, जो दोनों को मंजूर हो। मजे की बात यह है कि गांधीजी अमृतसर में सहयोग के पक्ष में थे, और सी० आर० दास असहयोग के पक्ष में थे।

असहयोग का तूफान—सन् १६२० में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कलकत्ते में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें देशबन्धु चित्तरंजन दास, मालवीयजी, विपिनचन्द्र पाल आदि पुराने नेताओं में विरोध होते हुए भी असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया। दिसम्बर १६२० में कांग्रेस का नियमित अधिवेशन नागपुर में चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य के सभापतित्व में हुआ, इसमें

स्वयं देशबन्धु दास ने, जिन्होंने कलकत्ता के अधिवेशन में असहयोग का खूब विरोध किया था, असहयोग के प्रस्ताव को रखा और यह भारी बहुमत से पास हो गया।

१९२१—१९२१ में असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया गया, गांधीजी ने एक करोड़ सदस्य, एक करोड़ रुपया, विदेशी वस्त्रों का जलाना आदि कई एक कार्य-क्रम देश के सामने रखे और यह कहा कि यदि यह पूर्ण हो गए तो ३१ दिसम्बर आधी रात तक स्वराज्य मिल जाएगा। देश में बड़ा जोश पैदा हुआ। इसके पहले ही बहुत से क्रान्तिकारी छूट चुके थे, वे इस आन्दोलन को देखने लगे और उन्होंने एक तरह से अपने काम को स्थगित कर दिया। एक ऐसी धारणा कि छूटे हुए क्रान्तिकारी असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े थे लोगों में है, ऐसा कई पुस्तकों में भी देखने में आया, किन्तु यह बात गलत जान पड़ती है, क्योंकि मैं जब अपने जाने हुए सन् १९१९ के पहले के क्रान्तिकारियों के विषय में सोचता हूँ तो पाता हूँ कि उनमें से कोई भी असहयोग आन्दोलन में जेल नहीं गया। कोई इसके अपवाद हो सकते हैं, किन्तु इससे नियम ही प्रमाणित होता है।

चौरीचौरा—असहयोग आन्दोलन चल रहा था, बहुत से लोग जेल में ठूँस दिए गए, इतने में १२ फरवरी १९२२ को गोरखपुर के निकट चौरीचौरा में एक ऐसी घटना हो गई जिससे सारा आन्दोलन ही महात्मा जी द्वारा बन्द कर दिया गया। घटना यह थी कि एक भीड़ ने थाने में आग लगा दी, जिसके फलस्वरूप २१ सिपाही तथा दारोगा जल मरे। महात्मा गांधी ने इस पर आम लोगों में अहिंसा के भाव की कमी देखकर इस आन्दोलन को स्थगित कर दिया। १३ मार्च को महात्मा जी भी गिरफ्तार कर लिए गए। एक आश्चर्य की बात यह है कि जब तक आन्दोलन जोरों से चलता रहा और गांधी जी खुल्लमखुल्ला तौर से उसका नेतृत्व कर रहे थे, उस समय तक उनको किसी ने नहीं पकड़ा, किन्तु ज्योंही उन्होंने इस आन्दोलन को बन्द कर दिया, त्योंही सरकार ने उनको पकड़ लिया। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, क्योंकि गांधी जी जिस समय आन्दोलन चला रहे थे, उस समय वे तैंतीस करोड़ थे किन्तु जिस समय उन्होंने आन्दोलन स्थगित कर दिया और लोगों की बढ़ती हुई उमंगों पर पानी डाल दिया, उनको एक खामख्याली के नाम पर निरुत्साह कर दिया, उस समय वे

एक व्यक्ति हो गए ।

संसार में उस समय सर्वत्र क्रान्तिकारी शक्तियाँ प्रबल हो रही थीं, भारतवर्ष में भी उसकी अभिव्यक्ति हो रही थी, इस हालत में अहिंसा के बहाने से इस आन्दोलन को रोक कर गांधी जी ने वाकई हिमालय के समान गलती की। यह बात सच है कि गांधी जी ही वे भागीरथ हैं जो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को मध्यवित्त तथा उच्च श्रेणी के स्वर्ग से उतार कर जनता के बीच में ले आए। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को गांधीजी की यह बहुत बड़ी देन है, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है; किन्तु उसके जो तर्कगत परिणाम हैं, उस तक जाने में असमर्थ रहे हैं। यही बराबर उनकी राजनीति की हिमालय के समान गलती रही है। महात्मा जी बहुत ही पक्के राजनीतिज्ञ थे, उनकी राजनीतिज्ञता में यदि कोई खामी थी तो यह थी कि उनके कुछ खामख्याल थे। वे जब गलतियाँ करते थे, इन्हीं की यानी सत्य और अहिंसा की सनक की बदौलत करते थे। यह बात सच है कि बाद के युग में गांधी जी अधिक मुक्त हो गए थे। शोलापुर के काण्ड से भी उन्होंने अपने सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित नहीं किया, यह इसका प्रमाण है कि महात्मा जी ने असहयोग आन्दोलन को ऐसे समय में बन्द कर कितनी बड़ी गलती की। उनके आन्दोलन बन्द करने से जो प्रतिक्रिया हुई, उससे जाहिर है कि उनकी गलती खतरनाक थी।

प्रतिक्रिया का दौरदौरा—वही स्वामी श्रद्धानन्द जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की बन्दूक के सामने अपना सिंह-सा सीना तान दिया था, अब शुद्धि-संगठन में लग गए। एक ध्यान योग्य बात इस सम्बन्ध में यह है कि मुस्लिम लीग का सन् १९२१ में कोई अधिवेशन नहीं हुआ, बात यह थी कि मुस्लिम जनता direct action चाहती थी और ये उच्च तथा मध्यम श्रेणी के नेता जेल जाने या तकलीफ उठाने के लिए तैयार नहीं थे। सन् १९२२ में लखनऊ में इसका अधिवेशन बुलाया गया तो कोरम ही पूरा न हुआ, किन्तु असहयोग के स्थगित होते ही यह फिर पनपा और खूब पनपा। तब लीगी तनजीम ने जोर पकड़ा, कौंसिल-प्रवेश की चर्चा बढ़ी, यानी वही सब बातें हुईं जो मध्यम श्रेणी के आन्दोलन की विशेषता है। थोड़े दिन के लिए जो आशा की बत्ती जल उठी थी,

वह बुझ-सी गई, जो क्रान्तिकारी अब तक चुप बैठे थे, वे आगे बढ़े और फिर से बम आदि बनाना, संगठन करना, दल बनना शुरू हो गया। उस समय देश के सामने कोई कार्य-क्रम नहीं था, करते न तो वे क्या करते। सत्य-अहिंसा के नाम पर या किसी ख्याल के ऊपर हाथ पर हाथ धर कर बैठना उनके वश में नहीं था।

१६

असहयोगोत्तर क्रान्तिकारी आन्दोलन

असहयोग के ठप्प हो जाने से देश में जो प्रतिक्रिया का दौरदौरा हुआ, उसके दलदल में सभी फँस गए। कुछ सम्प्रदायवादी हो गए, कुछ सुधार और विधानवादी, किन्तु भारत के कुछ नौजवानों ने इस प्रकार प्रतिक्रिया के अन्दर आना अस्वीकार किया। बिखरे हुए क्रान्तिकारी दल फिर से संगठित किए जाने लगे, कुछ पुराने क्रान्तिकारी नेता पस्त हो चुके थे, उनकी जगह नए नेता आए। इन नयों में जोश था, वलवला था, बिलबिलाहट थी, उमंग थी, किन्तु उनमें परिपक्वता नहीं आई थी। कुछ पुराने नेता भी संगठन करने लगे, किन्तु सम्हल-सम्हल कर। उत्तर भारत में श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा बंगाल में अनुशीलन समिति संगठन करने लगी। उत्तर भारत के आन्दोलन की हम अगले अध्याय में विस्तृत व्याख्या करेंगे, किन्तु इस बीच जो छिटफुट घटनाएँ हुईं, उनका यहाँ उल्लेख करेंगे।

शंखारी टोला—डाक लूट—३ अगस्त १९२३ को कुछ क्रान्तिकारियों ने शंखारी टोला पोस्ट आफिस पर हमला कर दिया। उनका उद्देश्य संगठन के लिए रुपये प्राप्त करना था, किन्तु वे वहाँ जाकर इस प्रकार घबड़ा गए कि पोस्टमास्टर को मार कर चल दिए। इस सम्बन्ध में नरेन्द्र नामक एक विवाहित युवक को गिरफ्तार किया गया, उसने सब तो नहीं किन्तु कुछ बातें अदालत के सामने कबूल दीं, फिर भी जज ने उसे फाँसी की सजा दी, हाँ हाईकोर्ट ने उसकी सजा कालेपानी की कर दी। यह काम किसी सुसंगठित दल का नहीं था, बल्कि यों ही कुछ युवकों के दिल में जोश आया और उन्होंने कर डाला, फिर भी इससे जमाने की रुझान का पता लगता है। इसी सम्बन्ध में सरकार ने एक षड्यन्त्र चलाने की कोशिश की, किन्तु वह असफल रही, तब सरकार ने १८१८ के तीसरे रेगूलेशन के अनुसार उन व्यक्तियों को नजरबन्द कर लिया।

ताँता जारी हो गया—सरकार इस मुकदमे से समझ गई कि मामूली कानूनों से उसके दमन का काम न चलेगा, तब उसने सोचा मार्शल ला की तरह या रौलट एक्ट की तरह किसी कानून की आवश्यकता को, किन्तु सोचना और करना एक नहीं है. सरकार जानती थी, जनमत इसका विरोध करेगा; इसलिए सरकार सोचती रही। इसी बीच कई और घटनाएँ घटीं, ६ सितम्बर १९२३ को अमर शहीद यतीन्द्र मुखर्जी की बर्षी सार्वजनिक रूप से कलकत्ते में मनाई गई। सरकार को यह बातें बहुत अखरीं। वागी की यह इज्जत, किन्तु क्या करती सरकार, खून का घूँट पीकर रह गई। दिसम्बर १९२३ में चटगाँव में एक क्रान्तिकारी डाका पड़ा, उसमें १८००० रुपया क्रान्तिकारियों के हाथ आया, जो दारोगा उसकी तहकीकात के लिए तैनात हुआ, वह गोली से मार डाला गया और सरकार उसके मारने वाले को गिरफ्तार न कर सकी। अब तो सरकार के तेवर और भी चढ गए।

गोपीमोहन साहा—भारतीय पुलिस वालों में सर चार्ल्स टेगर्ट क्रान्तिकारियों के विषय में विशेषज्ञ समझे जाते थे, सैकड़ों क्रान्तिकारियों को वे गिरफ्तार करवाकर फाँसी के तख्ते पर तथा समुद्रपार कालेपानी भिजवा चुके थे। बहुत दिनों से क्रान्तिकारी उनकी टोह में थे, किन्तु वे किसी प्रकार हत्थे पर चढ़ते नजर नहीं आते थे। नतीजा यह था कि एलिशियम रो में क्रान्तिकारियों के साथ पैशाचिक अत्याचार कर, उनको पीटकर, उनका वीर्य स्खलित करवाकर, उनको नंगा कर तथा उन पर टट्टी की बाल्टी उलटवाकर उनसे बयान लेने की कोशिश उसी प्रकार जारी थी। इनके सहकारियों में लो मैन थे। वसन्त चटर्जी तो प्राक असहयोग युग में ही यमपुर भेज दिए गए थे। क्रान्तिकारियों की एक टोली ने सोचा कि टेगर्ट साहब को क्यों न उसी लोक में भेजा जाए जहां वे सैकड़ों माँ के लाड़लों को भेज चुके हैं, ताकि वे वहाँ जाकर उन पर निगरानी रख सकें ? इन नवयुवकों में गोपीमोहन साहा भी एक थे। साहा को मिस्टर टेगर्ट को मारने की धुन इस प्रकार सवार हुई कि वह दिन-रात उन्हीं की फिराक में घूमने लगे, साथ में एक भरा हुआ तमंचा रहता था। इधर टेगर्ट साहब इतने सावधान थे कि वे कहीं मिलते ही न थे, गोपीमोहन भी छोड़ने वाले जीव न थे, वह तो दीवाने हो चुके थे। वे टेगर्ट साहब के कूचे में रोज

बीस-बीस फेरे करने लगे। एक दिन जब साहा इसी प्रकार घूम रहे थे, टेगर्ट साहब के बंगले से एक अंग्रेज निकला, गोपीमोहन चौकन्ने हो गए। उन्होंने दिल में कहा—हाँ यह टेगर्ट है, वह तो टेगर्टमय हो चुके थे, फिर क्या था। प्यासा जैसे पानी के पास दौड़ता है, उसके पास पहुँचे। हाथ में वही चिरसाथी बदले का भूखा तमंचा था। धाँय! धाँय!! धाँय!!! दनादन गोलियां चलीं, वह अंग्रेज वहीं ढेर हो गया, साहा ने समझा उनका प्रण पूरा हो गया, किन्तु यह व्यक्ति जो मारा गया, टेगर्ट नहीं था, बल्कि कलकत्ते का एक अंग्रेज व्यापारी मिस्टर डे था। गोपीनाथ साहा गिरफ्तार कर लिए गए थे और बाद को उनको फांसी की सजा दी गई। गोपीमोहन को जब मालूम हुआ कि उन्होंने एक गलत आदमी की हत्या की है तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने अदालत में साफ-साफ कहा—"मैं तो टेगर्ट को मारना चाहता था, मुझे बड़ा दुःख है कि मैंने एक निर्दोप अंग्रेज को मार डाला।

गोपीमोहन साहा पर जेल में बहुत अत्याचार किए गए, उस समय उस जेल में रहने वाले नजरबन्दों से मुझे मालूम हुआ है कि उन्हें बर्फ में गाड़ दिया गया था ताकि वे मुखबिर हो जाएँ, किन्तु वे साम्राज्यवाद की सब चालों को व्यर्थ करते रहे। नजरबन्दों से मुझे यह बात भी मालूम हुई है कि जिस कोठरी में गोपीमोहन साहा रक्खे गए थे उस कोठरी में उनकी फाँसी के बाद लोगों ने बहुत दिनों तक यह वाक्य दीवारों पर लिखा देखा था—

भारतीय राजनीतिक्षेत्रे अहिंसार स्थान नेई—यानी भारतीय राजनीति क्षेत्र में अहिंसा का कोई स्थान नहीं है। यह एक शहीद का अन्तिम सन्देश था।

रौलट ऐक्ट एक दूसरे रूप में !!—गोपीमोहन साहा की फाँसी के बाद बङ्गाल के युवकों में ही नहीं बल्कि बङ्गाल की सारी राजनीति में एक उबाल-सा आ गया। सीराजगंज में जो प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेंस हुई, उसमें एक प्रस्ताव गोपीमोहन साहा की वीरता की प्रशंसा में पास हुआ। इस बात को लेकर सारे भारत में खलबली मच गई। बात यह है कि महात्मा गांधी ने कड़े शब्दों में प्रस्ताव की निन्दा की। उन दिनों देशबन्धु दास बङ्गाल के सर्वश्रेष्ठ नेता थे। उन्होंने बड़े जोर से सीराजगंज के प्रस्ताव का समर्थन किया। बहुत दिनों तक यह चिट्ठी-पत्री अखबारों में चलती रही, सारे हिन्दुस्तान के नवयुवक

देशबन्धु दास के साथ थे। वे नहीं चाहते थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन किसी के लिए सत्य या मिथ्या के प्रयोग का क्षेत्र बना दिया जाए और इस प्रकार वह एक निरर्थकता में पर्यवसित हो। इस सिलसिले में गोपीमोहन साहा ने अपनी कोठरी की दीवार पर जो वाक्य लिखा था वह भी स्मरणीय है। सच्ची बात तो यह है कि महात्मा गांधी ने जब से देश के आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में ली तब से हमारे राजनैतिक क्षेत्र में हिंसा-अहिंसा के नाम पर एक अजीब अवैज्ञानिक और अवांछनीय साम्प्रदायिकता या भेद-भाव उत्पन्न हो गया। सरकार बहुत चालाक थी, उसने इसका खूब फायदा उठाया जैसा कि बाद को दिखलाया जाएगा। अब तक राजनैतिक कैदियों के छोड़ने में अर्थात् समय से पहले छोड़ने में किसी प्रकार की हिंसा या अहिंसा की बात नहीं उठाई जाती थी, किन्तु इसके बाद जब-जब राजनैतिक बंदियों को छोड़ने का प्रश्न सरकार के सामने आया, तब-तब यह प्रश्न हिंसा और अहिंसात्मक कैदी, इस रूप में आता रहा। अहिंसा पर महात्मा गांधी ने अत्यधिक जोर दिया, उसीका बुरा नतीजा हुआ। गांधीजी के पहिले यह प्रश्न उठता ही नहीं था। मैंने दिखलाया है कि सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में भी इस प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं बरता गया था। बाद को जब थोड़े दिनों बाद सरकार ने बङ्गाल के आर्डीनेंस को देश के सामने रखा, उस समय भी इसी हिंसा-अहिंसा के मूर्खतापूर्ण प्रश्न के कारण इसका इतना विरोध नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए यह बड़ी बुद्धिमत्ता की बात थी कि उसने उसी रौलट ऐक्ट को एक दूसरे रूप से बङ्गाल में लगाया। किन्तु देश ने इसे करीब-करीब मजे में हजम कर लिया, कोई 'direct action' की धमकी तक नहीं आई। यह गांधीवाद का फल था।

१९२४ अप्रैल में मिस्टर ब्रूस की हत्या करने का प्रयत्न किया गया, फिर फरीदपुर में बम के कारखाने का पता लगा। दो व्यक्ति पिस्तौल के साथ गिरफ्तार हुए। शान्तिलाल नामक एक व्यक्ति बेलियाघाटा स्टेशन के पास मरा हुआ पाया गया। समझा जाता है कि उसको क्रान्तिकारियों ने इसलिए मार डाला कि उसके सम्बन्ध में यह सन्देह था कि उसने जेल में रहते समय पुलिस को कुछ खबरें दीं। कलकत्ता खद्दर-भंडार के पास एक व्यक्ति बम से मरा हुआ पाया गया, समझा जाता है कि इसको भी क्रान्तिकारियों ने मुखबिरी

के सन्देह पर मारा । १८ अक्टूबर सन् १९२४ में उत्तर प्रदेश से लौटते हुए श्री योगेशचन्द्र चटर्जी हावड़ा स्टेशन पर गिरफ्तार हो गए । उनके पास कुछ कागजात मिले, जिनमे सरकार को पता लगा कि बंगाल के बाहर २३ जिलों में क्रान्तिकारी संगठन बड़े जोरों से हो रहा है । अब तो सरकार घबड़ा उठी, क्योंकि सरकार ने यह साफ समझ लिया कि जब बंगाल के क्रान्तिकारी बाहर जाकर संगठन करने में जुटे हैं, तब तो बंगाल के अंदर बहुत ही जबरदस्त संगठन हो चुका होगा । सरकार समझती थी कि मामूली कानून से इस आन्दोलन को दबाना सम्भव नहीं है । यह समझ सरकार के लिए कोई नई बात नहीं थी । इसी बात को लेकर रौलट कमेटी की नियुक्ति हुई, किन्तु सरकार को जनमत के सामने रौलट बिल को वापस लेना पड़ा था । किन्तु सरकार को इसी रौलट बिल की जरूरत थी, इसलिए उसने वही बिल चेहरा बदल कर बंगाल आर्डीनेन्स के नाम से १९२४ के २५ अक्टूबर को जारी कर दिया । उसी दिन रात को सैकड़ों मकानों की तलाशी ली गई । कलकत्ता में काँग्रेस कमेटी के दफ्तरों की तथा बंगाल स्वराज्य पार्टी के दफ्तरों की तलाशी ली गई । एक ही दिन में स्वराज्य पार्टी के ४० सदस्यों को गिरफ्तार किया गया !······

सुभाषचन्द्र बोस की गिरफ्तारी—उस समय गिरफ्तार होने वालों में श्री सुभाषचन्द्र बोस भी थे । इनके साथ ही बंगाल कौंसिल के दो सदस्य श्री अनिल बरन राय तथा श्री सत्येन्द्र मित्र भी थे । सुभाष बाबू उन दिनों कलकत्ता कारपोरेशन के एक्जीक्यूटिव ऑफिसर थे । सच बात कही जाए तो देशबन्धु दास के अतिरिक्त सभी बड़े-बड़े बंगाली नेता गिरफ्तार कर लिए गए । इसके अतिरिक्त बंगाल के विभिन्न स्थानों में तलाशियाँ तथा गिरफ्तारियाँ हुईं, किन्तु सबसे मजे की बात यह है कि कहीं भी पुलिस को कोई आपत्तिजनक वस्तु न मिली ।

सारे देश में उक्त आर्डीनेन्स की निन्दा हुई । महात्मा गांधी तक ने इस आर्डीनेन्स का जोरदार जबानी विरोध किया । इसके बाद तो जिस पर भी सरकार को संदेह होता था उसी को गिरफ्तार कर लेती थी । किन्तु क्रान्तिकारी आन्दोलन दबने के बजाय और बढ़ता ही गया, यह पाठकों को आगे चलकर पता लग जाएगा ।

१७

काकोरी-षड्यन्त्र

पहले के अध्यायों से पाठकों को पता लग गया होगा कि उत्तर भारत में लड़ाई के जमाने में क्रान्तिकारी आन्दोलन बड़े जोर पर था। रासविहारी, हरदयाल, ओबेदुल्ला, राजा महेन्द्र प्रताप, परमानन्द, बाबा सोहनसिंह आदि सुविख्यात क्रान्तिकारी उत्तर भारत में ही पैदा हुए थे किन्तु उत्तर भारत में फिर से क्रान्तिकारी आन्दोलन को पुनर्जीवित करने का श्रेय कई कारणों से बनारस षड्यन्त्र के नेता श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल को ही प्राप्त हुआ। आजन्म कालेपानी की सजा पाए हुए श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल आम माफी के सिलसिले में २० फरवरी सन् १९२० को छोड़ दिए गए। इधर बनारस षड्यन्त्र के ही सेठ दामोदरस्वरूप भी छूट गए। श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य जो लड़ाई के जमाने में नजरबन्द थे, इसके पहिले छूट चुके थे। जब असहयोग के बाद प्रतिक्रिया का जमाना आया, उस समय देश के युवकों में एक अजीब बेचैनी थी। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने इस बेचैनी का फायदा उठाकर उत्तर भारत में फिर से क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाना चाहा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल २० फरवरी १९२० को छूट गए थे, फिर भी उन्होंने असहयोग आन्दोलन में कोई भाग नहीं लिया। ऊपर जिन व्यक्तियों का नाम लिया गया है, उनमें से केवल श्री दामोदरस्वरूप सेठ ने ही असहयोग आन्दोलन में जोरों से भाग लिया और बड़ी से बड़ी तकलीफें उठाईं।

हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ—शचीन्द्र बाबू ने पहिले ही एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की थी और इसमें प्रान्तीय कमेटी के कुछ सदस्य भी मुकर्रर हुए थे। इनमें बाद को श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य मशहूर हुए। जब शचीन्द्र बाबू कुछ हद तक संस्था को आगे बढ़ा चुके, तब बंगाल से अनुशीलन समिति ने दूत भेजा। पहिले पहल श्री क्षेत्रसिंह ने आकर अनुशीलन की ओर से बनारस में कल्याण आश्रम नाम से एक आश्रम खोला। यह आश्रम केवल दिखाने के लिए

था, असल में गुप्त रूप से क्रान्तिकारी कार्य हो रहा था। यहीं पर इनसे श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी से भेंट हुई। इसके बाद मन्मथनाथ से तथा अन्य लोगों से भी भेंट हुई। बहुत दिनों तक वे दोनों दल अर्थात् शचीन्द्र बाबू का दल और अनुशीलन दल अलग-अलग काम करते रहे, तजर्बे से यह देखा गया कि जब दोनों दलों का उद्देश्य तथा उपाय एक ही है तो यह अच्छा है कि दोनों दल सम्मिलित कर दिए जाएँ और इस प्रकार क्रान्तिकारी आन्दोलन को अग्रसर किया जाए। इसके लिए बातचीत होती रही, किन्तु प्रारम्भ में बहुत दिनों तक कोई परिणाम नहीं निकला। यह ब्योरे की बात है कि इस प्रकार मेल होने में देर क्यों हुई, इस इतिहास में ऐसी बात का स्थान नहीं हो सकता। क्रान्तिकारी की आत्मकथा नामक पुस्तक में मैंने कुछ ब्योरा दिया है।

दल का काम तथा उद्देश्य—जब दोनों दल एक सूत्र में बंध गए, तो उसका नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन पड़ा। इस दल का एक विधान बाद को तैयार किया गया, जिसको मुकदमे में आमतौर से पीला कागज बतलाया गया। इस दल का उद्देश्य सशस्त्र तथा संगठित क्रान्ति द्वारा Federated Republic Of the United States of India 'भारत के सम्मिलित राज्यों का प्रजातंत्र संघ' स्थापित करना था, यानी ऐसी शासन प्रणाली स्थापित करना, जिसमें प्रांतों के घरेलू विषयों में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी, प्रत्येक बालिग तथा सही दिमाग वाले व्यक्ति को वोट देने का अधिकार प्राप्त होगा तथा ऐसी समाज पद्धति की स्थापना होगी जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो सके। यह सब बातें होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस विधान के बनाने वालों का आदर्श सोवियत रूस या किसान और मजदूर वर्ग का अधिनायकत्व था। इस षड्यन्त्र के सिलसिले में बहुत दिनों बाद जाकर अर्थात् जनवरी सन् १९२५ में एक क्रन्तिकारी पर्चा बांटा गया था, जिसका नाम The Revolutionary (क्रान्तिकारी) था। इसमें यह लिखा अवश्य था कि हमारे सामने आधुनिक रूस का आदर्श है, किन्तु लेखक ने इस वक्तव्य के सम्पूर्ण अर्थ को न समझ कर ऐसा लिखा था। जहाँ उसमें यह बात थी कि रूस का आदर्श हमारे सम्मुख है, वहाँ यह बात भी थी कि प्राचीन ऋषियों का आदर्श हमारे सम्मुख है। इससे यही सूचित होता है कि प्राचीन ऋषियों का

आदर्श उनके सम्मुख था । इससे यही सूचित होता है कि लेखक ने रूस के आदर्श को नहीं समझता था। केवल वह ही नहीं, उस युग का कोई भी व्यक्ति इस आदर्श को नहीं समझता था।

मैंने क्रान्तिकारी दल के आदर्शों के विकास पर वैज्ञानिक विवेचन किया है। इस जगह पर उसका पुनरुल्लेख करना सम्भव नहीं है, फिर भी इतना कह देना आवश्यक है कि क्रान्तिकारी दल के आदर्श में अर्थात् ध्येय में विकास होता गया है। यद्यपि क्रान्तिकारी दल का कार्य-क्रम प्रारम्भिक दिनों से लेकर अन्त तक एक ही रहा है, फिर भी उसके ध्येय में बराबर विकास होता रहा। मैंने अपनी पुस्तक 'चन्द्रशेखर आजाद' में भारतवर्ष के क्रान्तिकारी आन्दोलन को आदर्शों की दृष्टि से पाँच भागों में विभक्त किया था, संक्षेप में वे यों हैं—

(१) वह समय जब कि विद्रोह भाव के सिवा कोई विचार ही नहीं थे १८९३—१९०५।

(२) वह समय जब स्वाधीनता की एक धुँधली धारणा थी १९०५—१९१४।

(३) वह समय जब स्वाधीनता की धारणा स्पष्ट हो गई और इसमें प्रजातन्त्र की भी धारणा निश्चित रूप से शामिल हो गई १९१४—१९१९।

(४) वह समय जब कि प्रजातान्त्रिक स्वाधीनता के साथ-साथ एक अस्पष्ट आर्थिक समानता क्रान्तिकारियों के मन में आदर्श रूप से आई १९२१—१९२८। बीच में १९१९ से १९२१ दो वर्ष तक आन्दोलन बन्द-सा रहा, देश में एक-दूसरा ही प्रयोग असहयोग के रूप में हो रहा था।

(५) उपरोक्त बातों के अलावा इसके बाद के युग में वर्ग-बुद्धि भी आ गई १९२९—३२ और खुलकर समाजवाद का नारा दिया गया।

इस विषय में आलोचना को यहीं तक रख कर हम काकोरी-षड्यन्त्र पर जाते हैं। बनारस में इस आन्दोलन में प्रमुख श्री शचीन्द्र नाथ बक्शी, श्री रवीन्द्रमोहन कार तथा श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी थे, कानपुर में सुरेश बाबू ही दल का चालन कर रहे थे। शाहजहाँपुर में पं० रामप्रसाद इस दल के

नेता थे।

रामप्रसाद बिस्मिल—पं० रामप्रसाद पहले मैनपुरी-षड्यन्त्र में फरार हो गए थे, किन्तु अन्त तक वे पुलिस की पकड़ में नहीं आए। जब वे सरकार द्वारा माफ कर दिए गए, तभी प्रकाश्य रूप से प्रकट हुए। पं० रामप्रसाद ने अपने जीवन की थोड़ी-सी बातें लिखी हैं, जिसमें से कुछ बातें हम यहाँ पर देते हैं। पं० रामप्रसाद के पूर्व पुरुष ग्वालियर राज्य के रहने वाले थे, किन्तु कई कारणों से वे आकर शाहजहाँपुर में बस गए। उनके पिता का नाम श्री मुरलीधर था, बहुत गरीब परिवार था। पं० रामप्रसाद ने लड़कपन से ही आर्य-समाजी शिक्षा पाई थी, बाद को भी वे कट्टर तो नहीं किन्तु आर्यसमाजी जरूर बने रहे। मैनपुरी-षड्यन्त्र में उनका काफी बड़ा हिस्सा था। बाद में जब वे मैनपुरी-षड्यन्त्र में भाग गए तो ग्राम में ग्रामवासियों की भांति निवास करने लगे, तो भी वे कभी पुलिस के हाथ नहीं लग सके। वे उन दिनों अपने हाथ से खेती करते थे और कुछ दिनों में ही एक अच्छे खासे किसान बन गए। इसी प्रकार उन्होंने कई साल बिताए।

राजकीय घोषणा के पश्चात् जब वे शाहजहाँपुर आए, तो शहर वालों की अद्भुत दशा देखी। कोई पास तक खड़े होने का साहस नहीं करता था, जिसके पास वे जाकर खड़े हो जाते, वह नमस्ते करके चल देता था। पुलिस वालों का बड़ा प्रकोप था, हर समय छाया की भाँति या कुत्ते की भाँति वे पीछे फिरा करते थे। तीन-तीन दिन तक पंडित जी को खाना नसीब नहीं होता था। संसार अँधेरा मालूम देता था। इसी प्रकार जीवन संग्राम में लुढ़कते-पुढ़कते वे किसी तरह दिन गुजारते रहे। इसी दौरान में उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं।

योगेश बाबू से मिलना—पं० रामप्रसाद सोच ही रहे थे कि फिर से क्रान्तिकारी दल का संगठन किया जाए, इतने में मालूम हुआ कि उत्तर प्रदेश में दल का संगठन हो रहा है। श्री योगेशचन्द्र चटर्जी जुलाई सन् १९२३ में इस प्रान्त में अनुशीलन की ओर से प्रतिनिधि बनकर आए। योगेश बाबू जब से आए, तब से खूब जोर से काम करते रहे। योगेश बाबू घूमते-फिरते कानपुर के श्री रामदुलारे त्रिवेदी को साथ लेकर शाहजहाँपुर गए और वहाँ से पं०

रामप्रसाद इस वृहत् दल में सम्मिलित हो गए ।

बाद को जाकर पं० रामप्रसाद दल के लिए बहुत बड़े जरूरी व्यक्ति साबित हुए क्योंकि उनको मैनपुरी से अस्त्र-शस्त्र, डकैती आदि का ज्ञान था । इस षड्यन्त्र से सम्बन्धित दूसरे व्यक्तियों को थोड़ा-सा परिचय देकर, फिर हम आगे बढ़ेंगे । पहले हम उन लोगों का परिचय देंगे जिनको काकोरी-षड्यन्त्र में फाँसी की सजा हुई थी ।

अशफाकउल्ला—लड़ाई के जमाने में बहुत से मुसलमानों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया, यह तो पहले ही आ चुका है । अशफाकउल्ला खाँ शाहजहाँपुर के रहने वाले थे। इनके खानदान के सभी लोगों की शुमार वहाँ के रईसों में है । तैरने, घोड़े पर सवारी करने, क्रिकेट, हॉकी खेलने तथा बन्दूक चलाने में वे घर ही में प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे । अशफाकउल्ला बड़े सुडौल और सुन्दर युवक थे । ऐसे सुन्दर व्यक्ति कम होते हैं । पं० रामप्रसाद से इनकी लड़कपन से ही दोस्ती थी । जब रामप्रसाद फरारी से प्रगट हुए, उस समय अशफाकउल्ला क्रान्तिकारी काम में शामिल होने की इच्छा प्रगट करते रहे । शुरू-शुरू में तो पं० जी ने इनकी बातों को टाल दिया, किन्तु जब उनका आग्रह बहुत देखा, तो उन्हें भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में शामिल कर लिया ।

अशफाकउल्ला के कवित्व के कुछ नमूने—अशफाकउल्ला कविताएँ भी लिखा करते थे और कविताओं में अपना उपनाम हसरत रखते थे, उनकी कुछ कविताओं को यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

यूँ ही लिक्खा था किसमत में चमनपैराए आलम ने,
कि फस्लेगुल में गुलशन छूट कर है कैद जिन्दाँ की ।

× × ×

तनहाइए गुरबत से मायूस न हो हसरत,
कब तक न खबर लेंगे याराने वतन तेरी ।

× × ×

ब' जुर्मे' आरजू पै जिस कदर चाहे सजा दे लें,
मुझे खुद ख्वाहिशे ताजीर है मुलजिम हूँ इकरारी ।

फाँसी के कुछ घन्टे पहले उन्होंने ये कविताएँ लिखीं—

कुछ आरजू नहीं है है आरजू तो यह,
रख दे कोई जरासी खाके वतन कफन में।
ऐ पुख्तकार उल्फत हुशियार, डिग न जाना,
मराज आशकाँ है इस दार और रसन में॥
मौत और जिन्दगी है दुनियाँ का सब तमाशा,
फरमान कृष्ण का था, अर्जुन को बीच रन में॥
अफसोस क्यों नहीं है वह रूह अब वतन में?
जिसने हिला दिया था दुनियाँ को एक पल में॥
सैयाद जुलमपेशा आया है जब से 'हसरत',
हैं बुलबुले कफस में जागो जगन चमन में॥

× × ×

न कोई इङ्गलिश न कोई जर्मन,
न कोई रशियन, न कोई तुर्की।
मिटाने वाले हैं अपने हिन्दी,
जो आज हमको मिटा रहे हैं।
जिसे फना वह समझ रहे हैं,
बका का राज इसी में मजमिर।
नहीं मिटाने से मिट सकेंगे,
यो लाख हमको मिटा रहे हैं।
खामोश 'हजरत' खामोश 'हसरत'
अगर है जजबा वतन का दिल में।
सजा को पहुँचेंगे अपनी बेशक,
जो आज हमको सता रहे हैं।

× × ×

बुजदिलों ही को सदा मौत से डरते देखा,
गो कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा।
मौत से वीर को हमने नहीं डरते देखा।

मौत को एक बार जब आना है तो डरना क्या है,
हम सदा खेल ही समझा किए, मरना क्या है।
वतन हमेशा रहे शादकाम और आज़ाद,
हमारा क्या है, अगर हम रहे, रहे न रहे।

हम बाद को अशफाकउल्ला के विषय में यथास्थान लिखेंगे।

राजेन्द्र लाहिड़ी—राजेन्द्र लाहिड़ी का जन्म १६०१ ईसवी के जून महीने में पबना जिले के भड़गा नामक गाँव में हुआ था। १६०६ में इनके परिवार के लोग बनारस में आए, यहीं पर उनका सारा अध्ययन हुआ। १६२१ के आन्दोलन में इन्होंने कोई भाग नहीं लिया। क्रान्तिकारी आन्दोलन को यह श्रेय है कि वह ऐसे-ऐसे आदमियों को राजनैतिक आन्दोलन के दायरे में खींच लाया जो शायद उसके बिना किसी प्रकार के राजनैतिक आन्दोलन में आते ही नहीं। राजेन्द्र बाबू पहले सान्याल परिवार के सम्पर्क में आए, वहीं से उनके राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ होता है। राजेन्द्र बाबू पहले सान्याल बाबू के दल में थे, किन्तु जब अनुशीलन दल हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ में मिल गया, उस समय राजेन्द्र बाबू बनारस के डिस्ट्रिक्ट आरगनाइजर मुकर्रर हुए। प्रान्तीय कमेटी के भी वे सदस्य हुए, प्रान्तीय कमेटी में राजेन्द्र बाबू के अतिरिक्त श्री विष्णुशरण जी दुब्लिस, सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य तथा पं० रामप्रसाद बिस्मिल भी थे। बाद को राजेन्द्र बाबू दक्षिणेश्वर कलकत्ता में गिरफ्तार हुए, वह गिरफ्तार होते समय एम० ए० के छात्र थे।

बनारस केन्द्र का काम—पहिले ही बतलाया जा चुका है कि बनारस केन्द्र के मुख्य कार्यकर्ताओं में श्री शचीन्द्रनाथ बक्शी थे। जिस समय दल की ओर से सामरिक कार्य शुरू हुए, उस समय बनारस केन्द्र के लड़के बहुत जोर-शोर से उसमें भाग लेते रहे। दल का संगठन कुछ पुराना होते ही दल को रुपयों की जरूरत पड़ी, तो यह योजना सोची गई कि दल के काम के लिए डकैतियाँ डाली जाएँ। योगेश बाबू के बाहर रहते ही यह योजना बन चुकी थी, किन्तु यह सोचा जाता था कि जहाँ तक हो सके गाँव में डकैतियाँ डाली जाएँ ताकि सरकार पर भेद न खुले, इसी के अनुसार गाँव में बहुत दिनों तक डकैतियाँ डाली गईं।

गाँव में डकैती—इन गाँव की डकैतियों को यदि रुपए की दृष्टि से भी देखा जाए तो भी इसमें विशेष सफलता नहीं मिली। बहुत कुछ हद तक इन डकैतियों से क्रान्तिकारियों की कर्म-शक्ति का उचित उपयोग नहीं हुआ। यह डकैतियाँ उत्तर-प्रदेश के विभिन्न जिलों में डाली गईं। जिस समय काकोरी-षड्यन्त्र खुला उस समय काकोरी के अतिरिक्त तीन और डकैतियाँ पुलिस ने चलाने की कोशिश की।

इस आन्दोलन के सिलसिले में बहुत प्रचार कार्य न हो सका, किन्तु फिर भी लोगों में राजनैतिक पुस्तकों का अध्ययन करने का सिलसिला खूब चलाया गया। उस जमाने में Study circles का रिवाज नहीं था, इसलिए दूसरे प्रकार से राजनैतिक शिक्षा दी जाती थी। पत्र गुप्त रूप से भेजने के लिए पोस्ट बॉक्स कायम किए जाते थे; अर्थात् पत्र जिसके लिए होता था उसके नाम से न होकर किसी दूसरे ऐसे व्यक्ति के नाम से आता था, जिस पर पुलिस को शक न होता था। जहाँ तक होता था लोग एक-दूसरे को नहीं जान पाते थे, बिना काम के कोई प्रश्न किसी से नहीं पूछ सकता था। दल के नियम बड़े कठिन थे। एक बात यह भी थी कि यदि कोई सदस्य किसी प्रकार से दल को धोखा दे तो उसको दल से निकाल देने या उसे गोली से मार देने का भी हक था। बनारस केन्द्र का संगठन सबसे मजबूत था, किन्तु मजे की बात यह है कि शाहजहाँपुर का केन्द्र संगठन की दृष्टि से सबसे कमजोर होते हुए भी वहाँ के तीन व्यक्तियों को फाँसी हुई।

श्री रोशनसिंह—ठाकुर रोशनसिंह शाहजहाँपुर जिले के नवादा नामक ग्राम के रहने वाले थे। लड़कपन से वे दौड़ने-धूपने के काम में बहुत बढ़े हुए थे। काकोरी-षड्यन्त्र में जितने व्यक्ति गिरफ्तार किए थे, उनमें सब में बलवान ठाकुर रोशनसिंह थे। असहयोग आन्दोलन के आरम्भ से ही उन्होंने इसमें काम करना शुरू कर दिया और शाहजहाँपुर और बरेली जिले के गाँवों में घूम-घूम कर असहयोग का प्रचार करने लगे थे। इन दिनों बरेली में गोली चली और इस सम्बन्ध में उन्हें दो वर्ष की कड़ी सजा हुई।

ठाकुर रोशनसिंह अंग्रेजी का मामूली ज्ञान रखते थे, किन्तु हिन्दी-उर्दू अच्छी तरह जानते थे। ठाकुर साहब की दो बीबियाँ थीं। राजनैतिक जीवन में

आने के पहले वे एक मामूली अपराधी थे । जो कुछ भी हो जेल से फाँसी के तख्ते तक बराबर उनका आचरण एक निर्भीक शहीद की भाँति था । बाद को इन सब बातों का वर्णन होगा ।

काकोरी युग के दूसरे अभिनेता—श्री शचीन्द्र नाथ बक्शी पहिले बनारस में फिर झाँसी और लखनऊ में काम करते थे । झाँसी में उन्होंने बहुत अच्छा काम किया । झाँसी में उन्होंने जो संगठन किया था, उसी से बाद को वैशम्पायन, भगवानदास, सदाशिव आदि उत्पन्न हुए । श्री विष्णुशरण जी दुब्लिस ने मेरठ में अच्छा काम किया था, किन्तु इन्होंने अपने लड़कों को क्रियाशील नहीं बनाया, इसलिए मेरठ के संगठन का कोई उल्लेख षड्यन्त्र में नहीं आया । यह पहले मेरठ वैश्य-अनाथालय में सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, तथा कांग्रेस आन्दोलन में १९२१ में जेल जा चुके थे । श्री प्रेमकिशन खन्ना शाहजहाँपुर के रहने वाले थे और पं० रामप्रसाद के मित्र थे । यह वहुत धनी परिवार के थे । श्री सुरेश चन्द भट्टाचार्य ने कानपुर में कुछ ऐसे नौजवानों को एकत्र किया जो बाद को भारत-प्रसिद्ध हुए, वे नौजवान थे वटुकेश्वर, राजकुमारसिंह, विजयकुमारसिंह ।

श्री रामदुलारे त्रिवेदी कानपुर के एक अच्छे क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ता थे । असहयोग आन्दोलन में इनको ६ माह की सजा हुई और जेल में अंग्रेज अध्यक्ष से गुस्ताखी करने के अपराध में २० बेंत लगे थे, जिसको उन्होंने बहादुरी से झेला । श्री मुकुन्दीलाल जी मैनपुरी के तपे हुए व्यक्ति थे । मैनपुरी-षड्यन्त्र वालों ने इनके साथ एक तरह से धोखा किया कि १९१९ में माफी के समय वे सब छूट गए, किन्तु शर्तनामे में मुकुन्दीलाल जी का नाम नहीं रक्खा । वे अपनी पूरी सजा काटकर १९२३ में छूटे । छूटते ही वे फिर काम में लगे थे ।

श्री रवीन्द्र कर—बनारस केन्द्र के क्रान्तिकारियों में रवीन्द्र प्रमुख थे वह बनारस के रहने वाले थे । उन्होंने असहयोग में भाग लिया, किन्तु जेल न गए । जब १९२४ में Revolutionary (क्रान्तिकारी) पर्चा निकला तो उसके सिलसिले में वे गिरफ्तार कर लिए गए, किन्तु जब उस पर्चे को बाँटने तथा चिपकाने का मुकदमा उन पर न चला, तो १०९ में कैद कर दिए गए । शचीन्द्र बक्शी, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा अन्य लोगों ने उनकी जमानत के लिए बहुतेरी कोशिशें कीं, अच्छे-अच्छे आदमियों की जमानतें पेश की गईं, किन्तु जमानत

न हुई। काकोरी-षड्यन्त्र की गिरफ्तारियों के समय वे जेल में ही थे। बाद को उन्हें कलकत्ता के सुकिया स्ट्रीट बम मामले में सात साल की सजा हुई। सजा काटकर छूटने के बाद उनको रोटियों के लाले पड़ गए। घर वालों ने बहिष्कार कर दिया था, कोई पास फटकने नहीं देता था। ऐसे ही उन्हें तपेदिक हो गई, हालत और भी बुरी हो गई और वे मर गए। उनकी मृत्यु एक शहीद की मृत्यु थी। जब तक ये जीते रहे, खूब जी-जान से काम करते रहे। रवीन्द्र, चन्द्रशेखर आजाद तथा कुन्दनलाल ने सत्तू खा-खाकर या बिना कुछ खाए दल का काम किया था।

श्री चन्द्रशेखर आजाद—काकोरी-षड्यंत्र में आने से पहले चन्द्रशेखर संस्कृत पढ़ते थे। वहीं से वे असहयोग आन्दोलन में शामिल हुए। इसमें उनको १५ बेंत की सजा हुई।

नवम्बर का बाप दिसम्बर—असहयोग के जमाने में जो थोड़े बहुत लड़के पकड़े गए थे उनमें एक से मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारा नाम ?

उस लड़के ने कहा—नवम्बर।

फिर पूछा गया—तुम्हारे बाप का नाम ?

कहा—दिसम्बर।

आजाद से भी जब ऐसा पूछा गया तो उन्होंने अपना नाम आजाद और बाप का नाम स्वाधीन तथा घर जेलखाना बतलाया। बस, यहाँ से उनका नाम आजाद पड़ा।

आजाद काकोरी के बाद उत्तर भारत के प्रमुखतम सेनापति हुए। बाद को हमें कई बार आजाद से साबका पड़ेगा।

श्री चन्द्रशेखर आजाद का जन्म एक बहुत ही साधारण देहाती परिवार में हुआ था, पर अपनी वीरता तथा बलिदान के कारण वह हमारे प्रातःस्मरणीय हो गए। उनका जन्म अलीराजपुर स्टेट के भावरा नामक स्थान में हुआ। उनके पिता जी का नाम पं० सीताराम और माता जी का नाम जगरानीदेवी था।

बचपन से ही वे बहुत जिद्दी थे और जिस काम को करना चाहते थे, उसे करके ही दम लेते थे। उनके बचपन के सम्बन्ध में यह बताया जाता है कि एक बार वे लाल रोशनी वाली दियासलाई से खेल रहे थे। उन्होंने साथियों से

कहा कि एक दियासलाई से जब इतनी रोशनी होती है तो सब सलाइयों के एक साथ जलाए जाने मे न मालूम कितनी रोशनी होगी। सब साथी इस प्रस्ताव पर बहुत खुश हुए, पर किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि इतनी सारी सलाइयों को एक साथ जलाएँ क्योंकि रोशनी के साथ सलाई से आँच भी होती थी। एक सलाई की आँच झेलना तो कोई ऐसी बात नहीं थी, पर सब सलाइयों की आँच को एक साथ कौन झेलता? इस पर आजाद सामने आए और उन्होंने कहा कि मैं एक साथ सब सलाइयों को जलाऊँगा। उन्होंने ऐसा ही किया। तमाशा तो हुआ, साथ ही साथ उनका हाथ भी कुछ जल गया, पर उन्होंने उफ तक नहीं की। जब लड़कों ने उनके हाथ की तरफ देखा तभी मालूम हुआ कि उनका हाथ जल गया है। यह देख कर सब लड़के उपचार के लिए दौड़ पड़े, पर उन्हें स्वयं कोई फिक्र नहीं थी और वे खड़े-खड़े मुस्करा रहे थे।

इनके पिता पं० सीताराम बहुत मामूली नौकरी करते थे, इसलिए अंग्रेजी पढ़ने का कोई प्रश्न नहीं उठा। आजाद संस्कृत पढ़ने के लिए काशी भेजे गए। उनका मन वहाँ नहीं लगा और वे भाग कर अपने बाबा के पास अलीपुर स्टेट में पहुँचे। यहाँ पर अबकी बार भीलों से मिलने का मौका मिला और वे उनमें खूब खप गए। उन्होंने उनसे तीर-धनुष चलाना सीखा और थोड़े ही दिनों में वह अच्छे निशानेबाज हो गए। एक कहानी है कि भीलों में एक बार एक बदचलन आदमी को तीर मार कर सजा दी जा रही थी तो बालक चन्द्रशेखर भी वहाँ पहुँचे, और भीलों के रिवाज के अनुसार उन्हें भी तीर मारने के लिए कहा गया। उनके तीर तो अचूक बैठे और उस दोषी व्यक्ति की आँखों में लगे। नतीजा यह हुआ कि उसकी आँख फूट गई। भीलों के अनुसार तो इस बात में कोई बुराई नहीं थी, पर उनके चाचा ने, जो यह बात सुनी तो उन्हें फिर काशी भेज दिया गया, जिससे कि कम-से-कम उन भीलों का साथ तो छूटे।

वह अबकी बार काशी में टिक गए। ब्राह्मण विद्यार्थी थे इस कारण खाने-पीने तथा रहने की मामूली व्यवस्था हो गई। काशी में धार्मिक लोगों की ओर से संस्कृत के छात्रों के लिए, विशेषकर ब्राह्मण छात्रों के लिए छात्र-निवास तथा क्षेत्र खुले हुए थे। कभी-कभी लोटा कम्बल ऐसी चीजें भी बँटती रहती थीं। कभी-कभी कुछ दक्षिणा भी मिलती थी।

इस प्रकार वे संस्कृत व्याकरण पढ़ने लगे, जैसा कि अधिकांश छात्र पढ़ते हैं, पर इसमें उनका मन नहीं लगता था। स्वभाव से उन्हें एक स्थान पर बहुत दिनों तक रहना अच्छा नहीं लगता था। इस कारण वे कभी-कभी गंगाजी में घंटों तैरते तो कभी कथा बाचने वालों में बैठकर रामायण, महाभारत, भागवत की कथा सुनते थे। वीरों की गाथाएँ इन्हें बहुत पसन्द थीं।

जब वे दस ग्यारह वर्ष के थे, उस समय जलियानवाला बाग का भयंकर हत्याकाण्ड हुआ, जिसमें अंग्रेज जनरल डायर ने निहत्थे भारतीयों को मार डाला। इससे सारे भारत में जोश फैला। आजाद ने भी यह बात सुनी। अब वह गंगाजी में तैरने और महाभारत, रामायण की कथा सुनने की बजाय पुस्तकालय में जाकर अखबार पढ़ने लगे।

जब गांधीजी ने आन्दोलन चलाया तो आजाद उसमें कूद पड़े। यद्यपि वह अभी एक बालक मात्र थे, फिर भी पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया।

उस जमाने में आजाद को बहुत ख्याति प्राप्त हुई थी, उनका फोटो श्री सम्पूर्णानन्द सम्पादित और श्री शिवप्रसाद गुप्त द्वारा प्रकाशित 'मर्यादा' में छपा था और उसमें लिखा था 'वीर बालक आजाद।'

बाकायदा उनका अभिनन्दन भी किया गया। जिस सभा में उनका अभिनन्दन किया गया, वह ज्ञानवापी में हुई थी और उसमें हजारों की संख्या में लोग मौजूद थे।

आजाद ने मजिस्ट्रेट के सामने चुनौती दी। आजाद ठीक ही कहा था, कुशासन में आजाद लोगों का स्थान जेलखाना ही होता है।

खरेघाट ने सोचा कि यह बालक है, इसे ऐसी सजा देनी चाहिए जिससे कि इसे कुछ सबक हो और यह इन बातों को छोड़ कर पढ़ने-लिखने में लगे। इसके अनुसार उन्हें पन्द्रह बेंत मारने की सजा दी गई। जेल में ले जाकर उन्हें बेंत लगाए गए। पर एक-एक बेंत मारा जाता था और वे पहले से अधिक जोर से महात्मा गांधी की जय बोलते थे। उन दिनों महात्मा गांधी की जय का नारा भारत की युद्ध-यात्रा का नारा था।

जब आजाद बेंत खाकर जेल से बाहर आए तो काशी की जनता ने सभा करके उनका स्वागत किया। वे फिर संस्कृत छात्रों में गए और उन्हें आन्दोलन

के लिए तैयार करने लगे। अभी तैयारी चल ही रही थी कि इतने में गांधीजी ने चौरीचौरा-काण्ड के नाम पर आन्दोलन बन्द कर दिया। इससे आजाद को बड़ी निराशा हुई जैसे कि अन्य हजारों लोगों को हुई। व्याकरण घोटने में तो उनकी तबीयत नहीं लगती थी।

उधर असहयोग बन्द हो जाने से क्रान्तिकारी फिर अपना संगठन करने लगे और उत्तर भारत में चारों तरफ क्रान्तिकारियों के दूत घूमने लगे। क्रान्तिकारी चाहते थे कि भारत को क्रान्ति से स्वतन्त्र करें। चन्द्रशेखर आजाद तो मानो तैयार ही बैठे थे, वह फौरन क्रान्तिकारी दल में भर्ती हो गए।

वे सभी क्रान्तिकारी कामों में सबसे आगे रहने लगे। उन्हें सभी दृष्टियों से क्रान्तिकारी कार्य अधिक पसंद आते थे। दल को धन की आवश्यकता थी इसलिए दल ने कुछ धनियों के घर पर तथा सरकारी खजाने पर डाका डालने को सोचा। इसमें श्री आजाद प्रमुख भाग लेते रहे। कुछ लोगों ने यह सुझाया कि आजाद किसी महन्त के शिष्य क्यों न हो जाएँ कि उस महन्त के मरने पर उसकी सारी जायदाद दल को मिले। इसके अनुसार आजाद एक महन्त के शिष्य बनाए गए, पर महन्त को जल्दी न मरते देख वह छोड़-छोड़ कर भाग आए।

लखनऊ के पास काकोरी में रेल का जो खजाना १९२५ में लूटा गया था, उसमें उन्होंने भाग लिया था। ऐसे ही कितने कार्यों में भाग लिया। जब षड्यन्त्र चला तो वे उसमें पकड़े नहीं गए। उन पर इनाम घोषित किया गया। काकोरी-षड्यन्त्र में क्रान्तिकारी नेताओं की गिरफ्तारी हो जाने के कारण उत्तर भारत के क्रान्तिकारी नेतृत्व का भार अब श्री चन्द्रशेखर आजाद पर पड़ा। उन्होंने सारे भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन की शाखाओं को फैला दिया। भगतसिंह के रूप में उन्हें बहुत योग्य साथी मिला। फरारी की हालत में आजाद ने झाँसी की तरफ रह कर मोटर ड्राइवरी भी सीख ली। गोली चलाने का भी अभ्यास करते रहे।

श्री चन्द्रशेखर आजाद की जीवनी तो एक समुद्र के रूप में है। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि इसके बाद उत्तर भारत में जितने भी क्रान्तिकारी कार्य हुए, उन सबमें श्री आजाद ने बहुत प्रमुख भाग लिया।

जब १९२८ में भारत में सात अंग्रेजों का एक कमीशन यह जाँच करने के लिए आया कि भारत को कहाँ तक प्रशासन सम्बन्धी सुधार दिए जाएँ, तो भारत के सब दलों ने इसका बॉयकाट किया। इसी बॉयकाट के कार्य-क्रम में भाग लेते हुए लाला लाजपतराय पर लाठियाँ पड़ीं और वे उसी के कारण कुछ दिन बाद मर गए। एक महान् नेता की इस प्रकार मृत्यु होने से देश में बड़ा शोक फैला और चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि लोगों ने इसका बदला लेने के लिए लाहौर के सुपरिन्टेण्डेण्ट सैन्डर्स को गोलियों से मार डाला। आजाद इसमें भी पकड़े नहीं गए। बाद को इस घटना का और ब्योरा दिया गया है।

दामोदर सेठ, भूपेन्द्र, सान्याल, रामकृष्ण खत्री आदि—श्री रामकृष्ण खत्री जो जिला बुलडाना, बरार के रहने वाले थे, काशी में पढ़ने आए थे। वे उदासीन साधु थे। आजाद उनको दल में ले आए। नाम गोविन्दप्रकाश था, यह भी एक प्रमुख व्यक्ति थे। श्री रामनाथ पाण्डेय एक छात्र थे, बनारस के लेटरबॉक्स थे। प्रणवेश चटर्जी बनारस में तथा जबलपुर में रहते थे; आजाद को यही दल में लाए थे, किन्तु स्वयं बाद को इकबाली हो गए। श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल स्वनामधन्य श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के छोटे भाई हैं, गिरफ्तारी के समय भी वह एक अच्छे वक्ता और लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। श्री दामोदर स्वरूपजी सेठ उस समय काशी विद्यापीठ में अध्यापक थे। उस समय वे एक दल बना रहे थे। बहुत दिनों तक यह दल अलग काम करता रहा। बड़े दल में यह देर में शामिल हो पाया।

दल का विस्तार—यह दल कलकत्ता से लेकर लाहौर तक इस अर्थ में फैला हुआ था कि इस दल को अन्य क्रान्तिकारी दलों का सहयोग प्राप्त था। जिस Revolutionary (क्रान्तिकारी) पर्चे का पहले उल्लेख किया गया है, यह पेशावर से लेकर रंगून तक बाँटा गया था, कोई भी ऐसा शहर उत्तर भारत में शायद ही बचा हो, जिसमें यह पर्चा न बँटा हो। इससे सरकार को काफी घबराहट हुई थी, क्योंकि वह समझ गई थी कि यह संगठन बहुत दूर तक विस्तृत है, किन्तु दल के लिए धन की आवश्यकता पड़ने लगी। कई कामों में रुपयों की जरूरत थी, रुपए का प्रबन्ध मुश्किल हो रहा था, आपस में चन्दा किया गया, लोगों से चन्दे माँगे गए, किन्तु कहीं से काम के लायक धन न मिला।

रेल डकैती की तैयारी—पहले गाँवों में डकैतियाँ की गईं, किन्तु उनसे कुछ विशेप धन न मिला तब दूसरी योजना बनाई गई। पं० रामप्रसाद बिस्मिल ने इस समय का वर्णन किया है। वह उनकी आत्मकथा में आ गया है।

काकोरी ट्रेन डकैती—मन्मथनाथ ने इसका जो वर्णन लिखा, वह यों है—"काकोरी लखनऊ के जिले में छोटा-सा गाँव है। इसको कोई विशेष महत्त्व न प्राप्त था, न है। किन्तु जिस समय से काकोरी में क्रान्तिकारियों ने ८ डाउन गाड़ी खड़ी करके रेल की थैली को लूट लिया, तबसे यह शब्द समाचार पत्रों में बार-बार आता है।

"किसी कारणवश—शायद इस कारण से कि किसी जहाज पर गुप्त रूप से बड़े परिमाण में कुछ अस्त्र-शस्त्र आए हुए थे और उनको खरीदने के लिए एकदम कई हजार रुपयों की आवश्यकता थी। लोगों ने अपने घरों से जहाँ तक बन पड़ा चोरियाँ आदि कीं; तथा चन्दा भी किया गया, पर खर्च पूरा नहीं पड़ा। तब सोचा गया किसी भी प्रकार धन प्राप्त किया जाए। इसी के अनुसार योजनाएँ बनने लगीं। पहले तो यह निश्चित किया गया कि किसी गाँव में मामूली डाकुओं की तरह डाका डाला जाए। शायद एक डकैती डाली गई, किन्तु उससे कुछ धन नहीं मिला। तब लाचार होकर पं० रामप्रसाद जी ने यह निश्चित किया कि रेल के थैले लूट लिए जाएं। हमें खूब याद है श्री अशफाकउल्ला खाँ उसके विरुद्ध थे। क्योंकि वह समझते थे कि ऐसा करना सरकार को चुनौती देना होगा तथा यह बात स्पष्ट प्रकट हो जायगी कि इस प्रान्त में क्रान्तिकारी आन्दोलन केवल जबानी जमाखर्च तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत वह सक्रिय रूप से सरकार की जड़ें खोदने में लगा हुआ है। कुछ लोगों को तो यह कार्य इसीलिए पसन्द आया कि यह सरकार को चुनौती है, जिसमें से मैं भी एक था। अन्त में उग्र मत वाले लोगों की सम्मति मानी गई और यह निश्चय किया गया कि रेल के थैले लूट लिए जाएँ।

"पहले यह निश्चित नहीं हो रहा था कि इस योजना को किस प्रकार कार्यरूप में परिणत किया जाए। एक योजना यह भी थी और बहुत अंश तक हम उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए प्रस्तुत भी हो गए थे कि गाड़ी जब किसी स्टेशन पर खड़ी हो जाए तो उससे रेल के थैले लूट लिए जाएँ। परन्तु

बाद को विचार करने पर यह योजना कुछ बुद्धिमानी की नहीं जँची। अतः उसका विचार त्याग दिया गया और यह निश्चित किया कि चलती हुई गाड़ी को जंजीर खींच कर रोक लिया जाए और फिर रेल के थैले लूट लिए जाएँ। इस योजना के अनुसार अन्त तक कार्य हुआ।

"इस काम में दस व्यक्ति सम्मिलित किए गए, जिसमें श्री राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी, श्री रामप्रसाद विस्मिल रोशनसिंह, तथा श्री अशफाकउल्ला फाँसी पा गए। एक साधारण मृत्यु से मारे गए। एक बनवारी लाल मुखबिर हो गया। शचीन्द्र नाथ बख्शी, मुकुन्दीलाल, केशव तथा मुझे इस सिलसिले में सजा भुगतनी पड़ी। चन्द्रशेखर आजाद छः वर्ष बाद सन्मुख युद्ध में मारे गए।

"हम लोग ९ तारीख को संध्या समय शाहजहाँपुर से हथियार छेनी, घन, हथौड़े आदि से लैस होकर गाड़ी पर सवार हो गए। इस गाड़ी में रेल के खजाने के अतिरिक्त कोई और खजाना भी जा रहा था, जिसके साथ बन्दूकों का पहरा था। इसके अतिरिक्त गाड़ी में कई बन्दूकें और थीं। कुछ पलटनियाँ गोरे भी हथियार सहित मौजूद थे। जिसमें से शायद एक मेजर का भी ऊँचे क्लास में था। हमारे स्काउट ने जब यह खबर दी, तब हम असमंजस में पड़ गए। श्री अशफाकउल्ला ने शायद फिर से अपना निषेध लोगों के मस्तिष्क में प्रविष्ट कराने की चेष्टा की, किन्तु हम लोग तो तुल चुके थे। हम इतने अग्रसर हो चुके थे कि हमारा लौटना कठिन था और हम लौटना चाहते भी नहीं थे। एक महत्त्वपूर्ण बात थी कि यों तो अशफाक मना कर रहे थे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनकी एक न चली और ये लोग इस काम को करने पर ही तुले हैं तो उन्होंने कमर कस ली। उनकी सुन्दर बड़ी-बड़ी आँखें तेज से दीप्त हो उठीं और वह अपना पार्ट अदा करने के लिए अत्यन्त साहस तथा हर्ष-पूर्वक प्रस्तुत हो गए। उनका निषेध किसी डर या भय से प्रेरित न था, प्रत्युत वह बुद्धिमत्ता की आवाज थी। बाद के इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि अशफाक सही थे और हम सब गलती पर थे। यह बात तो निश्चित है कि यदि हम इस कार्य को न करते तो इतनी जल्दी हमारे दल के पाँव न उखड़ जाते।

"अस्तु हममें से तीन व्यक्ति सेकेण्ड क्लास के कमरे में सवार हुए। सर्व श्री अशफाकउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा शचीन्द्र बख्शी इस काम के लिए चुने

गए। इस टुकड़ी का नेतृत्व अशफाक कर रहे थे। शेष चार व्यक्ति तीसरे दर्जे के डिब्बे में सवार थे। पं० रामप्रसाद इस सारे कार्य का नेतृत्व कर रहे थे, जैसा कि वे हमेशा ऐसे अवसरों पर किया करते थे। हम लोगों के साथ चार नए मौजर पिस्तौल थे। इसके अतिरिक्त अन्य कई छोटे-मोटे हथियार थे। हर मौजर पिस्तौल के साथ पचास से अधिक कारतूस थे। इससे स्पष्ट है कि हम लोग पूरी लड़ाई की आशा तथा तैयारी करके गए थे।"

"जब गाड़ी हमें लेकर चली, तब एक निर्दिष्ट स्थान पर आकर सेकण्ड क्लास में बैठे लोगों ने खतरे की जंजीर बड़े जोर से खींच दी। जंजीर खींचना था कि गाड़ी खड़ी हो गई और मुसाफिर लोग जंगले से मुंह निकाल-निकाल कर बाहर झाँकने लगे कि क्या मामला है। गार्ड भी उतर कर उस कमरे की ओर जाने लगा, जिसमें जंजीर खींची गई थी। उस समय दिन की रोशनी कुछ-कुछ बाकी थी। गाड़ी खड़ी होते ही हम लोग अपने-अपने डिब्बों से उतर पड़े और कुछ क्षणों में ही कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। गार्ड साहब को पिस्तौल दिखा कर जमीन पर लेटने के लिए आज्ञा दी गई। वे औंधे मुंह जमीन पर लेट गए। औरों ने भी अपने-अपने हथियार निकाल लिए। चार साथी, दो गाड़ी के एक ओर और दो दूसरी ओर पहरे पर खड़े कर दिए गए। इनके पास मौजर पिस्तौलें थीं, जिसकी मार १००० गज तक होती है और जिसमें दस गोलियाँ एक साथ भरी जाती हैं। शेष व्यक्ति रेल के थैले वाले डिब्बे में घुस गए और धक्का देकर खजाने के सन्दूक को डिब्बे से नीचे गिरा दिया। इसके बाद समस्या यह उपस्थित हुई कि सन्दूक खोला कैसे जाए। यदि गार्ड या किसी अन्य के पास चाबी होती तो वह मिल जाती और खोलने की समस्या बहुत शीघ्र हल हो जाती, किन्तु गाड़ी में किसी के पास चाबी नहीं रहती। तरीका यह है कि प्रत्येक स्टेशन मास्टर अपना थैला लाकर उस सन्दूक में डाल जाता है। यदि कोई उसमें थैला डालना चाहे तो डाल सकता है, किन्तु कोई उसमें से कुछ निकाल नहीं सकता। उसकी बनावट ही ऐसी होती है।

"लोगों ने घन आदि निकालकर उस सन्दूक को तोड़ना प्रारम्भ किया। सन्दूक में मामूली-सा सूराख तो हुआ, किन्तु, मामला कुछ अधिक बनता हुआ नहीं दिखाई पड़ा। अशफाक पहरा देने वाले चार व्यक्तियों में से एक थे

और जब उन्होंने यह दशा देखी तब मौजर पिस्तौल मेरे हाथ में दे दी और घन पर जुट गए। हम लोगों में वह सबसे बलिष्ठ थ, इसलिए थोड़ी देर में सूराख बड़ा हो गया और थैले निकाल कर चादर में बाँध लिए गए। इसी समय लखनऊ की ओर से कोई मेल या एक्सप्रेस आ रहा था। वह गाड़ी बड़ी जोर से गरजती हुई चली आ रही थी। हमारे दिल धड़क रहे थे, हम सोचते थे कि कहीं यह गाड़ी खड़ी हो गई और इसमें कुछ लोग हथियारबन्द निकल आए तो हम में से दो चार अवश्य ढेर हो जाएँगे। खैर, गाड़ी किसी तरह निकल गई। जब गाड़ी हमारे निकट से जा रही थी तो हम लोगों ने बन्दूकें जरा छिपा लीं और जब गाड़ी चली गई, तो हम लोगों ने फिर अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। हम लोगों ने बहुत शीघ्र शायद १० मिनट से भी कम समय में, यह सब काम समाप्त कर दिए और थैलों को लेकर झाड़ियों की ओर चल दिए।

"पाठकों को यह उत्सुकता होगी कि हमारी गाड़ी में जो गोरे और हिन्दुस्तानी थे वे उस समय क्या कर रहे थे, जब हम डराने के लिए गाड़ी के दोनों ओर दनादन गोलियाँ छोड़ते जाते थे। यह तो स्पष्ट ही है कि उन लोगों ने हथियार का प्रयोग नहीं किया। किन्तु बाद में हमें विश्वस्त सूत्र से पता लगा कि हथियारबंद हिन्दुस्तानी जहाँ के तहाँ बैठे रहे, किन्तु गोरों ने, जिसमें एक मेजर साहब भी थे अपने कमरे का नक्काशी वाला जंगला उठा दिया, और कमरे को तब तक खोलने से इन्कार किया जब तक कि गाड़ी लखनऊ स्टेशन नहीं पहुँची।

"हम लोग मुसाफिरों को बराबर दहाड़-दहाड़ कर चेतावनी दे रहे थे कि यदि वे उतरे तो उनके लिए खतरे की बात है। इसके अतिरिक्त गोलियाँ कुछ हिसाब से बराबर रेल के दोनों ओर उसकी समानान्तर रेखा में चलाई जा रही थीं। इस पर भी एक आदमी उतरा और वह मारा गया। हमें अन्त तक यह ज्ञात नहीं हुआ कि इस सिलसिले में कोई मरा भी है। दूसरे दिन जब हमने अंग्रेजी आई० डी० टी० देखा तो उसमें पाया कि न मालूम कितने अंग्रेज और हिन्दुस्तानी मारे गए। बाद में पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि केवल एक मुसाफिर मरा था।

"हम लोग थैले लेकर लखनऊ के चौक की ओर रवाना हुए। रास्ते में हम

लोगों ने थैलों को खोल कर नोट तथा रुपयों को निकाल लिया और चमड़ों के थैलों को स्थान-स्थान पर बरसाती पानी में डाल दिया। इसके बाद हम लोग बड़ी होशियारी से लखनऊ में दाखिल हुए। और जहाँ जिसका स्थान था वहाँ अपने-अपने स्थान पर दूसरे या तीसरे दिन चले गए।"

संक्षेप में यही काकोरी की घटना है।

काकोरी की गिरफ्तारी—यद्यपि दस आदमी इस ट्रेन-डकैती में थे, किन्तु जब गिरफ्तारियाँ हुई, तो ४० से भी अधिक व्यक्ति गिरफ्तार हुए।

जिन व्यक्तियों के नाम पहले आ चुके हैं, उनके अतिरिक्त श्री गोविन्द चरण कार भी गिरफ्तार हुए। यह एक पुराने क्रान्तिकारी थे और इन्हें पबना गोली कांड में लड़ाई के जमाने में ७ सात साल की सजा हुई थी। इसी सिलसिले में अंडमन हो आए। इसके बाद वह बंगाल में रहे, फिर उत्तर प्रदेश में आए। यह बेचारे इस प्रान्त में कुछ विशेष कर भी नहीं पाए थे कि २६ सितम्बर को गिरफ्तार कर लिए गए।

जिस समय २६ सितम्बर को गिरफ्तारियाँ हुई थीं, उस समय कई ऐसे आदमी पकड़े गए थे जिनका इस आन्दोलन से कोई खास सम्बन्ध नहीं था। वे धीरे-धीरे छोड़ दिए गए।

सरकारी गवाह—शाहजहाँपुर के बनारसी लाल, इन्दुभूषण मित्र गिरफ्तार होते ही मुखबिर हो गए। चूँकि काकोरी की घटना लखनऊ जिले में हुई थी इसलिए मुकदमा लखनऊ में ही हुआ। बनवारी लाल इकबाली गवाह बन गया। कानपुर के गोपीमोहन सरकारी गवाह हो गए, इस प्रकार पुलिस को करीब-करीब सब प्रमुख बातों का पता लग गया। केवल बनारस का कोई मुखबिर न मिला, इससे बनारस की सब बातें न खुल पाईं।

छोड़े जाने के बाद २४ अभियुक्त बचे, जिसमें अशफाकउल्ला, शचीन्द्र बख्शी तथा चन्द्रशेखर आजाद गिरफ्तार न किए जा सके। दामोदरस्वरूप सेठजी भी गिरफ्तार होकर भयङ्कर बीमारी के कारण छोड़ दिए गए। मथुरा और आगरा के शिवचरणलाल पर से मुकद्दमा रहस्यमय कारणों से उठा लिया गया। उरई तथा कानपुर के वीरभद्र तिवारी भी इसी प्रकार अज्ञात कारणों से छोड़ दिए गए। दफा १२१ (सम्राट के विरुद्ध युद्ध घोषणा), १२० (अराजनै-

तिक साजिश), ३९६ (कत्ल-डकैती), ३०२ (कत्ल) इन सब दफाओं के अनुसार मुकदमा दायर किया गया। सरकार की ओर से पं० जगतनारायण मुल्ला इस मुकदमे की पैरवी कर रहे थे, उनको रोज ५००) मिलते थे। अभियुक्तों की ओर से उत्तर प्रदेश के नेता पं० गोविन्दवल्लभ पंत, बहादुरजी, चन्द्रभान गुप्त, मोहनलाल सक्सेना आदि कई विख्यात वकील थे।

दस लाख खर्च—सरकार ने इस मुकदमे में दस लाख रुपयों से अधिक खर्च किया। बाद को दो फरार अर्थात् श्री अशफाकउल्ला और बख्शी गिरफ्तार हुए, किन्तु उनका मुकदमा अलग चलाया गया।

सजाएँ—१८ महीना मुकदमा चलने के बाद पं० रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी और रोशनसिंह को फाँसी की सजा हुई। श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल को कालेपानी की सजा हुई। मन्मथनाथ गुप्त को १४ साल की सजा हुई। योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकुन्दी लाल जी, गोविन्दचरण कार, राजकुमारसिंह रामकृष्ण खत्री को दस-दस साल की सजा हुई। विष्णुशरण दुब्लिश और सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य को सात-सात साल की सजा हुई। भूपेन्द्रनाथ सान्याल, रामदुलारे द्विवेदी और प्रेमकृष्ण खन्ना को पाँच-पाँच साल की सजा हुई। इसके अतिरिक्त प्रणवेश चटर्जी को चार साल की सजा हुई। यद्यपि बनवारीलाल इकबाली गवाह बन गया था, फिर भी उसको पाँच साल की सजा हुई। इसके अतिरिक्त जो पूरक मुकदमा चला, उसमें अशफाकउल्ला को फाँसी हुई और बख्शी को कालापानी। बाद को सरकार ने कुछ व्यक्तियों के खिलाफ अपील की कि उनकी सजा बढ़ाई जाए। इन छः में से पाँच की सजा बढ़ा दी गई यानी योगेशचन्द्र चटर्जी, गोविन्दचरण कार, मुकुन्दीलाल, सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, विष्णुशरण दुब्लिश की सजा बढ़ा दी गई। जिनकी दस साल की थी उनकी सजा काला पानी कर दी गई और जिनकी सात की थी उनकी दस कर दी गई। मन्मथनाथ की सजा जज ने यह कह कर नहीं बढ़ाई कि उनकी उम्र बहुत कम है।

फाँसी के तख्ते पर—जनता की ओर से फाँसी को रद करने के लिए एक बहुत विराट आन्दोलन खड़ा कर दिया गया। केन्द्रीय एसेम्बली के मेम्बरों ने एक दरखास्त पर दस्तखत करके बड़े लाट साहब के सामने पेश किया। दो दफे फाँसी की तारीखें टलवाई गईं। इससे लोगों ने समझा कि शायद अन्त

तक इन लोगों को फाँसियाँ नहीं हों। ब्रिटिश साम्राज्यवाद, जो इन लोगों के खून का भूखा था, वह भला कैसे अपनी प्यास को बिना बुझाए रह सकता था। फाँसियाँ होकर ही रहीं।

राजेन्द्र लाहिड़ी को फाँसी—काकोरी के शहीदों में राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को सबसे पहले फाँसी हुई, यानी औरों से दो दिन पहले ही १७ दिसम्बर १९२७ को गोंडा जेल में फाँसी दी गई। १४ दिसम्बर को उन्होंने एक पत्र लिखा था, वह पत्र इस प्रकार था—

"कल मैंने सुना कि प्रीवी कौंसिल ने मेरी अपील अस्वीकार कर दी। आप लोगों ने हम लोगों की प्राण रक्षा के लिए बहुत कुछ किया, कुछ उठा नहीं रखा, किन्तु मालूम होता है कि देश की बलिवेदी को हमारे रक्त की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! इसलिए मनुष्य मृत्यु से दुःख और भय क्यों माने? वह तो नितांत स्वाभाविक अवस्था है, उतनी ही स्वाभाविक जितना प्रातःकालीन सूर्य का उदय होना। यदि यह सच है कि इतिहास पलटा खाया करता है तो मैं समझता हूँ कि हमारी मृत्यु व्यर्थ न जाएगी। सबको मेरा नमस्कार—अन्तिम नमस्कार!

आपका—राजेन्द्र

पं० रामप्रसाद को फाँसी—पं० रामप्रसाद को गोरखपुर जेल में १९ दिसम्बर को फाँसी हुई। फाँसी के पहले वाली शाम को (१८ दिसम्बर) जब उन्हें दूध पीने के लिए दिया गया, तो उन्होंने यह कह कर इन्कार कर दिया कि अब तो माता का दूध पीऊँगा। प्रातःकाल नित्यकर्म, संध्यावन्दन आदि से निवृत हो माता को एक पत्र लिखा, जिसमें देशवासियों के नाम सन्देश भेजा और फिर फाँसी की प्रतीक्षा में बैठ गए। जब फाँसी के तख्ते पर ले जाने वाले आए तो वह 'वन्दे मातरम्' और 'भारत माता की जय' कहते हुए तुरंत उठ कर चल दिए। चलते समय उन्होंने यह कहा—

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा हो जिक्र या, तेरी ही जुस्तजू रहे॥

फाँसी के दरवाजे पर पहुँच कर उन्होंने कहा—"I wish the downfall of British Empire (मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूँ) इसके बाद तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना के बाद विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि......आदि मन्त्रों का जाप करते हुए गोरखपुर के जेल में वह फंदे में झूल गए।

फाँसी के वक्त जेल के चारों ओर बहुत कड़ा पहरा था। गोरखपुर की जनता ने उनके शव को लेकर आदर के साथ शहर में घुमाया। बाजार में अर्थी पर इत्र तथा फूल बरसाए गए और पैसे लुटाए गए। बड़ी धूम-धाम से उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की गई।

फाँसी के कुछ दिन पहले उन्होंने अपने एक मित्र के पास एक पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था—

"१९ तारीख को जो कुछ होने वाला है, उसके लिए मैं अच्छी तरह तैयार हूँ। यह है ही क्या? केवल शरीर का बदलना मात्र है। मुझे विश्वास है कि मेरी आत्मा मातृभूमि तथा उसकी दीन सन्तति के लिए नए उत्साह और ओज के साथ काम करने के लिए शीघ्र ही फिर लौट आएगी।

यदि देश हित मरना पड़े मुझको सहस्रों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी।
हे ईश, भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो॥
मरते 'बिस्मिल' रोशन लहरी अशफाक अत्याचार से,
होंगे पैदा सैकड़ों उनके रुधिर की धार से—
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का,
तब नाश होगा सर्वदा दुःख शोक के लवलेश का॥

"सबसे मेरा नमस्ते कहिए।"

नीचे लिखी हुई कविता पं० जी ने जेल ही में बनाई थी और सैयद ऐनुद्दीन की अनुमति लेकर लखनऊ के 'अवध' अखबार में छपाई थी। इस कविता में भी एक शहीद हृदय का पता लगता है। इसलिए उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या?
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या?

काश अपनी जिन्दगी में हम ये मंजर देखते,
यूँ सरे तुरबत कोई महशर खराम आया तो क्या ?
मिट गई जुमला उमीदें, जाता रहा सारा ख्याल,
उस घड़ी फिर नामवर लेकर पयाम आया तो क्या ?
ऐ दिले नाकाम मिट जा, अब तो कूचे यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया, तो क्या ?
आखिरी शब दीद के काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प ।
सुबह दम गर कोई भी बालाए बाम आया तो क्या ?

बिस्मिल की आत्मकथा तीस साल बाद फिर से प्रकाशित हुई है । वह एक अमर पुस्तक है । बिस्मिल अपनी इस आत्मकथा को फाँसी के तीन दिन पहले तक लिखते रहे ।

अशफाकउल्ला को फाँसी—अशफाकउल्ला को फैजाबाद जिले में १९ दिसम्बर को फाँसी हुई । वह बहुत खुशी के साथ, कुरान-शरीफ का बस्ता कंधे से टाँगे हाजियों की भाँति 'लवेक' कहते और कलमा पढ़ते, फाँसी के तख्ते के पास गए । तख्ते को उन्होंने बोसा (चुम्बन) दिया और उपस्थित जनता से कहा—"मेरे हाथ इन्सानी खून से कभी नहीं रंगे, मेरे ऊपर जो इल्जाम लगाया गया, वह गलत है, खुदा के यहाँ मेरा इन्साफ होगा ।" इसके बाद उनके गले में फंदा पड़ा और खुदा का नाम लेते हुए वह इस दुनिया से कूच कर गए। उनके रिश्तेदार उनकी लाश शाहजहाँपुर ले जाना चाहते थे । इसके लिए उन्होंने बहुत आरज़-मिन्नत की, तब कहीं इजाजत मिली । शाहजहाँपुर ले जाते समय जब इनकी लाश लखनऊ स्टेशन पर उतारी गई, तब कुछ लोगों को देखने का मौका मिला । चेहरे पर १० घंटे के बाद भी बड़ी शान्ति और मधुरता थी । बस केवल आँखों के नीचे कुछ पीलापन था । बाकी चेहरा तो ऐसा सजीव था कि मालूम होता था कि अभी-अभी नींद आई है । यह नींद अनन्त थी । उन्होंने मरने के पहिले ये शेर बनाए थे—

तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से ।
चल दिए सुए अदम जिन्दाने फैजाबाद से ।।

अशफाक कवि भी थे ।

रोशनसिंह को फांसी—किसी को इन्हें फाँसी होने का अन्देशा नहीं था, इसलिए जब जज ने इन्हें फाँसी की सजा दी, तो इनका हिचकिचाना स्वाभाविक ही होता, परन्तु फाँसी की सजा सुनकर भी उन्होंने जिस धैर्य, साहस और शौर्य का प्रदर्शन किया, उसे देखकर सभी दंग रह गए। फाँसी के लगभग छः दिन पहले १३ दिसम्बर को उन्होंने अपने एक मित्र के नाम यह पत्र लिखा था—

'इस सप्ताह के भीतर ही फाँसी होगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आप को मोहब्बत का बदला दे। आप मेरे लिए हरगिज रंज न करें। मेरी मौत खुशी का बाइस होगी। दुनियाँ में पैदा होकर मरना जरूर है। दुनियाँ में बद-फेल करके मनुष्य अपने को बदनाम न करे और मरते वक्त ईश्वर की याद रहे यही दो बातें होनी चाहिए और ईश्वर की कृपा से मेरे साथ ये दोनों बातें हैं। इसलिए मेरी मौत किसी प्रकार अफसोस के लायक नहीं है। दो साल से मैं बाल-बच्चों से अलग हूँ। इस बीच ईश्वर भजन का खूब मौका मिला। इससे मेरा मोह छूट गया और कोई वासना बाकी न रही। मेरा पूरा विश्वास है कि दुनियाँ की कष्ट-भरी यात्रा समाप्त करके मैं अब आराम की जिन्दगी के लिए जा रहा हूँ। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो आदमी धर्मयुद्ध में प्राण देता है, उसकी वही गति होती है जो जंगल में रह कर तपस्या करने वालों की।

जिन्दगी जिन्दा दिली को जान ऐ रोशन,
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते है।

आखिरी नमस्ते। आपका 'रोशन'

फाँसी के दिन श्री रोशनसिंह पहिले ही से तैयार बैठे थे। ज्योंही इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट जेल के जेलर का बुलावा आया, आप गीता हाथ में लिए मुसकुराते हुए चल पड़े। फाँसी पर चढ़ते ही उन्होंने वन्देमातरम् का नाद किया और 'ओ३म्' का स्मरण करते हुए लटक गए। जेल के बाहर उनका शव लेने के लिए आदमियों की बहुत बड़ी भीड़ एकत्र थी। दाह-संस्कार करने के लिए भीड़ के लोगों ने श्री रोशनसिंह का शव ले लिया। वे जलूस के साथ उस शव को ले जाना चाहते थे, किन्तु अधिकारियों ने जलूस की इजाजत नहीं दी। निराश हो लाश वैसे ही ले जाई गई और आर्यसमाजी विधि से श्मशान भूमि में उसका दाह-संस्कार हुआ।

यहाँ पर हम एक बात की ओर पाठकों की दृष्टि आकर्षित कर आगे बढ़ जाना चाहते थे कि ये शहीद बड़े धार्मिक थे, इसमें से हरेक के पत्र से धार्मिक भाव टपकते हैं।

१८

काकोरी के समसामयिक षड्यन्त्र

एक तरह से काकोरी षड्यन्त्र असहयोग के बाद के उत्तर भारत के सब षड्यन्त्रों का पिता है। क्योंकि इसी षड्यन्त्र के लोगों ने बिहार, पंजाब, मध्य प्रांत तथा बम्बई तक में अपनी शाखाएँ स्थापित की थीं, किन्तु हम इन षड्यन्त्रों का वर्णन करने से पहिले एक दूसरे प्रकार के षड्यन्त्र का वर्णन करेंगे जो इसी दौरान में हुआ।

एम० एन० राय तथा कानपुर साम्यवादी षड्यन्त्र—पहिले ही वर्णन आ चुका है कि नरेन्द्र भट्टाचार्य नामक एक क्रान्तिकारी विदेश से अस्त्र-शस्त्र भेजने के लिए देश के बाहर भेजे गए थे। इन्होंने कुछ सफलता भी प्राप्त की। किन्तु जब भारतवर्ष में जोरों से धर-पकड़ होने लगी तथा यह भी खुल गया कि विदेशों से अस्त्र मँगाने की कोशिश की जा रही है, तब नरेन्द्र भट्टाचार्य विशेष कुछ किए बिना अमेरिका चले गए। उन्होंने वहाँ के पत्रों में भारतवर्ष के सम्बन्ध में लिखना शुरू किया। अमेरिका की पूंजीवादी सरकार चौकन्नी हो गई और उसने उन पर मुकद्दमा चलाना चाहा, किन्तु वे जमानत पर छोड़ दिए गए। इसी हालत में वे मेक्सिको चले गए और वहाँ पर भी काम करने लगे। अब इनके विचार साम्यवादी हो चले थे। उन्होंने १९१७ में मेक्सिको में साम्यवादी दल का संगठन किया और उसके मन्त्री भी बन गए। मेक्सिको में बोरोडिन नामक सुप्रसिद्ध रूसी साम्यवादी से भेंट हुई। इन्हीं के जरिए से यह जर्मनी होते हुए रूस पहुँचे, और वहाँ लेनिन के नेतृत्व में काम करने लगे। अब वे लेनिन के साथ मिल कर सारी दुनिया में, विशेषकर प्राच्य देशों में, साम्यवाद का प्रचार करने लगे। १९२० में उनके कुछ हिजरत करने वाले भारतीय नवयुवक मिले। इनमें शौकत उसमानी, मुजफ्फरअहमद तथा फज्लइलाही ने हिन्दुस्तान लौटकर साम्य-वाद प्रचार में खूब काम किया। बाद को यहाँ सब काम षड्तन्त्र के रूप में चला। इस षड्यन्त्र में श्रीयुत अमृत डाँगे, शौकत उसमानी, मुजफ्फरअहमद तथा

नलिनी बाबू पर मुकद्दमा चला। एम० एन० राय, जो नरेन्द्र भट्टाचार्य का नया नाम था, न पकड़े जा सके। पकड़े हुए लोगों पर यह अभियोग लगाया गया कि वे ब्रिटिश सरकार को उलट देने का षड्यन्त्र करते रहे हैं और उनका नियंत्रण योरोप से एम० एन० राय करते रहे हैं। इन लोगों को चार-चार साल की सजा हुई।

भारत में यह अपने ढंग का पहला षड्यन्त्र था, किन्तु यह कहना कि भारत में केवल यही चार साम्यवादी थे, गलत होगा। यह एक मजेदार बात है कि भारत में साम्यवाद का प्रवर्तक एक भूतपूर्व-क्रान्तिकारी है। दुःख है कि बाद के जीवन में राय अजीब मतवादों में फँस गए। चीन में भी उनका कार्य संदिग्ध रहा।

बब्बर अकाली आन्दोलन—बब्बर अकाली आन्दोलन केवल एक षड्यन्त्र नहीं था, क्योंकि अब्बर अकाली आन्दोलन एक तरह से पंजाब की सिक्ख जनता का एकाएक उमड़ कर फूट पड़ना था। दूसरे जितने आन्दोलनों का जिक्र पहले आया है उन सब में मध्यम श्रेणी की प्रधानता थी, बल्कि उन्हीं का यह आन्दोलन था, किन्तु यह आन्दोलन उनसे विस्तृत था, क्योंकि यह एक किसान आन्दोलन था।

किशनसिंह गड़गज्ज—इस आन्दोलन के नेता किशनसिंह गड़गज्ज नामक एक व्यक्ति थे। यह जालन्धर के रहने वाले थे। पहिले सरकार की फौजों में यहाँ तक कि रिसाले में आप हवलदार तक हो गए थे, किन्तु और सिपाहियों की भाँति वे बिल्कुल अँधेरे में ही नहीं रहते थे, बल्कि अखबार वगैरह पढ़ते थे। जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड तथा मार्शल लॉ आदि के कारण आप पहिले ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद से घृणा करने लगे थे, किन्तु अभी सक्रिय रूप से कोई भाग न लिया था। २० फरवरी १९२१ में ननकाना में जो दुर्घटना हुई उससे आप इतने खिन्न हुए कि आपने अपनी नौकरी पर लात मार दी, और अकाली दल में शामिल हो गए। किन्तु आपको पुलिस के हाथ से मार खाना अच्छा नहीं लगा, और आप गुप्त दल का संगठन करने लगे। आपने गुप्त रूप से गाँव-गाँव में जाकर सैकड़ों व्याख्यान दिए। इस काम में वे अकेले नहीं थे, क्योंकि होशियारपुर जिले में करमसिंह और उदयसिंह दो युवक इसी प्रकार का संगठन

बना रहे थे। किशनसिंह के दल का नाम चक्रवर्ती दल था, किन्तु जब यह दोनों दल सम्मिलित हो गए तो उसका नाम बब्बर अकाली पड़ा। बब्बर अकाली नाम से एक अखबार भी निकाला जाने लगा, जिसके सम्पादक करमसिंह हुए धीरे-धीरे बम, तमंचा, बन्दूक आदि का संग्रह होने से चारों तरफ दल की शाखाएँ खुल गई। इनकी योजना यह थी कि सेनाओं को भड़का कर गदर किया जाए। इन लोगों ने देख लिया था कि पंजाब तथा भारतवर्ष का इतना बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन केवल विभीषणों की वजह से नष्ट हुआ था, इसलिए शुरू में इन्होंने तय कर लिया कि किसी भी हालत में ऐसे लोगों को नहीं छोड़ना है।

इन लोगों के कार्यक्रम में व्याख्यान देना एक खास चीज थी, किन्तु व्याख्यान देने के बाद ही ये लापता हो जाते थे।

१४ फरवरी १९२३ को इन लोगों ने हैयतपुर के दीवान को मार डाला। २७ मार्च १९२३ को इन्होंने बैबलपुर के हजारासिंह को मार डाला, इसके अतिरिक्त इन्होंने दूसरे अनेक आदमियों को भेदिया होने के अपराध में नाक-कान काटकर या लूटकर छोड़ दिया।

धन्नासिंह—पहिले ही मैं कह चुका हूं कि यह आन्दोलन महज मध्यम वर्ग के शिक्षितों का आन्दोलन नहीं था, बल्कि जनता के स्वतःस्फुरित विद्रोह का प्रकाश था। धन्नासिंह और बन्तासिंह ने बिशनसिंह नाम के व्यक्ति को भेदिया होने के कारण मार डाला। इसके बाद उन्होंने ११, १२ मार्च को पुलिस के भेदिए नम्बरदार बूटा को मार डाला। फिर १९ मार्च को इन्होंने लाभसिंह को मारा। इसी तरह बहुत से भेदियों को इन्होंने मारा।

बोमेली युद्ध—पुलिस अब चौकन्नी हो गई थी, और इनके पीछे-पीछे फिर रही थी। एक दिन करमसिंह, उदयसिंह, बिशनसिंह, आदि व्यक्ति बोमेली गाँव के पास से जा रहे थे, इतने में किसी ने उनकी खबर पुलिस को कर दी। दोनों तरफ से ये लोग घेर लिए गए। ये गुरुद्वारा में आश्रय लेना चाहते थे, किन्तु दोनों तरफ से गोली चलने लगी। इसलिए वे बढ़ते तो किधर आगे बढ़ते। उदयसिंह और महेन्द्रसिंह वहीं शहीद हो गए। करमसिंह भागकर पानी में खड़े होकर शत्रुओं पर गोली चलाने लगे, किन्तु एक आदमी इतने आदमियों के विरुद्ध कब तक लड़ता, वे भी वहीं शहीद हो गए। इसी तरह बिशनसिंह भी मारे गए।

१ सितम्बर १९२३ की यह घटना है, किन्तु इस हत्याकाण्ड से बब्बर अकाली आन्दोलन पर चोट पहुँचने के बजाय और ताकत पहुँची, बहादुर सिक्ख धड़ाधड़ इस दल में भर्ती होने लगे।

धन्नासिंह कई घटनाएँ कर चुके थे, इसलिए पुलिस बराबर इनकी तलाश में फिर रही थी। २५ अक्तूबर १९२६ को धन्नासिंह ज्वालासिंह नामक एक विश्वासघातक के कहने में आ गए। इस व्यक्ति ने इनको ले जाकर एक ऐसी जगह में रख दिया जहाँ पुलिस ने उनको घेर लिया। जब धन्नासिंह को इसका पता लगा तो उन्होंने अपना तमंचा निकालना चाहा, किन्तु इससे पहले ही कि वह निकाल पाते वह गिरफ्तार कर लिए गए। धन्नासिंह के कमर में एक बम छिपा था, उन्होंने गिरफ्तारी की हालत में ही एक ऐसा झटका मारा कि बम फट गया। वे स्वयं तो उड़ ही गए, साथ-साथ पाँच पुलिस वालों को भी लेते गए, जिनमें से एक मिस्टर हार्टन अंग्रेज थे। इसी प्रकार कई, घटनाएँ हुईं जिसमें कई पुलिस वाले मारे गए।

बब्बर अकाली मुकदमा—बाद को किशनसिंह गड़गज्ज आदि पकड़े गए। सब मिलाकर ९१ आदमी गिरफ्तार हुए, जिनमें से तीन जेल ही में मर गए। बाकी ८८ अभियुक्तों में से ५४ को सजा हुई, जिनमें पाँच को फाँसी, १२ को कालापानी तथा २८ को ७ साल से लेकर ३ माह तक की सजा हुई। ठीक होली के दिन २७ फरवरी १९२६ को इन व्यक्तियों को फाँसी की सजा हुई। इन ६ व्यक्तियों के नाम ये हैं। (१) धर्मसिंह (२) किशनसिंह गड़गज्ज (३) संतासिंह (४) नन्दसिंह (५) दलीपसिंह (६) करमसिंह।

देवघर षड्यन्त्र—देवघर षड्यन्त्र काकोरी का एक शाखा षड्यन्त्र है। इसके कई प्रमुख अभियुक्त उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। वीरेन्द्र तथा सुरेन्द्र भट्टाचार्य वहीं के रहने वाले थे। ये लोग देवघर में तेजेश के साथ होटल में रहते थे। ३० अक्तूबर १९२७ को इनके कमरे की तलाशी हुई थी, इस तलाशी में दो मौजर पिस्तौलें, किताबें, कारतूस और एक गुप्तलिपि में लिखित कापी पकड़ी गई। यह कापी बड़ी खतरनाक थी, क्योंकि इसमें न मालूम कितने लोगों के पते थे। यह कापी कलकत्ते भेजी गई और वहाँ २४ घण्टे के अन्दर पुलिस ने इस कापी को पढ़ लिया, और सारे उत्तर भारत में तलाशियाँ हुईं। इलाहाबाद

में इसी सम्बन्ध में श्री शैलेन्द्र चक्रवर्ती पकड़े गए। इनके पास हथियार तथा हिन्दुस्तान रिपब्लिकन दल की नियमावली मिली। ११ जुलाई १९२८ को इस मुकदमे का फैसला हुआ। इस फैसले में कहा गया कि अभियुक्तों ने सरकार को पलट देने तथा देश में सशस्त्र क्रान्ति का षड्यन्त्र किया, इसमें सबसे अधिक सजा शैलेन्द्र चक्रवर्ती को ही हुई, अर्थात् उन्हें ७ साल की सजा हुई।

मणीन्द्रनाथ बनर्जी—मणीन्द्रनाथ बनर्जी काशी के रहने वाले थे, सान्याल परिवार के संपर्क में आकर वह क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए। जब काकोरी षड्यन्त्र के लोग गिरफ्तार भी न हुए थे, उसी समय यह थोड़ी बहुत काम करने लगे थे। परचा आदि बाँटते तथा अस्त्र इधर से उधर ले जाते थे, किन्तु जब काकोरी षड्यन्त्र समाप्त हो गया, और लोगों को फाँसियाँ हुईं, तो उनके हृदय को बड़ा भारी धक्का लगा। उस समय एक प्रकार से उत्तर प्रदेश में कोई नियमित दल नहीं था। जो नेता बन कर बैठे हुए थे, वे कुछ करना नहीं चाहते थे, इसलिए मणीन्द्र ने उनसे कहा कि इस खून का बदला लेना चाहिए, तो उन नेताओं ने इस पर ध्यान नहीं दिया। मणीन्द्र को कहीं से एक पिस्तौल मिल गई, इसमें केवल दो कारतूसें थीं। अधिक मिलने की आशा भी न थी, किन्तु उसके दिल में तो आग जल रही थी। उसने सुना था कि डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बनर्जी काकोरीवालों को फाँसी दिलाने के लिए जिम्मेदार हैं। यह सज्जन बनारस ही में रहते थे, बस वह उन्हीं की फिराक में घूमने लगे। १९२८ की १३ जनवरी को उन्होंने डी० एस० पी० बनर्जी पर दिन दहाड़े बनारस के गोदौलिया के पास गोली चला दी। उन्होंने एक गोली उसकी बाँह में मारी, निशाना तो उन्होंने छाती पर किया था, किन्तु वह बाँह में लगी। जब उन्होंने देखा कि गोली ठीक जगह पर नहीं लगी, तो वह आगे बढ़े और पिस्तौल की नली को बनर्जी की छाती से लगाकर बची खुची दूसरी गोली भी दाग दी, यह गोली उसके पेडू में लगी। मणीन्द्र फौरन गिरफ्तार कर लिए गए, किन्तु वह पिस्तौल जिससे उन्होंने बनर्जी पर हमला किया था, वह उनके पास नहीं बरामद हो सकी एक साथी उसे लेकर चम्पत हो गया। जिस वक्त उन्होंने गोली मारी थी, उस वक्त उन्होंने यह कह कर मारा था "लो राजेन्द्र लाहिड़ी को फाँसी पर चढ़ाने का पुरस्कार।" काकोरी के शहीदों में राजेन्द्र लाहिड़ी काशी के थे।

पेड़ में गोली लगने पर भी मिस्टर बनर्जी नहीं मरे, और कई दिन बेहोश रहने के बाद होश में आए। मणीन्द्रनाथ बनर्जी को १० साल की सजा हुई, और वह फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में २० जून १९३४ के दिन एक अनशन के फलस्वरूप करुण परिस्थितियों में शहीद हो गए। इसका विवरण क्रान्ति युग के संस्मरण में लिखा है।

मनमाड बम मामला—जिस प्रकार मणीन्द्रनाथ बनर्जी ने स्वतन्त्र रूपसे अपना काम किया था, उसी प्रकार मनमोहन गुप्त ने कुछ युवकों के साथ मिलकर एक स्वतन्त्र षड्यन्त्र रचा। इन लोगों की कोशिश यही थी कि बड़े षड्यन्त्र से इनका सम्बन्ध हो जाए, किन्तु लड़का समझकर सेनापति आजाद ने इन लोगों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि इन लोगों ने अपनी ही डेढ़ ईंट की एक मस्जिद बनाई। एक युवक मार्कण्डेय जो श्याम वगैरह घूमे हुए थे, और एक अच्छे मिस्त्री भी थे, मिल गए थे। जब साइमन कमीशन हिन्दुस्तान के अन्दर आया तो इन लोगों ने मिलकर यह तय किया कि बम्बई के पास किसी जगह पर इसके सदस्यों की गाड़ी को उड़ा दिया जाए। वे इसके लिए धन एकत्रित करने लगे, और कुछ दिनों के भीतर एक डिनामाइट, ७ बम और तमंचे वगैरह इकट्ठे किए। इस घटना का विस्तृत विवरण मनमोहन गुप्त ने लिखा है, मैं उसीसे थोड़ा-सा विवरण देता हूँ। मार्कण्डेय और हरेन्द्र सब सामान लेकर रवाना हो गए, वे लोग अपने निर्धारित स्थान पर पहुँचे भी न थे कि बीच में बम फट गया। लगभग ४० मील के इर्द-गिर्द आवाज सुनाई पड़ी थी, डिब्बों की छतें उड़ गई थीं, तथा गाड़ी पटरी पर से उतर गई थी। धड़ाके वाले डिब्बे में बहुत से लोग जल-भुनकर खाक हो गए। मार्कण्डेय वहीं पर सो गए, हरेन्द्र वहीं पर बेहोश हो गए, फिर जब होश में आए तो उन्होंने बयान दे दिया, और इस प्रकार मनमोहन भी गिरफ्तार हो गए। मुकदमा बहुत दिनों तक चलता रहा, और अंत में दोनों को सात-सात साल की सजाएँ हुई। यह बम मनमाड के पास फटा था, इसलिए मुकदमा नासिक में चला।

दक्षिणेश्वर बम मामला—राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी दूसरे काकोरी वालों की तरह २६ सितम्बर को गिरफ्तार न हो सके थे, क्योंकि वे बम बनाना सीखने के लिए कलकत्ता गए थे। दक्षिणेश्वर नामक एक गाँव में उनका कारखाना था। एक

एक पुलिस ने इनको घेर लिया और ६ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जिनमें एक राजेन्द्र बाबू भी थे। राजेन्द्र बाबू को इस सम्बंध में १० साल की सजा हुई, जो बाद को बदलकर ५ साल की हो गई।

अलीपुर जेल में भूपेन्द्र चटर्जी की हत्या—भूपेन्द्र चटर्जी बंगाल के क्रांतिकारियों को सजा तथा फाँसी दिलाने वालों में से एक थे। वे कलकत्ता पुलिस के एक प्रमुख अफसर थे। इनका काम था जिलों में जा-जाकर नजरबंदों को तथा राजनैतिक कैदियों को डरा धमका तथा बहकाकर मुखबिर बनाने या बयान दिलाने की चेष्टा करना। दक्षिणेश्वर के कैदियों ने इस बात को बहुत दिन पहिले सुन रखा था। वे भी उनके सामने एकाध दफे बुलाए गए। १ दिन भूपेन्द्र चटर्जी जेल के अन्दर आए, और वे नजरबंदों के हाते की ओर जा रहे थे। दक्षिणेश्वर वालों ने जब यह खबर पाई, तो अपने मशहरियों के डंडे आदि लेकर उन पर कूद पड़े, और उन्हें वहीं पर ढेर कर दिया। इस सबधं में बाद को अनंत हरि मित्र और प्रमोद चौधरी, दो व्यक्तियों को फाँसी हुई।

१६

लाहौर-षड्यंत्र और सरदार भगतसिंह

काकोरी-षड्यंत्र में एक प्रमुख अभियोग यह भी था कि काकोरी-ट्रेन-डकैती के बाद एक सभा मेरठ में हुई, जिसमें प्रान्त भर के क्रान्तिकारी नेता ही नहीं बल्कि लाहौर से सरदार भगतसिंह तथा कलकत्ते से यतीन्द्रनाथ दास बुलाए गए थे। काकोरी के उन नेताओं के पास जो पत्र बरामद हुए, उनमें लाहौर तथा कलकत्ता के जिन उपदेशकों का जिक्र था, वह उन्हीं दोनों के सम्बन्ध में था। इस युग के अर्थात् काकोरी के बाद के युग में आजाद के बाद उत्तर भारत के सबसे बड़े नेता तथा प्रमुख व्यक्ति सरदार भगतसिंह थे। इसलिए पहिले हम उन्हीं के जीवन का कुछ थोड़ा-सा वर्णन करेंगे।

सरदार भगतसिंह—सरदार भगतसिंह जिस खानदान में पैदा हुए थे उसके लिए देश-भक्ति या देश के लिए त्याग करना कोई नई बात नहीं थी। पहले के अध्यायों में सरदार अजीतसिंह का नाम आ चुका है। सरदार सुबरनसिंह और सरदार अजीतसिंह इनके चाचा थे, और इनके पिता का नाम सरदार किशनसिंह था। उनका जन्म १३ असौज सम्वत् १९६४ लायलपुर के बंगा नामक गाँव में हुआ। इसी दिन सरदार सुबरनसिंह जेल से छूटे, सरदार किशन सिंह नेपाल से लौट आए तथा सरदार अजीतसिंह के छूटने का समाचार मिला। इन्हीं कारणों से भगतसिंह की दादी ने उनको भागों वाला कहा, जिससे उनका नाम भगतसिंह पड़ा। उन्होंने डी० ए० वी० स्कूल से मैट्रिकुलेशन पास किया, और बाद को नेशनल कालेज में पढ़ने लगे।

कहा जाता है सरदार भगतसिंह का झुकाव लड़कपन से ही उछलकूद तथा सैनिक-क्रीड़ाओं की ओर था। एक दफा मेहता आनन्दकिशोर इनके यहाँ उतरे। मेहताजी ने बड़े प्रेम से भगतसिंह को गोद में बैठा लिया और कंधे पर थपकियाँ देते हुए पूछा—तुम क्या करते हो?

बालक ने अपनी तोतली बोली में उत्तर दिया—मैं खेती करता हूँ।

लालाजी—तुम बेचते क्या हो ?

बालक—मैं बन्दूकें बेचता हूँ।

इसी तरह कहा जाता है कि लड़कपन में सरदार भगतसिंह को तलवार-बंदूक से बड़ा प्रेम था। एक बार अपने पिता के साथ खेत की ओर गए। किसान खेत में हल चला रहे थे। बालक भगतसिंह ने पिता से पूछा, "वे क्या कर रहे हैं ?" पिता ने समझाया "हल से खेत जोत रहे हैं। इसके बाद अनाज बोयेंगे।" इस पर भोले बालक ने कहा—"अनाज तो बहुत पैदा होता है, मगर तलवार-बंदूक सब जगह नहीं होती। ये किसान तलवार-बंदूक की खेती क्यों नहीं करते ?"

स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद जब वे कालेज में प्रविष्ट हुए तो उनका परिचय सुखदेव, भगवतीचरण, यशपाल आदि से हुआ। बाद को जाकर वह इनके प्रमुख साथी होने वाले थे। भगवतीचरण आगरे के निवासी ब्राह्मण थे, इनके पिता इनके लिए एक बड़ी जायदाद छोड़ गए थे। श्रीमती दुर्गादेवी से जो बाद को जाकर एक प्रमुख क्रान्तिकारिणी हुई, बहुत कम उमर में ही उनकी शादी हो चुकी थी। सुखदेव लायलपुर के रहने वाले थे। यशपाल पंजाब के धर्मशाला के पास एक गाँव के रहने वाले थे। उनके परिवार के आर्यसमाजी होने के कारण उनकी सारी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में ही हुई थी।

जयचन्द विद्यालंकार—जिस कालेज में, ये पढ़ते थे, उनमें जयचंद विद्यालंकार अध्यापक थे। यह पहिले ही शचीन्द्रनाथ सान्याल के प्रभाव में आ चुके थे। कहा जाता है उन्होंने इन लोगों की रुचि क्रान्तिकारी आन्दोलन की ओर फेरी, किन्तु वह महाशय स्वयं सिर्फ कुछ ही हद तक जाने के लिए तैयार थे। नतीजा यह हुआ कि यह तो जहाँ के तहाँ रह गए और उनके ये छात्र क्रान्तिकारी आन्दोलन में भारत-प्रसिद्ध हो गए।

शादी के डर से भागे—सरदार भगतसिंह ने एफ० ए० पास कर लिया। उस समय उनके घर वालों ने उन पर विवाह करने के लिए जोर डालना शुरू किया, किन्तु वह विवाह करने के लिए उस समय तैयार न थे। उन्होंने देखा कि बक-बक करना फिजूल है, इसलिए उन्होंने चट बोरिया-बिस्तर उठाया, और घर छोड़कर लापता हो गए। कई दिनों के बाद उनके पिता को एक पत्र मिला,

जिसमें लिखा था कि मैं विवाह नहीं करना चाहता, इसीसे घर छोड़ रहा हूँ।

पत्रकार के रूप में—इसके बाद वह दिल्ली गए, और वहाँ पर उन्होंने कुछ दिन तक 'अर्जुन' के सम्वाददाता का काम किया। इसके बाद कानपुर आए और 'प्रताप' में काम करने लगे। हिन्दी भाषा का आपने अच्छा अध्ययन किया था, और वे अच्छा लिखते भी थे। यहाँ वह बलवंतसिंह नाम से प्रसिद्ध थे, और इसी नाम से लिखते भी थे। कहते हैं वे यहाँ कुछ दिनों तक एक राष्ट्रीय विद्यालय के मास्टर भी थे।

शहीदी जत्थे का स्वागत—इसी समय सरदार किशनसिंहजी को खबर मिली कि भगतसिंह कानपुर में हैं। उन्होंने अपने मित्र को तार दिया कि भगत सिंह को पता लगा कर कह दो कि तुम्हारी माता अत्यंत बीमार हैं। माता की बीमारी का समाचार सुनते ही सरदार भगतसिंह पंजाब के लिए रवाना हो गए, इन दिनों गुरु का बागवाला प्रसिद्ध अकाली आन्दोलन चालू था, सारे पंजाब में एक तहलका-सा मचा हुआ था। गुरु का बाग आन्दोलन एक तरह से धार्मिक आन्दोलन था, किन्तु उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील था। सत्याग्रही अकालियों के जत्थे दूर-दूर से गुरु के बाग की ओर आ रहे थे, परन्तु कुछ 'जी हजूर' इस आन्दोलन के विरुद्ध थे। उन्हें यह आन्दोलन फूटी आंखों न भाता था इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि बंगा ग्राम की ओर से अकाली जत्थे का स्वागत न किया जाय, और उन्हें यहाँ ठहरने न दिया जाय। बंगा के कुछ निवासियों ने सरदार किशनसिंह को तार दिया जो उन दिनों गांव छोड़ कर कार्यवश लाहौर में थे। उत्तर में सरदार साहब ने लिखा कि भगतसिंह वहाँ मौजूद है, वह जत्थे के ठहरने और लंगर का सब प्रबंध करेगा। हुआ भी ऐसा ही। सरदार भगत सिंह ने विरोधियों के अड़ङ्गे को व्यर्थ करते हुए उनका खूब धूम-धाम से स्वागत किया।

पुलिस से चलने लगी—लायलपुर में सरदार भगतसिंह ने एक व्याख्यान दिया, जिसमें उन्होंने गोपीमोहन साहा की तारीफ की। पाठकों को स्मरण होगा कि यह गोपीमोहन साहा वही हैं जिन्होंने सर चार्ल्स टेगर्ट के धोखे से मिस्टर डे नामक अंग्रेज को गोली मार दी थी, पुलिस ने इस व्याख्यान के संबंध में उनके ऊपर मुकदमा चलाया, किन्तु उन पर मुकदमा न चल सका। इस बीच में उन्होंने

अमृतसर में 'अकाली' तथा 'कीर्ति' नामक अखबारों का भी सम्पादन किया।

संगठन आरम्भ—काकोरी वालों की गिरफ्तारी के बाद छिन्न-भिन्न दल को सम्भालने का काम श्री चन्द्रशेखर आजाद ने उठाया, किंतु उपयुक्त साधन न होने के कारण वह कुछ विशेष अग्रसर नहीं हो पाए। १९२६ में पंजाब में जोर-शोर से संगठन होने लगा। सुखदेव एक अच्छे संगठनकर्त्ता थे। यशपाल ने जयगोपाल को लाकर सुखदेव से मिला दिया। इसी समय बिहार का फणींद्र नाथ घोष उत्तर प्रदेश में आया, और लोगों से मिला। बिहार के कमलनाथ तिवारी भी दल में शामिल हो गए।

काकोरी-कैदियों को जेल से भगाने का प्रयत्न—सन् १९२६ में सरदार भगतसिंह ने कुन्दनलाल, आजाद आदि के साथ यह कोशिश की कि हवालात से जिस समय काकोरी-कैदियों को लेकर मोटर अदालत को जाती हो उस समय उसे रोक कर बंदियों को छुड़ा लिया जाय, किन्तु यह योजना असफल रही। कई कारण ऐसे आ गए जिससे योजना छोड़ दी गई।

दशहरे पर बम—अक्तूबर १९२६ में दशहरे के मौके पर जो बम फटे थे, उनके सम्बन्ध में सरदार भगतसिंह पर मुकदमा चलाया गया, किन्तु उसमें वह बेदाग छूट गए। इसी बीच में उन्होंने लाहौर में 'नौजवान भारत सभा' नामक संस्था कायम की। यह संस्था बाद को जाकर बहुत ही प्रबल हो गई; और सरकार ने इसे दबा दिया। दल के लिए जब धन की जरूरत पड़ी तो गोरखपुर कुरहल गंज पोस्ट आफिस ने नौकर कैलाशपति के पार्टी के हुक्म पर डाकखाने के लगभग तीन हजार रुपए लेकर गायब कर दिये। यह सारा रुपया क्रान्तिकारी दल के लिए खर्च हुआ।

केन्द्रीय दल का संगठन—यों तो इस समय बिहार, उत्तर-प्रदेश तथा पंजाब में संगठन था, किन्तु इन संगठनों में आपस में कोई घनिष्ठ सहयोग नहीं था। इसलिए कार्य की सुविधा के लिए ८ दिसम्बर १९२८ को समस्त भारत के प्रमुख क्रान्तिकारियों की एक सभा हुई। इस सभा में जयदेव, शिववर्म्मा, विजय कुमारसिंह, सुखदेव, ब्रह्मदत्त, सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय, तथा फणीन्द्रनाथ घोष थे। इन लोगों ने एक नई केन्द्रीय समिति बनाई। इसके निम्नलिखित ७ सदस्य थे। (१) सरदार भगतसिंह। (२) चन्द्रशेखर आजाद। (३) सुखदेव। (४) शिव

वर्म्मा । (५) विजयकुमार । (६) फणीन्द्रनाथ घोष । (७) कुन्दन लाल ।

इन सात केन्द्रीय समिति के सदस्यों की भी सेवाएँ बराबर नहीं कही जा सकतीं । इसमें से कई ने बाद को पुलिस में बयान दे दिया, फणीन्द्र घोष तो इसी अपराध में बाद को दल द्वारा जान से मार डाला गया ।

इस सभा में जो बातें तै हुई वे यों हैं । फणीन्द्रनाथ घोष बिहार के, सुखदेव तथा भगतसिंह पंजाब के, विजयकुमारसिंह और शिव वर्म्मा उत्तर प्रदेश के संगठनकर्त्ता चुने गए । चन्द्रशेखर आजाद यों तो सारे दल के ही अध्यक्ष थे,किंतु वह विशेषकर सेना विभाग के नेता चुने गए । आतंकवाद करने का निश्चय किया गया । काकोरी युग में समिति का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन था । यह नाम कम अर्थव्यंजक समझा गया, यानी यह समझा गया कि इस नाम से दल का उद्देश्य पूर्णरूप से व्यक्त नहीं होता । यह समझा गया कि इसको और स्पष्ट करना चाहिए । तदनुसार दल का नाम हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी यानी हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना रखा गया । संक्षेप में ऐसा इसलिए हुआ कि साधनों में विकास न होकर क्रान्तिकारी आन्दोलन के ध्येय में ही विकास होता रहा । उसी के अनुसार यह नाम बदल दिया गया । यह परिवर्तन सूचित करता है कि दल के ध्येय में और अधिक विकास हुआ । दल ने समाजवाद और मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को ध्येय घोषित किया ।

दल की ओर से कई जगह बम बनाने के कारखाने खोले गए जिनमें से लाहौर, सहारनपुर, कलकत्ता और आगरे में बड़े कारखाने स्थापित हुए । लाहौर और सहारनपुर के बाद को कारखाने पकड़े गए ।

साइमन कमीशन का आगमन—१९२८ में भारत के भाग्य का निपटारा करने के लिए विलायत से एक कमीशन आया, जिसके प्रधान इंगलैंड के प्रसिद्ध वकील सर जान साइमन थे । केवल कांग्रेस ने ही नहीं बल्कि मुल्क की सारी संस्थाओं ने उसके बॉयकाट का निश्चय किया । "साइमन लौट जाओ" के नारों से सारा भारत गूंज उठा । लाला लाजपत राय इन दिनों कांग्रेस से एक तरह से अलग से हो रहे थे, बल्कि सच बात तो यों है कि कई मामलों में अन्तिम दिनों में उन्होंने कांग्रेस का बहुत जबर्दस्त विरोध किया था जिसका अकाट्य प्रमाण श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रकाशित 'बंच आफ लेटर्स' के अन्तर्गत मोतीलाल

नेहरू के एक पत्र में है। मुल्क की निगाहों में वह गिरते चले जा रहे थे, क्योंकि वे जो कुछ भी कहते थे उसमें साम्प्रदायिकता की मात्रा बहुत रहती थी। ऐसे समय में मुल्क ने एकाएक सुना कि २० अक्तूबर सन् १९२८ को जब साइमन कमीशन लाहौर में आया, उस समय उसका बॉयकाट करते समय लाला लाजपतराय पर पुलिस की लाठियाँ पड़ीं। लाल लाजपत राय देश के एक पुराने नेता थे, बल्कि सच बात तो यह है कि नेताओं में अग्रगण्य थे। देश ने यह भी सुना कि देश के इस पुराने नेता पर जो लाठियाँ पड़ीं, उससे उनको काफी चोट पहुँची। इसी चोट के सिलसिले में वह शय्यागत हो गए। १७ नवम्बर १९२८ को लाला लाजपत राय का इस चोट के कारण देहांत भी हो गया।

देश में इस मृत्यु से बहुत खलबली मची। इस समय क्रान्तिकारी समिति के कई सदस्य लाहौर में मौजूद थे। उन्होंने जल्दी से अपनी एक सभा बुलाई, जिसमें यह तय हुआ कि चूंकि सारे भारतवर्ष की मांग है, इसलिए लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लिया जाय। पं० जवाहरलाल इस प्रसग पर यों लिखते हैं "जब लालाजी मरे तो उनकी मृत्यु अनिवार्य रूप से, उन पर जो हमला हुआ था उसके साथ संयुक्त हो गई, और दुख से कहीं बढ़कर देश के लोगों में क्रोध भड़क उठा। इस बात को समझने की आवश्यकता है क्योंकि उसके समझने पर ही हमें बाद की घटनाओं को, विशेष कर भगतसिंह और उत्तर भारत में उनकी आकस्मिक और अद्भुत ख्याति समझ में आ सकती है। किसी कार्य की नींव का कारण समझे बिना उसके करने वाले की प्रशंसा या उसकी निन्दा करना आसान है। भगतसिंह को पहले बहुत से लोग नहीं जानते थे। उनकी प्रसिद्धि एक हिंसात्मक या आतंकवादी कार्य के लिए नहीं हुई। × × × भगतसिंह इसलिए प्रसिद्ध हुए कि ऐसा ज्ञात हुआ कि उन्होंने कम-से-कम उस समय के लिए लाला लाजपत राय की और इस प्रकार उनके जरिए से सारे देश के सम्मान की रक्षा की। वह तो एक प्रतीक हो गया, लोग उस कार्य को तो भूल गए, किन्तु वह प्रतीक कुछ महीनों के अन्दर फैल गया और पंजाब के हर एक गाँव और शहर तथा उत्तर भारत उसके नामों से गूंजने लगा।"

बदला लेना तो सोचा ही जा रहा था, इस बीच में पंजाब नेशनल बैंक लूटने की एक योजना बनाई गई, किन्तु वह सफल न हुई, और उसका विचार त्याग

दिया गया।

सैन्डर्स हत्या—यह तय हुआ कि लाला लाजपतराय की हत्या के लिए जिम्मेदार पुलिस अफसर को मार डाला जाय। तदनुसार जयगोपाल मिस्टर स्काट की टोह में रहने लगे। हत्या के लिए दल के द्वारा चार व्यक्ति नियुक्त हुए। (१) चंद्रशेखर आजाद। (२) शिवराम राजगुरु। (३) भगतसिंह। (४) जयगोपाल।

शिवराम राजगुरु के अतिरिक्त सभी लोग साइकिल पर घटनास्थल पर पहुँचे इसके अलावा इस टुकड़ी की सहायता करने के लिए विजयकुमार, शिववर्मा की अलग सशस्त्र टुकड़ी भी थी। लगभग १५ दिसम्बर के चार बजे मिस्टर सैंडर्स हेड कानस्टेबिल चननसिंह के साथ अपने दफ्तर से निकले। मिस्टर सैंडर्स की मोटर साइकिल सड़क पर आते ही शिवराम राजगुरु ने उस पर गोली चलाई। शिवराम राजगुरु का निशाना अचूक बैठा। सैंडर्स अपनी मोटर साइकिल समेत फौरन जमीन पर गिर पड़े। उनका एक पैर साइकिल के नीचे आ गया। अब भगतसिंह आगे बढ़े, और ताकि कोई धोखा न रह जाय, इसलिए कई गोलियाँ सैंडर्स का मारीं। इसके बाद उन्होंने भाग निकलने की कोशिश की। हेड कानस्टेबिल चननसिंह तथा मिस्टर फार्न ने इन लोगों का पीछा किया। फार्न को भगतसिंह ने गोली मारी, जिससे वह वहीं रुक गया। चननसिंह फिर भी इन लोगों का पीछा कर रहा था। अब भगतसिंह और राजगुरु डी० ए० वी० कालेज के हाते में एक छोटे से दरवाजे में घुस गए, हेड कानस्टेबिल चननसिंह मानो अपनी मौत के पीछे जा रहा था। अब तक आजाद चुप थे। उन्होंने जब चनन सिंह को इस तरह अपना पीछा करते देखा, तो उन्होंने अपने मोजर पिस्तौल से चननसिंह को राजभक्ति और गुलामी का फल चखा दिया। वह वहीं गिर पड़ा, एक घंटे के अंदर उसके प्राण निकल गए।

थोड़ी देर में सारे पंजाब की पुलिस चौकन्नी हो गई और साम्राज्यवाद के कुत्ते चारों ओर सूंघते हुए फिरने लगे। भगतसिंह, राजगुरु तथा आजाद डी० ए० वी० कालेज के हाते से तो निकल गए थे, किन्तु अभी वे लाहौर में ही थे और लाहौर बहुत ही गरम हो गया था। भगतसिंह ने अपने केश वगैरह कटवा डाले और कहा जाता है कि दुर्गा देवी को तथा उनके शिशु शची को साथ में

लेकर बड़े ठाठ-बाट से अव्वल दर्जे में रेल का सफर किया। राजगुरु उनके अर-दली बने। चंद्रशेखर आजाद तीर्थ-यात्रियों की टोली बनाकर उसके साथ एक पंडे के रूप में लाहौर से निकल गए।

भगतसिंह कलकत्ता चले गए, किन्तु वे बैठने वाले न थे, उन्होंने वहां से आकर आगरे में एक बम कारखाना खोला। इन दिनों कई और कारखाने भी खुले, जिनमें मोटे तौर पर यशपाल, किशोरीलाल तथा भगवतीचरण का संबंध था। दल ने भगतसिंह के संबंध में यह तय किया कि भगतसिंह रूस चले जाएँ और सुखदेव तथा वटुकेश्वर असेम्बली में बम डालें किन्तु इस सम्बन्ध में भगत सिंह और सुखदेव में कुछ विशेष मतभेद हो गया, जिससे भगतसिंह ने यह तय किया कि वह असेम्बली में बम फेंक कर आत्म समर्पण कर देंगे।

सरदार भगतसिंह—श्री भगवानदास माहौर लिखते हैं—"क्रान्ति प्रयास के इस विकास मार्ग में भगतसिंह एक ऐसे व्यक्ति थे जिसे अंग्रेजी में मौड़-सूचक पाषाणचिह्न कहा जाता है। समय और समाज की आवश्यकताओं ने भगतसिंह को ही माध्यम बनाकर उत्तर भारत के संगठित गुप्त सशस्त्र क्रान्ति-कारियों को समाजवाद की ओर उन्मुख कर दिया तथा क्रांतिकारी कार्य-कलाप को धार्मिक मनोभूमि से ऊपर उठाया। उत्तर भारत का गुप्त क्रांतिकारी प्रयास तब तक इटली के मेजिनी, गैरीबाल्डी और आयर्लैण्ड के सिनफिन के मध्यम-वर्गीय नेताओं के आदर्श से अनुप्राणित था और भगतसिंह के माध्यम से ही उसने रूसी क्रान्ति और लेनिन, स्टालिन के समाजवादी आदर्शों के प्रभाव को ग्रहण किया। भगतसिंह के ही माध्यम से 'भारतमाता की जय' और 'वंदे मातरम्'मंत्रों के स्थान में भारतीय गुप्त सशस्त्र क्रान्ति प्रयास ने 'क्रान्ति चिरंजीवी हो' 'इनकलाब जिंदाबाद' 'साम्राज्यवाद का नाश हो' आदि नारे लगाए और जहाँ क्रान्तिकारी लोग पुलिस की यंत्रणाओं और मृत्यु के भय से मुक्त होने के लिए शरीर की नश्वरता और आत्मा के नित्यत्व का निदिध्यासन, पद्मासन लगाए गीता पाठ करते हुए नजर आते थे, वहाँ वे अब मार्क्स की कैपीटल का स्वाध्याय करते नजर आए।

"दिल्ली में लेजिस्लेटिव असेम्बली में बहरे कानों को युग का गुरु गम्भीर गर्जन सुनाने के लिए भगतसिंह ने जो बम फेंका, या भारतीय राष्ट्रवाद के अप-

मान का प्रतिकार करने के लिए पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय को लाठियों से पीटने वाले सण्डर्स का जो वध किया और इसी प्रकार के साहस और आत्म बलिदान के जो अनेक कार्य भगतसिंह ने किए उनका महत्व उनके अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए महान् है तथा उनके ये कार्य सशस्त्र क्रान्ति प्रयास के विकास-आकाश के चमकते हुए नक्षत्र हैं, परन्तु भगतसिंह की विशेष क्रान्तिकारी देन यही है कि उनके समय से क्रान्तिकारियों का आदर्श समाजवादोन्मुख हो गया तथा उनका मानसिक धरातल भी परलोकापेक्षी धार्मिक होने के स्थान पर अब इह-लोकापेक्षी सामाजिक ही विशेषतः हो गया। काकोरी युग के पं० श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल', श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, श्री योगेशचन्द्र चटर्जी आदि का भारतीय प्रजातंत्र संघ भगतसिंह और उनके साथियों के प्रभाव से हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना के रूप में विकसित हुआ। यहाँ तुरंत ही यह बात स्पष्टतया कह देना चाहिए कि कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि भगतसिंह समाजवाद के अच्छे पण्डित थे।"

लाला लाजपतराय की मृत्यु का बदला—इस पुस्तक में सैंडर्स हत्याकाण्ड पर भी प्रामाणिक रूप से पूरी रोशनी डाली गई है। इसमें यह बताया गया है कि क्रान्तिकारी दल ने सैंडर्स को नहीं बल्कि स्काट को यानी उसके बड़े अफसर को मारना चाहा था, पर घटनाचक्र ऐसा हुआ कि सैंडर्स ही मारा गया। हम इसका वर्णन उद्धृत नहीं करेंगे। यदि हम इस तरह उद्धृत करें तो सारी पुस्तक ही उद्धृत करनी पड़ेगी। इसलिए हम केवल भगतसिंह के जीवन की एक बात की ओर पाठकों की दृष्टि आकृष्ट कर इस लेख को समाप्त करेंगे…"दल की केन्द्रीय समिति की जिस बैठक में दिल्ली असेम्बली में बम फेंकने का निश्चय किया गया, उनमें सुखदेव नहीं था। भगतसिंह का आग्रह था कि इस काम के लिए उसे अवश्य भेजा जाए, लेकिन बाकी सदस्यों ने उसकी यह बात नहीं मानी। उस समय सैंडर्स की हत्या के सिलसिले में पंजाब की पुलिस भगतसिंह की तलाश में थी। उसके पकड़े जाने के मानी थे फाँसी। समिति ने भगतसिंह की बात न मानकर दूसरे दो साथियों को भेजने का निश्चय किया। दो-तीन दिन बाद जब सुखदेव आया और उसे हमारे निश्चय का पता चला तो उसने इसका सख्त विरोध किया। उसका कहना था कि पकड़े जाने के बाद अदालत

के मंच से दल के सिद्धान्त, आदर्श, उद्देश्य और बम-विस्फोट के राजनीतिक महत्व को भली प्रकार भगतसिंह ही रख सकता है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय समिति की बैठक से पहले उसकी ओर से भगतसिंह से आग्रह किया था कि वह स्वयं इस काम को करे। जब केन्द्रीय समिति के दूसरे सदस्यों से वह अपनी बात न मनवा सका तो उसने भगतसिंह से अलग जाकर बात की।

उसके व्यवहार में बड़ी कठोरता थी। बातों-बातों में उसने भगतसिंह को काफी सख्त बातें भी कह डालीं···तुम में अहंकार आ गया है, तुम समझने लगे हो कि तुम्हारे ही सर पर दल का सारा दारो-मदार है, तुम मौत से डरने लगे हो, कायर हो, आदि। उसका तर्क था, 'जब तुम मानते हो कि तुम्हारे सिवा दूसरा कोई दल के उद्देश्य को अच्छी तरह नहीं रख सकेगा तो फिर तुमने केन्द्रीय समिति को यह फैसला क्यों लेने दिया कि तुम्हारे स्थान पर और कोई बम फेंकने जाएगा ?

'उसने भाई परमानन्द के बारे में लाहौर हाईकोर्ट के शब्दों का भी जिक्र किया कि दल का मस्तिष्क और सूत्रधार होते हुए भी व्यक्तिगत तौर पर यह व्यक्ति कायर है और संकट के कामों में दूसरों को आगे झोंककर अपने प्राण बचाता रहा है।' तुम्हारे लिए भी एक दिन वैसा ही फैसला लिखा जाएगा। उसने भगतसिंह की ओर घूरते हुए कहा।

भगतसिंह ने जितना ही सुखदेव के आरोपों का प्रतिरोध किया वह उतना ही कठोर होता गया। भगतसिंह के यह कहने पर कि तुम मेरा अपमान कर रहे हो उसने कठोर शब्दों में उत्तर दिया···'मैं अपने मित्र के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर रहा हूँ।' अन्त में भगतसिंह यह कह कर उठ पड़ा कि, 'आगे से तुम मुझसे कभी बात न करना।'

भगतसिंह के आग्रह पर केन्द्रीय समिति की बैठक फिर से बुलाई गई। सुखदेव केवल बैठा रहा। बोला एक शब्द नहीं। भगतसिंह की जिद के सामने समिति को अपना फैसला बदलना पड़ा। सुखदेव उसी शाम किसी से बात किए बगैर लाहौर चला गया। दूसरे दिन जब वह लाहौर पहुँचा तो उस समय भी उसकी आँखें बहुत सूजी हुई थीं। शायद वह बहुत रोया था। उस दिन उसने न कोई कमजोरी दिखलाई और न एक आँसू बहाया लेकिन अन्दर से वह काफी

हिल गया था। उसने ध्येय की पूर्ति में अपनी सबसे प्रिय वस्तु की बाजी लगा दी थी।

भगतसिंह के मुकाबले सुखदेव कम पढ़ा लिखा था लेकिन उसकी स्मरण-शक्ति काफी तेज थी। आम तौर पर दर्शन या सिद्धान्त की जिन पुस्तकों को दूसरे साथी हफ्तों में समाप्त कर पाते सुखदेव उन्हें दो दिन में ही पढ़ लेता। नोट्स उसने कभी नहीं बनाए, फिर भी सरसरी निगाह से पढ़ी पुस्तकों के विस्तृत उद्धरण महीनों बाद भी उससे पूछे जा सकते थे। जेल के साथियों में भगतसिंह के बाद समाजवाद पर सबसे अधिक अगर किसी साथी ने पढ़ा और मनन किया था तो वह सुखदेव था।

असेम्बली में बम फेंकने पर यह योजना बनी कि सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर असेम्बली में बम फेंके और आजाद तथा दो अन्य सदस्य जाकर उनको बचा लाएँ, किन्तु भगतसिंह ने इस योजना के आखिरी हिस्से को पसन्द न किया, और कहा कि देश में जाग्रति पैदा करने के लिए उनका गिरफ्तार हो जाना आवश्यक है। हम एक प्रकार से विह्वल हो जाते हैं कि एक व्यक्ति जिसने अभी मुश्किल से यौवन के चौखट पर पैर रखा है, अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार हो जाता है, किन्तु यह तो क्रान्तिकारियों के लिए एक मामूली बात थी।

असेम्बली में धड़ाका—सन् १६२६ की ८ अप्रैल के दिन की घटना है। उस समय की केन्द्रीय असेम्बली में पब्लिक सेफ्टी नामक एक बिल विचारार्थ उपस्थित था, दोनों ओर से खींचा-तानी हो रही थी। ट्रेडडिस्प्युट्स बिल अधिक वोटों से पास हो चुका था और सभापति पटेल पब्लिक सेफ्टी बिल पर अपना निर्णय देने के लिए तैयार थे। सब लोगों की आँखें उन्हीं की ओर लगी हुई थीं, बहुत उत्तेजना का समय था। ऐसे समय एकाएक असेम्बली भवन में दर्शकों की गैलरी से एक भयानक बम गिरा, जिसके गिरते ही आतंक का धुआँ छा गया। सर जार्ज शूस्टर तथा सर वामन जी दलाल आदि कुछ व्यक्तियों को हलकी चोटें आईं। बम फेंकने वाले दो नवयुवक थे। एक का नाम सरदार भगतसिंह था, और दूसरे का नाम बटुकेश्वर दत्त।

इस दिन के बाद से ये दोनों नाम भारतवर्ष में एक घरेलू चीज हो गए

है। तमोली की दुकान से लेकर प्रासादों तक इन दोनों के चित्र इसके बाद दीखने लगे।

यदि ये लोग भागना चाहते तो बड़ी आसानी से भाग निकलते, किन्तु वे वहीं पर खड़े रहे, और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे बुलन्द करने लगे। इसके साथ ही इन्होंने एक पर्चा निकाल कर वहाँ पर डाल दिया, जिसमें हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना की ओर से जनता के नाम अपील थी। इसमें एक फ्रेंच क्रान्तिकारी का हवाला देकर कहा गया था कि वहरों को सुनाने के लिए धड़ाके की जरूरत है। पहले झोंके में तो वहुत से लोग इस कृत्य की निन्दा कर गए, किन्तु जब इन लोगों ने अपना ऐतिहासिक बयान दिया, तो मालूम हुआ कि ये भी कुछ सिद्धान्त रखते हैं—और कुछ समझ कर करते हैं। यहाँ यह बात याद रहे कि अब उनके द्वारा दिए हुए नारे बच्चों-बच्चों में फैल गए। आज तो केवल साम्यवादी या मजदूरों में नहीं, बल्कि हर एक साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद विरोधी सभा का यह एक अनिवार्य नारा हो गया है। स्मरण रहे कि यह नारा एक क्रान्तिकारी का ही दिया हुआ था।

सरदार भगतसिंह इन्कलाब जिन्दाबाद नारे के प्रवर्त्तक थे—आध घण्टे बाद पुलिस का एक दल आया, और उन लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के बाद वे जेल दिल्ली जेल भेज दिए गए, और हर तरीके से यह कोशिश की गई कि उनमे से एक मुखबिर हो जाए। इनको डराया, धमकाया, बहकाया तथा प्रलोभन दिया गया कि वे मुखबिर हो जाएँ, किन्तु वे अटल रहे। दिल्ली जेल में उनका मुकदमा ७ मई को शुरू हुआ। १२ जून १९२९ को यह मुकदमा सेशन में खतम हो गया। इन लोगों ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने क्रान्तिकारी दल के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। इस वक्तव्य में उन्होंने बताया कि क्रान्तिकारी दल का उद्देश्य देश में मजदूरों का तथा किसानों का एकाधिनायकत्व स्थापित करना है। इस बयान के पहले बहुत से लोगों ने असेम्बली पर बम फेंकने की तथा क्रान्तिकारियों की बड़ी निन्दा की थी, किन्तु इस बयान के बाद में लोगों की गलतफहमियाँ दूर हो गईं, और लोग मुक्तकण्ठ से क्रान्तिकारियों की प्रशंसा करने लगे। यों तो बहुत से क्रान्तिकारियों ने इसके पहले बयान दिए थे और उनसे काफी सनसनी भी पैदा हुई थी, और जनता की

प्रशंसा भी उन्हें मिली थी, किन्तु सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने जो बयान दिया था, उसकी अपील सिर्फ हृदय के प्रति नहीं थी, बल्कि लोगों के दिमाग को थी। इसके पहले किसी भी क्रान्तिकारी ने अदालत में खड़े होकर इतना विद्वत्तापूर्ण बयान नहीं दिया था। पं० जवाहरलाल जी ने यह जो कहा है कि भगतसिंह के जन-प्रिय होने का कारण केवल एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति में रंगमंच पर आने से ही हुआ, यह बात सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यानी सत्य है तो गांधीजी के लिए सत्य है और सभी राजनीतिक नेताओं के लिए सत्य है। भगतसिंह के बयान से जनता को मालूम हो गया कि क्रान्तिकारी समिति सही माने में जनता के लिए लड़ रही है। इसके अतिरिक्त भगतसिंह के पीछे एक रोमांटिक पृष्ठ-भूमि थी इसलिए उन्होंने जो कुछ भी कहा उसकी अपील लाख गुनी हो ही गई। किन्तु जो कुछ उन्होंने कहा, वह भी महत्त्वपूर्ण था, भगतसिंह ने जो बयान दिया उससे सूचित होता था कि सरदार ने अपने बयान में रूस के आदर्श को पूर्ण रूप से अपना लिया था, और साफ तौर पर एक तरह से कह-सा दिया था कि वर्गहीन समाज की स्थापना उनके कर्मों का उद्देश्य था। इन्कलाब जिन्दाबाद हमारी सारी राजनीति में दूसरा महत्त्वपूर्ण नारा था, पहला नारा था बन्देमातरम।

लाहौर षड्यन्त्र की सूचना—२३ अक्टूबर १९२८ को दशहरे के दिन मेले में एक बम फटा था, जिससे १० मरे तथा ३० घायल हुए थे। इसकी तहकीकात करते-करते दो छात्र गिरफ्तार हुए, जिससे पता लगा कि भगतसिंह का सैन्डर्स-हत्या में हाथ था, तथा भगवतीचरण एक प्रमुख क्रान्तिकारी थे। इस बीच में क्रान्तिकारियों की ओर से कुछ ढिलाई का काम हो रहा था, उससे भी तहकीकात करते-करते कुछ बातें मालूम हुई; और १५ अप्रैल १९२८ को पुलिस ने एक मकान पर छापा मारा जिसमें सुखदेव, किशोरीलाल तथा जयगोपाल गिरफ्तार हो गए। ८ दिन के अन्दर ही जयगोपाल मुखबिर बन गया। दो मई को हंसराज बोहरा गिरफ्तार किया गया, वह भी मुखबिर बन गया। दोनों मुखबिरों को माफी दे दी गई। २३ मई को सहारनपुर में पुलिस ने एक मकान पर छापा मारा और शिववर्मा तथा जयदेव को गिरफ्तार कर लिया। ७ जून को बिहार के मौलनिया नामक स्थान में एक-डकैती डाली गई, जिसमें मकान

मालिक जान से मारा गया। इस डकैती के सम्बन्ध मे फणीन्द्र घोष नामक एक व्यक्ति गिरफ्तार हुआ, जो मुखबिर हो गया। इसने सब घटनाओं को एक में जोड़ दिया।

इस प्रकार एक मुकदमा तैयार हुआ जिसमें १६ व्यक्तियों पर मुकदमा चला, बाकी भागे हुए थे। जिन पर मुकदमा चला उनके नाम ये हैं। (१) सुखदेव (२) किशोरी लाल (३) शिववर्मा (४) गयाप्रसाद (५) यतीन्द्रनाथ दास (६) जयदेव कपूर (७) भगतसिंह (८) बटुकेश्वर दत्त ९) कमलानाथ त्रिवेदी (१०) जितेन्द्र सान्याल (११) आशा राम (१२) देशराज (१३) प्रेम दत्त (१४) महावीरसिंह (१५) सुरेन्द्र पांडेय (१६) अजय घोष। भागे हुओं में से विजयकुमार सिंह बरेली में, शिवराम राजगुरु पूना में तथा कुन्दनलाल उत्तर प्रदेश में गिरफ्तार कर लिए गए। लाहौर में मुकदमा चला। इन लोगों ने कई बार अनशन किया जिससे यतीन्द्रनाथ दास शहीद हो गए। इन अनशनों का वर्णन हम एक पृथक अध्याय में करेंगे। इन अनशनों की वजह से मुकदमे में बहुत देर हो रही थी, इसके साथ ही साथ जनता में जबरदस्त प्रचार-कार्य हो रहा था। इसलिए इन बातों से घबराकर सरकार ने मामूली न्याय का ढोंग छोड दिया, और १ मई १९३० को भारत सरकार ने गजट में लाहौर षड्यन्त्र मुकदमा आर्डीनेन्स नाम से एक आर्डीनेन्स प्रकाशित किया, जिससे मुकदमा मजिस्ट्रेट के पास से हट कर तीन जजों के एक ट्रिब्युनल के सामने गया। इस अदालत को यह अधिकार था कि अभियुक्तों की गैरहाजिरी में भी मुकदमा चलावे। ७ अक्टूबर १९३० को इस मुकदमे का फैसला सुना दिया गया, जिसमें शिवराम राजगुरु, सुखदेव तथा भगतसिंह को फाँसी, विजयकुमारसिंह, महावीर सिंह, किशोरीलाल, शिववर्मा, गयाप्रसाद, जयदेव और कमलानाथ त्रिवेदी को आजन्म कालापानी, कुन्दनलाल को ७ वर्ष, और प्रेमदत्त को ३ वर्ष की सजा दी गई।

भगतसिंह आदि को फाँसी न दी जाए इस बात के लिए देश के कोने-कोने में हड़तालें तथा प्रदर्शन हुए। बम्बई में ट्रेन तक रोकी गई। ११ फरवरी १९३१ को प्रीवी कौंसिल में इस मुकदमे की अपील हुई, किन्तु वह खारिज कर दी गई।

देश पर एक विहंगम दृष्टि—इस बीच में देश में अन्य जो बातें हुई थीं वे बड़ी ही महत्त्वपूर्ण हैं, हम केवल संक्षेप में उनका वर्णन करेंगे। असहयोग आन्दोलन के बन्द होने के बाद देश में जो प्रतिक्रिया आई उसके फलस्वरूप देश में साम्प्रदायिकता का दौर-दौरा शुरू हो गया यह पहले ही आ चुका है। कांग्रेस के अन्दर भी देशबन्धु चित्तरंजन दास तथा त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल ने स्वराज्य पार्टी नाम से एक दल की स्थापना की। यह दल कौंसिलों तथा असेम्बलियों में उनको mend या end करने के लिए जाना चाहते थे। मान्टेगू चेम्सफोर्ड सुधार के पहिले चुनाव में कांग्रेस तथा महात्मा गांधी कौंसिल प्रवेश का सैद्धान्तिक रूप से विरोध कर चुके थे। अब स्वराज्य पार्टी उसी बात को करना चाहती थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात महत्त्वपूर्ण तथा दिलचस्प है कि उस समय महात्मा गांधी तथा उनके चेले इस योजना के विरुद्ध थे, किन्तु उनके सामने भी कोई संग्रामशील कार्य-क्रम नहीं था। अतएव ऐसे लोगों की अधिक संख्या हो गई जो दास और नेहरू की योजना को पसन्द करते थे। गांधी जी को तरह देना पड़ा, किन्तु कई साल तक इस कार्य-क्रम का अनुसरण करने पर भी कुछ हासिल न हुआ। इसलिए इससे भी लोग हटने लगे, इस बीच में देशबन्धु मर चुके थे। न तो वे विधान को mend ही कर पाए थे न end। विधानवाद की इस प्रकार विफलता हो जाने पर भी कांग्रेस १९३२ के बाद फिर इस ओर बढ़ी। पर वह बाद की बात है।

मद्रास कांग्रेस—ऐसे ही वातावरण में मद्रास कांग्रेस का अधिवेशन १९२७ में हुआ। साइमन कमीशन सिर पर था। शायद उनके सामने अपना भाव बढ़ाने के लिए कांग्रेस ने घोषित किया कि पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता भारतवर्ष के लोगों का ध्येय है। भाव बढ़ाने के लिए इसलिए कहा गया कि इसमें कोई गम्भीरता थी, ऐसा तो जान नहीं पड़ता, क्योंकि यदि गम्भीरता होती तो लाहौर में फिर से इस प्रस्ताव को पास करने की आवश्यकता क्यों पड़ती। यह भाव बढ़ाने की बात इससे पुष्ट होती है इसके साथ-साथ नेहरू कमेटी बैठी, जो 'स्वराज्य' का मसविदा बना रही थी। इस रिपोर्ट के बनाने में सभी दल के लोग शामिल थे। पंडित मोतीलाल की राजनीज्ञता की यह तारीफ है कि ऐसे विभिन्न मतवाद मानने वाले लोगों को वे एक मंच पर ला सके।



कन्हाईलाल



शचीन्द्रनाथ सान्याल



गेंदालाल दीक्षित



ठा० रोशनसिंह



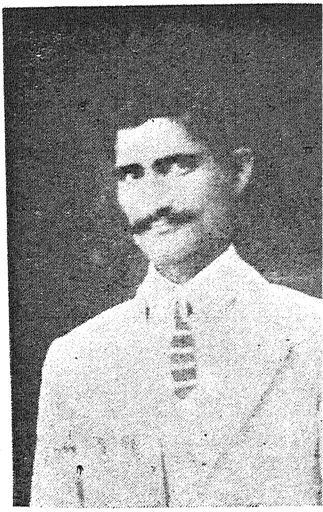
फाँसी के बाद एक शहीद की झांकी



पं० जगतराम भारद्वाज



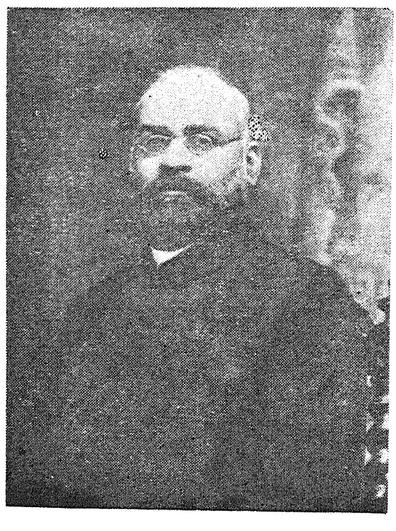
पं० काशीराम



पं० सोहनलाल पाठक

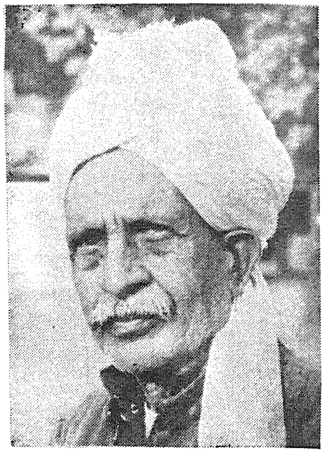


डा० मथुरासिंह

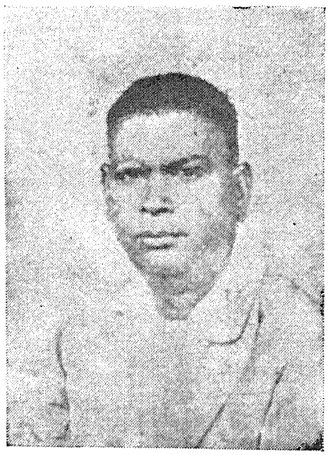


श्यामजी कृष्ण वर्मा

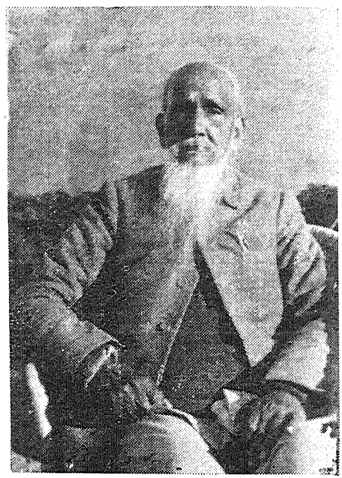
क्रान्तिकारी लेख लिखने के कारण (१९०८-१०) कालेपानी भेजे जाने वाले तीन सपूत



स्वराज्य-संपादक श्री लद्धाराम



स्वराज्य-संपादक श्री होतीलाल वर्मा



स्वराज्य के प्रथम संपादक श्री भटनागर



राजेन्द्र लाहिड़ी



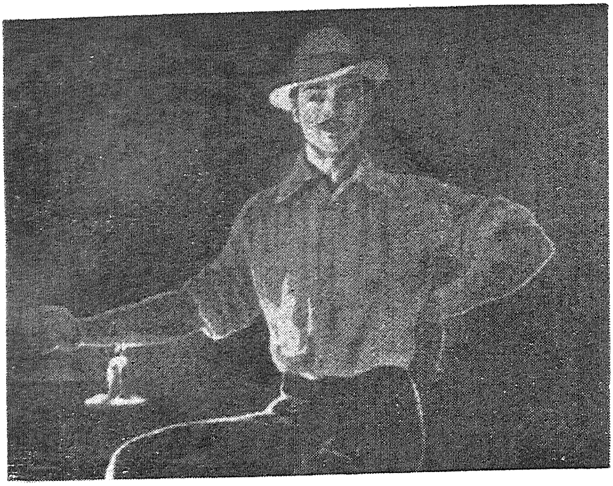
मणीन्द्रनाथ बैनर्जी



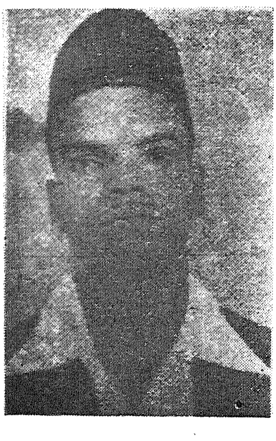
रामप्रसाद बिस्मिल



अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद के अन्तिम दर्शन



सरदार भगतसिंह



राजगुरु



बटुकेश्वर दत्त



१९४२ के शहीद फुलेनाप्रसाद श्रीवास्तव



हनुमन्त सहाय



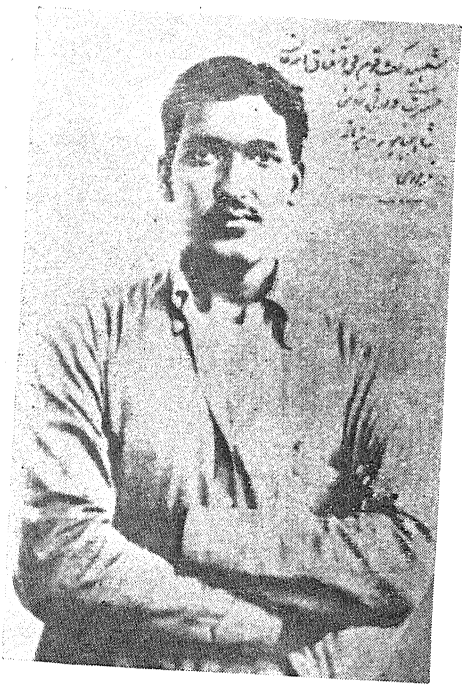
डा० ख़ानखोजे



योगेश चटर्जी

सोहनसिंह





शचीन्द्रनाथ बक्षी

अमर शहीद अशफाकुल्ला





सुनीति देवी



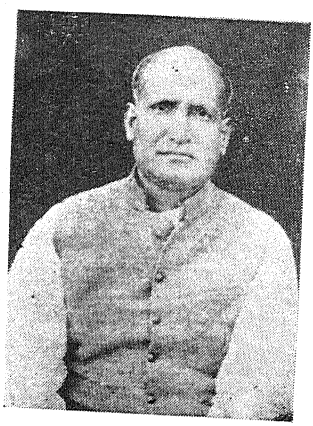
गणेशशंकर विद्यार्थी



लक्ष्मीकान्त शुक्ल



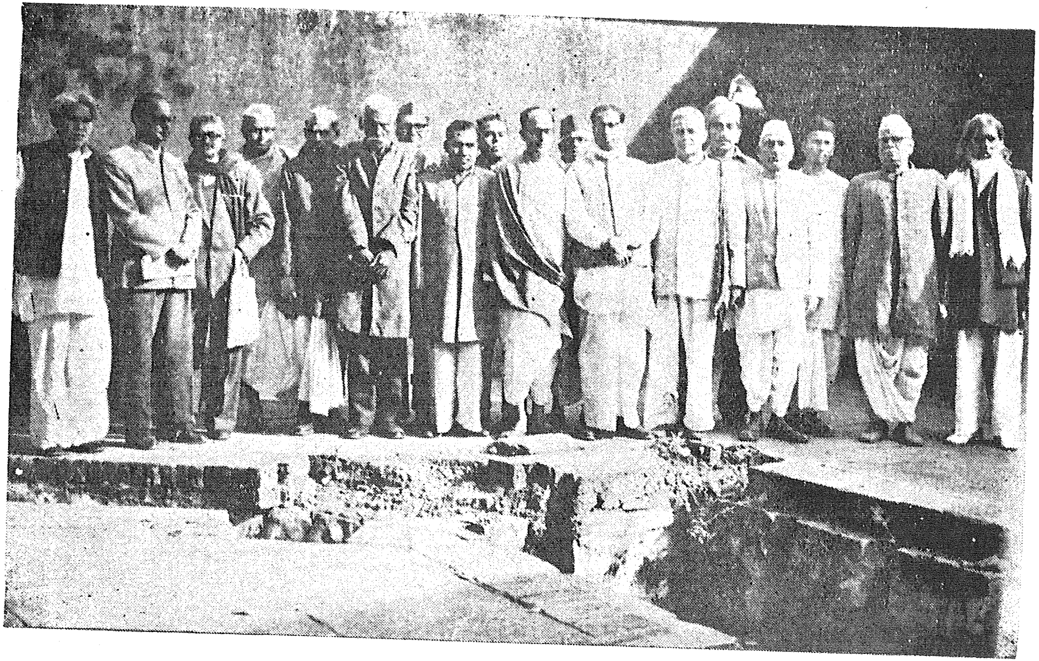
श्रीमती वसुमती शुक्ल



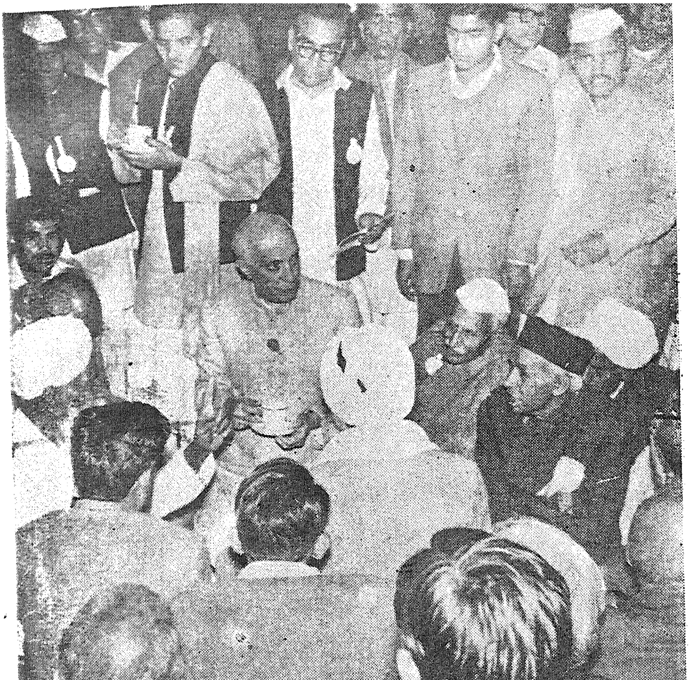
मनमोहन गुप्त



क्रान्तिकारी सम्मेलन (१६५८)—१. वारीन्द्रकुमार घोष, २. भूपेन्द्रनाथ दत्त
साथ में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, शैलेन्द्र चक्रवर्ती आदि



दिल्ली के मास्टर अमीरचन्द आदि की शहादत के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए (क्रान्तिकारी सम्मेलन १९५८ के अवसर पर) एकत्र क्रान्तिकारी



क्रान्तिकारी सम्मेलन (१९५८) में आए हुए क्रान्तिकारी
प्रधान-मंत्री श्री नेहरू के साथ



लेखक (मन्मथनाथ गुप्त) का १९२६ का चित्र, जब वह
काकोरी-षड्यन्त्र में भाग ले रहे थे

कलकत्ता कांग्रेस का अल्टीमेटम—कांग्रेस ने १९२७ में तो स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया, और १९२८ में कलकत्ते में नेहरू रिपोर्ट का स्वागत किया, और उसे 'भारत वर्ष के राजनीतिक और साम्प्रदायिक मसलों को हल करने में बहुत अधिक सहायता देने वाला' माना। कांग्रेस ने यह पास किया—"यद्यपि यह कांग्रेस मद्रास की पूर्ण स्वाधीनता के निश्चय पर कायम है, फिर भी यह इस विधान को राजनैतिक तरक्की का बहुत बड़ा जरिया मानकर उसे मंजूर करती है। ऐसा इस विचार से कि वह देश के मुख्य-मुख्य राजनीतिक दलों का अधिक से अधिक जितना मतैक्य हो सकता है, उसके आधार पर तैयार किया गया है। अगर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ३१ दिसम्बर १९२९ के पहले या उस दिन तक इस विधान को पूरा-पूरा मंजूर कर लिया, तो कांग्रेस उसे स्वीकार कर लेगी, बशर्ते कि राजनीतिक स्थिति के कारण कोई विशेष परिस्थिति न उत्पन्न हो जाए। किन्तु यदि उस तारीख तक पार्लियामेंट ने इस विधान को मंजूर नहीं कर लिया या उसके पहले ही नामंजूर कर दिया तो कांग्रेस देश को करबन्दी की सलाह देकर या और जो तरीका निश्चय किया जाय उस प्रकार अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन जारी करने का बन्दोबस्त करेगी।"

लाहौर में फिर पूर्ण स्वाधीनता—लाहौर कांग्रेस का अधिवेशन जनवरी १९३० तक होता रहा। इस बीच सरकार ने ऊपर दी हुई शर्तें मंजूर नहीं कीं। किन्तु कांग्रेस के नेताओं से कुछ बातचीत चलती रही, जिनमें कोई निर्दिष्ट आश्वासन नहीं दिया गया, बल्कि गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए कहा गया। लाहौर कांग्रेस ने इस पर यह पास किया 'वर्तमान परिस्थितियों में गोल-मेज सम्मेलन में कांग्रेस के प्रतिनिधियों के जाने से कोई लाभ होने का नहीं है। इसलिए यह कांग्रेस पिछले वर्ष अपने कलकत्ते के अधिवेशन में प्राप्त स्वीकृति के अनुसार यह घोषित करती है कि कांग्रेस विधान की धारा १ में स्वराज्य शब्द का अर्थ होगा पूर्ण स्वाधीनता। आगे यह कांग्रेस यह भी प्रकट करती है कि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट की पूरी योजना अब रद्द हो गई है, और आशा करती है कि सब कांग्रेसजन पूर्ण शक्ति लगा कर आगे से पूर्ण स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करेंगे। स्वाधीनता के आन्दोलन को संगठित करने के लिए प्रारम्भिक कार्य के रूप में तथा कांग्रेस की नीति को उसके परिवर्तित उद्देश्य के साथ यथासाध्य सामञ्जस्य-

पूर्ण बनाने के विचार से यह कांग्रेस केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं और सरकार द्वारा बनाई गई कमेटियों का बहिष्कार करने का निश्चय करती है और कांग्रेसजनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले अन्य लोगों से कहती है कि वे भविष्य के निर्वाचनों से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूर रहें, और व्यवस्थापिका सभाओं तथा कमेटियों के वर्तमान कांग्रेस सदस्यों को आदेश देती है कि वे अपनी जगहों से इस्तीफा दे दें। × यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को अधिकार देती है कि जब ठीक समझे तब जिस प्रकार के प्रतिबन्धों को वह आवश्यक समझे उस प्रकार के प्रतिबंधों के साथ सविनय अवज्ञा के कार्य-क्रम को, जिसमें कर न देना भी शामिल है, चलाए।

इस प्रस्ताव के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं के १७२ सदस्यों ने फरवरी १९३० तक इस्तीफा दे दिया। इसमें केन्द्रीय के २१, कौंसिल आफ स्टेट के ९, बंगाल के ३४, बिहार-उड़ीसा के ३१, मध्य प्रांत के २०, मद्रास के २०, उत्तर-प्रदेश के १६, आसाम के १२, बम्बई के ६, पंजाब के २ और बर्मा के १ सदस्य थे।

१४, १५ और १६ फरवरी सन् १९३० को कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक साबरमती में हुई। इसमें सत्याग्रह करना निश्चित हुआ, किन्तु थोड़े दिन बाद अहमदाबाद में जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, तभी यह जाब्ते के तौर पर काम में आया। इसके बाद गांधीजी ने अपने आश्रम-वासियों सहित नमक बनाने के उद्देश्य से डांडी यात्रा की। इस प्रकार नमक सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हो गया, देश में हजारों की संख्या में गिरफ्तारियां हुईं। गांधीजी गिरफ्तार हो गए। सरकार के इशारे पर सर तेजबहादुर सप्रू तथा मिस्टर जयकर २३ और २४ जुलाई को यरवदा जेल में गांधीजी से मिले, महात्माजी ने इस पर नैनी जेल में पंडित मोतीलाल तथा जवाहरलाल के नाम एक पत्र दिया। इस प्रकार समझौते की बातचीत शुरू हो गई। २५ जनवरी को कांग्रेस कार्य-समिति पर से प्रतिबंध हटाकर उसके सदस्यों को छोड़ दिया गया और १९ फरवरी को महात्मा गांधी और लार्ड इर्विन की संधि की बातचीत दिल्ली में आरम्भ हुई जिसके बाद मार्च १९३१ को एक समझौता हो गया जो आमतौर से गांधी-इर्विन समझौता के नाम से प्रसिद्ध है।

सरदार भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव इस समय फांसी की प्रतीक्षा में फांसी घर में बंद थे। देश में उनकी फांसी के सम्बन्ध में बड़ी हलचल थी। सरकारी जज ने कहा था इन लोगों को फांसी हो और सारा देश कह रहा था भगतसिंह जिंदाबाद। स्वयं कांग्रेस वाले भी इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि इस समय चारों ओर जो सद्भाव दिखाई पड़ रहा है, उसका फायदा उठा कर उनकी सजा बदलवा दी जाए। किन्तु वायसराय ने इस संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने हमेशा एक मर्यादा रखकर इस संबंध में बातें कीं। उन्होंने गांधीजी से केवल इतना कहा कि मैं पंजाब सरकार को इस सम्बन्ध में लिखूंगा। इसके अतिरिक्त और कोई वायदा उन्होंने नहीं किया। यह ठीक है कि स्वयं उन्हीं को सजा रद्द करने का अधिकार था, किन्तु यह अधिकार राजनैतिक कारणों के लिए उपयोग में लाने के लिए नहीं था। दूसरी ओर राजनैतिक कारण ही पंजाब सरकार को इस बात के मानने में बाधक हो रहे थे।

वास्तव में वे बाधक थे भी। चाहे जो हो, लार्ड इर्विन इस बारे में कुछ करने को इच्छुक नहीं थे। अलबत्ता करांची कांग्रेस अधिवेशन हो लेने तक फांसी रुकवा देने का जिम्मा उन्होंने लिया। मार्च के अन्तिम सप्ताह में कराची में कांग्रेस होने वाली थी, किन्तु स्वयं गांधीजी ने ही निश्चित रूप से वायसराय से कहा—"यदि इन नौजवानों को फाँसी पर लटकाना ही है तो कांग्रेस अधिवेशन के बाद ऐसा करने के बजाय उसके पहले ऐसा करना ठीक होगा। इससे लोगों को पता चल जायगा कि वस्तुतः उनकी स्थिति क्या है और लोगों के दिल में झूठी आशाएँ न बंधेंगीं। कांग्रेस में गांधी-इर्विन समझौता अपने गुणों के कारण ही पास या रद्द होगा, यह जानते-बूझते हुए कि तीन नौजवानों को फांसी दे दी गई है।" (कांग्रेस का इतिहास—पट्टाभि सीतारमैया)

श्रीयुत सीतारमैया के उपर्युक्त विवरण से ऐसा भ्रम होना सम्भव है, जैसे भगतसिंह आदि की फांसी की सजा रद्द करवाने का प्रयत्न गांधी-इर्विन समझौते सम्बन्धी बातचीत का एक अंग रहा हो। किन्तु यह बात नहीं है। महात्माजी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से माँग रूप में इस बात के लिए अनुरोध नहीं किया था जैसा कि पंडित जवाहरलाल की आत्म-कथा से स्पष्ट है।

गांधीजी ने एक Private gentleman की हैसियत से ही इस सम्बन्ध में अनुरोध किया था और यह अनुरोध मुख्य बातचीत से पृथक था। पंडित जवाहरलाल ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है—

"Nor did the government agree to Gandhijis hard pleading for the commutation of Bhagat Singh's death sentence. This also had nothing to do with the agreement and Gandhiji pressed for it separately because of the very strong feeling all over India on this subject. He pleaded in vain."

(Pt. Jawaharlal's autobiography P. 251)

तारीख २३ मार्च को सायंकाल इन तीनों को फांसी दे दी गई। यों तो कायदा सवेरे फाँसी देने का है, किन्तु इनके लिए इस नियम को भंग किया गया। उनकी लाशें रिश्तेदारों को नहीं दी गई, तथा बड़ी लापरवाही से उनको मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया, उनका फूल अनाथों के फूल की भाँति सतलज में डलवा दिया गया। सारा देश आंखों की पंखुड़ियां बिछाकर जिनका स्वागत करने को तैयार था, तथा जिनका जिन्दाबाद बोलते-बोलते मुल्क का गला बैठ गया था, उन पुरुषसिंहों की साम्राज्यवाद ने इस प्रकार हत्या कर डाली ? सरकार जनमत की कितनी परवाह करती है, वह एक इसी बात से कांग्रेस के नेताओं को जाहिर हो जानी चाहिए थी, किन्तु……। २ फरवरी को सरदार भगतसिंह ने अपने एक मित्र को गुप्त रूप से एक पत्र लिखा था, यह पत्र पंजाब केसरी में छपा था, हम उसे यहां उद्धृत करते हैं—

प्यारे साथियो,

इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुजर रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कान्फ्रेंस ने हमारे सामने शासन-विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं और कांग्रेस के नेताओं को निमन्त्रण दिया है कि वे आकर शासन-विधान तैयार करने के काम में मदद दें। कांग्रेस के नेता इस हालत में आन्दोलन को स्थगित कर देने के लिए उद्यत दिखाई देते हैं। वे आन्दोलन स्थगित करने के हक में फैसला करेंगे या उसके खिलाफ, यह बात हमारे लिए बहुत महत्व नहीं

रखती। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाजमी है। यह दूसरी बात हैं कि समझौता जल्दी हो या देरी में हो।

वस्तुतः समझौता कोई ऐसी हेय और निन्दा योग्य वस्तु नहीं, जैसा कि साधारणतः हम लोग समझते हैं। बल्कि समझौता राजनीतिक संग्रामों का एक अत्यावश्यक अंग है। यह जरूरी है कि कोई भी कौम, जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है, आरम्भ में असफल हो, और अपनी लम्बी जद्दो-जेहद के काम में इस प्रकार के समझौतों के जरिए कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाय, परन्तु वह अपनी लड़ाई की आखिरी मञ्जिल तक पहुँचते-पहुँचते अपनी ताकतों को इतना संगठित और दृढ़ कर लेती है कि उसका दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा जोरदार होता है कि शासक लोगों की ताकतें उनके उस वार के सामने चकनाचूर होकर गिर पड़ती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि उसकी चाल थोड़े समय के लिए धीमी हो तथा उनके नेता पीछे पड़ जाएँ किन्तु जनता की बढ़ती हुई ताकत समझौतों को ठुकराकर उस आन्दोलन को अन्त तक जय-युक्त करा ही देती है, नेता पीछे रह जाते हैं, आन्दोलन आगे बढ़ जाता है। यही विश्व-इतिहास का सबक है।

तुम्हारा
भगतसिंह

सरदार भगतसिंह ने अपने भाई के नाम जो आखिरी पत्र लिखा वह भी उद्धृत है। देखने की बात है, ऊपर का पत्र जाहिर करता है कि महीनों फांसी-घर में रहने के बाद भी उनका दिमाग कितना सही ढंग से काम करता था, नीचे के पत्र से हृदय का पता मिलता है। यह पत्र छोटे भाई कुलतारसिंह के नाम लिखा गया था—

अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर बहुत रंज हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आंसू मुझसे बर्दास्त नहीं होते। बर्खूर्दार हिम्मत में शिक्षा प्राप्त करना; और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना और क्या कहूं:—

उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे जफा क्या है,
हमें यह शौक देखें तो सितम का इन्तहा क्या है।
घर से क्यों खफा रहें खर्च का क्यों गिला करें।
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमां हूँ, ऐ अहले महफिल,
चिरागे सहर हूँ, बुझा चाहता हूँ।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है, फानी रहे या न रहे।

अच्छा आज्ञा ! "खुश रहो अहले बतन हम तो सफर करते हैं।" हौसला से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

भगतसिंह की फाँसी पर पं० जवाहरलाल—सरदार भगतसिंह पर पंडित जवाहरलाल ने अपनी आत्म-जीवनी मे जो कुछ लिखा है वह तो पहले ही लिखा जा चुका है। किन्तु भगतसिंह की फाँसी के बाद पं० जवाहरलाल ने जो कुछ कहा था वह नीचे उद्धृत किया जाता है, उन्होंने कहा था—

मैं भगतसिंह तथा उनके साथियों के अन्तिम दिनों में मौन धारण किए रहा, क्योंकि में डरता था कि कहीं मेरे किसी शब्द से फाँसी की सजा रद्द होने की सम्भावना जाती न रहे। मैं चुप रहा गोकि इच्छा होती थी मैं उबल पड़ूं। हम सब मिलकर उन्हें बचा न सके, गोकि वे हमारे इतने प्यारे थे, और उनका महान् त्याग तथा साहस भारत के नौजवानों के लिए एक प्रेरणा की चीज थी और है। हमारी इस असहायता पर देश में दुख प्रकट किया जायगा किन्तु साथ ही हमारे देश को इस स्वर्गीय आत्मा पर गर्व है और जब इंग्लैंड हमसे समझौते की बात करे तो हम भगतसिंह की लाश को भूल न जाएँ।"

पं० जवाहरलाल के इस बयान से और आत्मकथा में भगतसिंह पर जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसमें कितना प्रभेद है ? जून १९३१ के अंक Bharat नामक एक लन्दन से प्रकाशित होने वाले क्रान्तिकारी अखबार में इस बयान पर लिखा था "भगतसिंह व उनके साथियों की फाँसी को अहिंसा और त्याग पर स्पीचें

झोंकने का मौका बनाया गया, पं० जवाहरलाल ने इस मौके से लाभ उठाया और एक बार फिर भारतीय नौजवानों के नेतारूप में रङ्गमञ्च पर आए। कराची कांग्रेस में जवाहरलाल ही फाँसी वाले प्रस्ताव के प्रस्तावक के रूप में आए। यह प्रस्ताव कांग्रेस की अवसरवादी तथा ढोंग का उत्कृष्ट नमूना है। बाद के जमाने में आजाद-हिन्द फौज के विषय में काँग्रेस ने ऐसे ही प्रस्ताव पास किए। प्रस्ताव यों था—

The congress while dissociating itself from and disapproving of political violence in any shape or form places on record its admiration of the bravery and sacrifice of the late Sardar Bhagat Singh and his comrades Syt. Sukhdeo and Rajguru, and mourns with the bereaved families the loss of these lives. This congress is of opinion that this triple execution is an act of wanton vengeance and is a deliberate flouting of the unanimous demand of the nation for commutation. The congress is further of the opinion that government have lost the golden opportunity of promoting goodwill between the two nations, admittedly held to be essential at this juncture, aud of winning over to the peace the party which being driven to despair resorts to political violence.

इस पर Bharat ने जो टिप्पणी की उसको हम उद्धृत करते हैं—

Here for those who have eyes to see, is an example of the work of those "disciples of truth" what western demagogue ever exploied more cynically individual पeroism and the sentiments of the pubiic for their own ends ? Bhagat Singh's name was sung-up and down for two days in Congress Nagar, the parents of the dead men were exhibited every where—probably there charred flesh, had it been available would have been

thrown to the people, anything to appease the mob ? And to cap all no uncompromising condemnation of the government that carried out the act, but a pious reflection that "Government bave lost the golden opportunity of promoting goodwill between the two nations" etc.

२०

जेलों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध

ब्रिटेन के लेखकों तथा विचारशील व्यक्तियों के हमेशा न्याय की दुहाई देते रहने पर भी, ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हमेशा अपने पराजित शत्रुओं के साथ हद दर्जे का दुर्व्यवहार किया है। १८५७ में किस प्रकार गदरियों के साथ अमानुषिक अत्याचार किया गया, इसको यदि छोड़ भी दें तो भी इस सम्बन्ध में ब्रिटेन की नीति सम्पूर्ण रूप से प्रतिहिंसामूलक तथा जघन्य रही है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बर्मा-विजय के बाद बर्मा के बन्दी रणबाकुरों के साथ कैसा बर्ताव किया, उसकी गवाही तो बरेली सेन्ट्रल जेल के दो नम्बर हाते की चार नम्बर बैरिक दे रही हैं और मैंने इस बैरिक को देखा है। मुझे तथा मेरे साथियों को भी इन कोठरियों में रहना पड़ा है। ये कोठरियाँ क्या हैं, तहखाने या जिन्दों की कब्रें हैं। न कहीं से रोशनी आती है, दिन में भी रात रहती है। तिस पर गाली, मार, राजनैतिक कैदी न मानना इत्यादि। यानी हर प्रकार से कैदी की आत्मा का अपमान करना और ऐसा एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, महीनों, वर्षों और पंडित परमानन्द ऐसे व्यक्तियों के लिए तेईस या चौबीस साल।

सावरकर की जबानी जेल के दुखड़े—सावरकरजी ने मराठी में 'माझी जन्मठेप' नाम से अपने जेल-जीवन का वर्णन लिखा, हम उसमें के कुछ हिस्सों का अनुवाद देते हैं ताकि पाठकों को यह ज्ञान हो कि राजनीतिक कैदी कैसी परिस्थिति में रहते थे। सावरकर लिखते हैं—

'अंडमन में जो क्रान्तिकारी गए थे उनमें अलीपुर-षड्यन्त्र के कुछ बंगाली तथा महाराष्ट्र के गणेशपंत सावरकर और बामनराव जोशी थे। इसके अतिरिक्त राजनैतिक डकैती के पाँच-छः आदमी बाद को आए, इनमें से आजीवन कालेपानी की सजा तीन बंगाली तथा दो मराठों को थी। दूसरे बंगाली दस से तीन साल तक सजा पाए हुए थे। मैं जब वहाँ पहुँचा तो इलाहाबाद के 'स्वराज्य' पत्र के चार सम्पादक भी सात से दस वर्ष तक सजा लेकर वहाँ थे। किन्तु उन

पर राज्य-क्रान्ति करने का अभियोग नहीं था। उन पर अभियोग था राज-द्रोह का। केवल यही नहीं उनमें से लोग क्रान्ति के तत्व से बिल्कुल अपरिचित थे, बल्कि उनका व्यवहार इसके विरुद्ध था, किन्तु जब ये ही लोग राज-द्रोह में सजा पाकर क्रान्तिकारियों में रखे गए, तो ये क्रान्तिकारी उसूलों से भी परिचित हो चले, और इनका व्यवहार भी क्रान्तिकारियों की तरह होने लगा। × × × पहले जो लोग गए थे उनमें अधिकांश बंगाली थे, इसलिए शुरू-शुरू में राजनीतिक कैदी बंगाली कहलाते थे। किन्तु जब पंजाब आदि प्रान्तों से सैकड़ों भाई गिरफ्तार हो-होकर आने लगे, तो हमें ऐसा ही एक दूसरा अजीब नाम दिया गया, तब हम 'बमगोले वाले' कहलाए।'

'राजनीतिक कैदी शब्द जिन्होंने जन्मभर न सुना था उनसे और क्या आशा की जा सकती थी। उन लोगों ने सुन रखा था कि हम लोगों में से कुछ ने बम बनाए। बस हम सभी बम गोले वाले हो गए। यह नाम इतना फैल गया कि जेलर बारी को भी जब हम लोगों में से किसी की जरूरत पड़ती थी तो वह कहता था 'सात नम्बर के बमगोले वाले को ले जाओ' या 'अभी सब बमगोले वालों को बन्द करो।' मैंने कई बार कैदियों को समझाया कि बम चलाना हमारा उद्देश्य नहीं था, हम तो सरकार के विरुद्ध लड़ रहे थे। कुछ तो हममें से कलम से लड़ते थे, उनको जीभ वाला कहना ही अच्छा होगा, किन्तु जो नाम पड़ गया सो पड़ गया। मैंने कई दफे कहा कि हमें राजनीतिक कैदी कहा जाय, किन्तु बारी को यह नाम फूटी आँखों नहीं भाता था। अक्सर कैदी हमें बाबूजी कहा करते थे, किन्तु ऐसा सुन पाते ही बारी उस कैदी पर उबल पड़ते थे, कौन बाबू है ? साले ? ये सभी कैदी हैं। हम राजनीतिक कैदी नहीं हैं इस बात को कहते-कहते बारी कभी थकता न था। किसी ने यदि ऐसा हमें कह दिया तो बारी आपे से बाहर हो जाता था और कहता था 'हो:, कौन राजकैदी है ? वे तुम्हारे माफिक मामूली कैदी हैं। इन पर बदमाश कैदियों का डी लिखा है, नहीं देखते ?' बदमाश कैदियों को डी इसलिए मिलता था कि वे 'डेंजरस' यानी खतरनाक माने जाएँ। हम लोगों को भी डी मिलता था, भला सरकार की आँखों में हमसे अधिक खतरनाक कौन था ? इतना होने पर भी शुरू से आखिरी दिन तक मुझको कैदी बड़े बाबू कहकर पुकारते थे। कभी-कभी बारी भी भूल

कर कह जाता था 'ऐ हवलदार, जाओ सात नम्बर के बड़े बाबू को बुला लाओ।' × × × बारी ने लाख कोशिश की, ऊपर के दूसरे ऑफिसर सिर पटक मर मर गए, किन्तु हमें धीरे-धीरे सब राजकैदी कहने लगे।' यह एक बड़ी जीत थी।

कुछ दिन तक काम भी ठीक दिया जाता था, यानी नारियल का रेशा निकालना पड़ता था, किन्तु एक साहब कलकत्ता से आए तो देखा कि राजनीतिक कैदी आसपास बैठकर काम करते हैं। कभी करते कभी नहीं करते; तब ऊपर से लिख कर आया—इनसे सख्ती की जाए। बस इन लोगों को कोल्हू दिए गए, आपस में बात करने पर ही सात दिन की हथकड़ी मिलने लगी। बदला लेना था न? सख्त से सख्त काम दिए जाने लगे। जेल के डाक्टर बहुत अच्छे स्वास्थ्य वाले के अतिरिक्त किसी को यह सब काम नहीं देते थे, किन्तु इन राजनीतिक कैदियों का स्वास्थ्य खराब हो या भला ये सब सख्त काम उन्हें दे दिए जाते थे। चिकित्सा शास्त्र भी इस प्रकार साम्राज्यवाद के हाथ का कठपुतला हो गया। लोग कोठरियों में बन्द कोल्हू पेरते, थोड़ी देर के लिए रोटी लेने खुलते। यदि इस बीच में वह अभागा कैदी यह चेष्टा करता कि हाथ पैर धोले या बदन पर थोड़ी धूप लगा ले, तो नम्बरदार का पारा चढ़ जाता था, वह माँ-बहिन की सैकड़ों गालियाँ देता था। हाथ धोने को पानी नहीं मिलता था; पीने के पानी के लिए तो नम्बदार के सैकड़ों निहोरे करने पड़ते थे। पनीहा पानी नहीं देता था, जो कहीं से उसे एकाध चुटकी तम्बाकू की दे दी तो अच्छी बात है, नहीं तो उलटी शिकायत होती कि ये पानी फजूल बहाते हैं, और जेल में यह एक बड़ा जुर्म है। यदि किसी ने जमादार से शिकायत की तो वह उबल पड़ता—'दो कटोरी का हुक्म है, तुम तो तीन पी गया। क्या तुम्हारे बाप के यहाँ से आएगा? नहाने की तो कल्पना ही अपराध था, हाँ वर्षा हो तो कोई भले ही नहावे। खाने का भी यही हाल, खाना देकर कोठरी बन्द हो गई, कैदी खा पाया या नहीं, किन्तु बाहर से हल्ला होने लगा—'बैठो मत, शाम को तेल पूरा हो, नहीं तो पीटे जाओगे, और जो सजा मिलेगी सो अलग। ऐसे वातावरण में खाते तो कैसे, बहुत से ऐसा करते कि मुँह में कौर रख लिया, और कोल्हू में चलने लगे। सौ में एकाध ऐसे थे जो दिन-भर मेहनत करने पर

३० पौंड तेल निकाल पाते थे। जो न निकाल पाते उनपर जमादार नम्बरदार डंडेबाजी करते। लात, घूंसा, जूता पड़ता !······कालेज के छात्र तथा अध्यापक श्रेणी के राजनीतिक कैदियों को भी कोल्हू मिला, तो बीमार हो गए। किन्तु बारी के राज्य में १०२ डिग्री से कम बुखार नहीं माना जाता था, याने उसे न अस्पताल भेजा जाता, न काम से छुट्टी मिलती ? जिस बदकिस्मत को बुखार, दस्त या कै न होकर सिरदर्द, हृदय रोग या ऐसा कोई अप्रत्यक्ष रोग होता उसकी तो शामत हो आ जाती।

राजनीतिक कैदी कोल्हू चलाते-चलाते थक जाते, उनके सिर में दर्द होता, वे सिर थाम कर बैठ जाते। जमादार कहता—'क्या है, कोल्हू चलाओ।' राजनीतिक कैदी कहते 'सिर में दर्द है।' जमादार कहता—'मैं क्या करूँ, कोल्हू पीसो, डाक्टर को दिखाओ।' डाक्टर आए, किन्तु क्या करता, थर्मामीटर लगाया, पर बुखार नहीं। वह हिन्दुस्तानी था, बारी से डरता था, वह बगलें झाँकने लगता। उधर बारी फरमाते देखो डाक्टर, तुम हिन्दू हो, यह पोलिटिकल कैदी भी हिन्दू है। इनकी मीठी बातों की कहीं तुम खटाई में न पड़ जाओ, यह हमें डर है। कोई जाकर शिकायत कर दे कि तुम इनसे बोलते-बतलाते हो तो तुम्हें लेने के देने पड़ जाएँ। इसलिए सम्हल जाओ, समझे, नौकरी करो, माना कि तुम डाक्टरी पढ़े हो किन्तु हम भी गुणी हैं। कौन सच्चा बीमार है कौन झूठा, मैं फौरन ताड़ लेता हूँ।

एक बार ऐसा हुआ कि गणेशपंत के सिर में जोर का दर्द उठा, डाक्टर ने उसे अपने हुक्म से कोठरी से निकलवाया और कहा उसे अस्पताल भेजो। वह चले गए, कैदी को भेजने में जो लिखा-पढ़ी होती है, वह भी हो चुकी और गणेशपंत मयबिस्तरा के जाने लगे। इतने में आ गए बारी। उन्होंने गणेशपंत को अस्पताल जाते देखा तो सामने आए, लगे उसी पर बिगड़ने 'मुझ से क्यों नहीं पूछा, वह डाक्टर कौन होता है ? साले ले जाओ इसको वापस, काम में लगाओ। मैं समझ लूंगा उस डाक्टर को, मुझसे बिना पूछे इसे कोठरी से क्यों निकाला ? ओ साले मैं जेलर हूँ कि वह डाक्टर।' गणेशपन्त आखिर तक अस्पताल न जा सके। यह सारी तकलीफ विशेषकर राजनैतिक कैदियों के लिए थी। डाक्टर लोग यह समझते थे कि कहीं ऐसा न हो कि बड़े साहब शक

करें कि वह राजबन्दियों से सहानुभूति रखता है। यह सब झक-झक एक दिन की नहीं, बल्कि जन्मभर तक रहती थी।

अन्दमन में अन्न-वस्त्र की तकलीफ, मार-पीट, गाली यह सब असुविधा तो थी ही किन्तु एक और भयंकर तकलीफ थी, जिसको कहते संकोच होता है। वह था—मल-मूत्र पर भी रोक-टोक। सवेरे शाम और दुपहर के सिवा टट्टी पेशाब भी नहीं फिर सकते। रात को टट्टी फिरो तो सवेरे भंगी शिकायत करे और पेशी की नौबत आवे। खड़ी हथकड़ी हो गई तो आठ घन्टे बँधे खड़े रहो। सब कैदियों के साथ वही एक ही व्यवहार। दूसरे कैदी तो ऐसा कर लेते थे कि चोरी से दीवार पर ही पेशाब कर दिया, या खड़े-खड़े जमादार की आँख बचा सबके सामने। किन्तु राजनीतिक कैदी ऐसा कैसे करते, इसलिए वे हर तरह से घाटे में रहते।'

इस प्रकार सैकड़ों कष्ट थे। पुस्तकें लेन-देन में जहाँ मुकदमा चलता था वहाँ भला जीवन का क्या कहना। महामूर्ख बारी हजारों जेलर में से एक है। राजबन्दी क्या पुस्तक पढ़े, इसमें भी वे दखल देना चाहते थे। सावरकर की जबानी सुनिए, बारी पुस्तकों पर क्या राय रखते थे—'नान्सेन्स ? ट्रश ? यह कैन्ट, वैन्ट की किताबें मैं देना नहीं चाहता, इन्हीं किताबों को पढ़कर लोग हत्यारे हो जाते हैं और यह योग, वोग, थिओसफी की किताबें बेकार हैं, इनको न देना चाहिए। इन्हीं को पढ़कर तो लोग सनक जाते हैं, किन्तु सुपरिन्टेंडेंट इस बात को सुनते नहीं, मैं करूँ तो कैसे करूँ ? मैंने तो आज तक कोई किताब नहीं पढ़ी, फिर भी एक जिम्मेदार आदमी हूँ। किताबें पढ़ना यह औरतों का काम है।'............

एक आफत का मारा राजबन्दी भूगर्भशास्त्र पढ़ रहा था, तो उन्होंने अपनी कापी में नोट ले रक्खा "Pliocene Miocene Neolithic" वगैरह, अब बारी ने कॉपी जाँच की तो यह मिला, इन्होंने कहा पकड़ लिया What is this cypher 'यह गुप्तलिपि क्या है ?' सावरकर जी से कहा तो उन्होंने कहा "यह भूगर्भशास्त्र पढ़ता होगा।' किन्तु बारी खास आसनसोल में पैदा थे, वह अंग्रेजी नहीं समझता ? दूसरे दिन वह कैदी पेशी पर गया और दो हफ्ते के लिए उसकी किताबें छिन गईं !......

पंडित परमानन्द तथा आशुतोष लाहिड़ी ने बारी को ऐसे ही किसी अवसर पर उठाकर पटक दिया। उनको तीस बेंत लग गए। सरदार पृथ्वीसिंह वर्षों दिन-रात कोठरी में बन्द रहे। रामरक्खा नामक एक राजनीतिक कैदी ने जनेऊ पहिनने के अधिकार पर या किसी ऐसी ही छोटी बात पर अनशन कर प्राण दे दिया। उन दिनों इतनी छोटी बात कराने के लिए भी जान दे देनी पड़ती थी।

राजनीतिक कैदी जेल में गए तो साम्राज्यवाद ने डरा-धमकाकर उनको गिराने की कोशिश की, किन्तु इसमें वह सफल न रह सका। इस संघर्ष का इतिहास बड़ा ही रोमांचकारी है। यदि लिखा जाए तो इसी का एक प्रकांड इतिहास हो जाए किन्तु हम इस अध्याय में उसका संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

असहयोग के कैदी—१९२१ में जब असहयोग के सिलसिले में बहुत से राजनैतिक कैदी जेलों में आए तो उत्तर प्रदेश की सरकार ने उनको दो भागों विभक्त किया। (First class misdemenant) और (Secand class misdemenant), यह कोई स्थायी बन्दोबस्त नहीं था, फिर इस बन्दोबस्त में सब राजनीतिक कैदी भा नहीं आए थे। १९२१ में तो बहुत से राजनैतिक कैदी मामूली कैदी ही करार दिए गए थे, बल्कि उनके साथ बर्ताव उनसे भी खराब होता था।

काकोरी के कैदी अनशन में—१९२७ में काकोरी के कैदी जेलों में आए। इन लोगों ने जेल में आते ही विशेष व्यवहार की माँग रक्खी और इस सम्बन्ध में सरकार को अर्जी वगैरह भेजी। काकोरी-केस के नौजवान पहले ही से अनशन के पक्ष में थे, किन्तु बड़े उन्हें रोकते थे। खैर, आखिर किसी प्रकार बड़े भी एक दिन ऊब गए और सामूहिक रूप से विशेष व्यवहार की माँग रखकर अनशन किया। इस प्रकार से सैद्धान्तिक रूप में राजनीतिक विशेषकर क्रान्तिकारी कैदियों ने विशेष व्यवहार की माँग रखकर इसके पहिले कभी भारतीय जेलों में अनशन नहीं किया। अनशन का एलान होते ही सब लोग बाँट कर अलग अलग बन्द कर गए और हर प्रकार से चेष्टा की गई कि यह अनशन असफल रहे। नौजवानों से अलग अलग कहा गया कि उन्हें विशेष व्यवहार दिया जायगा और बूढ़ों से कहा गया कि उनका मुकदमा खराब हो जाएगा किन्तु सरकार की यह चाल व्यर्थ गई। अनशन के प्रारम्भ होते ही अधिकारी वर्ग जिस

बात के लिए ना, ना, कर रहे थे, उसी का नैतिक औचित्य तो मानने लगे किन्तु कानून की दृष्टि से अपनी विवशता प्रकट करने लगे। मुकदमा चलना बन्द हो गया और जज, मैजिस्ट्रेट, आई० जी० सभी बारी-बारी से जेल जाने लगे और अभियुक्तों को अनशन की वेवकूफी समझाने लगे।

अनशन के ग्यारहवें दिन प्रान्तीय सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली जिसमें यह घोषित किया गया था कि चूंकि अभियुक्त डकैत हैं, इसलिए सरकार उनके विशेष व्यवहार की माँग को स्वीकार नहीं कर सकती। यह विज्ञप्ति बकायदा सब अभियुक्तों को दिखलाई गई और उन लोगों से कहा गया कि अब तो कोई आशा नहीं है, उन्हें अनशन तोड़ देना चाहिए। इस विज्ञप्ति में एक और मजेदार बात यह कही गई थी कि अभियुक्तों ने अनशन के पहिले बाहर से क्लोरल नामक मादक द्रव्य मँगाया ताकि उसके सेवन से भूख की ज्वाला कम हो जाए। सरकार की इस सार्वजनिक अस्वीकृति के बाद ही अभियुक्तों की माँगों के सम्बन्ध में गम्भीर विचार होने लगे और अभियुक्तों से समझौते की बातें होने लगीं। इस बीच में अभियुक्तों को रबर की नली द्वारा खाना खिलाना प्रारम्भ हो गया था।

सोलहवें दिन संध्या समय चार बजे अनशन के सम्बन्ध में अन्तिम बातचीत शुरू हुई। इस बातचीत के छलस्वरूप यह तय हुआ कि अभियुक्तों को मेडिकल ग्राउन्ड पर वही व्यवहार दिया जायगा जो गोरे कैदियों को मिलता है, यानी कोई दस आने रोज मूल्य का खुराक प्रत्येक व्यक्ति को दी जायगी। काकोरी कैदियों ने इस बात को कबूल कर बड़ी गलती की, क्योंकि बाद को जब उनको कैद की सजा हुई तो उन्हें यह व्यवहार नहीं मिला। बात यह है कि यह सारा व्यवहार मेडिकल ग्राउन्ड पर मिला हुआ था और मेडिकल ग्राउन्ड के सम्बन्ध में अन्तिम फैसला करने का अख्तियार मेडिकल ऑफिसर को अर्थात् जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट को होता है। जब सजा पड़ने के बाद काकोरी के कैदियों ने इस सुविधा की माँग पेश की, तो उन्होंने यह कह कर उसे ठुकरा दिया कि इस समय उनके स्वास्थ्य के लिए इस व्यवहार की जरूरत नहीं है। इस बीच में यानी सजा पड़ने के बाद ही काकोरी के कैदी एक-एक दो-दो करके प्रांत की विभिन्न जेलों में बांट दिए गए। फिर सरकार को भी कोई जल्दी नहीं थी। कोई मुक-

दमा नहीं चल रहा था और मालूम तो ऐसा होता है कि काकोरी के कैदी भी तुले हुए नहीं थे, इसलिए उन्होंने जब सजा के बाद विभिन्न जेलों में अनशन किया तो उसका कुछ नतीजा नहीं हुआ। स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने जाकर इन अनशनों को खत्म करा दिया।

काकोरी ने जहाँ छोड़ा लाहौर ने वहाँ से उठाया—यह अनशन यहीं छूट गया किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध जेलों के अन्दर राजनैतिक कैदियों की उठाई हुई यह लड़ाई खत्म हो गई, बल्कि सच्ची बात तो यह है कि इस लड़ाई को बाद के राजनीतिक कैदियों ने उठाया और उन्होंने इस लड़ाई को सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने हवालात में उठाई और उन्होंने ऐलान कर दिया कि राजनीतिक कैदियों के विशेष व्यवहार लेकर के हीं तब वे छोड़ेंगे। जब लाहौर षड्यन्त्र के लोगों ने इस बात को देखा कि दो साथी तिलमिला करके राजनीतिक कैदियों के लड़ते हुए अपना प्राण दे रहें हैं तो उन्होंने ऐलान कर दिया कि यदि भगतसिंह-दत्त की माँग न मानी गई, तो १३ जुलाई से वे भी अनशन कर देंगे। अब सरकार को इस पर बड़ी फिक्र पैदा हुई, क्योंकि सरकार देख रही थी कि इन अनशनों का देश के जनमत पर क्या प्रभाव हो रहा है। ३० जून को सारे भारतवर्ष में बड़े जोरों के साथ भगत सिंह-दत्त दिवस मनाया जा चुका था, किन्तु सरकार ने इस बात पर कोई ख्याल नहीं किया।

जब सरकार ने लाहौर षड्यन्त्र वालों की धमकी सुनी तो उनसे यह चाल चली और कहा मेडिकल ग्राउन्ड पर विशेष व्यवहार ले लो। भगतसिंह एवं दत्त जानते थे कि काकोरी वालों को ऐसी ही बातें कह कर चकमा दिया गया गया था। जब श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने भगतसिंह को यह बात मान लेने के लिए कहा तो उन्होंने साफ कह दिया एक बार सरकार यह चाल देकर लोगों को धोखा दे चुकी है, वे अब इसमें नहीं पड़ सकते। इस प्रकार भगतसिंह तथा दत्त के पास तार तथा संदेश आए, किन्तु उन्होंने किसी की न सुनी और अपने अनशन-युद्ध को जारी रखा। बलात्पान शुरू हो गया, अभियुक्तों के अनुसार इसका तरीका यह था कि प्रत्येक आदमी के लिए सात-सात आठ-आठ आदमी बुलाए जाते थे। एक आदमी सिर, दूसरा छाती पर बैठ जाता था और

शेष हाथ-पैर पकड़ लेते थे। फिर रबड़ की लम्बी नलियों के जरिये से उनकी नाक के रास्ते पेट तक दूध पहुँचाया जाता था।

यतीन्द्रदास की हालत खराब—१३ जुलाई को सब लाहौर के कैदियों ने अनशन शुरू कर दिया था। दत्त की हालत पहले से ही खराब हो रही थी, अब यतीन्द्रदास के अनशन में शामिल होने से उनकी हालत भी खराब होने लगी। यतीन्द्रदास का स्वास्थ्य पहले से ही खराव था, अनशन करने से उनकी हालत और भी खराब हो गई और वजाय दत्त के लोगों को अब यतीन्द्रदास के विषय में चिन्ता पैदा हुई। हालत खराब होते-होते यतीन्द्रदास की हालत बहुत खतरनाक हो गई।

पंडित मोतीलाल का बयान—पंडित मोतीलाल भी इस विषय में चुप न रह सके। उन्होंने अखबारों में वक्तव्य देते हुए कहा कि भगतसिंह, दत्त, यतीन्द्रदास ने यह अनशन वहुत दिनों से कर रखा है, वे और उनके साथी यह व्रत अपने लिए नहीं कर रहे हैं। विद्यार्थी जी ने अपनी आँखों से लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्तों के शरीर पर चोटों के निशान देखे हैं जो उन्हें बलात्पान कराते समय आए हैं।

पंडित जवाहरलाल का बयान—पंडित मोतीलाल स्वयं तो न जा सके, किन्तु पं० जवाहरलाल जेलों में जाकर अनशनियों से मिले। उन्होंने अखबारों को वयान देते हुए कहा—"यतीन्द्रदास की हालत वहुत खराब हो गई है। वह बहुत कमजोर हो गए हैं, उनमें करवट बदलने की ताकत नहीं है, वह बहुत धीरे-धीरे वोलते हैं। यथार्थ में देखा जाए तो वह मौत की ओर बढ़ रहे हैं। मुझे इन बहादुर नौजवानों की तकलीफ देखकर बड़ा कष्ट हुआ। वे, मालूम होता है; अपने प्राणों की बाजी लगाकर इस लड़ाई में शामिल हैं। वे चाहते हैं राजनीतिक कैदियों के साथ राजनीतिक कैदियों की तरह बरताव हो। मुझे पूरी उम्मीद है कि यह तपस्या सफलता से मंडित होकर ही रहेगी।"

इधर जनमत जोर पकड़ता जा रहा था। सरकार को यह बात नापसन्द थी कि क्रान्तिकारियों का इस प्रकार प्रचार हो। ६ अगस्त को एक सरकारी विज्ञप्ति निकली, किन्तु उस विज्ञप्ति में सरकार ने कोई ऐसी बात नहीं लिखी जिससे जनमत सन्तुष्ट होता, बल्कि ऐसी बातें थीं जिनसे जनमत और रुष्ट

होता। सरकार के लिए भगत, दत्त, यतीन्द्र की माँगें मान लेना बड़ी कठिन बात थी, क्योंकि राजनीतिक कैदियों को राजनीतिक कैदी मान लेने का अर्थ यह होता था कि सरकार जेलों के अन्दर जो अपने शत्रुओं को बराबर प्रतिहिंसा की आग में दग्ध कर उनको गिराने की चेष्टा करती थी, उस उपाय से हाथ धोती। आतङ्कवाद और निरे आतङ्कवाद पर प्रतिष्ठित ब्रिटिश सरकार के लिए यह बहुत बड़ा त्याग था, सरकार भरसक इस बात को मानना नहीं चाहती थी।

गवर्नर उतरे, फिर भी नहीं उतरे—उधर अनशन जारी रहा। लाहौर के कैदी सरकार की इस धौंस में न आए, पंजाब के गवर्नर साहब भी परेशान थे। क्या करें क्या न करें इसमें उनकी अक्ल काम नहीं देती थी। वह शिमला शैल से उतर कर लाहौर की यथार्थता से तपती हुई समतल भूमि में आए। लोगों ने समझा जिस प्रकार गवर्नर बहादुर ऊपर से नीचे उतरे, उसी प्रकार सरकार भी कुछ नीचे उतरेगी, किन्तु यह आशा व्यर्थ हुई। सरकार तो खून की प्यासी थी, वह दो-चार की बलि चाहती थी। एक तरफ झूठी शान थी, दूसरी तरफ थी सच्ची आन। गवर्नर आए, पता भी लगा कि वह जेल अधिकारियों से मिले, किन्तु वहाँ कुछ भी नहीं हुआ। वह जैसी चोरी से आए थे, वैसे ही चले गए।

एक और विज्ञप्ति—६ अगस्त को सरकार ने एक और विज्ञप्ति निकाली। इसमें भी कोई खास बात नहीं थी। अगस्त के दूसरे सप्ताह में पंजाब सरकार ने एक जेल कमेटी बना दी। सरकार झुकी तो, किन्तु दिखाना चाहती थी कि वह अकड़ में है।

इस अनशन की सहानुभूति में विभिन्न जेलों में अनशन हुआ। मुकदमे का यह हाल था कि उसकी तारीखें बराबर बढ़ती चली आ रही थीं। जेल जाँच कमेटी के सभापति पंजाब की जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल थे। वह एक दिन जेल तशरीफ ले गए और उन्होंने अभियुक्तों को आश्वासन दिया, "मैं जेल कमेटी का प्रधान हूँ, मैं आप लोगों को आश्वासन देता हूँ कि मैं आपकी सब शिकायतों को दूर करूंगा, आप अनशन त्याग दें।"

अभियुक्त आश्वासन में आने वाले नहीं थे। उन्होंने देख लिया था कि इन आश्वासनों का क्या मूल्य होता है, उन्होंने उनकी बातें मानने से इनकार किया।

पंजाब जेल कमेटी ने एक उपसमिति बना दी कि अनशन तुड़ाए। वह बराबर अभियुक्तों से मिलती रही। दो सितम्बर को संध्या समय श्री यतीन्द्र नाथ दास के अतिरिक्त लाहौर के सभी कैदियों ने उपसमिति के समझाने पर अनशन तोड़ दिया। इस उपसमिति ने दास के लिए यह सिफारिश की कि वह छोड़ दिए जाएँ, क्योंकि उनकी हालत बड़ी खराब हो गई थी।

यतीन्द्रदास की अन्तिम घड़ियाँ—सितम्बर के प्रारम्भ से ही डॉक्टर लोग कह रहे थे कि यतीन्द्रदास के जीने की कोई आशा नहीं, रक्त का दौरा केवल हृदय के ही आस-पास था, सारा शरीर सन्न पड़ता जा रहा था। दास यह जानते थे कि वह धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। फिर इस पर दारुण यन्त्रणा भी थी। दास के रिश्तेदारों से कहा गया कि वे जमानत दें, किन्तु दास से इस विषय में पूछा गया तो उन्होंने इनकार कर दिया। इस पर सरकार के इशारे पर कुछ व्यक्तियों ने चुपके से जमानत दाखिल कर दी, सरकार को तो अपनी झूठी इज्जत बचानी थी। इतने पर भी दास ने सरकार का काम बनने न दिया। जमानत के कागज पर यतीन्द्रदास के दस्तखत होने जरूरी थे, यतीन्द्रदास ने इस कागज पर दस्तखत करने से इनकार किया। सरकार ने इस पर यह उड़ा दिया कि दास तो बिना शर्त रिहा होने के लिए अनशन कर रहे हैं, किन्तु जनता सब जानती थी। जालिम होने के अलावा सरकार अब जनता की आँखों में झूठी भी हो गई।

यतीन्द्रदास अब अकेले अनशन कर रहे थे, उनके साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया था !!!

दास की मृत्यु अब निश्चित थी। साम्राज्यवाद काफी झुक चुका था, वह अब इससे अधिक झुकने के लिए तैयार नहीं था। उसका काफी अपमान हो चुका था, वह अब इससे अधिक बरदाश्त नहीं कर सकता था। यतीन्द्रदास के विषय में जनता जान गई थी। वह कुछ ही देर के मेहमान हैं, उनके लिए इस वक्त यह शेर कितना मौजूँ था।

कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले महफिल
चिरागे सहर हूँ बुझा चाहता हूँ……

सरकार ने सोचा कि कहीं यतीन्द्रदास के मरने पर लाहौर में दंगा न हो

जाए, इसलिए उसने बाहर से अधिक पुलिस मँगा ली। उधर शहीद की मिट्टी के लिए तैयारियाँ होने लगीं। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने उनकी लाश को कलकत्ता भेजे जाने के लिए ६०० रु० भेज दिए। बंगाल चाहता था कि अपने इस लाल को मरने के बाद अपनी ही गोद में स्थान दे। इधर बम्बई वालों ने कहा—"खर्चा हम देंगे।" इस पर पंजाब वालों ने कहा, "क्या पाँच नदियों वाला यह प्रान्त इतना गरीब हो गया है—नहीं, खर्च हम देंगे।"

यतीन्द्रनाथ दास की शहादत—यतीन्द्रनाथ की तपस्या अब पूरी हो चुकी थी, १३ सितम्बर को एक बजकर पाँच मिनट पर यतीन्द्र, देश का प्यारा यतीन्द्र बोरस्टल जेल में साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ते हुए शहीद हो गया। शहीदों का मरना विशेषकर यतीन्द्रदास का मरना ऐसे था जैसे सब धुआँ खत्म हो गया और रह गई केवल एक दीप्ति जो हमारे सामूहिक जीवन को उज्ज्वल बनाती है।

साम्राज्यवाद द्वारा यतीन्द्रदास की इस नृशंस हत्या के बाद यह लड़ाई फिर भी जारी होती है, वह कब और किसके द्वारा बाद को लिखा जाता है।

लाहौर वाले फिर अनशन में—पंजाब जेल कमेटी की खिचड़ी पकती रही, सन् १९३० की फरवरी में लाहौर वालों ने सरकार की बातों से निराश होकर फिर अनशन कर दिया। बात यह है कि लाहौर वालों ने सुना कि उनकी सजा सुनाने के दिन करीब आ रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि वे भी काकोरी वालों की तरह सरकार द्वारा उल्लू बनाए जाएँ। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी सोचा कि कहीं यतीन्द्रदास का त्याग उनके बाद वालों की वजह से व्यर्थ न जाए, इसलिए उन्होंने अनशन कर दिया।

काकोरी वाले भी आ गए—इसकी खबर बरेली जेल में बन्द सर्वश्री राजकुमारसिंह, मुकुन्दीलाल, शचीन बक्शी तथा मन्मथनाथ गुप्त को लगी, ये जैसे तैयार ही बैठे थे, इन्होंने ८ फरवरी से इन्हीं माँगों पर अनशन कर दिया। देश में एक तुमुल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, अखबार आग उगलने लगे। सारे देश को अनशन से सहानुभूति थी, जो लोग असहयोग वगैरह में जेलों में जाकर अकथनीय कष्टों का सामना कर चुके थे, वे सभी चाहते थे कि जेलों में साम्राज्यवादी बर्बरता का अन्त हो। देश में एक तरफ से लेकर दूसरी तरफ

तक इसके लिए सभाएँ, प्रदर्शन आदि हुए।

भारत सरकार की विज्ञप्ति—आखिर परेशान होकर भारत सरकार ने ९ फरवरी को एक विज्ञप्ति निकाली। इस विज्ञप्ति में भूमिका के तौर पर जो कुछ लिखा गया था, उससे यह ध्वनि निकलती थी कि करुणासागर भारत सरकार तथा उसके कर्मचारी बहुत दिनों से कैदियों के दुखड़ों पर दुश्चिन्ता के कारण रात को सोते नहीं थे, दिन-रात इसी चिन्ता में पड़े हुए थे कि किस प्रकार कैदियों की भलाई हो। भारत सरकार इसी उद्देश्य से प्रान्तीय सरकारों से मशविरा ले रही थी। फिर प्रान्तीय सरकारें वहाँ के प्रतिष्ठित लोगों की राय ले रही थीं। असेम्बली के कुछ सदस्यों से भी सरकार ने इस सम्बन्ध में बातचीत की। करुणानिधान ब्रिटिश सरकार भला कोई काम किसी से बिना पूछे कैसे कर सकती थी, फिर इस मामले में यह दुर्भाग्य रहा कि लोगों ने बिल्कुल जुदी-जुदी रायें दीं। फिर भी करुणामय सरकार अपनी करुणा से विवश थी, कुछ तो उसे करना ही था इसलिए सरकार ने नियम बनाए हैं। इन्हीं चिकनी-चुपड़ी बातों से सरकार न मालूम किसे बरगलाना चाहती थी। सरकार का उद्देश्य तो साफ था कि लोग इन नियमों के लिए सरकार को धन्यवाद दें, न कि यतीन्द्रदास या इस सम्बन्ध में दूसरे अनशनकारियों को।

ए० बी० सी० श्रेणियाँ—सरकार ने इस विज्ञप्ति के अनुसार कैदियों को तीन हिस्सों में विभाजित किया (१) ए (२) बी और (३) सी।

ए श्रेणी में वे कैदी आ सकेंगे जो (क) सच्चरित्र एकबाड़ा (nonhabitual) कैदी हों। (ख) सामाजिक हैसियत, शिक्षा तथा जीवनचर्या की दृष्टि से ऊँची रहन-सहन के आदी हों। (ग) उनको निष्ठुरता, लोभ, नैतिक पतन, राजद्रोहात्मक या पहले सोची हुई हाथापाई, सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध, बम, तमंचा बन्दूक से सम्बद्ध किसी अपराध में सजा न हुई हो।

बी श्रेणी उनको मिलेगी जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा तथा जीवनचर्या से ऊँची रहन-सहन के आदी हों। दुबाड़े कैदी भी इस श्रेणी में आ सकते हैं।

सी श्रेणी में वे सब कैदी समझे जाएँगे जो ए या बी में नहीं आते।

अब तक जेल में गोरे और हिन्दुस्तानियों में जाति के कारण जो विभेद था, इस विज्ञप्ति में यह घोषित किया गया कि अब वह भेद न किया जाएगा।

इस विज्ञाप्ति में कहा गया कि ए तथा बी श्रेणी वालों को खाना-पहनना, असवाब, रहने की जगह, पढ़ने की सुविधा, चिट्ठी, मुलाकात सभी मामलों में अच्छा व्यवहार मिलेगा। सख्त मशक्कत भी उनसे न ली जाएगी।

विज्ञप्ति का विश्लेषण—इस विज्ञप्ति को किसी भी प्रकार सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता था। यतीन्द्रदास ने तो अपना प्राण राजनीतिक कैदी मात्र को अच्छा व्यवहार दिलवाने के लिए दिया था। किन्तु यहाँ तो सरकार ने कुछ और ही खिचड़ी पकाई थी। साफ था ही कि कुछ थोड़े से राजनीतिक कैदी भले ही ए. तथा बी. श्रेणी में आ जाते, किन्तु साम्राज्यवाद के विरुद्ध अधिकांश लड़ने वाले गरीब होते हैं। उनको इस विज्ञप्ति से कोई लाभ न होता। हमारे नेताओं ने लेकिन एक स्वर से इस विज्ञप्ति का समर्थन किया। बात यह है कि कुछ बड़े नेताओं के अतिरिक्त जिनको सरकार अपने विशेष अधिकार से विशेष व्यवहार दे देती थी इस विज्ञप्ति से छोटे नेताओं को भी आशा बंध गई कि उनका जेल कष्ट दूर हो गया। और उन्होंने अनशनियों को तार दिया कि यह विज्ञप्ति कबूल करने लायक है।

अनशन भंग—लाहौर षड्यन्त्र वाले काकोरी के हवालातियों से तो अधिक बुद्धिमान और साबित कदम निकले, किन्तु यहाँ आकर वे भी गच्चा खा गए। उन्होंने यह मान लिया कि सभी क्रान्तिकारी कैदी तथा राजनीतिक कैदी खुद-ब-खुद ए. या बी. में आ जाएँगे। उनको तशरीहन ऐसा कहा गया होगा, उन्होंने अनशन तोड़ दिया।

काकोरी के तीन व्यक्ति डटे रहे—यह विज्ञप्ति तथा यह खबर कि सब लाहौर वाले अनशन तोड़ चुके, काकोरी के तीन अनशनकारियों को अर्थात् राजकुमारसिंह, शचीन्द्रनाथ बख्शी आदि को बतलाया गया, किन्तु ये दूध के जले हुए थे, छाछ को फूंक-फूंककर पीने वाले हो गए थे। वे टस-से-मस नहीं हुए। उन्होंने कहा कि पहली बात तो यह है कि इस प्रकार का वर्गीकरण गलत है, किन्तु यदि मान भी लिया जाए कि यह सन्तोषजनक है तो इसका क्या ठिकाना कि हम उच्च वर्ग में मान लिए जायेंगे। बात बहुत ठीक थी। तजरबा ने बतलाया कि लाहौर वालों ने विज्ञप्ति पर अनशन तोड़कर गलती की, बाद को लाहौर वाले सब कैदियों को वर्षों तक 'सी' श्रेणी में रखा गया और उत्तर-प्रदेश

की कांग्रेसी सरकार की पेंच की वजह से ही पंजाब सरकार ने उन्हें ७ वर्ष बाद विशेष व्यवहार दिया। तीनों व्यक्ति डटे रहे। बराबर उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया, किन्तु उन्होंने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की। सरदार भगतसिंह, पं० जवाहरलाल नेहरू, बाबू सम्पूर्णानन्द आदि व्यक्तियों के निकट से तार आते रहे—अनशन तोड़ दो, किन्तु इन लोगों ने कुछ न सुना। चन्द्रशेखर आजाद उन दिनों जीवित थे, उन्होंने यह खबर भेजी—तुम लोग निश्चिन्त होकर अनशन तोड़ दो, मेरा विश्वास है कि तुम लोगों को सरकार विशेष व्यवहार देगी। इसके साथ ही उन्होंने अपने आजादाना ढंग से इतना जोड़ दिया "यदि इन्होंने तुम्हें विशेष व्यवहार नहीं दिया तो हम प्रतिज्ञा करते हैं कि दो-चार जेल के बड़े-बडे अफसरों को समाप्त कर देंगे।" पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने यह सन्देशा भेजा कि हमें विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि आप लोगों के विशेष व्यवहार के लिए आज्ञा जारी कर दी गई है, किन्तु इनमें से किसी भी व्यक्ति की बात पर यह अनशन नहीं तोड़ा गया।

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी—इसके बाद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी भी आए और घंटों तक इन कैदियों से बातचीत करते रहे, किन्तु उसका कोई नतीजा नहीं हुआ और अनशन जारी रहा। इसके बाद बहुत दिनों तक अनशन चला। अन्त में ५३वें दिन सरकार की ओर से एक पत्र आया जिसमें यह लिखा था कि सब काकोरी कैदी इस आज्ञा के द्वारा श्रेणी-भुक्त कर दिए जाते हैं। किन्तु राजकुमारसिंह, शचीन्द्र बख्शी तथा मन्मथनाथ गुप्त तभी बी० श्रेणी भुक्त किए जायेंगे जब वे अनशन तोड़ चुकेंगे। इस प्रकार सरकार ने अपनी शान तो बचा ली, किन्तु उसे झुकना पड़ा। अनशन टूट गया। जिस युद्ध को काकोरी कैदियों ने ही उत्तर भारत में उठाया था, वह उन्हीं के हाथ से प्रत्यक्ष रूप से सफलता से मंडित हुआ। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि श्री यतीन्द्रनाथ दास के ही त्याग की वजह से राजनीतिक कैदियों की दुर्दशा की ओर जनता की दृष्टि गई और सरकार मजबूर हुई। इस सम्बन्ध में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत जीत हुई वह श्री यतीन्द्रनाथ दास के महान त्याग के कारण ही हुई। फिर भी स्मरण रहे कि जिन माँगों के लिए यतीन्द्रनाथ दास ने यह महान् त्याग किया था वह पूर्ण रूप से पूर्ण नहीं हुई।

मणीन्द्र बनर्जी जेल में शहीद—इसके बाद भी जेलों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध जारी रहा। १९३५ में फतहगढ़ सेन्ट्रल जेल में श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने साथियों सहित एक अनशन किया था, जिसमें यह माँग रखी थी कि सी० श्रेणी के राजनीतिक कैदियों को दिन-रात कोठरियों में न रखा जाए। दूसरी माँग यह थी कि सरकार ने जो वायदा किया था कि अब जेलों में भारतीय और गोरों में भेदबुद्धि न रखी जाएगी, उसे पूरा किया जाए। इसी प्रकार और कई माँगें थीं, जिनका यहाँ पर विस्तार के साथ उल्लेख करने की जरूरत नहीं है। इस अनशन में यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, रमेशचन्द्र गुप्त, रणधीर सिंह आदि शामिल थे। इस अनशन के फलस्वरूप २० जून १९३४ को मणीन्द्रनाथ बनर्जी बड़ी ही करुण अवस्था में शहीद हो गए।

योगेश चटर्जी तथा बख्शी जी का अनशन—इस मृत्यु का समाचार जब आगरा जेल में बन्द श्री योगेशचन्द्र चटर्जी तथा श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी को मिला तो उन लोगों ने चार माँगें रखकर अनशन शुरू कर दिया।

(क) मणीन्द्र बनर्जी की मृत्यु पर तहकीकात की जाए।

(ख) भविष्य में ऐसी मृत्यु न हो, इसलिए सब राजनीतिक कैदी जेल में एक साथ रखे जाएँ।

(ग) राजनीतिक कैदियों को दैनिक समाचार-पत्र दिए जाएँ।

(घ) अन्डमन के सब राजनीतिक कैदी भारत वापस बुला लिए जाएँ।

योगेश बाबू ने इस अनशन को बड़ी बहादुरी के साथ १४१ दिन तक जारी रखा। इस अनशन को उन्होंने जेल के आई० जी० के आश्वासन पर तोड़ा था, किन्तु यह आश्वासन झूठा साबित हुआ और जब उन्होंने देखा कि उनकी शर्तें पूरी नहीं हो रही हैं तो उन्होंने पुन: अनशन प्रारम्भ किया जो १११ दिन तक चला। इसके फलस्वरूप उत्तर-प्रदेश के सब राजनीतिक बन्दी एक साथ नैनी सेन्ट्रल जेल के एक खास वार्ड में रख दिए गए और उन्हें एक दैनिक समाचार पत्र दिया गया। उनकी अन्य दो माँगें पूरी नहीं हुईं।

शचीन्द्र बख्शी का अनशन—जेलों के अन्दर की इस लड़ाई ने एक दूसरा ही रूप धारण किया। जब काकोरी कैदी शचीन्द्र बख्शी ने छूटने की माँग रख

कर अनशन कर दिया। राजनीतिक कैदियों को, विशेषकर काकोरी कैदियों को, जेल में बारह साल के करीब हो गए थे इसलिए जब यह माँग रखी गई तो जनता ने उसका पूरा साथ दिया। उधर अन्डमन में भी, राजनीतिक कैदियों ने इस आन्दोलन को उठा लिया और उन्होंने एक के बाद एक दो दफे अनशन करके सब राजनीतिक कैदियों को देश में लाने के लिए सरकार को मजबूर कर दिया।

२१

प्रथम लाहौर षड्यन्त्र के बाद

प्रथम लाहौर षड्यन्त्र की गिरफ्तारियों के बाद दल काफी विध्वस्त हो चुका था, किन्तु सेनापति आजाद अपनी प्रचण्ड कर्म-शक्ति, विपुल उद्यम तथा कभी न टूटने वाले साहस के साथ मौजूद थे। श्री भगवतीचरण एक बहुत ही सुलझे हुए क्रान्तिकारी थे, वह भी मौजूद थे। अतएव दल का काम फिर से चलने लगा। इस जमाने के मुख्य कार्यकर्ताओं में कई स्त्रियाँ भी थीं। इनमें सबसे प्रमुख श्रीमती सुशीलादेवी उर्फ दीदी और श्रीमती दुर्गादेवी उर्फ भाभी थीं। इसके अतिरिक्त यशपाल एक बहुत ही साहसी तथा सुलझे हुए क्रान्तिकारी थे। मुखबिरों के बयान के अनुसार हंसराज, सुखदेवराज, तथा कुमारी प्रकाशवती (बाद को श्रीमती यशपाल) इन लोगों में सम्मिलित थीं। प्रथम लाहौर षड्यन्त्र के सिलसिले में श्री भगवतीचरण तथा यशपाल दिल्ली चले आए और अब से एक प्रकार से दल का केन्द्र दिल्ली हो गया। इन्द्रपाल के अनुसार २७ अक्टूबर १९२९ को वायसराय की गाड़ी उड़ा देने की योजना को कार्यरूप में परिणत करना चाहा था, किन्तु कई कारणों से यह बात रोक दी गई। दूसरी एकाध तारीख और टल गई। अन्त में २३ दिसम्बर १९२९ तक ही यह योजना कार्यरूप में परिणत हो सकी।

वायसराय की गाड़ी पर बम—वायसराय की गाड़ी उड़ाने के लिए बहुत दिन से तैयारी करनी पड़ी थी। इन्द्रपाल एक साधु के वेश में दिल्ली से नौ मील दूर निजामुद्दीन नामक स्थान पर जाकर डटा रहा। उसका मतलब निरीक्षण करना था। कहा जाता है, इस कार्य में सबसे बड़ा हाथ यशपाल का ही था। निश्चित तारीख पर वायसराय कोल्हापुर से दिल्ली आ रहे थे। कई दिन पहले ही लाइन के नीचे बम गाड़ दिए गए थे। उन बमों का सम्बन्ध एक बिजली के तार के जरिये कई सौ गज दूरी पर स्थित एक बैटरी से था। इस बात की तारीफ करनी पड़ेगी कि कई दिन पहले से यह बम गड़े रहे और उन

पर से होकर बहुत-सी गाड़ियाँ निकल गईं, किन्तु वे न फटे। जब वायसराय की गाड़ी बमों के ऊपर आई तो तार नीचे से खींच दिया गया और बड़े जोर का धड़ाका हुआ। थोड़ी-सी देर हो गई, यानी कई एक सेकण्ड की देर हो गई, इसलिए वायसराय जिस डिब्बे में थे, वह न उड़कर उससे तीसरा डिब्बा उड़ गया। सरकार में इस बात से बड़ा कोहराम मचा और बड़े जोर की तहकीकात होने लगी। कांग्रेस के नेताओं ने इसकी बड़ी निन्दा की। लाहौर कांग्रेस में जहाँ पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव ढंग से पास हुआ, वहाँ उसके साथ ही एक प्रस्ताव इस आशय का पास हुआ, "यह कांग्रेस वायसराय की ट्रेन पर बम चलाने के कृत्य की निन्दा करती है और अपना यह निश्चय फिर से प्रकट करती है कि इस प्रकार के कार्य न केवल कांग्रेस के उद्देश्य के प्रतिकूल हैं अपितु उससे राष्ट्रीय हित की हानि होती है। यह कांग्रेस वायसराय, श्रीमती इरविन तथा गरीब नौकरों सहित उनके साथियों का इस बात के लिए अभिनन्दन करती है कि वे सौभाग्य से बाल-बाल बच गए।"

इसके अतिरिक्त क्रान्तिकारियों ने भगतसिंह वगैरह को जेल से भगाने की योजना बनाई, किन्तु बहुत दिनों तक प्रयत्न करने के बाद भी यह योजना सफल न हो सकी।

भगवतीचरण की मृत्यु—भगवतीचरण की मृत्यु क्रान्तिकारी इतिहास की एक दर्दनाक घटना है। इसके सम्बन्ध में कई तरह की बातें सुनी जाती हैं। जो कुछ मालूम हो सका उसमें केवल इतना निर्विवाद है कि २८ मई १९३० के साढ़े चार बजे शाम को भगवतीचरण एक बम लेकर प्रयोग करने के लिए रावी के किनारे सुनसान जगह में गए। वहाँ वह बम एकाएक फट गया और भगवतीचरण बहुत सख्त घायल हो गए। कहते हैं चोट से उनकी सारी अन्तड़ियाँ पेट से बाहर निकल आई थीं, किन्तु फिर भी अन्तिम समय तक उनको दल की ही धुन थी। वह तीन-चार घण्टे तक जीवित रहे, किन्तु कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आईं या पैदा की गईं जिससे उनको डॉक्टरी सहायता नहीं पहुँचाई जा सकी। जिस समय भगवतीचरण मरे हैं, कहा जाता है कि उनके पास उस समय कोई नहीं था। भगवतीचरण की मृत्यु का पूरा हाल शायद ही कभी इतिहास को मालूम हो। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनका त्याग भारतीय

क्रान्तिकारी इतिहास में एक आदर्श वस्तु है। वह धनी थे, युवक थे, किन्तु उन्होंने इन सब बातों पर लात मारकर आजाद का साथ दिया और उस मार्ग का अवलम्बन किया, जिसके नतीजे में उनकी इस प्रकार अत्यन्त करुणाजनक अवस्था में एक अनाथ की तरह अकाल मृत्यु हुई। भगवतीचरण की लाश को उनके साथियों ने रावी ही में डुबो दिया। यह एक क्रान्तिकारी की मौत थी।

इसके बाद कई जगह बम फटे, डाके की योजनाएँ बनाई गईं, तथा एकाध हत्या की भी योजना बनी, किन्तु इन लोगों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अगस्त १९३० में जहाँगीर लाल, रूपचन्द, कुन्दनलाल तथा इन्द्रपाल गिरफ्तार हुए। धीरे-धीरे इस षड्यन्त्र में छब्बीस अभियुक्त पकड़े गए। चन्द्रशेखर आजाद, यशपाल, भाभी, दीदी, प्रकाशवती और हंसराज इस मुकदमे में फरार करार दिए गए। यह मुकदमा पाँच दिसम्बर १९३० को चल निकला।

जगदीश—पुलिस जिन व्यक्तियों की तलाश में थी, उनमें सुखदेवराज भी एक थे। ३ मई १९३१ को पुलिस को यह खबर मिली कि सुखदेवराज एक अन्य युवक के साथ लाहौर के शालीमार बाग में मौजूद हैं। पुलिस ने जल्दी उस बाग को घेर लिया। गोली का जवाब गोली से देते हुए जगदीश मारे गए। जगदीश के नाम से कोई मुकदमा नहीं था। वह इन दिनों कालेज में पढ़ता था, कई साल पहले वह १४४ तोड़ने के सिलसिले में गिरफ्तार हो चुका था। उसकी उम्र शहीद होते समय २२ या २३ वर्ष की थी।

सुखदेवराज का मुकदमा स्पेशल ट्रिब्युनल के सामने चला। पहले जिस द्वितीय लाहौर-षड्यन्त्र का जिक्र किया गया है वह तीन साल तक चलकर १३ दिसम्बर १९३३ को खत्म हुआ। इसमें अमरीक सिंह, गुलाबसिंह तथा जहाँगीरलाल को फाँसी की सजा हुई, किन्तु इन लोगों को बाद को फाँसी नहीं हुई। इनकी सजा बदलकर कालेपानी की कर दी गई, अमरीक सिंह छोड़ दिया गया। दूसरे लोगों को विभिन्न सजाएँ हुईं।

दिल्ली-षड्यन्त्र—दिल्ली में जो षड्यन्त्र चलाया गया था उसे सरकार ने अन्त तक नहीं चलाया, इसलिए उसके सम्बन्ध में उतनी ही बातें कही जा सकती हैं, जितनी मुखबिरों ने कहीं। कहा जाता है इस केन्द्र का काम पुराना था तथा इसमें विमलप्रसाद, अध्यापक नन्दकिशोर, काशीराम, भवानीसहाय

और भवानीसिंह भी थे। इसके अतिरिक्त यशपाल, आजाद, सदाशिव, गजानन्द सदाशिव पोतदार, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, प्रभावती, दीदी और भाभी भी थीं। यशपाल पर अभियोग होने पर भी वह मुकदमे में लाए नहीं गए क्योंकि उन्हें अलग सजा दी गई।

मुखबिर कैलाशपति का बयान—दिल्ली-षड्यन्त्र में कैलाशपति नामक एक व्यक्ति मुखबिर बना था। कहते हैं कि सरकार को इतना मेधावी मुखबिर कभी नहीं मिला था। जहाँ भी उसने पानी तक पिया, उसका नाम पुलिस को बता दिया। उसकी स्मरण शक्ति भी अद्भुत् थी। बयान में उसने लाहौर से लेकर कलकत्ते तक बीसियों मनुष्यों का नाम लिया। जिस सरगर्मी से वह क्रान्तिकारी बना था, उसी सरगर्मी से वह मुखबिर बना, न उसको तब कोई फिक्र थी न अब। सुना जाता है वह बौद्धिक रूप से काफी आगे बढ़ा हुआ था। उसने अपने बयान में पं० जवाहरलाल तक को सान दिया था, फिर कौन बचता? काकोरी कैदी सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल को जेल से निकालने के लिए एक योजना बनाई गई थी। इस सम्बन्ध में कैलाश उन्नाव गया था, वहाँ एक व्यक्ति मनोहरलाल से भेंट हुई थी, उसको भी इसने अपने बयान में याद किया। अस्तु उसकी आत्मकथा यों है—"१९२८ के जनवरी में या फरवरी के पहले हिस्से में यह इलाहाबाद से नौकरी करने गोरखपुर गया। वहाँ वह डाक विभाग में नौकर हो गया। वहीं एम० बी० अवस्थी तथा शिवराम राजगुरु से उसकी भेंट हुई और क्रान्तिकारी आन्दोलन के संस्पर्श में आया। उसकी बदली बरहलगंज डाकखाने में हुई। यहाँ वह एक दिन २३००) रु० लेकर लापता हो गया, तथा कानपुर में उसने ये रुपए दल को दे दिए। वहीं सुखदेव, डॉक्टर गयाप्रसाद तथा आजाद से उसकी भेंट हुई। २३००) रु० मारकर इस प्रकार दल को देने से लोग उसका एतबार करने लगे और वह दल के अन्तरंगों में शामिल हो गया। धीरे-धीरे सरदार भगतसिंह, सुखदेव, यशपाल, काशीराम, अध्यापक नन्दकिशोर, भवानीसहाय आदि से उसकी भेंट हुई। काकोरी-षड्यन्त्र के मिस्टर हार्टन तथा खैरातनबी की हत्या की एक योजना बनी, किन्तु अर्थाभाव के कारण यह कार्यान्वित न हो सकी।

भुसावल बम—भगवानदास तथा सदाशिव एक काम के लिए बम्बई गए

किन्तु रास्ते में, ट्रक में मौजर पिस्तौल के साथ गिरफ्तार हो गए और इन पर भुसावल बम-कांड चला। जब इनका मुकदमा चल रहा था, उस समय गवाही में फणीन्द्र घोष नामक मुख़बिर आया तो इस पर भगवान दास ने पिस्तौल चला दी। मुख़बिर मरा तो नहीं, किन्तु इनको कालेपानी की सजा हुई। भगवतीचरण ने कौशल से यह पिस्तौल अदालत में पहुँचाई थी।

गाडोदिया स्टोर डकैती—कैलाशपति के कथनानुसार दल ने कई जगह बम के कारखाने खोले थे। ६ जून १६३० को दिल्ली में एक मोटर डकैती भी की गई। यह डकैती गाडोदिया-स्टोर-डकैती के नाम से मशहूर हुई। कहा जाता है श्री चन्द्रशेखर आजाद ने इस डकैती का नेतृत्व किया और इसमें काशीराम, धन्वन्तरि तथा विद्याभूषण भी मौजूद थे। इसमें १३०००) रुपए दल को मिले। सुना गया कि जब इस स्टोर के मालिक को पता लगा कि यह क्रान्तिकारियों का काम है तो उसने तहकीकात को आगे न बढ़ाया।

खानबहादुर अब्दुल अजीज पर हमला—१६३० में पुलिस अफसर खानबहादुर अब्दुल अजीज पर दो असफल प्रयत्न हुए। इसमें, कहा जाता है, धन्वन्तरि का हाथ था।

गिरफ्तारियाँ—२८ अक्टूबर १६३० को कैलाशपति गिरफ्तार हो गया, ३० तारीख़ तक उसने अपना भयानक बयान देना शुरू किया।

१ नवम्बर १६३० को दिल्ली की फतहपुरी में धन्वन्तरि की गिरफ्तारी हुई। वह सुखदेवराज के साथ जा रहे थे कि पुलिस के एक हेड कानस्टेबिल ने उन्हें पकड़ना चाहा, तो उन्होंने पिस्तौल उठाकर उस पर गोली चलाई। वह कानस्टेबिल चोर-चोर चिल्लाया तो धन्वन्तरि गिरफ्तार कर लिए गए। इस गड़बड़ी में सुखदेवराज भाग गए। उनका भाग्य इस सम्बन्ध में हमेशा जरूरत से ज्यादा अच्छा रहा। लाहौर के शालीमार बाग में जगदीश शहीद हुए, वह भागे, अब ऐसा ही हुआ, बाद को भी वह चन्द्रशेखर आजाद के साथ थे, तो आजाद मारे गए, पर सुखदेवराज बचे। इस बीच में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से विद्याभूषण पकड़े गए। १५ नवम्बर को दायमगंज में वात्स्यायन गिरफ्तार हुए और उसी दिन दिल्ली में विमलप्रसाद जैन गिरफ्तार हुए।

शालिग्राम शुक्ल शहीद हुए—गजानन पोतदार की गिरफ्तारी के लिए

कानपुर पुलिस परेशान थी कि उसे शालिग्राम शुक्ल मिल गए। पुलिस ने इन्हीं को गिरफ्तार करना चाहा, किन्तु शालिग्राम ने गोली चला दी, जिससे एक कानस्टेबिल मर गया और मिस्टर हन्टर घायल हुए। शालिग्राम यहीं पर लड़ते हुए २ दिसम्बर १९३० को वीरगति को प्राप्त हुए। इनके साथी भाग गए।

६ दिसम्बर को अध्यापक नन्द किशोर कानपुर के एक पुस्तकालय में अस्त्रों समेत पकड़े गए। इस प्रकार और भी बहुत-सी गिरफ्तारियाँ हुईं। १५ अप्रैल १९३१ को यह मुकदमा शुरू हुआ। काशीराम अगस्त १९३१ में गिरफ्तार हुए, कानपुर के परेड नामक स्थान में गोलियाँ चली थीं। काशीराम जी पर यह मुकदमा चला और उन्हें सात साल की सजा हुई। बाद को श्री राजेन्द्रदत्त निगम भी इसी गोली-कांड के मामले में गिरफ्तार हुए, किन्तु उन्हें ९ साल की सजा हुई।

कई साल तक दिल्ली वाला मुकदमा चलाने के बाद सरकार ने देखा कि ३½ लाख रुपया खर्च हो चुका और फिर भी सजा कराने में शायद ४ साल और लगे तो सरकार ने ९ फरवरी १९३३ को इस मुकदमे को वापस ले लिया। लोगों पर व्यक्तिगत मुकदमे चलाए गए। धन्वन्तरि को हत्या के प्रयत्न तथा शस्त्र-कानून में ७ साल की सजा हुई। वैशम्पायन पर मुकदमा न चल सका तो वह नजरबन्द कर लिए गए। वात्स्यायन, विमलप्रसाद तथा बाबूराम गुप्त पर विस्फोटक का मुकदमा चला। अन्त तक केवल विमलप्रसाद को ही तीन साल की सजा रही। वैशम्पायन और भवानीसहाय नजरबन्द रहे।

आजाद की अन्तिम नींद—अब हम उस व्यक्ति के शहीद होने का वर्णन करने जा रहे हैं जो गत १० वर्षों से साम्राज्यवाद के विरुद्ध अथक युद्ध अजीब-अजीब परिस्थितियों में कहना चाहिए, बिलकुल प्रतिकूल परिस्थितियों में करते आ रहे थे। गत आठ सालों से उन्होंने क्रान्ति का मार्ग अपना रखा था और खूब अपना रखा था। किसी विपत्ति के सामने भी यह रण-बाँकुरा पीछे नहीं हटा था; यह तो उसके स्वभाव के विरुद्ध था, न उसने कभी जी चुराया था। विपत्ति उनके लिए ऐसी थी जैसे हंस के लिए पानी। गत साढ़े ६ सालों यानी २६ सितम्बर १९२५ से वह फरार थे, गत १७ सितम्बर १९२८ यानी सैन्डर्स

हत्याकाँड के दिन से फाँसी का फन्दा उनके लिए तैयार था, फिर तो न मालूम कितनी फाँसियों और काले-पानियों के हकदार वह हो गए······

आजाद के नेतृत्व का रहस्य—आजाद क्रान्तिकारियों के एक आदर्श नेता थे। इस सम्बन्ध में भी एक मार्के की बात यह है, जैसा कि अध्यापक भगवान दास ने लिखा है—"आजाद के साथियों यानी उनके नेतृत्व में काम करने वालों में, शायद ही किसी को उनसे कम स्कूली शिक्षा मिली होगी। शायद ही कोई उनसे अधिक गरीबी की हालत में उत्पन्न हुआ होगा। उनके साथ उनके पिता, भाई या अन्य किसी सम्बन्धी की देशभक्ति, त्याग, तपस्या, वीरता या अन्य किसी प्रकार के बड़प्पन की छाया भी नहीं लगी हुई थी। अमर शहीद भगत सिंह आदि अपने साथियों में उन्होंने नेता का पद पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित थोथे तर्क बल पर ही नहीं, व्यावहारिक सूझ-बूझ अदम्य साहस और सर्वोपरि अपने साथियों की सुख-सुविधा की हार्दिक स्नेहपूर्ण चिन्ता रखकर और गाढ़े समय में कुशल नेतृत्व प्रदान करके ही पाया था। अपने साथियों और सम्पर्क में आने वाले लोगों के जीवन में केवल एक राजनीतिक मूल्य के रूप में ही नहीं, एक व्यक्तिगत भाव मूल्य के रूप में घर कर लेने के अपने गुण विशेष में ही आजाद की सफलता निहित थी। उनके अकृत्रिम स्नेहपूर्ण व्यक्तिगत व्यवहार ने ही उन्हें साथियों का प्रिय नेता बना दिया था और उनके हृदय में अपने लिए ऐसा विश्वास उत्पन्न कर लिया था कि वे उनके संकेत मात्र पर प्राण देने को तैयार रहा करते थे। दल में आजाद के नेतृत्व को स्वीकार करने के सम्बन्ध में कभी कोई झंझट या झगड़ा नहीं हुआ। **यह बात आजाद की प्रशंसा की तो है ही, साथ ही उन साथियों की सच्चाई, लगन, निरभिमानता को भी यह भली-भाँति व्यक्त करती है, जो विद्या-बुद्धि तथा त्याग और बलिदान कर सकने की अपनी तत्परता में किसी प्रकार भी कम न थे, बहुत-सी बातों में इनसे अधिक ही थे। साथ ही यह उन दलों, गुटों और नेताओं के लिए भी आदर्श प्रस्तुत करती है जो आए दिन नेतागीरी की स्पर्द्धा में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करने तथा अन्य तिकड़मों से एक-दूसरे को हटाने और मिटाने के चक्कर में बनते-बिगड़ते रहते हैं।"**

अवश्य चन्द्रशेखर आजाद कम पढ़े लिखे केवल स्कूल-कालेज की दृष्टि से

ही थे, पर उनमें पढी हुई पुस्तकों का सार ग्रहण करने की बहुत बड़ी शक्ति थी। इसके अलावा वह शुरू से लेकर हमेशा ऐसे सुपठित क्रान्तिकारियों के साथ रहे, जो बड़े विद्वान होने के साथ ही दिन-भर सैद्धान्तिक तर्क करते रहते थे।

जब मैं इन पंक्तियों को लिख चुका था तब मेरा ध्यान 'धर्मयुग' में प्रकाशित एक लेख की ओर गया जिसमें श्री यशपाल के मुँह से यह कहलाया गया है कि आजाद जब श्री नेहरू से मिले तब उन्हें अँग्रेजी में समझा नहीं सके, पर मैं जब अगले दिन उनसे मिला तो नेहरू जी ने क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए पाँच हजार रुपए देने स्वीकार किए, जिनमें से १२००) रु० का भुगतान कर दिया गया। मुझे विश्वास नहीं है कि श्री यशपाल ने इन शब्दों में इन बातों को कहा होगा, क्योंकि इस वक्तव्य में दो व्यक्तियों की बुद्धि के विरुद्ध आक्षेप हैं। एक तो आजाद के विरुद्ध कि वह समझा नहीं सके और दूसरा श्री नेहरू के विरुद्ध कि वह अँग्रेजी में ही समझ सकते हैं। मैं इन दोनों आधारों को ही बिल्कुल सही मान नहीं लेता हूँ। पहली बात तो यह है कि समझाने की प्रक्रिया केवल बौद्धिक नहीं है। बौद्धिक-तर्कों से ही आदमी समझता है यह कहना भूल है। अन्य बातों का बड़ा असर होता है। एक व्यक्ति की पृष्ठ-भूमि जिसे आध्यात्मिक लोग उससे निकलने वाली ज्योति (अरा) कहेंगे, उसकी ईमानदारी, उसका विश्वास सब बातों का असर पड़ता है। उदाहरणस्वरूप कई बार बुद्धि पर यानी समझाने की प्रक्रिया पर सौन्दर्य, रूप, रस, शब्द, गन्ध और स्पर्श का भी बड़ा भारी असर होता है। मैं जानता हूँ कि श्री यशपाल को यह बातें मालूम हैं। इसीलिए जो बात उनके मुँह से कहलाई गई है, वह सही नहीं हो सकती। यदि उन्होंने सचमुच कहा है तो यह बहुत गलत बात है। मैं यह मानने में असमर्थ हूँ कि नेहरू जी ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति पर आजाद का असर (चाहे वह जिस प्रकार का हो) किसी भी हालत में उक्त वक्तव्य देने वाले से कम पड़ा होगा। इसका प्रमाण यह है कि जब नेहरू जी ने अपनी आत्मकथा लिखी, तब उन्होंने आजाद के सम्बन्ध में लिखा और काफी लिखा। यहाँ यह प्रश्न नहीं है कि उन्होंने जो कुछ लिखा वह कहाँ तक सही था, पर प्रश्न यह है कि उनकी आत्मकथा में आजाद का ही उल्लेख आया न कि उस व्यक्ति का जिसने अब यह दावा किया कि वह उन्हें ज्यादा

समझा सके ।

आजाद की प्रगतिशीलता—श्री भगवानदास लिखते हैं—"आजाद की प्रगतिशीलता को समझने के लिए हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मध्य-भारत की छोटी-सी रियासत अलीराजपुर के एक गाँव में एक कट्टर ब्राह्मण के घर आजाद का जन्म हुआ, जिसे यदि जात-पाँत, छुआ-छूत और नारी के प्रति तेरहवीं सदी की मनोवृत्ति वाला कहा जाए तो बहुत अनुचित नहीं होगा और फिर इस वातावरण से प्रगति करते-करते वह बीसवीं सदी के तृतीय दशक के भारतीय क्रान्तिकारियों की अग्र पंक्ति के नेता बने । दस बारह वर्ष की आयु में कट्टर ब्राह्मण बालक के रूप में संस्कृत पढ़ने के लिए वह घर से भागकर काशी पहुँचे, वहाँ राष्ट्रीय लहर में रँगे, सत्याग्रह किया, बेंतों की सजा पाई, फिर क्रान्तिकारियों में शामिल हुए । अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में उनके धार्मिक विचारों में आर्यसमाजीपन आया और छूआछूत, मूर्तिपूजा आदि को वह निस्सार समझने लगे । बाद में भगतसिंह आदि के संसर्ग से धीरे-धीरे उन्होंने समाजवादोन्मुख धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया और भारतीय समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के प्रधान सेनानी हुए । निश्चय ही एक कट्टर ब्राह्मणवादी बालक से अग्रपंक्ति के क्रान्तिकारी प्रगतिशील नौजवान नेता के विकास की प्रगति के अनेक स्तर बहुत थोड़े समय में आजाद ने पार किए । स्त्रियों के सम्बन्ध में आजाद अपने व्यक्तिगत जीवन में तो सदा एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे । पहले वह दल में स्त्रियों के प्रवेश के विरुद्ध भी थे और इसी-लिए थे कि उनके नेतृत्व के पूर्व यही परम्परा थी, परन्तु बाद में उनके ही नेतृत्व में स्त्रियों ने दल में काम किया और खूब अच्छी तरह किया । 'नारी नरक की खान' वाली मनोवृत्ति से नारी को एक सक्रिय क्रान्तिकारिणी, समान सहयोगिनी के रूप में मानने के बीच की सभी मनोदशाएँ आजाद में समय-समय पर रही होंगी, यह स्पष्ट है । अन्तिम दिनों में आजाद बड़े उत्साह से दल की सभी स्त्री सदस्याओं को गोली चलाना, निशाना मारना आदि सिखाते थे, दल से सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों के घर की स्त्रियों को भी वह इसके लिए उत्साहित करते थे तथा क्रान्तिकारी कार्यों में अपने पति का सक्रिय सहयोग करने के लिए उन्हें बार-बार तरह-तरह की प्रेरणा देते थे । स्त्रियों में उनका

व्यवहार बड़ा सरल और आत्मीयतापूर्ण होता था। यह सब होते हुए भी इस बात के घोर शत्रु ही थे कि कोई दल का सदस्य स्त्रियों के प्रति अनुचित रूप से आकृष्ट हो, किसी प्रकार की यौन कमजोरी तो उनके लिए असह्य ही थी। परन्तु पति-पत्नी दोनों क्रान्तिकारी कार्य में लगें, इससे अधिक अभीष्ट बात उनके लिए और कोई नहीं थी। दल को एक 'आनन्दमठ' ही वह नहीं रखना चाहते थे यद्यपि क्रान्तिकारी जीवन की आरम्भिक दशा में उन्हें और उनके जैसे अन्य और भी क्रान्तिकारियों को 'आनन्दमठ' की भावना ने बहुत कुछ प्रभावित किया था।

और भी सुनिए—'खान-पान के सम्बन्ध में भी आजाद अपने व्यक्तिगत संस्कारों से एक शाकाहारी ब्राह्मण ही थे। उनका छूआछूत का भूत तो पं० रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में काम करने के समय ही उतर गया था। एच० एस० आर० ए० के नेता के रूप में वह मांस आदि खाने के विरुद्ध तर्क विशेष नहीं करते थे, मगर वह उन्हें अच्छा नहीं लगता था। शिकार वह खूब खेलते थे, मगर स्वयं मांस नहीं खाते थे। राजा साहब खनियाधाना के यहाँ मैं तो शिकार भी करता था, और खुल्लमखुल्ला मांस भी खाता था, इस पर मुझसे वह कुछ नाराज भी हुए थे। भगतसिंह उन्हें क्षत्रियों और क्षत्रियों जैसे काम करने वालों के लिए मांस खाने की अभीष्टता, उपयोगिता, नीतिमत्ता पर लेक्चर झाड़ कर अक्सर चिढ़ाया करते थे। साण्डर्स वध के समय जब आजाद ने मुझे लाहौर बुलाया तो मुझे यह देखकर विस्मय हुआ कि आजाद पर भगतसिंह का जादू चल गया और 'पंडित जी' अब कच्चा अण्डा सीधा मुँह पर तोड़कर ही गटक रहे हैं। मैंने हैरानी से पूछा—"पंडित जी। यह क्या ?" आजाद बोले—"अण्डे में कोई हर्ज नहीं है, वैज्ञानिकों ने तो उसे फल जैसा ही बताया है।" यह तर्क भगतसिंह का ही था, जिसे आजाद दुहरा रहे थे। मैंने बड़ी सूचकता से कहा—"बिल्कुल ठीक पण्डित जी। अण्डा फल है तो मुर्गी पेड़ के सिवा और कुछ नहीं हो सकती। मैं भला अब उसे छोड़ूँगा ?" भगतसिंह खिलखिला कर हँस पड़े—"वास्तव में कैलाश (अध्यापक भगवानदास का दल का नाम) तुम अच्छे तर्क शास्त्री हो सकते हो। भला पण्डित जी देखिए ।" आजाद बीच में ही बिगड़कर बोले—"चल बे, एक तो हमें अण्डा खिला रहा है,

ऊपर से बातें बना रहा है···।"

अध्यापक भगवानदास ने आजाद के जीवन पर आलोचना करते हुए यह लिखा है कि आजाद की शहादत के साथ ही सशस्त्र क्रान्तिकारी दल का आतंककारी रूप विघटित और समाप्त हो गया। पर क्या ऐसा कहा जा सकता है? कई बार चीजें परोक्ष रूप से काम करती हैं। बीज कभी दिखाई नहीं देता। जब अंकुर के रूप में कुछ सामने आता है तो मालूम होता है कि प्रकृति भीतर-भीतर न जाने कब से काम कर रही थी। तभी तो इस अंकुर का जन्म सम्भव हुआ। मैंने जब १६३८ में 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का इतिहास' लिखा था, तब उसके पहले संस्करण में यही मत व्यक्त किया था। उस समय मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता था, पर बाद को जब पुस्तक का दूसरा भाग निकालने की नौबत आई और उसमें १६४२ का आन्दोलन तथा आजाद हिन्द फौज से लेकर नौ-सैनिक विद्रोह का हाल जोड़ा गया, तब यह पहले वाली बात सही नहीं मालूम हुई। १६४२ के आन्दोलन को हम क्या कहेंगे? जहाँ तक मैं समझता हूँ, वह एक क्रान्तिकारी आन्दोलन था और उसमें आकर खुदीराम, कन्हाईलाल, करतारसिंह, बिस्मिल, आजाद, भगतसिंह द्वारा संचालित आन्दोलन महात्मा गांधी के आन्दोलन के साथ घुल-मिलकर एक हो गया। मैंने यहाँ केवल इसे इंगित के रूप में ही लिख दिया। इस मत पर विशद विचार करने की गुंजाइश नहीं है। आशा है कि इस पर अध्यापक भगवानदास माहौर तथा दूसरे लोग उचित रूप से विचार करेंगे।

सन् १६३१ की २७ फरवरी की बात है। दिन के दस बजे थे। चन्द्रशेखर आजाद इलाहाबाद के चौक से कटरा जाने वाली सड़क पर सुखदेवराज के साथ घूम रहे थे कि रास्ते में वह एकाएक चौंक पड़े। बात यह है कि उन्होंने वीरभद्र तिवारी को देखा था। यह वीरभद्र तिवारी काकोरी षड्यन्त्र में गिरफ्तार हुआ था, किन्तु कुछ रहस्यजनक कारणों से छूट गया था। तभी से कुछ लोग उस पर सन्देह करते थे। किन्तु वीरभद्र ऐसा तजरबेकार तथा बात करने में चालाक था कि लोग उसकी बातों में आ गए। यही नहीं वह दल का एक प्रमुख व्यक्ति हो गया। कहा जाता है बराबर दल में उसका यही रवैया रहा कि पुलिस से भी मिला रहता था और दल से भी। आजाद बहुत ही सीधे

आदमी थे और वह उसके चकमे में बहुत ही जल्दी आ जाते थे, किन्तु कई बार धोखा खाकर आखिरी फैसला उसको साथ न रखने का किया था। वीरभद्र भी जानता था कि वह इस प्रकार दल से निकाल दिया गया है। इसीलिए इलाहाबाद में जब आजाद ने वीरभद्र को देखा तो वह चौकन्ने हो गए।

आजाद और सुखदेवराज जाकर आल्फ्रेड पार्क में एक जगह बैठ गए। इतने में पुलिस अफसर विशेसर सिंह और डालचन्द वहाँ आए। इनमें से डालचन्द आजाद को पहचानता था। डालचन्द ने दूर से आजाद को देखा और लौटकर खुफिया पुलिस के सुपरिन्टेन्डेंट नाट बावर को उसकी खबर दी। नाट बावर इसकी खबर पाते ही तुरन्त मोटर द्वारा आल्फ्रेड पार्क पहुँचा और आजाद जहाँ बैठे थे वहाँ से १० गज के फासले पर मोटर रोक दी और आजाद की ओर बढ़ा। दोनों तरफ से एक साथ गोली चली। नाट बावर की गोली आजाद की जाँघ में लगी और आजाद की गोली नाट वावर की कलाई पर लगी जिससे उसकी पिस्तौल छूटकर गिर पड़ी। उधर और भी पुलिस वाले विशेषकर ठाकुर विशेसरसिंह आजाद पर गोली चला रहे थे। नाट वावर हाथ से पिस्तौल छूटते ही एक पेड़ की ओट में छिप गया। आजाद भी रेंगकर एक पेड़ की आड़ में हो गए। आजाद के पास हमेशा काफी गोली रहती थीं और इस अवसर पर उन्होंने उसका उपयोग खूब किया। आजाद का साथी पहले ही भाग निकला था। आजाद आखिर कब तक लड़ते, किन्तु फिर भी उन्होंने विशेसर सिंह के जबड़े पर ऐसी गोली मारी जिससे वह जन्म-भर के लिए बेकार हो गया और उसे समय के पहले ही पेन्शन लेनी पड़ी। नाट बावर जिस पेड़ की आड़ में था, आजाद मानो उस पेड़ को छेदकर नाट बावर को मार डालना चाहते थे।

ऐसे ही लड़ते-लड़ते यह महान् योद्धा एक समय गिर पड़ा और फिर हमेशा के लिए सो गया। जब आजाद मर चुके तब भी पुलिस को उनके पास जाने की हिम्मत न हुई, वे डरते थे कहीं वह मर कर भी न जिन्दा हो जाए और फिर गोली चला दे। जब आजाद का शरीर बड़ी देर से निस्पन्द हो चुका तो वे उनकी ओर आगे बढ़े, किन्तु फिर भी एक गोली पैर में मारकर निश्चय कर लिया कि वह सचमुच मर गए हैं। यह आजाद की आजादाना मृत्यु थी। एक

मत यह है कि आजाद ने जब देखा कि अब भाग नहीं सकता, तो उन्होंने अपने को गोली मार ली ।

आजाद की लाश जनता को नहीं दी गई और जब लोगों ने भारतीय मनोवृत्ति के अनुसार उस पेड़ पर फूल-पत्ता चढ़ाना आरम्भ कर दिया, जिस पर आजाद ने मृत्यु के दिन निशानेबाजी की थी, तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उस पेड़ को कटवा कर उस स्थान को ही निश्चिन्ह कर दिया । वीर शत्रु के मरने के बाद भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस प्रकार अपनी प्रतिहिंसा की ज्वाला को शाँत किया ।

२२

चटगाँव शस्त्रागार-काण्ड तथा उसके बाद की घटनाएँ

भारतवर्ष के क्रान्तिकारी इतिहास में चटगाँव शस्त्रागार काण्ड एक विशेष महत्त्व रखता है। जब से क्रान्तिकारी आन्दोलन का उद्भव हुआ, तब से लेकर उसके मुरझा जाने तक अर्थात् १९४२ के विद्रोह के रूप में अधिकतर फलोत्पादक रास्ता अख्तियार करने तक इससे बड़े पैमाने पर क्रान्तिकारियों ने कोई कार्य नहीं किया; न इतने क्रान्तिकारी एक साथ कहीं शहीद हुए। यह काण्ड दिखलाता है भारतीय युवक किस हद तक जा सकते थे; सुन्दर योजना, साहस, त्याग जिस दृष्टि से भी देखें यह एक अत्यन्त क्रान्तिकारी कार्य रहा। रहा यह कि असफल रहा, सो मैं समझता हूँ यह असफलता ही सफलता रही।

१९३० की १२ मार्च को गांधीजी ने अपनी ऐतिहासिक डांडी यात्रा शुरू की और देश में सत्याग्रह का तूफान आया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद काँप उठा, जनता की इस शक्ति के सामने महात्माजी को बहुत दिन तक सरकार ने गिरफ्तार नहीं किया, किन्तु गांधीजी ने मजबूर कर दिया और अन्त में परेशान होकर सरकार ने उन्हें भी गिरफ्तार किया। उनके जानशीन अब्बास तैयब जी भी १२ अप्रैल को गिरफ्तार हो गए। सारे देश में पूरे जोर से सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था, ऐसे समय में १८ अप्रैल को यह काण्ड हुआ। इस दिन चटगाँव के करीब ७० नौजवानों ने मिलकर पुलिस लाइन, टेलीफोन एक्सचेन्ज, एफ० आई० हेडक्वाटर्स पर एक साथ आक्रमण कर दिया। ये चार टुकड़ियों में बँटे थे। यह कब्जा करने का काम ९ बजकर ४५ मिनट से १०॥ बजे के अन्दर हुआ। सबसे पहले तो टेलीफोन और तार जो चटगाँव से ढाका तथा कलकत्ता का सम्बन्ध जोड़ते थे, काट लिए गए और उसमें आग लगा दी गई। एक टुकड़ी जब यह काम कर रही थी, तो दूसरी टुकड़ी ने रेल की कुछ

लाइनें काट दीं। जो दल एफ० आई० हेडक्वार्टर्स में गया था, उसने सर्जन मेजर, एक संतरी तथा एक सिपाही को वहीं-का-वहीं मार डाला। वहां पर जितनी भी राइफलें पिस्तौलें आदि मिलीं, उन्होंने उनको अपने कब्जे में कर लिया और एक लेविसगन भी ले लिया। पुलिस लाइन वाली टुकड़ी सबसे बड़ी थी। उसने पुलिस लाइन के संतरी को मार डाला, मैगजीन लूट ली, और वहां आग लगा दी।

इन बातों की खबर पाकर जिला मजिस्ट्रेट रात के बारह बजे आए किन्तु क्रान्तिकारियों ने उनका बुरा हाल किया। उनके संतरी तथा मोटर ड्राइवर को खत्म कर दिया। इतने में साम्राज्यवाद होशियार हो चुका था। उसकी सारी पाशविक शक्ति चटगाँव में केन्द्रीभूत हो रही थी और गोरखे बुला लिए गए थे। चारों तरफ क्रान्तिकारियों से इनकी भयंकर लड़ाई हो रही थी। सरकार ने केवल बन्दूक ही नहीं अब तो तोप से भी काम लेना आरम्भ किया। तब क्रान्तिकारी शहर से भागकर पहाड़ की ओर चले गए।

जलालाबाद का युद्ध (४६ गोलियों से मरे)—जलालाबाद पहाड़ी पर अनन्तसिंह अपने दल के साथ डटे हुए थे कि सरकारी सेना उनको घेरकर गिरफ्तार करने के लिए पहाड़ पर चढ़ने लगी। दोनों तरफ से गोलियाँ चलीं। क्रान्तिकारियों के पास गोली बारूद काफी था। घण्टों डटकर मोर्चा लिया गया, २२ सिपाही मारे गए और सेना को पीछे हटने की आज्ञा दी गई। दूसरे दिन क्रान्तिकारियों की इस टुकड़ी के विरुद्ध और अधिक सेना भेजी गई। स्मरण रहे कि ये क्रान्तिकारी भूखों रहकर लड़ रहे थे। यह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ। कहां ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सारी शक्तियां और कहां ये मुट्ठी-भर नौजवान। इस युद्ध में जो मारे गए थे वे अधिकतर २० साल से कम-उम्र वाले युवक थे। सच्ची बात तो यह है कि वीरेन्द्र भट्टाचार्य के अतिरिक्त जितने थे, वे सब २० साल से कम उम्र वाले थे। १७ वर्ष वाले तो कई थे, जैसे मधुसूदनदत्त, नरेशराय। अर्द्धेन्दु दस्तिदार तथा प्रभासनाथ बाल की उम्र तो सोलह की थी। इस लड़ाई के बाद क्रान्तिकारी इधर-उधर जिधर बना भाग निकले।

इन भागे हुए लोगों के साथ कई गोलीकांड हुए। २२ अप्रैल को चार क्रान्तिकारी रेल से जा रहे थे। पुलिस ने इनको गिरफ्तार करना चाहा। इस

पर गोली चली और सब-इंस्पेक्टर तथा दो कानस्टेबल मारे गए। २४ अप्रैल को पुलिस ने एक नवयुवक विकास दस्तिदार को गिरफ्तार करना चाहा। उसने देखा कि घेर लिया गया है तो बजाय इसके कि पुलिस के हाथ से मरे उसने आत्म-हत्या कर लेना ही उचित समझा। पुलिस को पता चला कि फ्रेंच चन्दननगर में कुछ चटगाँव के भागे हुए क्रान्तिकारी हैं। बस कलकत्ता की पुलिस वहां पहुँची और उस मकान को घेर लिया जहां ये छिपे थे। दोनों तरफ से गोलियाँ चलीं। ३ क्रान्तिकारी पकड़े गए और एक शहीद हुए। इन गिरफ्तार व्यक्तियों में गणेश घोष भी थे। चटगांव काण्ड में अनन्तसिंह तथा लोकनाथ बल के बाद इन्हीं का नम्बर था। गणेश घोष के साथ लोकनाथ बल तथा आनन्द गुप्त गिरफ्तार हो गए, जो शहीद हुए। वे बड़े अजीब तरीके से शहीद हुए, वे घायल होकर तालाब में गिरे और डूब गए। मकान मालिक तथा जितनी भी स्त्रियाँ थीं, वे गिरफ्तार कर ली गईं।

चटगाँव शस्त्रागार-काण्ड-मुकदमा—३ महीने लगातार गिरफ्तारियों के बाद पुलिस ने बत्तीस आदमी गिरफ्तार किए। अनन्तसिंह को पुलिस न पकड़ पाई थी किन्तु कुछ गलतफहमी पैदा हो रही थी इसलिए उन्होंने स्वयं पुलिस को आत्मसमर्पण कर दिया। गणेश घोष, हेमेन्द्र दस्तिदार, सरोजकान्ति गुह, अम्बिकाचरण चक्रवर्ती इस षड्यन्त्र के नेता माने गए। मुकदमा २४ जुलाई को स्पेशल ट्रिब्युनल के सामने पेश हुआ। मुकदमे का फैसला १ मार्च १९३२ को हुआ, इसमें निम्नलिखित व्यक्तियों को कालेपानी की सजा हुई। (१)अनन्तसिंह (२) गणेश घोष (३) लोकनाथ बल (४) सुखेन्दु दस्तिदार (५) लाल मोहन सेन (६) आनन्द गुप्त (७) फणीन्द्र नन्दी (८) सुबोध चौधुरी (९) सहायराम दास (१०) फकीर सेन (११) सुबोधराय (१२) रणधीरदास गुप्त।

नन्दसिंह को दो साल की सजा तथा अनिल दास गुप्त को ३ साल बोरस्टल की सजा हुई। बाकी सोलह व्यक्ति छोड़ दिए गए, किन्तु सरकार ने तुरन्त उन्हें बंगाल आर्डिनेन्स में गिरफ्तार कर लिया।

झाँसी बमकाण्ड—८ अगस्त १९३० को झाँसी के कमिश्नर को बम से उड़ाने की चेष्टा के लिए एक युवक श्री लक्ष्मीकान्त शुक्ल उनके बँगले के अन्दर गिरफ्तार कर लिए गए। कमिश्नर मि० फ्लावर्स ने कुछ सत्याग्रही महिलाओं

के साथ अभद्रता का व्यवहार किया था जिससे उत्तेजित होकर शुक्ल जी ने ऐसा किया था। किन्तु मालूम होता है उन्हीं के दल के किसी आदमी ने विश्वासघात किया, जिससे वह इस प्रकार रँगे हाथों बँगले के अन्दर बम और तमंचे सहित गिरफ्तार हो गए। श्री शुक्ल से सेनापति आजाद का परिचय था, किन्तु यह प्रयत्न शायद उनके आदेश पर नहीं किया गया था, बल्कि श्री शुक्ल का अपना मौलिक ख्याल था। श्री लक्ष्मीकांत को आजन्म कालेपानी की सजा हुई और उनकी पत्नी श्रीमती शुक्ल स्वेच्छा से पति के साथ अन्डमन चली गई।

बिहार के कार्य तथा योगेन्द्र शुक्ल—योगेन्द्र शुक्ल नामक एक युवक काशी गांधी आश्रम में शुरू से ही थे। असहयोग आन्दोलन में वह जेल गए थे। उसके बाद उनसे आजाद और मन्मथनाथ गुप्त के साथ परिचय हुआ तथा वह क्रान्तिकारी दल में आ गए। काकोरी वालों की गिरफ्तारी के पश्चात् वह सूक्ष्म रूप से बिहार में काम करते रहे। जब लाहौर षड्यन्त्र के फरारों के लिए धन की आवश्यकता हुई, तो ७ जून १९२९ को जिला चम्पारन के मौलनिया गाँव में एक डकैती डाली गई। यहाँ एक आदमी जान से मारा गया। इस सम्बन्ध में गिरफ्तारियाँ हुई, जिनमें फणीन्द्र मुखबिर हो गया। यह फणीन्द्र घोष वही था जिससे मणीन्द्रनाथ बनर्जी बेतिया में मिला करते थे। योगेन्द्र शुक्ल पहले फरार रहे, फिर अंत में ११ जून १९३० को गिरफ्तार कर लिए गए। गिरफ्तारी के समय आपके साथ तीन पिस्तौलें मिली थीं। इन्हें २२ साल की सजा हुई। इसी प्रकार इस साल बिहार में कई बम काण्ड हुए तथा छोटी-छोटी डकैतियाँ डाली गईं।

पंजाब की सरगर्मियाँ—लाहौर षड्यन्त्रों के बाद भी पंजाब में कुछ-न-कुछ क्रान्तिकारी कार्य होते रहे। यत्र-तत्र तलाशी में बम आदि बरामद हुए और उसके सम्बन्ध में इधर-उधर कुछ लोग गिरफ्तार भी होते रहे। सितम्बर १९३० में अमृतसर में एक षड्यन्त्र चला, जिसमें पांच अभियुक्त थे, तीन को नेकचलनी लेकर छोड़ दिया गया और दो को सजा हुई। ४ नवम्बर को लाहौर शहर और छावनी के बीच में दो कान्तिकारियों और पुलिस के बीच गोलियां चलीं, जिसमें विशेसरनाथ मारे गए। इस सम्बन्ध में टहलसिंह को ७ वर्ष की सजा हुई। इसी तरह एक मुकदमा दशहरे पर बम डालने का चला, जिसके

सम्बन्ध में कुछ मुसलमान गिरफ्तार हुए, किन्तु यह मामला साम्प्रदायिक नहीं था। असल में बात यह थी कि कुछ मुसलमान लड़कों को क्रान्तिकारियों के कार्य तथा बातों को सुनकर जोश आ गया और उन लोगों ने दो चार बम बना लिए। यही बम फट गए। बाद को जब पुलिस ने बड़ी सरगर्मी से गिरफ्तारियाँ कीं तो ये नवयुवक गिरफ्तार हो गए। इनके सम्बधियों ने समझा-बुझा कर सारा मामला सुलझा लिया।

पंजाब के लाट पर हमला—इस प्रकार एक जीरा बम मामला चला। ऐसे ही छोटे-मोटे मामले हुए जिनका वर्णन करना न सम्भव है न वांछनीय ही। २३ दिसम्बर १९३० को फिर एक बार सारे भारत की दृष्टि पंजाब की ओर गई, क्योंकि उस दिन जिस समय लाहौर यूनिवर्सिटी हाल में पंजाब के गवर्नर दीक्षांत भाषण करके लौट रहे थे, उन पर हरकिशन नामक युवक ने गोली चला दी और उन्हें जख्मी कर दिया। हरकिशन मर्दान के रहने वाले थे और चमन लाल नामक युवक के जरिये उसका सम्बन्ध पंजाब क्रान्तिकारी पार्टी से हो गया था। इस गोली-काण्ड में इन्स्पेक्टर बुद्धसिंह के हाथ में भी एक गोली लगी थी। एक गोली इन्स्पेक्टर चननसिंह के मुँह पर लगी जो जाकर जबड़े में रुक गई। इसके अतिरिक्त कई और व्यक्तियों को छोटी-छोटी चोटें लगीं, चननसिंह शाम तक मर गया।

इस मामले के सम्बन्ध में पुलिस ने एक पूरा षड्यन्त्र ही चला दिया किन्तु हरकिशन का मुकदमा अलग चला। हरकिशन ने गवर्नर के मारने की बात को बहादुरी से स्वीकार करते हुए एक बयान दिया। अदालत ने उन्हें फाँसी की सजा दी, और ९ जून १९३१ को उन्हें फाँसी दे दी गई।

इस सम्बन्ध में जो षड्यन्त्र चला उसके सम्बन्ध में सेशन जज ने तीन व्यक्तियों को फाँसी की सजा दी, जो बाद को हाईकोर्ट द्वारा छोड़ दिए गए।

लैमिंगटन रोड काण्ड—१ अक्टूबर १९३१ की रात को कुछ क्रान्तिकारियों ने बम्बई शहर के लैमिंगटन रोड थाने में मोटर से उतरते हुए सार्जन टेलर और उनकी बीवी को घायल कर दिया। उन्होंने इसके बाद भी कई पुलिस अफसरों पर रास्ते में गोली चलाई। इस गोली कांड में श्रीमती दुर्गादेवी उर्फ भाभी ने अपने हाथ से सार्जन टेलर पर गोली चलाई थी, किन्तु अन्त तक कोई मुकदमा

न चल सका। दुर्गादेवी श्री भगवती चरण की पत्नी थी।

असनुल्ला हत्याकाण्ड—चटगाँव शस्त्रागार काण्ड के बाद से चटगाँव में भीषण दमन हो रहा था। भद्रश्रेणी के युवकों को यह हुक्म था कि सूर्य के अस्त होने के साथ ही साथ वे अपने घरों में दाखिल हो जाएँ और तब तक बाहर न निकलें जब तक सूर्य न निकले। सरकार ने वहाँ पर विशेष सशस्त्र पुलिस भी रखी। ये सब बातें केवल शहर में ही नहीं बल्कि गाँव में भी होती रहीं। ३० अगस्त १९३० को पुलिस इन्स्पेक्टर खान बहादुर असनुल्ला फुटबाल मैच देखने गए थे, खेल समाप्त होने पर जब खुशी-खुशी लौट रहे थे, उस समय एक सोलह वर्षीय युवक ने उन पर कई गोलियाँ चलाईं, जिनमें से एक उनके सीने में जा बैठी, जिससे उनकी मृत्यु हुई। खान बहादुर पर यह अभियोग था कि इन्होंने ही चटगाँव शस्त्रागार काण्ड को इतना बढ़ाया है। जिस युवक ने उन पर गोली चलाई थी उसका नाम हरिपद भट्टाचार्य था। हरिपद भट्टाचार्य पर पहले बाहर और फिर जेल में बहुत अत्याचार किए गए, जिसके फलस्वरूप उसके हाथ पैर हमेशा के लिए टेढ़े हो गए। गिरफ्तार करके इनके बाप को पीटा गया और उनके १० महीने के शिशु भाई को बूट के नीचे कुचल कर मार डाला गया। इन्हें आजन्म काले पानी की सजा हुई थी।

मछुआ बाजार बम केस—१२ जून १९३० को मछुआ बाजार बम केस चला, जिसमें १७ अभियुक्तों को सजा हुई। डा० नारायन बनर्जी इस षड्यन्त्र के नेता माने गए और उनको १० साल कालेपानी की सजा हुई।

मिस्टर टेगर्ट पर फिर हमला—गोपी मोहन साहा के द्वारा हमले के बाद २५ अगस्त १९३० के दोपहर को मि० टेगर्ट के दफ्तर जाते समय उनकी गाड़ी पर दो बम गिराए गए। ऐसा करने वाले अनुजसिंह गुप्त और दिनेश मजूमदार दो युवक थे। उनमें से अनुज उसी स्थान पर गोली से मार डाला गया। दिनेश मजूमदार को आजन्म कालेपानी की सजा हुई, बाद को वह जेल से गायब हो गए और फिर हत्या करने की कोशिश की, जिसमें उनको फाँसी की सजा हुई।

ढाका में इन्स्पेक्टर जनरल मि० लोमैन की हत्या—मिस्टर लोमैन ने क्रान्तिकारियों के दमन में या यों कहना चाहिए उन पर गैर कानूनी तथा जल्लादी

करने में अपनी सारी उम्र बिताई थी, १९१६ में योगेश चटर्जी आदि कितने ही क्रान्तिकारियों को इन्होंने सताया था। १९३० में वह बंगाल पुलिस के इन्स-पेक्टर जनरल थे। तारीख २९ अगस्त को ढाका के मिटफोर्ड अस्पताल का निरीक्षण करने के बाद वह मिस्टर हडसन पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के साथ निकल रहे थे कि विनय कृष्ण बोस नामक युवक ने एकाएक उन पर गोली चला दी। मिस्टर लोमैन को तीन गोलियाँ लगीं और मिस्टर हडसन को दो। मिस्टर-लोमैन दो दिन बाद मर गए, किन्तु मिस्टर हडसन नहीं मरे। युवक के पास मालूम होता है, दो तमंचे थे, क्योंकि जब उसका पीछा किया गया तो उसके हाथ का तमन्चा गिर पड़ा, फिर भी वह गोली चलाता हुआ निकल गया। क्रान्तिकारियों के द्वारा किए हुए आतंकवादी कामों में यह काम अत्यन्त साहस-पूर्ण था। जिस जमाने में यह काम हुआ था, उस समय एकबार ब्रिटिश साम्राज्य-वाद के पिट्ठुओं की रूह फना हो गई थी क्योंकि यदि एक प्रान्त के पुलिस के सबसे बड़े अफसर का प्राण सुरक्षित नहीं है, तो किसका है। जनता में भी यह खबर फैल गई थी और उसकी चेतना पर इसका काफी बड़ा असर हुआ था। जो सरकार स्वयं आतंकवाद पर अवस्थित है, वह आतंकवाद का एकाधिकार चाहेगी, इसमें कोई आश्चर्य की वात नहीं थी। किन्तु क्रान्तिकारी ऐसे छिटपुट हमला करके ही न रुके।

धड़ाका तथा हत्या की चेष्टाएँ—मैमनसिंह में ३० अगस्त को ही इन्स्पेक्टर पवित्र बोस के घर पर बम का धड़ाका हुआ। पवित्र बोस उस दिन घर पर नहीं थे, किन्तु उनके दो भाइयों को चोट आ गई। उसी दिन एक पुलिस इन्स्पे-क्टर तेजेशचन्द्र गुप्त के घर पर भी बम फेंका गया, किन्तु उससे कुछ हानि नहीं हुई। इस सम्बन्ध में शोभारानी दत्त नामक लड़की गिरफ्तार की गई। इस बीच क्रान्तिकारी दल को धन दिलाने के निमित्त कई डाके भी यत्र-तत्र डाले गए, जिनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। यह नहीं कि हर मौके पर क्रान्तिकारी सफल रहे, बल्कि कई जगह पुलिस ने बम बरामद किए, और गिर-फ्तारियां की गईं। १ दिसम्बर को तारिणी मुकर्जी नामक एक पुलिस इन्स्पे-क्टर रेल से जा रहा था, उसी गाड़ी से नए इन्स्पेक्टर जनरल मिस्टर टी० जी० ए० क्रेग जा रहे थे। दो युवक एकाएक निकले और तारिणी मुकर्जी को गोली

से मार दिया और भाग निकले। इस सम्बन्ध में रामकृष्ण विश्वास तथा कालीपद चक्रवर्ती नामक दो युवक चांदपुर में गिरफ्तार हुए। बाद को इन पर मुकदमा चला और एक को फाँसी तथा दूसरे को कालेपानी की सजा हुई। ४ अगस्त १९३१ को रामकृष्ण विश्वास को फाँसी दी गई।

जेल के इन्स्पेक्टर जनरल की हत्या—बंगाल के क्रान्तिकारियों ने मानो इस समय आतंक फैलाना बड़े जोर से ठान लिया था। २९ अगस्त को पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल की हत्या की गई थी, ८ दिसम्बर १९३० को कलकत्ते की राइटर्स बिल्डिंग में कई युवक घुस गए। उस समय पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल अपने दफ्तर में बैठकर काम कर रहे थे, इतने में वे चपरासी को धकेल कर दफ्तर में घुस गए। यह तीनों बंगाली युवक गोरों की पोशाक में थे। ज्यों ही वे घुसे त्योंही मिस्टर सिमसन एकाएक इन युवकों को देखकर पीछे हटे, किन्तु तीनों ने उन पर एक साथ गोली चलाई। सब समेत उनको ९ गोलियाँ लगीं और वह वहीं के वहीं ढेर हो गए। रास्ते में जो भी गोरा अफसर मिलता गया, उन्होंने उसी पर गोली चलाई। जिस मकान में उन्होंने ये वारदातें की थीं, वह मकान ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे सुरक्षित मकान समझा जाता था, और पुलिस तथा फौज से टेलीफोन के जरिये से इसके बीसियों सम्बन्ध थे। उन्होंने जुडीशल सेक्रेटरी मिस्टर नेलसन पर गोलियाँ चलाईं, किन्तु किसी भी हालत में उन्होंने किसी चपरासी पर गोली नहीं चलाई।

जब उन्होंने इतने काम कर लिए तो इसी बीच में पुलिस ने सारे मकान को घेर लिया था, और अब उसमें से भाग निकलना असम्भव था, इसलिए उन्होंने आत्महत्या करने की कोशिश की। इस कोशिश में यह तीनों युवक पकड़ लिए गए। सुधीरकुमार गुप्त, आत्महत्या करने में सफल रहे और वह वहीं मर गए, दो अन्य युवक अस्पताल ले जाए गए, इनमें से विनयकृष्ण बोस १३ दिसम्बर को अस्पताल में मर गए। उन्होंने मरने से पहले पुलिस से यह कह दिया कि उन्होंने ही अगस्त के महीने में पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल मिस्टर लोमैन की हत्या की थी, इसलिए उन्हें कोई भी अफसोस नहीं है कि वह मर रहे हैं। जिस दिन वह मरे उस दिन यह खबर कलकत्ते में बिजली की तरह फैल गई और हजारों आदमी उनके अन्तिम दर्शन करने के लिए नीमतल्ला घाट घर आए।

इस प्रकार इस कृत्य को करने वाले दो युवकों से साम्राज्यवाद कोई बदला न ले सका। किन्तु दिनेश गुप्त नामक तीसरे अभियुक्त को सरकार के डाक्टरों ने फाँसी देने के लिए अच्छा किया। जब वह अच्छे हो गए तो उन पर मुकदमा चलाया गया और ८ जुलाई १९३१ को फाँसी दी गई। इस सम्बन्ध में बंगाल में कितनी ही गिरफ्तारियाँ हुईं और जिन पर भी शक हुआ उनको नजरबन्द कर लिया गया।

बंगाल सरकार की निजी रिपोर्ट के अनुसार १९३० में १० सफल हत्याएँ हुईं। किन्तु उसी रिपोर्ट में यह लिखा है कि सरकार ने ५१ क्रान्तिकारियों को फाँसी दी। यदि हम मान भी लें कि एक क्रान्तिकारी की जान सरकार के एक भाड़े के आदमी की जान के बराबर है तो भी सरकार की इस दमन नीति की भयानकता तथा खूंखारपन मालूम हो जाएगा।

इस युग में मुख्यतः बंगाल में ही क्रान्तिकारी कार्य हुए, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उत्तर-प्रदेश में कुछ भी नहीं हुआ। २ जनवरी १९३१ को ४½ बजे सायंकाल कानपुर के अशोककुमार नामक एक नवयुवक ने टीकाराम इन्स्पेक्टर पर गोली चलाई, किन्तु वह मरे नहीं। बाद को अशोककुमार को ७ साल की सजा हुई। इसी तरह और भी कई छोटे-मोटे षड्यन्त्र उत्तर-प्रदेश में हुए किन्तु उसमें कोई खास बात नहीं थी।

१९३१ में पंजाब—१९३१ में हम देखते हैं कि पंजाब प्रान्त में भी काम करीब-करीब ठण्डा पड़ गया। यों तो तृतीय लाहौर षड्यन्त्र के नाम से मुकदमा चला और उसमें कई व्यक्तियों को सजाएँ भी हुईं। सच्ची बात तो यह है कि इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन अपने अन्दर से कोई नेता नहीं पैदा कर सका तथा जिन कारणों से यह आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था, वे भी शिथिल हो गए थे।

१९३१ में बिहार—१९३१ में बिहार में पटना षड्यन्त्र नाम से एक षड्यन्त्र चलाया गया। इसमें यह भेद खुला कि बिहार के काम का सम्बन्ध चन्द्रशेखर आजाद से था। इन लोगों ने बम भी बनाए, तथा अंग्रेजों को गिर्जाघर में मार डालने की एक योजना बनाई, किन्तु वह कार्यरूप में परिणत न की गई। बात यह है कि जिस दिन ये लोग गिर्जाघर पर हमला करने गए, इन्होंने देखा कि पुलिस पहले ही से तैनात है, इस पर ये लौट आए। इनका संदेह

रामलगन नामक एक व्यक्ति पर गया, इसको इन लोगों ने खत्म कर दिया। पुलिस ने इस पर तहकीकात करते-करते एक मकान को घेरा, जहां सूरजनाथ चौबे और हजारीलाल थे। यह मकान बम का कारखाना था। पुलिस वालों पर बम चला, एक सब-इन्स्पेक्टर मारा गया, किन्तु दोनों गिरफ्तार कर लिए गए। हजारीलाल को कालेपानी तथा चौबे को १० साल की सजा हुई। हजारीलाल पहले तो बड़े अकड़े किन्तु सजा के बाद मुखबिर बन गए। फलस्वरूप बहुत से लोग गिरफ्तार किए गए और ११ व्यक्तियों पर मुकदमा चला सूरजनाथ चौबे इस मुकदमे में फिर घसीटे गए और उन्हें आजन्म कालेपानी की सजा हुई। कन्हईलाल मिश्र तथा श्यामकृष्ण को भी यही सजा मिली। फणीन्द्र घोष भी इसमें मुखबिर था।

मोतीहारी षड्यन्त्र इत्यादि—फणीन्द्र घोष ने एक और षड्यन्त्र चलवाया जिसका नाम मोतीहारी षड्यन्त्र था। इसमें भी कुछ लोग सजा पा गए। एक छपरा षड्यन्त्र भी चला। हाजीपुर ट्रेन डकैती नाम से एक मुकदमा चला, जिसमें यह अभियोग था कि हाजीपुर का स्टेशन-मास्टर १८ जून १९३१ को डाक के थैले स्टेशन पर खड़ी हुई गाड़ी में रखने के लिए जा रहा था कि कुछ हथियारबन्द लोगों ने उस पर हमला कर दिया, और गोली चलाकर भाग गए।

इसके अतिरिक्त कई जगह बम फटे। अगस्त १९३१ को पटने में एक बम अचानक फटा, जिससे रामबाबू नामक एक व्यक्ति सख्त घायल हुआ। बाद को उनका बांया हाथ काटना पड़ा।

बम्बई में गवर्नर पर गोली—बम्बई में इस साल दो मुख्य घटनाएँ हुईं। यों तो कई बम विस्फोट वगैरह हुए। २२ जुलाई को बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर सर अार्नेस्ट हाडसन पूना के प्रसिद्ध फर्गुसन कालेज की लाइब्रेरी में जा रहे थे कि बासुदेव बलवन्त गोगारे नामक एक मराठी छात्र ने उन पर गोली चलाई। उसने दो गोलियाँ ही चला पाई थीं कि वह बेकाबू कर दिया गया। गवर्नर बाल-बाल बचे, एक गोली उनके सीने पर लगी किन्तु नोटबुक के धातु के बटन में लगाकर वह व्यर्थ हो गई। गोगारे को आठ वर्ष जेल की सजा दी गई।

हेक्स्ट हत्याकाण्ड—२३ जुलाई को दो फौजी अफसर जी० आर० हेक्स्ट तथा ई० एम० शोहिन रेल से सफर कर रहे थे। दो व्यक्ति डिब्बे में घुस गए

और उन पर एकदम आक्रमण कर दिया। उन लोगों ने अफसरों के कुत्ते को जान से मार डाला और दोनों अफसरों पर भयंकर आक्रमण कर दिया। ये दोनों हमला करने वाले कूदकर लापता हो गए, किन्तु हेक्स्ट कुछ घन्टों बाद मर गया। इस सम्बन्ध में बाद को यशवंतसिंह और दलपतराय दो नौजवान गिरफ्तार हुए। दोनों को कालेपानी की सजा हुई।

२३

बंगाल में आतङ्कवाद का उग्र रूप

बङ्गाल में चटगाँव के बाद से आतङ्कवाद जोरों पर हो गया था। जिस समय काकोरी वालों का तथा भगतसिंह, यतीनदास आदि का नाम हो रहा था, और सारा भारतवर्ष उनके नाम से गूँज रहा था, उस समय बंगाल करीब-करीब शान्त था। लोग कहते थे कि बंगाली क्रान्तिकारियों का विश्वास अब इन सब बातों पर से उठ गया है, किन्तु नहीं, अभी यह बात गलत थी। असल में यह आँधी आने के पहले की चुप्पी थी। उत्तर भारत में काकोरी वाले तो एक भी राजनीतिक हत्या नहीं कर पाए, भगतसिंह का दल भी सैंडर्स को ही मार कर खत्म हो गया। उसके बाद वायसराय तथा पंजाब के गवर्नर पर हमले हुए, किन्तु वे सफल न हो सके। किन्तु बंगाल ने जब से आतङ्कवाद का बीड़ा उठाया, तब से तो एक अजस्र धारा में ये काम एक के बाद एक होते गए। यह मानना ही पड़ेगा कि राइटर्स बिल्डिङ्ग में घुस कर कर्नल सिमसन की जो हत्या की गई, वह सैंडर्स हत्या से कहीं अधिक साहसिक थी, तथा उसके करने वालों की बहादुरी का द्योतक है। चटगाँव शस्त्रागार काण्ड एक ऐसा काण्ड था जिसके जोड़ की चीज आयरलैण्ड के इतिहास में तो है, किन्तु भारत के क्रान्तिकारी इतिहास में नहीं है। इतने क्रान्तिकारियों को एक साथ लगा सकना यह चटगाँव के क्रान्तिकारी दल की सामर्थ्य सूचित करता है। यदि मैं यह कहूँ कि सेनापति आजाद अस्त्र-शस्त्रों से लैस इतने आदमियों को एक साथ एक जिले से जमा नहीं कर सकते थे तो मैं सत्य से कुछ अधिक दूर नहीं कहूँगा। बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन शहरों तक ही सीमाबद्ध न रह कर गाँवों की मध्यम श्रेणी के नौजवानों में फैल गया था। तभी सरकार के सर्वग्राही आर्डीनेन्सों, अत्याचारों तथा नियन्त्रणों के बावजूद बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन दबाया नहीं जा सका, क्रान्तिकारियों का आतङ्कवाद वाला कार्यक्रम और भी जोरदार होता गया। बंगाल में सरकार ने जो अत्या-

चार किए हैं उनको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्रान्तिकारी लड़कों के सामने माँ को नंगी करके उसको बलात्कार की धमकी दी गई, क्रान्तिकारियों के घर-भर, यहाँ तक कि मुहल्लों वालों को बुरी तरह पीटा गया, कई अभियुक्तों को जेल में मारते-मारते मार डाला गया, सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच कोई भी नौजवान घर से बाहर नहीं निकल सकता था, दिन में भी नौजवानों के साथ सिनाख्त में कार्ड होना जरूरी था। यह सब अत्याचार सारे हिन्दुस्तान के सामने हुआ, किन्तु गांधीजी के चलाए हुए हिंसा-अहिंसा के भयंकर भूत के कारण कांग्रेस ने इसको उतने जोर से नहीं उठाया, जितने जोर से यह उठाए जाने योग्य था। बंगाल को यानी क्रान्तिकारी बंगाल को इन सब विपत्तियों को अपने आप झेलना पड़ा। इस हालत में यदि बंगाली युवक एक हद तक प्रान्तीयतावादी हो गए, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस विषय की ओर मैं पहले दृष्टि आकर्षित कर चुका हूँ।

घटनाओं पर जाने के पहले मैं इस बात की ओर पाठकों की दृष्टि आकर्षित करना चाहता हूँ कि इस प्रकार गांधीवाद ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को दबाने में साम्राज्यवाद का साथ दिया, यानी ऐसा वातावरण पैदा कर दिया जिसमें सरकारी अधिकारी आसानी से इसका दमन कर सकें और अखिल भारतीय जनमत इस दमन के प्रति उदासीन रहे। गांधीजी के भारतीय राजनीति में आने के बाद जब-जब राजनीतिक कैदियों को छुड़ाने का प्रश्न आया, तब-तब मूर्खतापूर्ण तरीके से हिंसात्मक कैदी और अहिंसात्मक कैदी में पार्थक्य का सवाल आया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जो स्वयं निरी हिंसा और आतङ्कवाद पर प्रतिष्ठित था, इस वातावरण से फायदा उठाया, यह देखकर काफी हँसी आती है। भविष्य का इतिहासकार महात्मा गांधी तथा उनके अनुयायियों को राजनीतिक कैदियों तक में इस प्रभेद को ले जाने के लिए कभी भी क्षमा न करेगा, इस कृत्य की जितनी भी निन्दा की जाए थोड़ी है। बाद को कांग्रेस सरकारों ने क्रान्तिकारी कैदियों को छोड़ा जरूर, तथा उनको छुड़ाने के लिए दो प्रान्तों में मंत्रिमंडल ने इस्तीफा भी दे दिया, किन्तु यह स्मरण रहे कि ऐसा उन्होंने खुशी से नहीं किया। एक तो वे चुनाव के समय दिए हुए घोषणा-पत्र के अनुसार मजबूर थे, दूसरे अन्दमन के कैदियों ने बार-बार भीषण अनशन करके जनमत

को इस सम्बन्ध में इतना सचेत कर दिया था कि कांग्रेस सरकारों के लिए इसके अतिरिक्त कुछ करना असम्भव था। फिर जो एकाएक मंत्रिमंडलों ने इस्तीफे दिए थे, उसमें केवल राजनीतिक कैदियों को छुडाना ही उद्देश्य नहीं था, बल्कि उनका प्रधान उद्देश्य तो हरिपुरा में वामपंथियों को एक अजीब परिस्थिति में डालना था। अस्तु।

अब मैं घटनाओं पर आता हूँ। मार्च १९३१ को चटगाँव में पुलिस इंस्पेक्टर शशांक भट्टाचार्य को बरामा नामक गाँव में पेट में गोली मार दी गई। इसी तरह कई जगह डकैतियाँ डाली गईं।

मेदिनीपुर में पहले मजिस्ट्रेस्ट स्वाहा—७ अप्रैल १९३१ को मेदिनीपुर के जिला मजिस्ट्रेट जेम्स पेडी शिकार से वापस आकर नुमाइश में गए तो नुमाइश-गाह में उन पर किसी ने गोलियाँ चला दीं, तीन गोलियाँ उनके शरीर पर लगीं। वहाँ से वह उठाकर अस्पताल भेजे गए, किन्तु आपरेशन करने पर भी ८ अप्रैल को वह मर गए। इस सम्बन्ध में पुलिस ने संदेहवश एक दर्जन से ऊपर व्यक्तियों को गिरफ्तार किया, किन्तु कोई भी मुखबिर न बना, इसलिए सारा मुकदमा छूट गया। इसके अतिरिक्त मेदिनीपुर के दो और मजिस्ट्रेट मारे गए, जिसका वर्णन बाद को आएगा।

गार्लिक हत्याकाण्ड—मिस्टर गार्लिक चौबीस परगना के डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज थे। वह अपनी अदालत में बैठे हुए थे कि २७ जुलाई को दोपहर दो बजे विमलदास गुप्त नामक एक युवक द्वारा गोली से मार दिए गए। विमल भाग नहीं पाया, उसको वहीं गोली से मार दिया गया। यह विमल वही व्यक्ति था, जिसने मिस्टर पेडी की हत्या की थी। इस हत्याकाण्ड से कलकत्ते के अंग्रेज बहुत ही नाराज हुए। असली बात तो यह है कि वे भयभीत हुए और उन्होंने सरकार को भयंकर रूप से दमन करने के लिए कहा।

मिस्टर कैसल्स पर गोली—ढाका में पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल मिस्टर लोमैन की हत्या की गई, इसका तो वर्णन पहले ही हो चुका है। अगस्त १९३१ में मिस्टर अलेक्जन्डर कैसल्स ढाका के कमिश्नर थे, वह ढाका के कोआपरेटिव बैंक का निरीक्षण करने जा रहे थे कि उन पर एक नौजवान ने गोली चलाई। गोली उनकी जाँघ में लगी। आक्रमणकारी भाग गए।

हिजली में नजरबन्दों पर गोली—हिजली में कोई आठ सौ नजरबंद थे जो बिना अदालत के सामने गए वहाँ बंद रखे गए थे। एक दिन सारे हिन्दुस्तान ने अवाक होकर सुना कि हिजली के निहत्थे नजरबन्दों पर एकाएक सरकार ने गोलियाँ चलाईं, और इसमें संतोषकुमार मित्र और तारकेश्वर सेन मर गए और अठारह बुरी तरह घायल हुए। सरकार ने एक विज्ञप्ति निकालकर कहा कि नजरबंदों के एक दल ने संगठित रूप में सन्तरियों पर हमला किया, जिससे सिपाहियों ने आत्मरक्षा में गोली चलाई। जनता खूब समझती थी कि यह बहाना है, असल में यह सरकारी आतङ्कवाद है। इसलिए जे० एम० सेन गुप्त तथा सुभाष बोस फौरन इसकी जाँच को रवाना हुए, किन्तु उन्हें नजरबन्दों से मिलने नहीं दिया गया। वह बाहर के अस्पताल में जो घायल थे, उनसे मिले और समझ गए कि यह विज्ञप्ति झूठी है। तदनुसार उन्होंने अखबारों को बयान देते हुए कहा कि जो खबर इस सम्बन्ध में छपाई गई है, वह सर्वथा गलत है। सरकार ने इस सम्बन्ध में किसी तरह कोई जांच कराने से इनकार किया, और कहा कि कलक्टर की जाँच ही काफी है, इस पर १७५ नजरबन्दों ने अनशन कर दिया। जनमत और भी जोर पकड़ गया। जाँच कमेटी बनाने के आश्वासन पर बाद में अनशन टूटा।

६ अक्टूबर १९३१ को हिजली के मामले की जाँच शुरू हुई। इस जाँच कमेटी ने यह रिपोर्ट दी कि संतरी नं० १ ने किसी बात पर खतरा समझकर खतरे की घंटी बजा दी। इस पर हवलदार रहमान बख्श के हुक्म से गारद भीतर घुस गई, और जो नजरबन्द वहाँ घूम रहे थे उनको मारकर हटा दिया। इस पर संतरियों में और नजरबन्दों में कहा-सुनी हो गई, और संतरियों ने गोली चला दी। यह कितना बड़ा अन्याय था। इसमें सन्देह नहीं, सरकार ने यह सारा काम बदला चुकाने के लिए किया था। यदि मान लिया जाए कि हवलदार रहमान बख्श की गलती या नालायकी से यह गोलीकाण्ड हुआ, तो रहमान बख्श पर बाद में मुकदमा क्यों नहीं चलाया गया।

मजिस्ट्रेट डूर्नो पर गोली—२८ अक्टूबर १९३१ को ढाका के मजिस्ट्रेट मिस्टर एल० जी० डूर्नो अपने दफ्तर से लौट रहे थे कि दो युवकों ने उन पर गोली चला दी, जिनमें से एक उनकी कनपटी तथा दूसरी चेहरे पर लगी।

आक्रमणकारी भाग निकले। डूर्नो हवाई जहाज द्वारा कलकत्ता पहुँच गए, उनकी एक आँख निकाल डालनी पड़ी और दूसरी गोली जबड़ा काट कर निकाली गई।

यूरोपियन एसोसिएशन के प्रधान पर गोली—बहुत दिनों से यूरोपियन एसोसिएशन वाले हरेक सभा में क्रान्तिकारियों के विरुद्ध विष उगल रहे थे। जितना दमन हो रहा था उससे वे खुश नहीं थे। वे चाहते थे कि बंगाल के नौजवान एकदम से दबा दिए जाएँ। हो भी ऐसा ही रहा था, किन्तु साम्राज्य-वाद एक ढंग से यह बात कर रहा था, यानी न्याय का दिखावा कायम रखकर किया जा रहा था। वह न्याय का दिखावा कैसा था, जरा देखा जाए। क्रान्ति-कारियों के मुकदमे मामूली अदालतों में नहीं आ सकते थे, बल्कि उनका ट्रिब्यू-नल यानी तीन छँटे हुए खैरख्वाहों के सामने मुकदमा होता था। हथियार रखने में आजन्म कालेपानी तथा गोली चलाने में, चाहे लगे या न लगे, फाँसी हो सकती थी।

मिस्टर विलियर्स पर गोली—२६ अक्टूबर को सवेरे के समय यूरोपियन एसोसिएशन के सभापति मिस्टर विलियर्स अपने दफ्तर में कुछ सज्जनों के साथ बात कर रहे थे कि एक नौजवान ने आकर उन पर तीन गोलियाँ चलाईं। विलियर्स को मामूली चोट आई और वह नौजवान गिरफ्तार कर लिया गया, इस नौजवान के सम्बन्ध में सन्देह किया जाता था कि इसके पहले उसने कोई हत्या की थी। उसे १० साल की सजा हुई।

सुभाष बोस गिरफ्तार—सुभाष बाबू पहले क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में गिरफ्तार हो चुके थे और सालों नजरबन्द भी रहे। उन्होंने इन दिनों ढाका में होने वाले पुलिस के अत्याचार के विषय में जो सुना तो उस पर तहकीकात करने के लिए ढाका जा रहे थे कि परगना अफसर ने उन्हें लौट जाने के लिए कहा। वह एक गैर सरकारी कमेटी में भाग लेने के लिए जा रहे थे, उन्होंने इस हुक्म को मानने से इनकार किया और ११ नवम्बर को वह गिरफ्तार करके सेन्ट्रल जेल में भेज दिए गए। जाते समय उन्होंने जनता की दृष्टि चटगाँव और ढाका के पुलिस अत्याचारों की ओर आकर्षित करते हुए यह सन्देश दिया कि

चटगाँव और ढाका को याद रखो। बाद को उनके विरुद्ध यह मुकदमा वापस कर लिया गया।

लड़कियों ने गोली चलाई—अब तक आतंकवादी कामों में मुख्यतः लड़कों ने ही भाग लिया था, कम-से-कम किसी भी लड़की ने अब तक हत्या नहीं की थी, किन्तु २४ दिसम्बर १९३१ को फैजुन्निसा बालिका विद्यालय की दो छात्राएँ कुमारी शान्ति घोष तथा कुमारी सुनीति चौधरी ने जो बात कर दिखाई, उससे एक ऐतिहासिक लीक बन गई। इन दोनों लड़कियों ने जाकर मजिस्ट्रेट मिस्टर बी० जी० स्टीवेन्स से मिलना चाहा। जब पूछा गया कि आप लोग किसलिए मिलना चाहतीं हैं तो उन्होंने बतलाया कि वे लड़कियों की तैराकी के दंगल के सम्बन्ध में मिलना चाहती हैं। इस पर उन्हें मिस्टर स्टीवेन्स के कमरे में ले जाया गया, वहाँ दाखिल होते ही उन्होंने मजिस्ट्रेट के ऊपर गोली चला दी। मिस्टर स्टीवेन्स तुरन्त मर गए, दोनों लड़कियाँ फौरन गिरफ्तार कर ली गईं।

सरदार पटेल की टीका—सारे हिन्दुस्तान में इस बात से बड़ा तहलका मचा, सरदार पटेल ने इस पर बयान दिया कि ये दोनों लड़कियां भारतीय नारियों के लिए कलंक स्वरूप हैं। इतिहास ही इस बात को बताएगा कि ये लड़कियाँ भारत के इतिहास का कलंक नहीं हैं। हाँ इस प्रकार का बयान अवश्य कलंक था।

ऊपर की घटना त्रिपुरा की है। इन लड़कियों को २७ फरवरी १९३२ को आजन्म कालेपानी का दण्ड हुआ।

बंगाल के गवर्नर पर गोली—६ फरवरी १९३२ को मानो ऊपर की घटना एक नए रूप में आई। उस दिन स्टैनले जैकसन दीक्षांत भाषण दे रहे थे कि वीणादास नामक एक नई स्नातिका ने, जो उपाधि लेने आई थी, उन पर पाँच गोलियाँ चलाईं, जो सबकी सब चूक गईं। बँगला साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक डॉक्टर दिनेशचन्द्र सेन को कुछ मामूली चोट आई। वीणादास गिरफ्तार कर ली गई। वीणादास ने अदालत में एक साहसपूर्ण बयान दिया, अर्थात् वीरता-पूर्वक सब बातें स्वीकार कीं तथा यह कहा कि किन उद्देश्यों से उसने ऐसा किया है, किन्तु अखबारों पर रोक लगा दिए जाने के कारण उस बयान का प्रचार न हो सका।

मेदिनीपुर के दूसरे मजिस्ट्रेट की हत्या—३० अप्रैल १९३३ को मिस्टर आर० डगलस डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के दफ्तर में कुछ कागजों पर दस्तखत कर रहे थे कि दो नौजवान एकाएक उनके दफ्तर में घुस गए और उन पर गोलियाँ चलाने लगे। दो गोलियाँ उनको लगीं। दो आक्रमणकारियों में से एक तो उसी समय पकड़ लिया गया, दूसरा भाग गया। जो व्यक्ति पकड़ा गया उसकी जेब में एक कागज निकला, जिसमें लिखा था—

"यह हिजली का बदला है"—"इन हमलों से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को होशियार हो जाना चाहिए, हमारा बलिदान यों ही न जायगा, भारतवर्ष इससे जगेगा, वन्देमातरम्।" मिस्टर डगलस मर गए और प्रद्योतकुमार भट्टाचार्य को फाँसी हो गई।

जिला मजिस्ट्रेट के डिब्बे पर बम—१२ जून को फरीदपुर जिला मजिस्ट्रेट राय बहादुर सुरेशचन्द्र बोस के साथ वहाँ के पुलिस कप्तान रेल पर जा रहे थे कि किसी ने उनके डिब्बे पर बम फेंक दिया, इससे किसी को चोट न आई न कोई पकड़ा ही गया।

कैप्टन कैमरून की हत्या—उसके दूसरे दिन पुलिस को खबर मिली कि चटगाँव के जल घाट नामक गाँव में चटगाँव शस्त्रागार कांड के कुछ फरार छिपे हैं। पुलिस ने जाकर इन मकानों को घेर लिया। कैप्टन कैमरून पुलिस की इस टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे। पुलिस के अतिरिक्त गोरखे सैनिक भी थे। रात के नौ बजे पुलिस ने मकान पर छापा मारा, छापा मारना था कि भीतर से धमधम आवाज आई। कैप्टन कैमरून बाहर की सीढ़ी से मकान की ऊपरी मंजिल पर चढ़ने लगे, उनके साथ एक हवलदार था। वह चढ़ ही रहे थे कि एकाएक भीतर से एक आदमी ने आँधी की तरह निकलकर हवलदार को एक जोर का धक्का दिया और साथ ही कैप्टन कैमरून पर गोली चलाई। हवलदार लुढ़कता हुआ नीचे आ गया और कैप्टन कैमरून वहीं पर ढेर हो गए। ऊपर से एक आदमी झपटकर उतरा और उसने एक सिपाही की बन्दूक छीनने की चेष्टा की, किन्तु छीन न सका। वह झाड़ियों की ओर भाग निकला। सिपाही ने उस पर गोली चलाई। बाद को एक आदमी झाड़ियों में गोली से मरा हुआ पाया गया। इसी समय एक आदमी ने जंगले से उतर कर भागने की

चेष्टा की। उसको गोली मार दी गई। वह भीतर चला गया। बाद को उसकी लाश कमरे में पुलिस को मिली। फिर भी दो व्यक्ति भाग निकले, एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता सूर्यसेन और दूसरा सीताराम विश्वास। दो व्यक्ति जो मरे पाए गए, उनका नाम था निर्मल चन्द्र सेन और अपूर्वसेन।

कामाख्या सेन की हत्या—ढाका के सबडिप्टी मजिस्ट्रेट को जो ७ जुलाई १९३२ ई० को श्री एस० एन० चटर्जी के यहाँ मेहमान थे, रात को एक बजे बिस्तर पर सोने की हालत में गोली मार दी गई और मारने वाले भाग निकले। इस सम्बन्ध में बाद को कालीपद मुकर्जी को फाँसी हुई।

मिस्टर एलीसन की हत्या—२९ जुलाई को मिस्टर एलीसन, जो त्रिपुरा के ऐडिशनल पुलिस सुपरिन्टेंडेंट थे, साइकिल पर जा रहे थे। उनके साथ एक आदमी था। एकाएक एक नवयुवक ने पीछे से उन पर गोली चलाई। मिस्टर एलीसन घायल तो हो गए, किन्तु साइकिल से उतरकर उन्होंने गोली चलाई। युवक ने भागते समय एक पैकेट फेंका जिसमें लाल पर्चे थे। उसमें यह लिखा था कि इक्के-दुक्के हमले न कर गोरों पर सामूहिक रूप से हमला किया जाएगा। यह पर्चा भारतीय प्रजातन्त्र सेना की ओर से सूर्यसेन द्वारा लिखा गया था। मिस्टर एलीसन की गोली पीठ से पेट में पहुँची और वह मर गए।

स्टेट्समैन के सम्पादक पर गोली—स्टेट्समैन बंगाल के गोरों का अखबार रहा है। भारत में रहते हुए भी इसके सम्पादक हमेशा भारत की बुराई चाहते रहे और वही लिखते थे, जिससे भारत का नुकसान हो। भारत के राष्ट्रीय जीवन से इसे कोई सरोकार नहीं था। इसे तो बस भारत में ब्रिटिश साम्राज्य-वाद किसी प्रकार कायम रहे, इसी से मतलब था। क्रान्तिकारियों का तो यह जानी दुश्मन था। सर अलफ्रेड वाटसन इसके सम्पादक थे। ७ अगस्त को वह अपने घर से दफ्तर आ रहे थे, जिस समय उनकी मोटर रुकी और वह उतरने को हुए उस समय एक नौजवान मोटर के फुट बोर्ड पर चढ़ गया और उन पर गोली चलाई। गोली चूक गई, आक्रमणकारी पकड़ा गया, किन्तु उसने तुरन्त जहर खा लिया जिससे वह वहीं मर गया। साम्राज्यवाद अतृप्त रह गया।

मिस्टर ग्रासबी पर आक्रमण—२२ अगस्त को ढाका के एडिशनल पुलिस सुपरिन्टेंडेंट मिस्टर ग्रासबी दफ्तर से घर जा रहे थे। जिस समय वह एक

चौरास्ते पर पहुँचे उन पर विनय भूषण दे नामक एक युवक ने गोली चलाई। विनय पकड़ लिया गया और उसे आजन्म कालेपानी की सजा हुई।

यूरोपियन क्लब पर सामूहिक आक्रमण—चटगाँव के गोरों का एक क्लब था। मजलिस खूब जमी थी। ऐसे समय में दस-बारह क्रान्तिकारियों ने इस क्लब पर आक्रमण कर दिया। आक्रमणकारी विभिन्न पोशाकों में थे। दरवाजे पर एक बम धड़ाके के साथ गिरा, सब फाटकों से एक साथ गोली चलाई गई। जितने जोर से यह आक्रमण किया गया था उतनी सफलता नहीं मिली। मालूम होता है आक्रमणकारी घबरा गए थे। तीन चार मेमें तथा गोरे मरे। इसी क्लब के १०० गज फासले पर एक क्रान्तिकारिणी की लाश मिली, इनका नाम प्रीति वादेदार था। कोई और आक्रमणकारी हाथ न आया। यह घटना २४ सितम्बर १९३२ को हुई थी।

स्टेट्समैन-सम्पादक पर दूसरा हमला—सर अलफ्रेड वाटसन २८ सितम्बर को एक श्रीमती जी के साथ मोटर पर सैर कर रहे थे, इतने में एक मोटर पीछे से आई और उसमें से उन पर गोलियों की झड़ी लगा दी गई। सर वाटसन, श्रीमती ग्रास तथा ड्राइवर तीनों घायल हुए। आक्रमणकारी मोटर में बेहाला की ओर भागे जहाँ उन्होंने मोटर छोड़ दी। भीड़ ने उनका पीछा किया, दो तो विष खाकर मर गए। तीसरा एक टैक्सी में भाग गया।

जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट पर गोली—१८ नवम्बर को राजशाही सेन्ट्रल जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर चार्लस ल्यूक मोटर में हवा खाने निकले थे। उनके साथ उनकी लड़की तथा स्त्री थी। सामने से एक साइकिल आ रही थी। मिस्टर ल्यूक ने उसे बचाया, फिर भी वह साइकिल सामने आ गई, तो मोटर खड़ी करनी पड़ी। मोटर खड़ी होते ही साइकिल के सवार ने गोली चलाई। दो और नौजवानों ने भी गोली चलाई। मिस्टर ल्यूक के चेहरे पर गोली लगी। वह घायल मात्र हुए।

सूर्यसेन की गिरफ्तारी—१६ फरवरी को पुलिस ने फिर सूर्यसेन की तलाशी में चटगाँव के एक गाँव पर छापा मारा। सूर्यसेन पर दस हजार रुपए का इनाम था। सूर्यसेन अपने साथियों सहित गिरफ्तार हुए। श्रीमती कल्यान-दत्त के साथ उन पर मुकदमा चला, और बाद को फाँसी दी गई। तारकेश्वर

दस्तिदार को भी इसी मुकदमे में फाँसी हुई । कल्यानदत्त को आजन्म कालेपानी की सजा हुई ।

मेदिनीपुर के तीसरे मजिस्ट्रेट की भी हत्या—२ सितम्बर १९३२ को मेदिनीपुर के मजिस्ट्रेट मिस्टर बर्ज मुसलमानी टीम के साथ मैच खेलने पुलिस लाइन गए । उनके साथ पुलिस के कई बड़े अफसर थे । तीन बंगाली युवकों ने एक साथ उन पर गोलियों की झड़ी लगादी । उन पर छै गोलियाँ लगीं । मिस्टर बर्ज के अंगरक्षकों ने गोली चलाई, और दो वहीं खेत रहे । तीसरे गिरफ्तार कर लिए गए । जब मुकदमा चला तो निर्मल जीवन, रामकृष्ण राय तथा ब्रजकिशोर को फाँसी हुई । मिस्टर बर्ज खेलने गए थे, किन्तु वहीं खेल गए । यह मेदिनीपुर के तीसरे मजिस्ट्रेट की हत्या थी ।

मेदिनीपुर में इन दिनों पुलिस ने जो अत्याचार किया है वह अवर्णनीय है, साम्राज्यवाद ने १८५७ के दिनों के अत्याचार का फिर से अभिनय किया ।

यूरोपियनों पर बम—७ जनवरी १९३४ को जब गोरे मैच देख रहे थे तो उन पर चार युवकों ने बम चलाया, किन्तु यह सफल न रहा ।

बंगाल के गवर्नर पर फिर हमला—बङ्गाल के गवर्नर सर जान एंडरसन ८ मई १९३४ को लेबांग की घुड़दौड़ में शामिल थे । वह अपने बाक्स में बैठे हुए थे कि दो नौजवानों ने आकर उन पर तमंचों से गोलियाँ चलाईं । गोलियाँ खाली गईं और वे युवक हिरासत में ले लिए गए । इस सम्बन्ध में कुमारी उज्वला नाम की एक लड़की गिरफ्तार हुई । इसने, मनोरंजन बनर्जी ने तथा रवि बनर्जी ने बयान दे दिया, और उसमें दो चार ऐसी बातें कहीं, जिससे क्रान्तिकारियों की निन्दा होती थी । इस मुकदमे में भवानी भट्टाचार्य को फाँसी की सजा दी गई । इन्हें १९३५ की जनवरी की रात बारह बजे फांसी दी गई । बाकी सबको आजन्म कालेपानी की सजा हुई । स्मरण रहे यह दल मुख्य दल से अलग था । कुछ नौजवानों को उमंग आ गई थी ।

ऊपर जिन घटनाओं का वर्णन किया है, इनके अलावा भी बहुत-सी घटनाएँ, हमले तथा डाके क्रान्तिकारियों की ओर से बंगाल में हुए किन्तु उनके वर्णन की आवश्यकता नहीं है । इन कई वर्षों में क्रान्तिकारियों के कार्यक्रम का वह हिस्सा जिसको हम आतंकवादी कह सकते हैं, खूब जोरों पर रहा । कैसे इसी आतंकवाद से प्रतिक्रिया आई, और भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन ने एक दूसरा ही किन्तु उग्रतर रास्ता पकड़ा, यह आगे के एक लेख में दिखलाया जाएगा ।

२४

अन्य प्रान्तों में क्या हो रहा था

चन्द्रशेखर आजाद के शहीद होने के बाद उत्तर भारत का काम ढीला पड़ गया था। यह ढिलाई केवल इस कारण नहीं थी कि उपयुक्त नेताओं का अभाव रहा, बल्कि सच्ची बात तो यह है कि जिन सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों से इस कर्मधारा की उत्पत्ति हुई थी वही बदल रही थी। महात्मा गांधी ने विवेक तथा आत्मा की पुकार पर सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया था। जो सत्य और अहिंसा तो नहीं उनका नशा कुछ हद तक आन्दोलन को कभी आगे ले जाने में सफल रहा था, उसका ढोंग अब कांग्रेस को पीछे घसीट रहा था। सुधारवाद या विधानवाद धीरे-धीरे अपना मनहूस सिर उठा रहा था। उसके बाद क्या हुआ यह तो सभी जानते हैं, हम केवल संक्षेप में इस बीच की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करेंगे। बंगाल के अध्याय को लिखते समय जिस प्रकार हमने वहाँ की ९० फी सदी घटनाओं को छाँट कर केवल मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन किया है तथा जितनी बड़ी-बड़ी घटनाओं पर कैंची चला दी है, वैसा यदि इन प्रान्तों के सम्बन्ध में हम करें तो इस बीच की होने वाली एक घटना के वर्णन करने की नौबत न आए। पाठक इस अध्याय को पढ़ते समय इस बात को स्मरण रखें।

रमेशचन्द्र गुप्त—पहले ही लिखा जा चुका है कि आजाद के मारे जाने के लिए वीरभद्र पर भी संदेह किया जाता था, तदनुसार कानपुर दल ने वीरभद्र को गोली से उड़ा देने का विचार किया। इसके लिए, सुना जाता है, बड़े-बड़े क्रान्तिकारी पिस्तौल लेकर घूमते रहे, किन्तु वह हाथ न आता था। कानपुर के नारियल बाजार में वीरभद्र पर तीन नौजवानों ने एकदम हमला कर दिया। वीरभद्र धाँय-धाँय सुनते ही एकदम लेट गया, हमला करने वालों ने समझा यह मर गया, इसलिए वे चले गए। जब वे लोग चलते बने, तो वीरभद्र भाग गया। उसे जरा भी चोट नहीं आई थी।

किन्तु दल ने उसे फिर भी नहीं छोड़ा। दल का एक उत्साही नौजवान रमेशचन्द्र गुप्त इस काम के लिए तैनात हुआ, किन्तु कानपुर को बहुत गरम पाकर वीरभद्र ने अपना निवास स्थान उरई बना लिया। रमेशचन्द्र पढ़ते थे, उन्होंने घर वालों से कहा कि मेरा मन कानपुर में पढ़ने में नहीं लगता, उरई जाऊँ तो मन लगे। घर वाले भला भीतरी रहस्य क्या जानते थे, वे मान गए। रमेश उरई में जाकर स्कूल में भर्ती हो गए। पढ़ते तो वह क्या थे वह वीरभद्र की टोह में लगे रहते थे। एक दिन जब वीरभद्र नाटक में कोई पार्ट अदा करके एक स्टेज से उतर रहा था तो रमेशचन्द्र ने अपना पार्ट अदा किया और उस पर पिस्तौल तान दी। चार बार घोड़ा दबाया तो एक ही गोली निकली और सो भी गलत। वह गिरफ़्तार कर लिए गए, और बाद को उन्हें दस साल की सजा मिली।

यशपाल और सावित्री देवी—यशपाल बहुत दिनों से सरकार की आँखों में खटकते थे, वह घोषित फरार थे। वायसराय पर बम, पंजाब के गवर्नर पर गोली आदि कई मामलों के सम्बन्ध में पुलिस उन पर शक करती थी। २२ जनवरी १९३२ को जब वह कानपुर से इलाहाबाद आ रहे थे तो पुलिस के किसी आदमी ने उन्हें पहचान लिया। वहीं से उनके पीछे पुलिस लग गई। जब वह आकर मिसेज जाफरअली उर्फ सावित्री देवी नामक आयरिश महिला के घर में हेवेट रोड पर ठहरे तो रात रहते ही मिस्टर पिलिड्च पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने दलबल सहित मकान को घेर लिया। दोनों ओर से गोली चली किन्तु किसी को चोट नहीं आई। यशपाल गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें १४ साल की सजा हुई। श्रीमती सावित्री देवी को एक फरार को आश्रय देने के कारण पाँच साल की सजा दी गई। यशपाल की १४ साल की सजा यथेष्ट समझी गई। इसलिए उन पर कोई और मुकदमा नहीं चलाया गया।

भाभी, दीदी, प्रकाशवती—भाभी उर्फ श्रीमती दुर्गा देवी, दीदी उर्फ श्रीमती सुशीलादेवी तथा श्रीमती प्रकाशवती उर्फ प्रकाशो फरार थीं, किन्तु भाभी ने आत्मसमर्पण कर दिया। उन पर कोई मुकदमा नहीं चला। दीदी पकड़ीं गईं, उन पर भी कोई मुकदमा नहीं चला। श्रीमती प्रकाशवती भी बाद को इसी प्रकार गिरफ्तार हुईं, किन्तु छोड़ दी गईं। इन सब में भाभी का क्रान्ति-

कारी आंदोलन में बहुत ही सक्रिय भाग था ।

बर्मा में थारावाडी विद्रोह—बर्मा के थारावाडी विद्रोह की भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास के अन्तर्मुक्त करना कहाँ तक उचित होगा, इसमें सन्देह है, फिर भी हम इसका एक संक्षिप्त विवरण यहाँ देंगे । इसको विद्रोह कहने से क्रान्ति चेष्टा, सो भी जन क्रान्ति चेष्टा, कहना अधिक उपयुक्त होगा । आरम्भ में इरावती नदी के कुछ जिले में ही यह विद्रोह हुआ, किन्तु बाद को फैल गया । सायासान नामक एक बर्मी इस षड्यन्त्र के नेता थे । इस क्रान्ति के लिये तैयारी गुप्त रूप से बहुत दिनों से हो रही थी । १९३१ के अप्रैल तक इस संगठन की शाखाएँ थारावाडी, हेंजड़ा आदि दो तीन जिलों में फैलीं । क्रान्ति का आरम्भ इस प्रकार हुआ कि मुखियों की सभा पर आक्रमण किया, और एक मुखिया मार डाला गया । इसके बाद यत्र-तत्र आक्रमण हुए, आक्रमण कुछ-कुछ गोरिल्ला ढंग पर हुए । कई जगह पुलिस वालों पर भी आक्रमण किया गया, दस-बीस जगह पुलिस अफसर भी मारे गए । जून में सायासान ने शान रियासत में क्रान्ति फैला दी, यह विद्रोह दबा दिया गया और दो अगस्त को सायासान गिरफ्तार कर फाँसी पर चढ़ा दिया गया । मई और जून को ही यह क्रान्ति जोरों पर थी, क्रान्तिकारी अधिकतर गाँव वाले थे और बौद्ध भिक्षु भी उनके साथ थे । यह क्रान्ति कितनी विराट थी यह इसी से जाना जा सकता है कि लड़ाइयों के दौरान में २००० क्रान्तिकारी मारे गए । ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बड़ी कठोरता से इस विद्रोह को दबाया ।

मेरठ षड्यन्त्र——मेरठ का षड्यन्त्र भी क्रान्ति की चेष्टा के उद्देश्य से किया गया था । जिस समय सरदार भगतसिंह वाला लाहौर षड्यन्त्र देश के सामने ख्याति प्राप्त कर रहा था उसी समय मेरठ षड्यन्त्र चल रहा था, किन्तु मेरठ षड्यन्त्र लाहौर षड्यन्त्र के मुकाबले में जनता का प्रिय न हो सका, न मेरठ षड्यन्त्र का कोई भी व्यक्ति भगतसिंह की तुलना में ख्याति ही प्राप्त कर सका । मेरठ षड्यन्त्र के मुख्य अभियुक्त डांगे, घाटे, जोगलेकर, निम्बेकर, पी० सी० जोशी, अधिकारी आदि थे, इस षड्यन्त्र में तीन अंग्रेज भी थे, अर्थात् स्प्रैट, ब्रँडले और हचिनसन । इन लोगों पर यह अभियोग था कि रूस की तृतीय इन्टर-नेशनल के साथ षड्यन्त्र करके इन लोगों ने वर्तमान सरकार को उलट

कर सोवियत शासन कायम करने की चेष्टा की। २० मार्च १९२८ को गिरफ्तारियाँ हुईं, और १६ जनवरी १९३३ को इसका निर्णय सुनाया गया। इस मामले में जो फैसला दिया गया वह एक बहुत ही पठनीय चीज है। सेशन जज ने डांगे, स्प्रैट, जोगलेकर, निम्बकर, घाटे को बारह-बारह वर्ष कालेपानी तथा अन्य लोगों को दूसरी सजाएँ दीं। बाद को ये सजाएँ बहुत घटा दी गईं।

गया षड्यन्त्र—३० जनवरी १९३३ को गया के पास एक डाकगाड़ी लूटी गई; इस सम्बन्ध में १७ व्यक्ति गिरफ्तार हुए, जिनमें श्यामचरण वर्थवार, केशवप्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद, शत्रुघ्न सिंह, भगवतदास, केदारनाथ मालवीय, जगदेव मालवीय आदि थे। इनका सम्बन्ध श्री चन्द्रशेखर आजाद से था। इन्हें ७ साल तक के लिए जेल की सजा हुई।

वैकुण्ठ शुक्ल—फणीन्द्रनाथ घोष भुसावल में तो गोली से बचकर आया था; किन्तु वैकुण्ठ शुक्ल ने छुरों से ही बेतिया में उसका काम तमाम कर दिया। यह बिहार के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी योगेन्द्र शुक्ल के भतीजे थे। बाद को यह सोनपुर में पकड़े गए, और इन्हें फाँसी हुई। पुलिस ने इस सम्बन्ध में चन्द्रमासिंह पर भी मुकदमा चलाना चाहा और वह फतेहगढ़ जेल से इसीलिए लाए गए थे, किन्तु उन पर सबूत न मिला। इसी षड्यन्त्र के सिलसिले में महन्त रामरमण दास तथा रामभवनसिंह को सजा हुई।

मद्रास में षड्यन्त्र—पहले ही लिखा जा चुका है कि मद्रास में एक ऐश-हत्या के अतिरिक्त कभी कोई काम न हुआ। २५ अप्रैल १९३३ को उटकमंड का एक बैंक लूट लिया गया। जब ये बैंक लूटकर भागे तो पुलिस ने आक्रमणकारियों को पकड़ लिया। मुकदमा चला तो बच्चूलाल, शम्भूलाल आजाद तथा प्रेमप्रकाश को आजन्म कालेपानी, खुशीराम मेहता और हजारासिंह को दस-दस साल की सजा हुई। बाद को मद्रास में एक और षड्यन्त्र चला।

अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र—अगस्त १९३३ को ३८ युवकों पर सरकार ने एक षड्यन्त्र चलाया। उस में बंगाल, उत्तर-प्रदेश, पंजाब और बर्मा के लोग थे। इस षड्यन्त्र के नेता सीतानाथ दे माने गए, अभियुक्तों को लम्बी-लम्बी सजाएँ हुईं।

बलिया षड्यन्त्र—११ जनवरी सन् १९३५ ई० को बलिया से भेजे हुए एक

तार के आधार पर काशी की पुलिस ने बनारस से इलाहाबाद साइकिल से जाते हुए एक युवक को बनारस छावनी से दो मील दूर, एक थाने के निकट ग्राम सड़क पर घेर कर पकड़ा था। उसके पास कुछ कागजात, ४५ कारतूस तथा गुप्त लिपि में लिखी हुई एक नोटबुक मिली थी। दूसरे दिन १२ जनवरी को बलिया, बनारस, इलाहाबाद, गाजीपुर, जौनपुर आदि कई स्थानों में तलाशियां ली गईं, तथा बलिया में श्री गोकुलदास, श्री तारकेश्वर पाण्डेय, श्री नर्वदेश्वर चतुर्वेदी, श्री रामलक्षण तिवारी, श्री शिवपूजनसिंह एवं अन्य कई और व्यक्ति गिरफ्तार किए गए। काशी, आज़मगढ़, जौनपुर, इलाहाबाद जिले के भी कुछ व्यक्ति पकड़े गए। बाद में बहुत से लोग छोड़ भी दिए गए। जो शेष रह गए उनकी जमानतों की दरखास्तें नामंजूर करते हुए पुलिस की तरफ से कहा गया था कि इसके लोग बिहार, उत्तर-प्रदेश, पंजाब आदि प्रान्तों में फैले हुए हैं और एक अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र चलाने के लिए काफी मसाला प्राप्त हो चुका है।

२३ फरवरी सन् १९३५ ई० को उपर्युक्त धारणा के अनुसार उक्त प्रान्तों में लगभग २५० तलाशियाँ ली गईं, पर कहीं भी कोई आपत्तिजनक सामग्री पुलिस को प्राप्त न हो सकी। पुलिस की ओर से दूसरी बार जमानतों की दर-खास्तों का विरोध करते हुए कहा गया था कि इस षड्यन्त्र का आधार वही गुप्त भाषा में लिखी हुई नोट बुक तथा छपे हुए विधान और प्रतिज्ञा पत्र आदि हैं। इनके पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि इस गुट का उद्देश्य सशस्त्र क्रान्ति द्वारा वर्तमान सरकार को पलट देना है। इसकी एक मीटिंग की कार्यवाही का पूर्ण विवरण पुलिस के पास था और उसमें शामिल होने वाले सदस्यों के फोटो भी इतना ही नहीं, पुलिस का इस गुट पर यह भी दोषारोपण था कि १९२५ ई० के बाद पूर्वी जिलों में जो कुछ भी उपद्रव होता रहा है, इसी गुट का काम है। उनका यह भी कहना था कि १९३२ ई० में जो तार काटने की हलचल हुई थी वह इसी दल का काम था। काशी में तथा अन्य जगहों में जो डाके पड़े हैं वे भी इसी दल के लोगों ने डाले हैं। इस का नेता गोकुलदास है जो बराबर कई बार कई षड्यन्त्र केसों में पकड़ा जा चुका है। इसलिए पूरी तैयारी के लिए पुलिस को अवकाश मिलना चाहिए।

उन्हें पूरे छः मास का अवकाश भी मिला। इस बीच कुछ सरकारी गवाह

तैयार करने की पूरी चेष्टा की गई पर इसमें उसे कामयाबी प्राप्त नहीं हुई। अतः पुलिस ने षड्यन्त्र चलाने का इरादा छोड़ दिया और हथियार कानून की धारा १६, २० के अनुसार मुकदमा चलाने का निश्चय किया। इनके इस निश्चय पर एक प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट ने कहा था कि 'पहाड़ खोद कर चूहा निकालने की कोशिश की गई है।'

हथियार कानून के अनुसार बलिया में श्री गोकुलदास और श्री रामलक्षण तिवारी तथा काशी में श्री हरिनाम शर्मा आदि पर मुकदमे चलाए गए। मुकदमे के बीच गवाहियाँ देते हुए पुलिस अधिकारियों ने अधिकतर केवल पुराना ही रोना रोया था।

गोकुल दास के विरुद्ध हथियार कानून के मामले को साबित करने के लिए बिहार से जो पुलिस अधिकारी गवाही देने के लिए आए थे, उनका सिर्फ यही कहना था कि सन् १६३० में गोकुलदास बिहार में पकड़े गए थे। यह योगेन्द्र शुक्ल के साथी मलखाचक वालों से मिलने गए थे। हमें संदेह था कि इनके पास हथियार थे और इन्होंने सोनपुर स्टेशन पर अपने एक साथी को दे दिए थे, जिसका पीछा पुलिस ने किया पर पकड़ न सकी थी। बाद में १७ १) क्रिमिनल ला अमेन्डमेन्ट ऐक्ट के अनुसार सजा हुई थी। इनका सम्बन्ध ऐसे लोगों से है जो बिहार प्रान्त में सन्देहजनक दृष्टि से देखे जाते हैं। पुलिस को इस बात का भी सन्देह था कि इन्होंने योगेन्द्र शुक्ल को जेल से भगा देने का प्रयत्न किया था। उत्तर प्रदेश के अधिकारियों का कहना था कि वे लाहौर के षड्यन्त्र केस में तथा महोबा में हथियार कानून के अन्तर्गत भी पकड़े गए थे। परन्तु प्रमाणाभाव के कारण छोड़ दिए गए थे। बाँदा में तार काटने के मामले में सजा पा चुके हैं। ये (Starred Political Suspect) राजनीतिक संदिग्ध व्यक्ति हैं, इसलिए यह हथियार भी इन्हीं का है। प्रायः इसी प्रकार के प्रमाण के आधार पर अन्ततः काशी और बलिया में ६ व्यक्तियों को ४ साल से लेकर एक साल तक की सजाएँ हुईं। इनमें एक उल्लेखनीय व्यक्ति आजमगढ़ जिले का १२० वर्षीय लुहार था, जिस पर हथियार बनाने का अभियोग था और उसे भी ४ साल की सजा हो गई थी। ये अपनी सजाएँ काटकर छूटे।

२५

बंगाल की कुछ क्रान्तिकारिणियाँ

पहले के अध्यायों से पता लग गया है कि बंगाल की स्त्रियों ने भी बंगाल के पुरुषों की तरह क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लिया था। नीचे कुछ नजरबंद राजनीतिक कैदियों का परिचय दिया जाता है।

श्रीमती लीलावती नाग एम० ए०—यह पेंशनयाफ्ना डिप्टी मजिस्ट्रेट रायबहादुर गिरीशचन्द्र नाग की लड़की हैं। अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० हैं, छात्र जीवन में हरेक परीक्षा को इन्होंने नामवरी से पास किया था।

लीलावती ने ही ढाका की कमरुन्निसा बालिका विद्यालय की स्थापना की थी। पहले दो साल तक वह उसकी अवैतनिक प्रधानाध्यापिका रहीं. उस समय इसका नाम दीपावली विद्यालय था। इसी युग में इन्होंने दीपाली-संघ नाम से एक नारी-संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य नारियों की सब प्रकार की उन्नति करना था। बहुत-सी वाधाएँ उनके रास्ते में आईं, किन्तु उन्होंने सब वाधाओं पर विजय प्राप्त की। गाँव-गाँव घूमकर इन्होंने लड़कियों के विद्यालय भी स्थापित किए।

दीपावली विद्यालय से सम्बन्ध टूट जाने पर इन्होंने नारीशिक्षा-मन्दिर नाम से लड़कियों का एक हाई स्कूल स्थापित किया। उसी के साथ एक बोर्डिंग की भी स्थापना की। इसमें गरीब लड़कियों के लिए पढ़ने तथा काम सीखने की व्यवस्था थी। इसी युग में इन्होंने 'जय श्री' नाम की एक विख्यात मासिक पत्रिका निकाली। १९३१ के २० दिसम्बर को क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट के अनुसार गिरफ्तारी हुई, १९३८ में यह छोड़ी गईं।

श्रीमती रेणुकासेन एम० ए०—रेणुकासेन अर्थशास्त्र में एम० ए० हैं। लीलावती ने जब पहले-पहले बालिका-विद्यालय की स्थापना की, तब यह वहीं छात्रा थीं। बी० ए० पास करने के बाद वह पढ़ने के लिए कलकत्ता गईं और वहीं एम० ए० पास किया। १९३० के १७ सितम्बर को यह पहले-पहल डलहौजी

स्क्वायर बमकांड के सम्बन्ध में पकड़ी गईं। एक महीने तक लालबाजार lock up में तथा प्रेसिडेन्सी जेल में रहने के बाद यह छूट गईं। इस कारण वेथून कालेज से निकाली गईं। १९३० के २० दिसम्बर को यह लीला नाग के साथ पकड़ी गईं, और १९३१ को छोड़ी गईं।

श्रीमती लीला कमाल बी०ए०—आशुतोष कालेज में बी० ए० में पढ़ते समय यह ग्रिन्डलेसम्बक को धोखा देने के शक में गिरफ्तार हुईं, किन्तु छूट गईं। यह महाराष्ट्र की रहने वाली हैं।

श्रीमती इन्दुमती सिंह—इन्दुमती चटगाँव के गोपाललाल सिंह की लड़की हैं। १९३९ के १४ दिसम्बर को गिरफ्तार हुईं, छै साल जेल में रहने के बाद छूटीं।

श्रीमती अमिता सेन—१९३४ के अगस्त में यह बंगाल आर्डीनेन्स में पकड़ी गईं। १९३६ में जेल से निकलकर श्रीमती नेलीसेन गुप्ता के मकान पर नजरबंद कर दी गईं। फिर यह हिजली भेजी गईं। १९३८ में छूटीं।

श्रीमती कल्याणी देवी एम० ए०—१९३१ के सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में ८ महीने तक जेल में रहीं। फिर पकड़ी गईं और छोड़ी गईं। १९३३ में उनके बालीगंज वाले मकान से एक तमंचा मिला। अतः वह अपने होस्टल में गिरफ्तार कर ली गईं, किन्तु सबूत न मिलने पर छूट गईं। तुरन्त बंगाल आर्डिनेन्स में पकड़ी गईं। प्रेसिडेन्सी, हिजली तथा अन्य जेलों में वर्षों रहने के बाद छूटीं।

श्रीमती कमला चटर्जी बी० ए०—कालेज की छात्र अवस्था में १९३१ में बंगाल आर्डिनेन्स में गिरफ्तार हुईं, १९३७ के अन्त में छूटीं। आप की लिखने की शक्ति अच्छी है।

बाईस अन्य क्रान्तिकारिणियाँ—इनके अतिरिक्त ये महिलाएँ भी आर्डिनेन्स में थीं।

(१) सुशीलादास गुप्ता—५ साल जेल में थीं।

(२) लावण्यप्रभादास गुप्ता— " "

(३) कमलादास गुप्ता बी० ए०—बीणादास के साथ पकड़ी गईं, किन्तु छोड़ दी गईं और फिर आर्डिनेन्स में ले ली गईं।

(४) सुरमादास गुप्ता बी० ए०—डेढ़ साल जेल में रहीं।

(५) उषा मुकर्जी—तीन साल जेल में रहीं।

(६) सुनीतिदेवी—दो साल जेल में रहीं।

(७) प्रतिभा भद्र बी० ए०—पाँच साल जेल में रहीं।

(८) सरयू चौधरी—टीटागढ़ मामले में पकड़ी गईं। फिर आर्डिनेन्स में चार साल जेल रहीं।

(९) इन्द्रसुधा घोष—चार साल जेल रहीं।

(१०) श्रीमती प्रफुल्लनलिनी ब्रह्मा—टिहरी के मजिस्ट्रेट मि० स्टीवेन्स की हत्या के अपराध में गिरफ्तार हुईं, किन्तु मुकदमा न चला, फिर आर्डिनेन्स में ले ली गईं। १९३० में जेल ही में मर गईं।

(११) श्रीमती हेलना बाल बी० ए०—यह अपने मामा श्री प्रफुल्लकुमार दत्त तथा सुपतिराय चौधरी के साथ गिरफ्तार हुईं, फिर कई साल जेल में रहीं।

(१२) श्रीमती आशादास गुप्ता—५ साल जेल में रहीं।

(१३) श्रीमती अरुणा सान्याल—५　"　"

(१४) श्रीमती सुषमादास गुप्ता—कई साल तक घर में नजरबंद रहीं।

(१५) प्रमीला गुप्ता बी० ए०—वीणादास के साथ पकड़ी गई थीं। कई साल नजरबंद रहीं।

(१६) सुप्रभा भद्र—प्रतिभा भद्र की छोटी बहिन नजरबंद रहीं।

(१७) शान्तिकणा सेन—दो साल तक जेल में रहीं।

(१८) शान्तिसुधा घोष एम० ए०—१९३३ के ग्रिन्डोल बैंक के सिलसिले में गिरफ्तार रहीं। फिर ४ साल तक नजरबंद रहीं। गिरफ्तारी के समय वह विक्टोरिया कालेज की अध्यापिका थीं।

(१९) विमलाप्रतिभा देवी—१९३० में २० जून को देशबन्धु दिवस पर जलूस का नेतृत्व करती हुई गिरफ़्तार हुईं, फ़िर आर्डिनेन्स में ली गईं। यह १९३७ में छूटीं।

(२०) ममता मुकर्जी—कुमिल्ला में नजरबंद रहीं।

(२१) हास्यबाला देवी—वरिसाल में अपने घर पर नजरबंद रहीं।

(२२) सरोज नाग—टीटागढ़ अस्त्र वाले मामले में पकड़ी गईं। फिर छूटीं तो नजरबंद कर दी गईं। स्वर्गीय सरदार पटेल के अनुसार शायद यह सभी भारत के कलंक हैं? देखना है इतिहास क्या कहता है?

२६

धारा का अन्त

किसी आन्दोलन का अवसान एकाएक नहीं हो जाता। आन्दोलन खत्म होते-होते भी कुछ समय लगता है। क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में मोटे तौर पर यह कहा जाना सम्भव है कि उत्तर भारत में श्री चन्द्रशेखर आजाद के शहीद होने के साथ तथा बंगाल में लेबाँग हत्याकाण्ड के साथ इस धारा का अन्त हो गया, फिर भी कुछ छिटफुट आतंकवादी क्रान्तिकारी गिरोह कायम रहे, और उन्होंने करीब-करीब द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ तक किसी-न-किसी रूप में अपना अस्तित्व कायम रखा।

पिपरीडीह डकैती—ऐसे ही एक छोटे गिरोह की तरफ से १९३७ के अंत में तथा १९३८ के प्रारम्भ में कुछ डकैतियाँ हुई, जिनमें पिपरीडीह की ट्रेन डकैती उल्लेखनीय है। पिपरीडीह में जिन लोगों ने काम किया था, वे बाद को पकड़े गए, और इस षड्यन्त्र के सम्बन्ध में जो कुछ बाद को पता लगा, उससे यह मालूम होता है कि इन लोगों के हाथ में आकर यह आन्दोलन सचमुच बहुत ह्रासशील अवस्था में पहुँच चुका था। ऐसा मालूम हुआ कि इस दल के नेतागण बहुत ईमानदार थे, पर उनकी ईमानदारी के बावजूद इस डकैती में प्राप्त धन का एक बहुत बड़ा हिस्सा अक्रान्तिकारी कार्यों में खर्च हुआ। इसके लिए कार्यकर्ता नहीं बल्कि आन्दोलनों की ह्रासशीलता जिम्मेदार थी। यह डकैती कांग्रेस मन्त्रिमंडल के जमाने में हुई थी। कांग्रेस ने इस मुकदमे को राजनीतिक मानने से ही इनकार कर दिया, इनमें से जो लोग हैसियत के अनुसार जेल में उच्च श्रेणी के व्यवहार के हकदार थे, उन्हीं को उच्च श्रेणी का व्यवहार दिया गया। यह तो बताने की आवश्यकता है ही नहीं कि पिपरीडीह के कैदियों को तत्कालीन कांग्रेस मन्त्रिमंडल ने नहीं छोड़ा। इस सम्बन्ध में सबसे मजेदार बात यह है कि उक्त कांग्रेस मन्त्रिमंडल के खत्म होते ही ये कैदी क्रान्तिकारी कैदी माने गए, और बाद को जब फिर से कांग्रेस मन्त्रिमंडल की स्थापना हुई

तब वे तथा अन्य बाकी क्रान्तिकारी कैदी कांग्रेस मन्त्रिमंडल द्वारा छोड़ दिए गए।

उधमसिंह—जिस समय १९४० में रामगढ़ कांग्रेस होने वाली थी, उसके ठीक पहले लंदन में उधमसिंह नामक एक नवयुवक ने पंजाब हत्याकाण्ड के लिए जिम्मेदार जनरल डायर को गोली से मार दिया। इस प्रकार कोई २० साल बाद जनरल को वह सजा मिली, जिसे क्रान्तिकारी उन्हें बहुत पहले ही देना चाहते थे। उधमसिंह के सम्बन्ध में बहुत ही कम तथ्य अखबारों में निकले, पर यह मालूम हुआ कि वह मदनलाल धींगरा की तरह विलायत में पढ़ने के लिए गए थे, गिरफ्तारी के बाद उनको बहुत कष्ट दिया गया, और यह चेष्टा की गई कि वह सिर झुका दें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सभ्य कहलाने वाली ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन में ही उन पर सब तरह का अत्याचार किया, पर वह टस-से-मस नहीं हुए। अन्त में उन्हें फांसी दे दी गयी। देश में इस समय तक आतंकवादी आन्दोलन का अन्त हो चुका था, पर पंजाब हत्याकाण्ड की बातें लोगों को याद थीं इसलिए यद्यपि सरकार ने उधमसिंह को फांसी दी, तो भी रामगढ़ कांग्रेस 'उधमसिंह जिन्दाबाद' के नारे से गूंजती रही। यह आतंकवाद की प्रशंसा नहीं थी, बल्कि पंजाब हत्याकाण्ड की निन्दा तथा उधमसिंह की वीरता के ही कारण ये नारे दिए गए थे।

यद्यपि वैयक्तिक आतंकवाद का युग खत्म हो चुका था, पर अब सही मानों में सशस्त्र क्रान्तिचेष्टा का आन्दोलन और आगे बढ़ा। यह कैसे हुआ इसे समझने के लिए हमें राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के महासागर में एक हद तक डुबकी लगानी पड़ेगी।

२७

द्वितीय महायुद्ध और भारत

वर्साई की सन्धि में ही अगली लड़ाई के बीज—१९३९ में जो महायुद्ध छिड़ा, वह कोई निर्मेघ आकाश से वज्रपात की तरह नहीं था। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के विद्यार्थी बहुत दिनों से इस बात को समझ रहे थे कि भीतर-भीतर जो आग सुलग रही है, वह एक विस्फोट के रूप में फटने के लिए बाध्य है। यदि ध्यान से देखा जाय तो १९१४-१८ के महायुद्ध के बाद जो वर्साई संधि हुई थी, उसी में अगला महायुद्ध अन्तर्निहित था। गुन्थर ने लिखा है कि हिटलर पर जिस एक बात का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था, वह शायद वर्साई का संधि-पत्र है। केवल हिटलर ही नहीं बहुत से जर्मनों की भावनाओं को इस संधि-पत्र से ठेस लगी। यदि १९१४ १८ का महायुद्ध एक साम्राज्यवादी युद्ध था, तो वर्साई का संधि-पत्र भी एक साम्राज्यवादी संधि-पत्र था।

सर्वहारा क्रान्ति का भय—यदि जर्मनी में साम्राज्यवादी क्रान्ति होने दी जाती, जैसा कि १९२९ और उसके बाद १९३२ में होने जा रही थी, तो जर्मनी में न तो नात्सीवाद का उदय ही हो पाता और न द्वितीय साम्राज्यवादी महायुद्ध के छिड़ने की ही नौबत आती। पर जिन शक्तियों ने लड़ाई जीती थी, वे ऐसा भला कब होने दे सकती थीं, वे तो रूस में साम्राज्यवादी राष्ट्र की स्थापना से ही बौखलाई हुई थीं, उसी को नष्ट करने के लिए उन्होंने प्रथम महायुद्ध के बाद समाजवादी रूस पर एक साथ २१ तरफ से हमला किया था। पर रूस की लाल सेना तथा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन को धन्यवाद है कि उनकी गर्हित चेष्टायें सफल न हो सकीं, और उन्हें मुंह की खानी पड़ी। अस्तु वे किसी भी दामों पर जर्मनी में सर्वहारा क्रान्ति होने देने के लिए तैयार नहीं थे।

जर्मन पूंजीवाद की मदद—१९२३ ई० में जब जर्मनी में सर्वहारा क्रान्ति होते होते रह गई, उस समय तक विश्व विजयी पूंजीवाद जर्मनी के साथ एक प्रति-शोध मूलक नीति बरत रहा था, पर इस घटना से उसकी आंखें खुल गईं।

विजयी पूँजीवादी इस बात के लिए विवश हुए कि बदले की भावना का त्याग-कर जर्मनी की मदद करे। लोकार्नो में जो पैक्ट हुआ था, वह पूँजीवादी जगत की इस घबराहट का परिचायक है। सच बात तो यह है कि लोकार्नो के पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद ने जर्मनी को अपनी छत्रछाया में ले लिया था। जो बातें आर्थिक रूप से शुरू हो चुकी थीं, उन्हीं को लोकार्नो पैक्ट में राजनीतिक रूप दिया गया। इस प्रकार से १९२६ में अब तक का राजनीतिक रूप से अछूत जर्मनी राष्ट्र संघ के अन्तर्भुक्त कर लिया गया। यदि इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद जर्मन पूंजीवाद के रक्षार्थ आगे न बढ़ता तो १९२३ में जर्मन क्रान्ति भले ही न कामयाब होती, किन्तु फिर कहीं आगे जाकर कामयाब होती। इस प्रकार यह ऐतिहासिक रूप से कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद ने मजदूर क्रान्ति के भय को टालने के लिए ही जर्मन पूँजीवाद के पैर के नीचे से खिसकती हुई धरती को सँभाला और इस प्रकार अपने लिए कब्र खोदी।

फासीवाद का प्रोत्साहन—१९२९ के विश्व आर्थिक संकट के फलस्वरूप जर्मनी की हालत और भी बिगड़ गई और १९३१ में तो जर्मनी ने हरजाना देना बन्द ही कर दिया। जर्मनी में फासीवाद के उदय में न केवल व्यक्तिगत रूप से कुछ पूँजीवादियों को ही दोष दिया जा सकता है, बल्कि इस में ब्रिटिश सरकार का बहुत गहरा हाथ था। लार्ड वेंसिटार्ट, जो बाद को जर्मनी के बच्चे-बच्चे से बदला लेने का नारा देकर सुर्खरू बन गए, यहाँ तक कि उनके नाम पर विश्व साहित्य में खूनी बदले के पर्यायवाचक शब्द के रूप में वेंसिटार्टवाद शब्द चला, वही लार्ड वेंसिटार्ट १९३० से १९३७ तक ब्रिटिश परराष्ट्र विभाग के उपसचिव थे। इनके समय में जर्मनी के उदीयमान फासीवाद को ब्रिटिश पूँजीवाद ने किस तरह प्रोत्साहन दिया, यह द्रष्टव्य है। इस युग में ब्रिटिश अस्त्र-शस्त्र निर्माताओं ने वर्साई सन्धि-पत्र के बिल्कुल विरुद्ध जर्मनी में तोप तथा हवाई जहाज भेजे, और यह सब ब्रिटिश सरकार की सम्मति से हुआ। फ्रांस विरोध करता रह गया, पर उसकी कोई सुनवाई नहीं हुई। १९३५ में इङ्गलैंड और जर्मनी के बीच एक नौसंधि हुई इस संधि-पत्र में पनडुब्बी निर्माण के सम्बन्ध में ब्रिटेन और जर्मनी की बराबरी मान ली गई। इस प्रकार स्वयं ब्रिटिश सरकार

ने वर्साई संधि-पत्र को फाड़ फेंकने में जर्मनी फासीवाद की मदद की। इस बीच में जर्मनी ने हवाई सेना के सम्बन्ध में उस पर जो रोक लगी हुई थी, उसको भी भङ्ग किया। फ्रांस ने इस पर आवाज उठाई, किन्तु ब्रिटेन ने कोई सहायता नहीं दी, उलटा उसे चुप कराया। जर्मनी में फासीवाद का उदय हुआ, उसका कारण यही हुआ कि जर्मनी का पूंजीवाद एक ऐसी जगह पर पहुँच गया था कि अब उसके लिए यह सम्भव नहीं था कि वह संसद और लोकतंत्र आदि का ढकोसला कायम रखे और साथ ही शासन करे। संसदीय पद्धति के बावजूद पूंजीवाद तभी तक किसी देश पर शासन कर सकता है, जब तक वहाँ की जनता की हालत अपेक्षाकृत अच्छी हो, तथा वहाँ की जनता राजनीतिक रूप से पिछड़ी हुई हो। हिटलर के शक्ति आरूढ़ होने के पहले जर्मनी में ये दोनों बातें मौजूद थीं। तभी बाद को जर्मनी में पूंजीवाद अपने नग्न रुद्र रूप में प्रगट हुआ। हिटलर कैसे एक के बाद एक ज्यादती करता गया, कैसे उसकी ताकत दिन-ब-दिन बढ़ती गई और इन सारी बातों में फ्रांस से मतभेद के बावजूद ब्रिटिश सरकार ने कैसे हिटलर की पीठ पर हाथ रखा, यह सभी जानते हैं। चेम्बरलेनवाद कोई चेम्बरलेन की ही विशेषता नहीं थी। हिटलर के उदय से लेकर १६३६ तक की सारी ब्रिटिश राजनीति ही चेम्बरलेनवाद का व्यावहारिक रूप है। अबीसीनिया, चेकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया आदि का हड़पा जाना इसी चेम्बरलेनीय राजनीति के युग की कोणशिलाएँ मात्र हैं. स्पेन में जिस प्रकार एक प्रजातन्त्र को ब्रिटिश तथा फ्रेंच सरकार ने आँख के सामने गला घुटवाकर मर जाने दिया, उससे भी विश्व पूंजीवाद की फासीवाद प्रोत्साहन नीति स्पष्ट होती है।

इटली में फासीवाद—इटली में फासीवाद का उदय जर्मनी से पहले ही अर्थात् १६२२ में हो चुका था। महायुद्ध के बाद इटली का शासन यद्यपि संसद के जरिये होता था, किन्तु अब वहां के संसद में पहले की तरह केवल पूंजीवाद प्रतिनिधियों का बोलबाला नहीं रह गया था। वहाँ के साम्राज्यवादी इतने शक्तिशाली हो गए थे कि वे सरकार को बिल्कुल बेकार कर सकते थे साथ ही वे इतने शक्तिशाली नहीं थे कि वे अपने हाथों में राष्ट्र की बागडोर ले सकें। यह एक क्रान्तिकारी परिस्थिति थी, ऐसे समय में इन दोनों शक्तियों में से जो भी शक्ति आगे बढ़कर काम करती, और राष्ट्र-शक्ति को अपने हाथों में लेने का

जोखिम उठाने को तैयार होती, उसी के हाथों में राष्ट्र-शक्ति जाती। कृषिप्रधान दक्षिण इटली में साम्राज्यवादियों का प्रभाव कम था, और वे डरते थे कि यदि उत्तर इटली के भरोसे वे राष्ट्र की बागडोर अपने हाथों में ले लेंगे तो उसके फलस्वरूप एक दीर्घ तथा घोर गृहयुद्ध छिड़ सकता है, और यह भी सम्भव है कि इस सिलसिले में बाहरी पूँजीवादी घेरा डाल दें, जिसका नतीजा यह होता कि अन्नाभाव के कारण उनकी हार हो जाती। ऐसे समय में क्रान्तिकारी नेतृत्व की आवश्यकता थी, पर समाजवादियों में यह नेतृत्व मौजूद नहीं था। इस कारण इतनी अच्छी क्रान्तिकारी परिस्थिति होने पर भी इटली के समाजवादी क्रांति नहीं कर सके। इसके विपरीत पूँजीवादी वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित हुआ। रोम की दशा इस वक्त इतनी खराब हो गई थी कि कोई भी शक्तिशाली संस्था चाहती तो इस पर कब्जा जमा सकती थी। ऐसे समय में मुसोलिनी नामक एक व्यक्ति तथा उसकी टुकड़ी ने हिम्मत की। राजा तथा पूँजीवादी वर्ग ने उसे अपना आशीर्वाद दिया और वहाँ पूंजीवादियों के सामरिक शासन का सूत्र-पात हुआ।

फासीवाद को प्रोत्साहन क्यों?—इस प्रकार फासीवाद का उदय न तो आकस्मिक था और न अप्रत्याशित ही। जब फासीवाद का उदय हुआ तो स्वाभाविक रूप से उसे उपनिवेशों की तथा बाजारों की जरूरत पैदा हुई और चूँकि बाजार तथा उपनिवेश दूसरों के कब्जे में थे, इस कारण युद्ध की अनिवार्यता बहुत स्पष्ट हो जाती है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कर्णधार इस बात को न समझते हों ऐसी बात नहीं, पर वे समझते थे कि हिटलर जब हमला करेगा, तो रूस पर करेगा। सच तो यह है कि बहुत कुछ इसी धारणा के वशवर्ती होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हिटलर तथा मुसोलिनी को बढ़ाया था, इसी भ्रम में उसने स्पेन में फासीवादियों की शक्तियों की खुले आम शिरकत देखकर भी अनदेखा कर दिया था, इसी आशा में उन्होंने हिटलर को एक के बाद एक इलाका लेने दिया था।

भारत के नेता बेखबर नहीं—भारत के राजनीतिक नेता इन परिस्थितियों से एकदम अपरिचित हों, ऐसी बात नहीं। नेताजी सुभाषचन्द्र ने त्रिपुरी में पठित अपने अभिभाषण में कांग्रेस के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा भी कि समझौते

की चेष्टा को छोड़कर लड़ाई को अनिवार्य जानकर ब्रिटेन को ६ महीने का अल्टीमेटम दे दिया जाय कि यदि इस बीच में भारत को स्वतन्त्रता नहीं दी गई तो स्वतन्त्रता संग्राम छेड़ दिया जायगा। स्मरण रहे कि स्वतन्त्रता संग्राम के सम्बन्ध में अभी तक सुभाषबाबू के विचार किसी भी प्रकार महात्मा गांधी के विचारों से अलग नहीं थे, यानी स्वतन्त्रता संग्राम से उनका मतलब किसी न किसी रूप में सत्याग्रह ही था, इससे अधिक कुछ नहीं।

कांग्रेस सहयोग के लिए तैयार—कुछ भी हो गांधीजी की कांग्रेस ने सुभाष बाबू की बात नहीं मानी थी। यूरोप में लड़ाई छिड़ते ही वायसराय ने भारत सरकार की तरफ से लड़ाई छेड़ दी। यही नहीं कुछ आर्डिनेन्स भी जारी किए गए, जिनके द्वारा प्रान्तीय मन्त्रिमंडलों के अधिकार बहुत कुछ छिन गए। इस युग में ८ प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमडल काम कर रहे थे। लड़ाई १ सितम्बर १९३९ को छिड़ गई। १४ सितम्बर को कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई, जिसमें फासीवाद, नात्सीवाद की निन्दा के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार ने जो कुछ किया था, उसकी भी निन्दा की गई। कांग्रेस ने सहयोग के लिए हाथ बढाया, पर साथ ही यह भी जता दिया कि सहयोग भाईचारे से होता है न कि जबरदस्ती। कार्य समिति ने इस अवसर पर जो प्रस्ताव पास किया, उसका अर्थ थोड़े में यह था कि कांग्रेस सहयोग के लिए तैयार है, पर बिना शर्त के सहयोग नहीं।

सरकार चुप—इस प्रस्ताव को पास करके कांग्रेस ने इस बात की प्रतीक्षा की कि शायद सरकार की तरफ से हाथ बढ़े, पर सरकार बिल्कुल चुप रही। उधर गवर्नर और मन्त्रिमंडलों में खींचा-तानी बढ़ती गई। २२ अक्टूबर को कार्य समिति ने मन्त्रिमंडलों को इस्तीफा देने की आज्ञा दी और अगले महीने के अन्दर ही एक-एक करके आठ मन्त्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया। अब तो ब्रिटिश सरकार और भी खुलकर दमन करने लगी। कार्यकर्ता, विशेषकर वाम-पक्षी कार्यकर्ता धड़ाधड़ गिरफ्तार होने लगे। सरकार का दमन चक्र चालू हो गया।

रामगढ़—इसी प्रकार की उधेड़-बुन तथा निष्क्रियता में १९४० में रामगढ़ कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें यह स्पष्ट कर दिया गया कि ब्रिटिश सरकार

ने जो नीति अख्तियार की है, उसको देखते हुए संग्राम के अतिरिक्त अब कोई मार्ग नहीं है। पर अब भी कांग्रेस संग्राम छेड़ने में हिचकिचा रही थी। १९४० के जून में कार्य समिति ने सहयोग के लिए फिर चेष्टा की। पर जब इसका कोई नतीजा नहीं हुआ तो कांग्रेस को मजबूरन वैयक्तिक सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ना पड़ा। इसके पहले पंजाब में अहरारों ने, युक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में यूथलीग न तथा फारवार्ड ब्लाक ने लड़ाई छेड़ी थी। इन सब में सबसे पहले लड़ाई छेड़ने का श्रेय अहरारों को प्राप्त है। अहरारों ने तथा उत्तर प्रदेश की यूथलीग ने युद्ध विरोधी प्रचार कार्य से अपना काम शुरू किया। इसी में इनके मुख्य नेता गिरफ्तार हो गए। युद्ध विरोधी व्याख्यानों में कई वामपक्षी गिरफ्तार हो गए।

वामपक्षियों की हलचलें—रामगढ कांग्रेस पंडाल के ठीक बगल में सुभाष बाबू ने समझौता विरोधी सम्मेलन किया था। इसमें यह तय हुआ था कि ६ अप्रैल से संग्राम छेड़ दिया जाय! मजे की बात है कि ऐन बंगाल में भी इस कार्यक्रम का पालन नहीं किया जा सका क्योंकि सुभाषबाबू कारपोरेशन के चुनाव सम्बन्धी कार्यों में फँस गए। अवश्य बाद को इससे छुट्टी पाने पर उन्होंने हालवेल मानूमेंट आन्दोलन चलाया। यह मानूमेंट ब्लैक होल ट्रेजडी नामक कल्पित घटना से सम्बद्ध था। सत्याग्रही इस मानूमेंट को तोड़ने के लिए जाते थे, और उन्हें गिरफ्तार किया जाता था। पर उत्तर भारत में विशेषकर इलाहाबाद में ६ अप्रैल को ही युद्ध विरोधी आन्दोलन छेड़ दिया गया। इस आन्दोलन में वहाँ की यूथलीग ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। वहाँ इस आन्दोलन के नेता सर्व श्री केदार मालवीय, वसन्त बनर्जी, रूपनारायण पांडे, डॉक्टर राम भजन, अबसार अहमद और नलिनी कुमार मुकर्जी थे। बनारस में भी यह आन्दोलन चला। अन्य स्थानों में भी छिटपुट तरीके से इनका अनुकरण हुआ। इलाहाबाद में इस आन्दोलन को कोतवाली, जेल, हाईकोर्ट और किले पर झंडा लगाने का रूप दिया गया, और क्रान्ति की पुकार लाल पर्चों में यह घोषित कर दिया गया कि अब सत्याग्रह का युग नहीं रहा, अब सरकारी इमारतों पर कब्जा करने का युग आ गया। यद्यपि इस प्रकार एक क्रान्तिकारी नारा दिया गया, पर कार्यतः यह सारा आन्दोलन सत्याग्रह के इर्दगिर्द ही रहा, क्योंकि जो लोग

सरकारी इमारतों पर झण्डा लगाने जाते थे, वे प्रतीकवादी तरीके पर ही दबाव राजनीति से ऊपर उठे हुए कहे जा सकते थे, वे यह जानकर जाते थे कि उन्हें गिरफ्तार होना है, फिर भी मानसिक मुक्ति इन्हें प्राप्त हो चुकी थी। इलाहाबाद के इन यूथलीगियों को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने ही पहले-पहल 'रेल की पटरी उखाड़ो और तार काटो' का नारा दिया। ये नारे दीवारों पर लिखे गए तथा पर्चों में इनके महत्त्व को समझाकर सशस्त्र क्रान्ति की आवश्यकता बताई गई।

वामपक्ष का असर—सुभाषबाबू के नेतृत्व में वामपक्ष के एक हिस्से ने कांग्रेस हाई कमांड से अलग ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लेने की चेष्टा की। इसमें उनकी ईमानदारी जाहिर थी फिर भी वे पृथक संग्राम छेड़ने में सफल नहीं रहे। वामपक्ष की यह कमजोरी न तो आकस्मिक है और न ऐसा वामपक्षी नेताओं के कमजोर चरित्र के कारण ही हुआ। भारतीय वामपक्ष की कमजोरी और ढुलमुलयकीनी का कारण यह रहा कि वामपक्ष सम्पूर्ण रूप से उसी वर्ग पर निर्भर रहता आया, जिस पर कांग्रेस निर्भर थी। इस प्रकार की अवस्था में वामपक्षी दल दक्षिण पन्थी दलों या उपादानों से न तो अधिक भिन्न हो सकते थे और न वे कार्यक्षेत्र में ही अधिक गरम हो सकते थे, नारेबाजी की बात और है। फिर भी वामपक्ष के कुछ छिटफुट लोगों ने जो संग्राम छेड़ा, वह बिल्कुल बेकार गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कोई भी आन्दोलन, यदि वह सही दिशा में है तो चाहे जितना भी छोटा हो, व्यर्थ नहीं जा सकता।

कांग्रेस आगे बढ़ने को मजबूर—वामपक्षियों और प्रगतिशील दक्षिणपंथियों के दबाव तथा जनता की क्रमशः बिगड़ती हुई हालत ने कांग्रेस को कुछ करने के लिए मजबूर किया। पर नेतागण अभी तक 'करें या न करें' में पड़े हुए थे। मन्त्रिमंडलों से लाभान्वित सुधारवादी हिस्सा कांग्रेस को पीछे की तरफ घसीट रहा था। इनके लिए मन्त्रिमंडलों का अन्त जगत का अन्त था और संगठित रूप से कांग्रेस विशेषतः ऐसे लोगों के हाथों में थी जो ऐसे पदलोलुपों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थे, जिन्होंने पदों के दाम के रूप में हर दसवें साल जेल जाना मंजूर कर लिया था।

पर आधे दिल से आगे बढ़ी—अन्त तक कांग्रेस को आधे दिल से कार्यक्षेत्र

में उतरना पड़ा। इस प्रकार वैयक्तिक सत्याग्रह की उत्पत्ति हुई।

यह एक बहुत ही हास्यास्पद बात थी कि लोग पहले से इत्तला देकर एक खास जगह पर पहुँचे और वहाँ न एक पाई न एक भाई या इस किस्म का कोई नारा देकर गिरफ्तार हो जाते, पर यही इस आन्दोलन में किया गया। इस आन्दोलन की कल्पना मूर्खतापूर्ण थी और इसको इस प्रकार काम में लाया गया कि उससे एक पीला, रोगग्रस्त दृष्टिकोण सूचित होता था।

प्रतीकवादी आन्दोलन—इस आन्दोलन के महान संचालकों के अनुसार यह आन्दोलन प्रतीकवादी था। राजनीतिक विचारों का कितना दिवालियापन था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद जैसे भयंकर यन्त्र के साथ एक प्रतीक से लड़ने चलना एक ऐसा विचार था, जिसमे ज्ञात होता था कि गाँधीवाद जिसने सुयोग्य ठाठ के साथ भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया था, अब सम्पूर्ण रूप से ह्रास-शील हो चुका था, और उसे इसका कोई उपाय नहीं सूझ रहा था कि अब आगे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ कैसे लड़ा जाय। एक प्रतीक के साथ तो एक प्रतीक से लड़ा जा सकता था, पर साम्राज्यवाद एक प्रतीक तो था नहीं। यह बात सच है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस लड़ाई के लिए अच्छी तरह तैयार नहीं था, इसलिए वह एक विपत्ति में फँस गया था, पर वह चाहे जितना कमजोर हो गया हो और चाहे जितनी विपत्ति में फँस गया हो, वह अब भी लूट और सताने का बहुत जबरदस्त यंत्र बना हुआ था। इस सम्बन्ध में यह मजेदार बात है कि नेहरूजी प्रथम वैयक्तिक सत्याग्रही होने वाले थे। यह नहीं मालम कि पंडित जी ने कहाँ तक इसे इच्छा-पूर्वक स्वीकार किया था, और कहाँ तक यह उनके ऊपर लादा गया था। जो कुछ भी हो वह गिरफ्तार हो गए, और सत्याग्रह करने के पहले ही एक व्याख्यान के लिए जेल भेज दिए गए।

वैयक्तिक सत्याग्रह बिल्कुल व्यर्थ नहीं—फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वैयक्तिक सत्याग्रह आन्दोलन बिल्कुल व्यर्थ गया। कुछ न करने से प्रतीक-वादी संग्राम ही अच्छा था क्योंकि अब तो ऐसी हालत पहुँच चुकी थी कि युद्ध के विरुद्ध उठाई हुई उँगली भी हितकर थी। जब वैयक्तिक सत्याग्रह के फल-स्वरूप एक-एक करके भारत के जगतप्रसिद्ध व्यक्ति तथा कल के मंत्री और मुख्यमन्त्री गिरफ्तार होते गए, तो इससे जगत के सामने यह बात स्पष्ट हो गई

कि वास्तविक प्रतिनिधि स्थानीय भारतीय लड़ाई के साथ नहीं थे। पर ऐसी हालत में जब कि हमारे साथ जो सहानुभूति कर सकते थे ऐसे लोग, जैसे मान लीजिए कि अमेरिकन स्वयं ही जीवन-मरण के संग्राम में उतरने वाले थे, इस स्पष्टीकरण से क्या आता-जाता था। इस समय जिस बात की जरूरत थी वह था असली वास्तविक संग्राम न कि क्रन्दनोत्पादक नाटकीय प्रयास।

ब्रिटिश सरकार पर असर नहीं—जहाँ तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सम्बन्ध है उसने इस आन्दोलन की कोई परवाह न की। बात यह है कि अब ब्रिटिश सरकार पर दबावमूलक राजनीति का कोई असर नहीं रह गया था। परिस्थितियों का तकाजा यह था कि कोई नया अस्त्र निकाला जाता और साम्राज्यवाद के विरुद्ध काम में लाया जाता। इतना कहा जा सकता है कि वैयक्तिक सत्याग्रह ने मानो उस तरह की दबाव मूलक राजनीति की मरण दुँदुभी बजा दी, जिसके गांधीजी ही जनक और विशेषज्ञ थे।

क्रिप्स मिशन—फिर भी कांग्रेस ने इस आन्दोलन को चलाया तो वह कुछ न कुछ चला। ७ दिसम्बर १९४१ को जापान मित्र पक्ष के विरुद्ध युद्ध में उतर पड़ा और उसने बात की बात में प्रशान्त महासागर पर अपना कब्जा जमा लिया १९४१ के ३० दिसम्बर को कार्य समिति ने सरकार की तरफ फिर से हाथ बढ़ाया। इस सम्बन्ध में यह दिखलाने के लिए कि कांग्रेस के सहयोग का अर्थ केवल नैतिक सहानुभूति नहीं है, बल्कि इसका अर्थ हर तरीके की सहायता है, कार्य समिति ने गांधीजी को नेतृत्व से मुक्ति दी। उधर पूर्वी रणक्षेत्र में ब्रिटेन की हालत बिगड़ती ही गई। ८ मार्च १९४२ को रंगून पर जापान का कब्जा हो गया, तथा ११ मार्च को क्रिप्स मिशन की घोषणा हो गई, और २३ मार्च को सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारतवर्ष के सामने प्रस्तावों की पिटारी लेकर प्रगट हुए। इस प्रस्ताव का उद्देश्य जापान को हराने में भारतवर्ष की मदद लेना था। इस प्रस्ताव में लीग को भी खुश करने की कोशिश की गई थी। उन दिनों ब्रिटेन की हालत ऐसी हो गई थी कि गांधीजी ने इस प्रस्ताव को दिवालिया बैंक पर बाद की तारीख का चेक घोषित किया, इसका मतलब साफ था कि जो शक्ति खुद ही अपनी अन्तिम सांस गिन रही है, उसके साथ सौदा क्या करना।

अन्तिम समय में क्रिप्स ने भी रहस्यपूर्ण ढंग से हाथ बटोर लिया, इस कारण परिस्थिति जहाँ की तहाँ रही। इस प्रस्ताव की असफलता के बाद कांग्रेस के सामने इसके सिवाय कोई चारा नहीं रहा कि वह कुछ करे। अब कोई-न-कोई कदम उठाना अनिवार्य था और वह कदम उठकर रहा। यद्यपि कोई तैयारी नहीं थी, फिर भी कदम उठा।

२८

क्रान्ति का जन्म

गांधीजी की रहस्यजनक बातें—मालूम होता है कि गांधीजी के बहुत निकट के लोग भी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि पुराना गांधीवादी तरीका तथा वैयक्तिक सत्याग्रह अब हथियार के रूप में बेकार हो चुके थे। तभी इन दिनों स्वयं गांधीजी के लेखों तक से अजीब ध्वनि निकल रही थी। १९४२ की १९ जुलाई को उन्होंने लिखा—"इस बार मैं मांग कर जेल नहीं जाने वाला हूँ। इस संग्राम में माँगकर जेल जाना नहीं है। माँग कर जेल जाना तो बहुत ही नरम चीज होगी। अवश्य अब तक हमने माँग कर जेल जाने का व्यापार कर लिया था। अब की बार मेरा इरादा यह है कि आन्दोलन को जहाँ तक हो सके शीघ्र तथा ह्रस्व किया जाय।"

वक्तव्य से प्रश्नों की उत्पत्ति—इसमें संदेह नहीं कि गांधीजी का यह वक्तव्य बहुत भ्रम उत्पन्न करने वाला था। स्वयं गांधीजी के शब्दों से ज्ञात होता है कि वह कुछ ऐसी बात करने का वायदा कर रहे थे, जो उनके अब तक के इतिहास को देखते हुए अनोखा होने वाला था। दक्षिणी अफ्रीका से लेकर अभी कल तक गांधीजी ने जितने भी आन्दोलनों का नेतृत्व किया था, उन सब की मुख्य विशेषता ही यह थी कि जेल जाया जाय, और माँगकर, बताकर, नोटिस देकर जाया जाय। स्वभावतः गांधीजी के इस वक्तव्य से यह प्रश्न उठता था कि यदि अब की बार वह जेल जाने वाले नहीं थे, तो वह क्या करने वाले थे? तो क्या लोग अब की बार गिरफ्तारी से बचकर काम करने वाले थे? यदि लोग गिरफ्तारी से अपने को बचाने वाले थे, तो वे बचकर क्या करने वाले थे? वे कहाँ तक अहिंसा का पालन करने वाले थे? ये कुछ ऐसे प्रश्न थे जो उठे बिना नहीं रह सकते थे और जो बहुत ही कष्टकर थे।

गांधी जी का दूसरा वक्तव्य—गांधी जी ने २६ जुलाई के अन्त में फिर लिखा—"आन्दोलन को नरमी से चलाने के लिए जितने भी एहतियात हो

सकते हैं, मैं उतने एहतियात लूँगा। पर यदि मैं देखूँगा कि ब्रिटिश सरकार तथा भिन्न शक्तियों पर किसी प्रकार छाप नहीं पड़ रही है, तो मैं अन्त तक जाऊँगा। भारत में जो कुछ होगा उसके लिए यह उचित ही है कि मैं भिन्न शक्तियों को जिम्मेदार समझूँ क्योंकि यह चीज उनके हाथों में है कि लड़ाई में बाधक जो कुछ भी किया जाने वाला है, उसको न होने दें।"

महादेव देसाई का लेख—१९४२ के ९ अगस्त के 'हरिजन' में गांधी जी के शिष्य और सहयोगी श्री महादेव देसाई ने 'अहिंस असहयोग के तरीके' नाम से एक लेख लिखा। जिसमें उन्होंने लिखा—"हम अहिंस असहयोग के कुछ तरीकों से बराबर परिचित रहे हैं। इनमें सरकारी संस्थाओं तथा नौकरियों का बायकाट और टैक्सबन्दी भी थी।" पर अब "शत्रु के सारे कर्मक्षेत्र तक अपने असहयोग को अहिंसा के दायरे में ले जाना पड़ेगा।"

मशरूवाला का वक्तव्य—महात्मा जी के अन्य प्रधान शिष्य श्री मशरूवाला ने २३ अगस्त के 'हरिजन' में एक लेख लिखा, जो इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि उन दिनों गांधीजी के अन्तरङ्ग वृत्त में कैसी-कैसी बातें हो रही थीं। श्री मशरूवाला ने अपने लेख में तोड़-फोड़ का समर्थन किया था। इस लेख में रेलों, पुलों आदि के हस्तक्षेप को अहिंसा बताया गया था।

गांधी जी के शिष्यों में बुद्धि-भेद—हम और ब्योरे में न जाएँगे। जो सबूत हमने उद्धृत किए, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि (वामपक्षियों को जाने दिया जाय, वे तो हमेशा से ही अहिंसा का विरोध करते आ रहे थे) स्वयं गांधी जी के अन्तरङ्ग शिष्यों में अगस्त क्रान्ति के ऐन पहले इस प्रकार का मतवाद जोर पकड़ चुका था कि तोड़-फोड़ अहिंसा नहीं है। स्वयं गांधी जी ने बाद को वायसराय को जो पत्र लिखे उनमें से एक से यह ज्ञात होता है कि क्रिप्स प्रस्ताव तथा अगस्त क्रान्ति के बीच के समय में गांधी जी के शिष्यों में इस बात पर बहुत वादविवाद हुआ करता था कि रेल की पटरी उखाड़ना तथा तार काटना अहिंसा है या नहीं। गांधी जी ने एक पत्र में यों लिखा था—"मशरूवाला ने मुझे इस विषय पर तर्क करते सुना होगा कि रेलों, पुलों आदि के हस्तक्षेप को अहिंसा के अन्तर्गत माना जा सकता है या नहीं।"

गांधीवाद संकटग्रस्त—मशरूवाला के लेख से यह भी पता चलता है कि

गांधी जी के प्रधानतम शिष्यों में भी कुछ लोग इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि अपने पुराने स्वरूप तथा आकार में गांधीवाद अब असर पैदा नहीं कर सकता था, तथा इसके दबाव मूल्य को बढ़ाने के लिए जो उस समय शून्य के बिन्दु तक पहुँच चुका था, इसमें कुछ ऐसी बातों को जोड़ने की आवश्यकता थी, जो अब तक कार्यक्रम के बाहर समझी जाती थीं, तथा जो पहले से कट्टर अर्थ में अहिंसा के दायरे के अन्दर नहीं समझी जाती थीं। इस माने में यह कहा जा सकता है कि निरन्तर विफलताओं के कारण स्वयं गांधीवाद के ५.२ तालों के अन्तर एक वामपक्षी प्रवृत्ति का जन्म हो चुका था। गांधीवाद बाहर के आक्रमणों से परेशान तो था ही, अब वह भीतर से भी संकटग्रस्त हो रहा था। परिस्थितियों के दबाव के कारण ही ऐसा हुआ था। यह असर क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण था, इसमें सन्देह नहीं।

रहस्यपूर्ण वातावरण—उन दिनों गांधी जी के पास से जो लोग आते थे वे भी रहस्यजनक तरीकों से बातें करते थे। उनकी बातचीत से यह ज्ञात होता था कि जैसे उनको बहुत बड़ा रहस्य मालूम हो गया है, जिसकी वे मुश्किल से रक्षा कर रहे हैं। सरदार पटेल ने भी इन्हीं दिनों कहीं-कहीं ऐसा कहा कि अब की बार संग्राम का वारा-न्यारा एक सप्ताह के अन्दर ही हो जायेगा। इन सब बातों का नतीजा यह हुआ कि लोग यह समझे कि इस बार संग्राम का तरीका ही कुछ और होगा। इन्हीं दिनों ६ जुलाई को वर्धा में कांग्रेस कार्य समिति की एक बैठक हुई। यह बैठक बहुत लम्बी हुई। सच तो यह है कि यहीं पर कांग्रेस के नेताओं ने संग्राम छेड़ने का अन्तिम निश्चय कर लिया।

कार्य समिति का प्रस्ताव—१४ जुलाई को कार्य समिति ने १२०० शब्दों का एक विराट् प्रस्ताव प्रकाशित किया। उस प्रस्ताव का सारांश यों था—

"दिन-प्रति-दिन होने वाली घटनाएँ और भारत की जनता जिस परिस्थिति में से गुजर रही है, उसका अनुभव कांग्रेसजनों की उस राय को मजबूत बनाता है कि भारत में अंग्रेजी राज्य का शीघ्र अन्त हो जाना चाहिए······विश्व युद्ध आरम्भ होने के समय से ही कांग्रेस दृढ़ता-पूर्वक युद्ध में बाधा न पहुँचाने की नीति को बरतती आ रही है। अपने सत्याग्रह को निष्फल बना देने का खतरा उठाकर भी कांग्रेस ने जान-बूझकर इसे प्रतीकवादी रूप दिया······पर ये

उम्मीदें चूर-चूर हो गईं। क्रिप्स प्रस्ताव की असफलता से यह स्पष्ट हो गया कि भारतवर्ष पर से अंग्रेजी दासता का पंजा हटने का नहीं है। क्रिप्स वार्ता में कांग्रेस के प्रवक्ताओं ने पूरी कोशिश लगाई—राष्ट्रीय माँग के अनुकूल कम-से कम अधिकार माँगे, पर सब व्यर्थ। इस विफलता से ब्रिटिश विरोधी विचार और भी तीव्र हो गए और जापानियों की विजय पर लोगों में सन्तोष हुआ। कांग्रेस ब्रिटिश विरोधी वर्तमान भावना को शुभकामना में बदल देगी, पर यह तभी सम्भव है जब भारत को स्वतन्त्र किया जाय। अंग्रेजी शासन के भारत से विदा हो जाने का प्रस्ताव करते हुए कांग्रेस बिल्कुल नहीं चाहती कि ग्रेट ब्रिटेन अथवा दूसरी मित्र शक्तियों को युद्धोद्योग में किसी भी प्रकार तङ्ग किया जाय। कांग्रेस ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहती। कांग्रेस मित्र शक्तियों के रक्षा-साधन को किसी प्रकार हानि पहुँचाना नहीं चाहती। अतः कांग्रेस को इस बात में कोई उज्र नहीं कि भारत में मित्र शक्तियों के सशस्त्र सैनिक, यदि वे जापानी और दूसरे आक्रमण को रोकने के लिए तथा चीन की मदद करने के लिए रहें, तो रह सकते हैं। यदि कांग्रेस की यह अपील व्यर्थ गई, तो कांग्रेस ने १९२० से लेकर अब तक जितनी अहिंसात्मक शक्ति का संचय किया है, वह अनिच्छा-पूर्वक उसका उपयोग करने के लिए बाध्य होगी।"

इस बीच की बातचीत—इसी प्रस्ताव में यह भी तय हुआ कि यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है इसलिए इस विषय पर फैसला करने के लिए ७ अगस्त १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक बुलाई जाय। अभी बैठक के होने में करीब तीन सप्ताह थे, इसलिए इस बीच जो बातचीत हुई, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सभी लोग इस बात को जानने के लिए व्यग्र थे कि इस बार के आन्दोलन में क्या विशेषता होगी। गांधी जी ने १९३० का आन्दोलन डांडी यात्रा नमक बनाने से शुरू किया था। उस बार उनका उद्देश्य अपने को गिरफ्तार कराना था। अपने को गिरफ्तार कराकर जनता में इसके लिए जोश पैदा करना तथा जेलों को भरवा कर दबाव डालना, यही गांधीवादी तरीके की विशेषता थी। इसलिए स्वाभाविक तरीके से उनसे इस बीच में जो देशी तथा विदेशी पत्रकार मिले, वे इसी बात को जानने की कोशिश करते रहे कि अगले

आन्दोलन का स्वरूप क्या होगा। तदनुसार सम्वाददाताओं ने उनसे यह प्रश्न किया कि क्या आप जेल जाना चाहेंगे ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि नहीं, मैं जेल जाना नहीं चाहूँगा। इस पर उनसे यह पूछा गया कि क्या आप जेल भेज दिए जाने पर अनशन करेंगे ? इसके उत्तर में उन्होंने फिर कहा कि जेल जाने का कोई प्रश्न नहीं उठता, पर यदि मैं जेल में ठूंस दिया गया तो अनशन करूँगा या नहीं करूँगा, यह मैं बता नहीं सकता। उनसे यह भी पूछा गया कि आन्दोलन होते ही उपद्रव होंगे, इस पर उन्होंने जरा भी डर जाहिर नहीं किया, और कहा कि मेरा तो उद्देश्य ऐसा नहीं है, पर उपद्रव हो तो हो। उनसे यह भी कहा गया कि जब तक महायुद्ध चल रहा है तब तक के लिए वह अपने आन्दोलन को स्थगित रखें, पर उन्होंने कहा कि आन्दोलन होने से ही जर्मनी के साथ निबटारा करने में आसानी होगी।

अगले आन्दोलन में स्पष्टीकरण—इन दिनों कांग्रेस के नेताओं की तरफसे जो वक्तव्य निकले, उनसे यह स्पष्ट हो गया कि अब आन्दोलन होकर ही रहेगा, यदि आन्दोलन रुक सकता है तो एक ही कारण से रुक सकता है, वह है भारत की स्वतन्त्रता। गांधी जी ने पत्रकारों से बोलते हुए यह भी साफ कर दिया कि जब तक जापानी हमले का डर है, तब तक मित्र पक्ष के सैनिक भारतवर्ष में रह सकते हैं। गांधी जी ने यह भी कहा कि यदि जापानी देश में आ गए तो मैं उनसे असहयोग करूँगा। आन्दोलन के स्वरूप पर न्यूज क्रानिकल को वक्तव्य देते हुए गांधी जी ने कहा कि आन्दोलन के कार्यक्रम में जन आन्दोलन के अन्तर्गत विशुद्ध अहिंसात्मक सारी बातें आ सकती हैं। पर मैं विशेष विवरण नहीं दे सकता। इसका कारण यह नहीं कि मैं कुछ छिपा रहा हूँ, बल्कि यह है कि अभी तक कोई खास कार्यक्रम तय नहीं किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि सम्भव है कि आन्दोलन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रस्ताव के दो सप्ताह के अन्दर ही छेड़ दिया जाय। अवश्य साथ ही उन्होंने कहा कि मैं वायसराय से मिल सकता हूँ।

सार्वजनिक तथा वैयक्तिक वक्तव्य में भेद—मैं पहले ही बता चुका हूँ कि नेताओं ने सार्वजनिक रूप से जो कुछ कहा यों व्यक्तिगत रूप से उससे कहीं अधिक कहा। सार्वजनिक रूप से बराबर अहिंसा पर जोर दिया गया, पर व्यक्ति-

गत रूप से ऐन गांधी जी के इर्द-गिर्द रेल और पुल उड़ाने की बातें होती रहीं और मशरूवाला ऐसे व्यक्ति को यह ख्याल हुआ कि गांधी जी ऐसे कार्यों को अहिंसा में समझते हैं, यह तो हम पहले ही दिखा चुके।

क्या यह आकस्मिक था ?—क्या यह सब बिल्कुल आकस्मिक था ? गांधी जी की आध्यात्मिकता में सन्देह न करते हुए भी यह कहा जा सकता है कि वह एक चतुर राजनीतिज्ञ तथा जनमनोवैज्ञानिक थे। उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उनकी बातों से उनके शिष्यों के मन में जो प्रतिक्रिया उत्पन्न होती थी, उसे वह समझ सकते थे। तो क्या बात थी कि वह बराबर आगामी आन्दोलन के बारे में बड़े रहस्यपूर्ण लहजे में उल्लेख कर रहे थे, मानो इस बार वे कोई बहुत ही नई और अभूतपूर्व बात करने जा रहे हैं। क्यों वे रहस्यजनक स्वरूप से रेल की पटरी उखाड़ना, तार काटना आदि के सम्बन्ध में ऐसे उल्लेख करते थे मानो वह इस विषय में भयानक उधेड़-बुन में पड़े हुए हों कि ये सब काम अहिंसा में आ सकते हैं या नहीं ? इन विषयों पर सोचते हुए वह मानसिक रूप से क्यों विध्वस्त और परेशान प्रतीत होते थे ? अहिंसा के साक्षात अवतार होते हुए भी उन्होंने अपने 'हरिजन' में श्री महादेव देसाई तथा श्री मशरूवाला के द्व्यर्थक लेख क्यों छपने दिए ? उन्होंने बातचीत के दौरान में श्री सीतारमैया ऐसे चतुर व्यक्ति को भी यह धारणा कैसे और क्यों दे दी कि टेलीग्राफ के तारों को काटना शायद अहिंसा में आ सकता है, जैसा कि बाद को श्री सीतारमैया के बयान से ही ज्ञात होता है।

आन्ध्र की गश्ती चिट्ठी—श्री सीतारमैया ने इसी धारणा के वशवर्ती होकर वह गश्ती चिठ्ठी भेजी थी, जो आन्ध्र की गश्ती चिट्ठी नाम से मशहूर हुई। इस गश्ती चिट्ठी में कांग्रेसजनों से तार काटने की सिफारिश की गई थी। इस गश्ती चिट्ठी की प्रतियाँ सरकार के हाथ लगीं और सरकार ने इसी का हवाला देकर बराबर यह कहा कि तोड़-फोड़ के कार्यों के लिए भीड़ की खामख्याली नहीं, वल्कि जिम्मेदार कांग्रेसजन उत्तरदायी हैं। इस गश्ती चिट्ठी पर सरकार ने बाद को एक प्रस्ताव भी पास किया, जिसमें यह कहा गया कि "कौंसिल सहित गवर्नर जनरल को यह पता रहा है कि कुछ दिन कांग्रेस दल ने बराबर गैर कानूनी और कुछ क्षेत्रों में हिंसात्मक कार्रवाइयाँ की हैं। ऐसी कार्रवाइयों में

रेल, तार, यातायात तथा समाचार के साधनों में तोड़-फोड़, हड़तालों की तैयारी सरकारी फौजों को बरगलाना तथा युद्ध की तैयारियों में, विशेषकर भर्ती में बाधा देना था।"

गांधी जी द्वारा प्रतिवाद—आन्दोलन के शुरू होते ही सरकार ने धर-पकड़ का समर्थन करते हुए यह प्रस्ताव किया था। गांधी जी ने आगा खाँ प्रासाद से १४ अगस्त (१६४२) को वायसराय को यह लिखा कि यह सत्य का भयङ्कर अपलाप है। गांधी जी के यह लिखने पर भी वायसराय ने उन्हें लिखा—"मुझे इसका बहुत अच्छी तरह पता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस के नाम से प्रचारित गुप्त हिदायतों के अनुसार तोड़-फोड़ का कार्य किया गया है। मुझे यह भी पता है कि सुपरिचित कांग्रेसजनों ने हिंसा तथा हत्या के कार्यक्रमों को संगठित किया है, और उसमें भाग लिया है। इस समय भी एक गुप्त कांग्रेस संस्था काम कर रही है, जिसमें कांग्रेस कार्य-समिति के एक सदस्य की स्त्री प्रमुख भाग ले रही है, और यह संस्था बम के साथ आक्रमण तथा आतङ्कवाद को संगठित कर रही है।"

कांग्रेस के अध्यक्ष द्वारा विरोध—कांग्रेस के अध्यक्ष ने विशेषकर आन्ध्र-वाली गश्ती चिट्ठी के सम्बन्ध में लिखा—"अभी-अभी सरकारी विज्ञप्ति में एक गश्ती चिट्ठी का उल्लेख किया गया है, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के द्वारा प्रचारित हुई थी। हम लोग इस गश्ती चिट्ठी के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते हैं, और हम यह विश्वास नहीं कर सकते हैं कि कांग्रेस के मौलिक उसूलों के विरुद्ध किसी जिम्मेदार कांग्रेसी ने ऐसी हिदायतें दी होंगी। फिर भी इस सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि इस गश्ती चिट्ठी के सम्बन्ध में सरकारी वक्तव्यों में विभिन्न बातें कही गई हैं। २६ अगस्त १६४२ में मद्रास सरकार द्वारा प्रकाशित एक वक्तव्य में इसका पहले-पहल उल्लेख किया गया। इस वक्तव्य में यह कहा गया कि इस गश्ती चिट्ठी में और बातों के साथ-साथ रेल की पटरियों को उखाड़ने की हिदायत थी। इस वक्तव्य के दो ही सप्ताह बाद हाउस आफ कामन्स में बोलते हुए मिस्टर ऐमरी ने यह कहा कि इस गश्ती चिट्ठी में यह साफ-साफ कहा गया था कि "पटरियाँ उखाड़ी जाएँ, तो किसी की जान को खतरे में न डाला जाय।"

पर आन्ध्र गश्ती चिट्ठी जाली नहीं—उस समय तो मामला यहीं दब गया था, पर जब नेतागण १९४५ में छूटे तो श्री सीतारमैया ने बेजवाड़ा में बोलते हुए यह कहा कि कथित आन्ध्र गश्ती चिट्ठी के एक-मात्र रचयिता वह थे, और इसके लिए अन्य कोई भी व्यक्ति जिम्मेदार नहीं है। उन्होंने यह बताया कि इस गश्ती चिट्ठी में जो हिदायतें थीं, उन्होंने उनको गांधी जी के साथ अच्छी तरह बातचीत करने के बाद प्राप्त किया। डॉक्टर सीतारमैया ने साफ-साफ यह कहा कि इस गश्ती चिट्ठी में ताड़ तथा खजूर के पेड़ों को काटने की, म्युनिसिपल्टी के टैक्सों के अतिरिक्त अन्य टैक्सों की बन्दी तथा टेलीग्राफ के तारों को काटने की बातें थीं। गांधी जी के अनुसार यह अन्तिम बात निषिद्ध तो नहीं थी, पर उसकी सिफारिश नहीं की जा रही थी। महात्मा जी ने जिस खुले विद्रोह की कल्पना की थी, उससे इस कथित गश्ती चिट्ठी में वर्णित सभी बातें आ जाती थीं, पर उसमें रेल की पटरियों को उखाड़ा जाना या रेल के डिब्बों का जलाया जाना बिलकुल मना था।"

नेता इस वातावरण के लिए मजबूर—श्री सीतारमैया का वक्तव्य इस बात का प्रमाण है कि जानबूझ कर किस प्रकार का वातावरण पैदा किया गया था। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि इस आन्दोलन के महान नेता इस वातावरण को तैयार करने के लिए मजबूर थे। सत्याग्रह का पुराना तरीका बिलकुल बेकार हो चुका था. शक्ति पर कब्जा दिलाना तो दूर रहा, यह शत्रु के मन पर प्रभाव उत्पन्न करने (देखो वायसराय के नाम गांधी जी का पत्र १४ अगस्त १९४२) में भी असमर्थ था। तभी इस पुराने अस्त्र में क्रान्ति का मुलम्मा चढ़ाकर पेश करने की जरूरत पड़ी। गांधी जी अहिंसा से हटे नहीं, पर उन्होंने उसके दायरे में रहते हुए यह प्रभाव उत्पन्न करना चाहा कि वह अब की बार कहीं पर भी नहीं रुकेंगे, आगे बढ़ते चले जाएँगे, इसकी परवाह नहीं करेंगे कि चौरीचौरा या शोलापुर काण्ड हो। पर यह तो ऊपरी बात थी, भीतर से वह चाहते थे कि उन्हें ऐसा न करना पड़े, और समझौता हो जाय।

युद्ध पर रुख में उधेड़बुन का कारण—युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस का रुख बहुत कुछ उधेड़बुन के लिए बाध्य करता था। कांग्रेस के नेता सम्पूर्ण रूप से फासीवाद और नात्सीवाद की विजय के विरुद्ध थे। पर वे साथ-ही-साथ

साम्राज्यवाद के भी विरुद्ध थे । इस कारण भी कांग्रेस उधेड़बुन में पड़ी रही। इसके अतिरिक्त कांग्रेस के अन्दर जो नरमदलीय थे, वे भी उसे पीछे घसीट रहे थे । १९३४ में सत्याग्रह जिस छीछालेदर के साथ बन्द हुआ, १९४०-४१ में वैयक्तिक सत्याग्रह से जिस प्रकार भद्द हुई, उसमें सत्याग्रह के तरीकों पर से कांग्रेस के बहुत से लोगों का विश्वास उठ जाना स्वाभाविक था। ये लोग समझते थे कि पुराना अस्त्र बेकार हो चुका है ।

अगस्त प्रस्ताव—इन्हीं परिस्थितियों में अगस्त में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा हुई । ४ अगस्त को कार्य समिति की बैठक हुई । ५ अगस्त को उसका प्रस्ताव प्रकाशित हुआ । यही प्रस्ताव बाद को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने रखा गया । इस प्रस्ताव में यह कहा गया कि "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने रूसी और चीनी मोर्चो पर की बिगड़ती हुई स्थिति को निराशा के साथ देखा है, और वह रूसियों और चीनियों की उस वीरता की खुलकर प्रशंसा करती है, जिसे उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रदर्शित किया है। भारत में अंग्रेजी शासन के अन्त हो जाने पर ही युद्ध का भविष्य निर्भर है। खतरे को देखते हुए भारत को स्वतन्त्र कर देने और ब्रिटिश आधिपत्य को समाप्त कर देने की आवश्यकता है। स्थिति में सुधार तभी हो सकता है जब भविष्य के लिए गारन्टियाँ न देकर तुरन्त भारत छोड़ा जाय । भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा हो जाने पर एक अस्थायी सरकार बना दी जाएगी, और स्वतन्त्र भारत मित्रराष्ट्रों का मित्र बन जाएगा । अस्थायी सरकार देश के मुख्य वर्गों तथा दलों के सहयोग से बनाई जाएगी । इस प्रकार यह एक मिली-जुली सरकार होगी, जिसमें भारतीयों के समस्त महत्त्वपूर्ण दलों का प्रतिनिधित्व होगा । अस्थायी सरकार का प्रथम कर्तव्य अपनी सशस्त्र तथा हिंसात्मक शक्तियों द्वारा मित्रराष्ट्रों से सहयोग कर भारत की रक्षा करना, आक्रमण का विरोध करना, और खेतों, कारखानों तथा अन्य स्थानों में काम करने वाले उन श्रमजीवियों का कल्याण तथा उन्नति करना होगा, जो निश्चय ही समस्त शक्ति और अधिकार के वास्तविक पात्र हैं । अस्थायी सरकार एक विधान सम्मेलन की योजना बनाएगी, और यह सम्मेलन भारत सरकार के लिए एक ऐसा विधान तैयार करेगा जो जनता के समस्त वर्गों को स्वीकार होगा । कांग्रेस के मत से

यह विधान संघ विषयक होना चाहिए, जिसके अन्तर्गत संघ में सम्मिलित होने वाले प्रान्त को शासन के अधिकतर अधिकार प्राप्त होंगे। अवशिष्ट अधिकार भी इन प्रान्तों को प्राप्त होंगे। स्वतन्त्रता भारत को अपनी जनता की सम्मिलित इच्छा और शक्ति के बल पर आक्रमण का कारगर ढंग से विरोध करने में समर्थ बना देगी। भारत की स्वतन्त्रता विदेशी आधिपत्य से अन्य एशियाई राष्ट्रों की मुक्ति का प्रतीक और प्रारम्भ होगी। इस संकट काल में यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को प्रधानतः भारत की स्वाधीनता और रक्षा से सम्बन्ध रखना चाहिए, तथापि कमेटी का मत है कि संसार की भावी शांति सुरक्षा, और व्यवस्थित उन्नति के लिए स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक विश्व-संघ बनाने की आवश्यकता है। विश्व-संघ स्थापित हो जाने पर समस्त देशों में निःशस्त्रीकरण हो सकेगा, राष्ट्रीय सेनाओं, नौ सेनाओं और वायु सेनाओं की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, और विश्व रक्षक सेना विश्व में शान्ति रखेगी। चीन और रूस स्वतन्त्रता की बड़ी मूल्यवान निधि हैं। पर भारत का भी खतरा नित्य बढ़ता जा रहा है। विदेशी शासन-प्रणाली के आगे सिर झुकाने से भारत का पतन होता जा रहा है, और उसकी आत्मरक्षा करने तथा आक्रमण का विरोध करने की शक्ति घटती जा रही है। कार्य-समिति ने ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों से जो सच्ची अपील की थी, उसका अभी कोई उत्तर नहीं मिला है। बहुत से विदेशी क्षेत्रों में की गई आलोचनाओं से प्रगट हो गया है कि भारत और विश्व की आवश्यकताओं के विषय में अज्ञान फैला हुआ है। इस अन्तिम क्षण में भी कमेटी फिर ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रों से अपील करना चाहती हैं, परन्तु वह यह भी अनुभव करती है कि उसे अब राष्ट्र को एक ऐसी साम्राज्यवादी सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा प्रदर्शित करने में रोकने का कोई अधिकार नहीं है जो उस पर आधिपत्य जमाती है, और जो राष्ट्र को अपने और मानव-समाज के हित का ध्यान रखते हुए काम करने से रोकती है। इसलिए कमेटी भारत की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली और अधिक-से-अधिक विस्तृत परिणाम पर एक विशाल संग्राम चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है, जिससे देश गत २२ वर्षों के शान्तिपूर्ण संग्राम में की गई समस्त अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर

सके। यह संग्राम निश्चय ही गांधी जी के नेतृत्व में होगा और कमेटी उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्यवाहियों में राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन करने का निवेदन करती है। लोगों को यह अवश्य याद रखना चाहिए कि इस आन्दोलन का आधार अहिंसा है। ऐसा समय आ सकता है जब हिदायत देना या हिदायतों को जनता तक पहुँचाना सम्भव न होगा, और जब कांग्रेस कमेटियाँ काम न कर सकेंगी। ऐसा होने पर इस आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक नर-नारी को सामान्य हिदायतों की सीमा में रहते हुए अपने आप काम करना चाहिए। स्वतन्त्रता की कामना और उसके लिए प्रयत्न करने वाले प्रत्येक भारतीय को स्वयं अपना पथ-प्रदर्शक बनकर अथक रूप से अग्रसर होते जाना चाहिए। यह मार्ग भारत की स्वतन्त्रता और मुक्ति पर जाकर समाप्त होगा। अन्त में यह बताना है कि यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने स्वतन्त्र भारत की भावी सरकार के विषय में अपना विचार प्रगट कर दिया है, तथापि कमेटी समस्त सम्बद्ध लोगों के लिए यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहती है कि संग्राम प्रारम्भ करके वह कांग्रेस के लिए ही शक्ति प्राप्त करने की इच्छुक नहीं है। शक्ति जब मिलेगी तो उस पर सारे भारतीयों का अधिकार होगा।"

अगस्त प्रस्ताव में क्रान्ति अन्तर्निहित नहीं—इस प्रस्ताव के पढ़ने से यह ज्ञात होगा कि यह इस ढंग के कांग्रेसी प्रस्तावों में एक प्रस्ताव है। बाद को अगस्त प्रस्ताव के सम्बन्ध में सरकार की तरफ से बराबर यह मांग की गई कि अगस्त प्रस्ताव वापस लिया जाय तो कुछ हो। इसी प्रकार कांग्रेस की तरफ से बराबर इस प्रस्ताव पर फिर से विश्वास प्रगट किया गया, पर इसे ध्यान से पढ़ने से ज्ञात होगा कि सब आन्दोलनों के पहले जैसे प्रस्ताव पास किए जाते थे, यह भी उसी मेल का एक प्रस्ताव था। स्वयं इस प्रस्ताव में कोई विशेषता नहीं थी। केवल एक भयभीत, आतंकग्रस्त, ह्रासशील मुमूर्षु साम्राज्यवाद ही इस प्रस्ताव में क्रान्ति के बीजाणु देख सकता था।

जनता द्वारा इतिहास निर्माण—हम पहले ही बता चुके हैं कि कांग्रेस के सार्वजनिक प्रस्तावों में क्रान्ति दृष्टिगोचर नहीं हो सकती थी, फिर भी जैसा कि बाद को हम देखेंगे, क्रान्ति हुई। जनता की शक्ति दबाव राजनीति की धारा से निकलकर शक्ति पर कब्जा की धारा में प्रवाहित हुई, और इतने जोर से प्रवा-

हित हुई कि उसके वेग के सामने एक बार साम्राज्य ढह गया। जैसा कि ट्राट-स्की ने लिखा है कि "क्रान्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जनता ऐतिहासिक घटनाओं में सीधे-सीधे हस्तक्षेप करके चीजों को अपने हाथों में ले लेती है। साधारण समयों में राष्ट्र, यह चाहे राजतान्त्रिक हो या लोकतान्त्रिक ऊपर उठकर खड़ा हो जाता है और उस दिशा में जो विशेषज्ञ होते हैं, अर्थात राजा, मन्त्री, नौकरशाही के लोग, संसदवादी, पत्रकार लोग इतिहास का निर्माण करते हैं। क्रान्ति का इतिहास सर्वोपरि इस बात का इतिहास है कि जनता अपने भाग्य निर्माण के कार्य में जबरदस्ती घुस आए।" १६४२ में यही हुआ। अबकी बार जनता के सामने अस्पष्ट अफवाहों के अतिरिक्त कोई कार्य-क्रम नहीं था, और उसके नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे, पर वह अपने साहस तथा बुद्धि को सबल बनाकर दौड़ पड़ी, और उसने इतिहास निर्माण के सूत्र को कुछ समय के लिए अपने हाथ में ले लिया, इतने जोरों से ले लिया कि जितना इसके पहले उसने कभी नहीं लिया था।

परिस्थितियों के षड्यन्त्र से क्रान्ति—जनता ने यह जो क्रान्ति की, उसका सूत्रपात जैसा कि हम देख चुके, नेताओं की वैयक्तिक बातचीत तथा परेशानी की चिनगारी से हुआ। पर नेता तो पकड़ लिए गए। जनता आगे बढ़ गई क्रान्ति की पिस्तौल का घोड़ा सरकार के सिर खींचते-खींचते सब तरह के प्रचार कार्य से इतना पीछे तक खींचा जा चुका था कि और नहीं खींचा जा सकता था। जब तक पिस्तौल का घोड़ा गांधीजी के हाथों में था तब तक यह खिलौने की पिस्तौल के घोड़े की तरह निरापद था। सचमुच अहिंसा गांधीजी के नथुने की प्राणवायु थी। वह अपने शत्रु के हृदय को परिवर्तित करने के लिए उसके सिर पर क्रान्ति की खिलौने वाली नहीं सच्ची पिस्तौल ताने हुए थे। उन्होंने इसका घोड़ा भी खींच रखा था, पर उनका यह इरादा कदापि नहीं था कि इस खींचे हुए घोड़े को किसी भी हालत में छोड़ा जाय। नहीं कदापि नहीं। जाल बहुत बढ़िया तरीके से डाला गया था, इतने बढ़िया तरीके से कि सरकार समझ नहीं पाई कि मामले की गहराई सचमुच कहाँ तक है। नतीजा यह हुआ कि सरकार ने उसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया, जिसके हाथों में भारतीय बारूदखाने से बनी पिस्तौल का घोड़ा था। इसका वही फल हुआ जो हो सकता

था। हाथ खींच लिए जाने पर घोड़ा धमाके से गिर पड़ा। फिर तो वज्र विस्फोट हो कर रहा। सरदार पटेल ने १९४६ की जनवरी के एक व्याख्यान में कहा था कि गांधी जी क्रान्ति के विरुद्ध एक तगड़ी दीवार हैं, पर परिस्थितियों के अजीब षड्यन्त्र ने क्रान्ति के विरुद्ध इस दीवार को सरकार ने गिरफ्तार करके कार्यक्षेत्र मे उठा लिया। स्मरण रहे कि सरकार क्रान्ति नहीं चाहती थी। पर उसी के इस कार्य का परिणाम यह हुआ कि एक भयंकर पर अप्रस्तुत क्रान्ति हुई।

गांधीजी गिरफ्तार न होते तो क्रान्ति न होती—सारी परिस्थितियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि यदि सरकार आतंक से जर्जरित होकर गांधी जी को गिरफ्तार न कर लेती तो १९४२ की क्रान्ति की नौबत ही नहीं आती। गांधीजी जब नजरबन्द भी हो गए, तब भी यदि उन्हें छोड़ा जाता, तो भी इस क्रान्ति पर बिलकुल प्रारम्भ में ही रोक-थाम हो जाती, पर दुर्बुद्धिग्रस्त राक्षसी साम्राज्य ने अपनी बुद्धि को तिलांजलि देकर गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया और उनके अहिंसा सम्बन्धी पत्रों को महज छूटने का तरीका समझकर उन्हें छोड़ा भी नहीं।

इतिहास की शक्तियों द्वारा क्रान्ति—इस प्रकार इतिहास की शक्तियाँ गांधी जी और सरकार की इच्छा के विरुद्ध काम कर गईं। गांधीजी इस क्रान्ति को नहीं चाहते थे, जिसने एक ही घड़ी में उनकी वर्षों की इकट्ठी अहिंसा की पूंजी को उड़ा दिया। सरकार भी क्रान्ति नहीं चाहती थी, पर क्रान्ति को रोकने की दानवीय शक्ति को जल्दी में उसने गांधीजी के हाथ को जबरदस्ती घोड़े पर से खींच लिया, नतीजा यह हुआ कि क्रान्ति हुई।

इतिहास कई बार नेताओं तथा सरकारों को उल्लू बना कर नचा देता है। यह मौका ऐसा ही था जब इतिहास ने ऐसा ही किया था। न तो गांधीजी इस क्रान्ति को चाहते थे, न सरकार। पर इतिहास के व्यंग के कारण—कोई रहस्य-पूर्ण बात नहीं जैसा कि हम देख चुके हैं, गांधीजी और सरकार ने मानो षड्यन्त्र करके क्रान्ति को जन्म दिया।

क्या १९४२ की क्रान्ति अहिंसात्मक थी?—घटनाओं पर जाने के पहले हम एक विषय पर और थोड़ी आलोचना कर लें। यह दिखाने की व्यर्थ चेष्टा

की गई है कि १९४२ की क्रान्ति अहिंसात्मक थी। श्री गोविन्दसहाय लिखते हैं "हमारा विश्वास है कि सन् १९४२ का खुला विद्रोह पिछले सभी आन्दोलनों से ध्येय, युद्धनीति, संगठन, आकार, विस्तार इत्यादि की दृष्टि से भिन्न था।"

यहाँ तक तो मैं भी उनसे सहमत हूँ, पर आगे ये नेताशाही के सुर-में-सुर मिलाने की चेष्टा करते हुए गुड़ गोबर कर देते हैं। वह लिखते हैं "इसे अहिंसात्मक सत्याग्रह का एक अन्तिम रूप ही समझना चाहिए।" श्री गोविंदसहाय जी का यह कथन सम्पूर्ण रूप से मिथ्या है। सच तो यह है कि सन् १९४२ की क्रान्ति में भारतवर्ष निश्चित रूप से गांधीवादी दबाव राजनीति के युग से निकल गया, और उसने शक्ति पर कब्जा (Capture of power) के कार्य-क्षेत्र में पदार्पण किया।

बलिया के कलेक्टर ने क्यों आत्मसमर्पण किया—बलिया की घटनाओं को लेकर अहिंसावादी यह दिखाने की चेष्टा करते हैं कि यह क्रान्ति अहिंसात्मक थी, पर जैसा कि हम देखेंगे यह उतनी अहिंसात्मक नहीं थी जितनी कि बताई गई है। बलिया के कलेक्टर ने इसलिए आत्म-समर्पण नहीं किया था कि उस भले आदमी का हृदय परिवर्तित हुआ था, बल्कि उसने देखा कि विनाश मुंह बाये खड़ा है और वह बुरी तरह घिर गया है, तभी उसने नाम-मात्र के लिए आत्म-समर्पण किया। नाम-मात्र के लिए इसलिए लिख रहा हूँ कि उसने न तो हथियार ही छोड़े और न पहले के पुलिस संगठन को तितर-बितर किया। पुलिस वालों ने केवल यह वायदा किया कि वे लाइन के बाहर नहीं निकलेंगे; इसे भी उन्होंने नहीं रखा और २० अगस्त को अंधाधुन्ध गोली चलाई। इसी प्रकार और भी घटनाओं के सम्बन्ध में हम देखेंगे।

इतिहास का प्राण—श्री गोविन्दसहाय जैसे लोग इस क्रान्ति के सारभाग को शायद समझ नहीं पाए और इसी कारण उनका लिखा हुआ विवरण तथ्यात्मक होते हुए भी गलत हो गया, क्योंकि इतिहास का प्राण केवल तथ्य नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक शक्तियों के रुख को देखते हुए तथ्यों के बहाव को समझना है। बिना सही परिप्रेक्षित के तथ्यों में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। वह मन से असलियत को समझकर भी किसी कारणवश असली बात नहीं कह पाते, तभी हम देखते हैं कि उनके विवरण में ऐसे द्वयर्थक वाक्य आते हैं—"इस

आन्दोलन का रूप पिछले सभी आन्दोलनों से भिन्न था। यद्यपि इसका मन्तव्य बड़ा सीधा और सरल था, पर इसका रूप बड़ा ही उग्र और व्यापक था।" क्या इस प्रकार के वाक्यों का कोई अर्थ होता है?

जनता को कोई कार्यक्रम नहीं दिया गया—फिर भी श्री गोविन्दसहाय इसलिए बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने यह माना है कि नेताओं ने १९४२ में जनता को बिना किसी प्रोग्राम के छोड़ दिया (पृष्ठ ४१)। दूसरे शब्दों में वह इस बात को न मानते हुए भी यह मानते हैं कि जनता ने ही इस आन्दोलन को चलाया। यह बात कदाचित उनकी कलम से निकल गई क्योंकि एक तरफ तो इस वक्तव्य का अर्थ यह है कि नेताओं ने बड़ी-बड़ी बातें कीं, बड़े-बड़े सिद्धान्त के बाल की खालें निकालीं, पर जनता को लेकर खेला। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि वे केवल क्रान्ति से खेल रहे थे और उसे इस प्रकार से इस्तेमाल करना चाहते थे कि वह दबाव राजनीति के अन्दर रहे। इससे आगे वे जाना नहीं चाहते थे, वे तो केवल धमकी देकर सरकार से अपना काम बनाना चाहते थे। मैं यह नहीं कहता कि शत्रु को धमकी देना राजनीति से बाहर ही चीज है, पर धमकी हमेशा ठोस होनी चाहिए। धमकी में यह सामर्थ्य होनी चाहिए कि मौका पड़ने पर उसे कार्य रूप में परिणत किया जा सके, नहीं तो दुर्गति ही होगी।

१९४२ के वीर गांधीवादी वीर नहीं—मैंने संक्षेप में १९४२ की क्रान्ति को समझने में उपयोगी कुछ विश्लेषण कर लिया। इस सम्बन्ध में जैसा कि हम बता चुके पहली बात तो यह है कि १९४२ का आन्दोलन गुणगत रूप से १९२०, १९२१, १९३०, १९४०—४१ के आन्दोलनों से भिन्न था। १९२०—४१ के गांधी युग के आन्दोलनों के साथ इसका आवयविक सम्बन्ध होते हुए भी यह आन्दोलन इन सबों से भिन्न था। फिर इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि प्रत्येक नये आन्दोलन के साथ नई किस्म के मानवों का उदय होता है। नई किस्म के वीर तथा वीरांगनाएँ सामने आती हैं। १९४२ के राजनारायण मिश्र, महेन्द्र चौधरी, फुलेना प्रसाद, मातंगिनी हाजरा आदि वीर तथा वीरागनाएँ चाफेकर बन्धुओं, खुदीराम, कन्हाई लाल, करतार सिंह,

रामप्रसाद विस्मिल, अशफाकउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी, भगतसिंह और आजाद की श्रेणी में आते हैं। वह सम्पूर्ण रूप से तथा गुणगत रूप से विनोबा भावे, मशरूवाला, जाजू और इस प्रकार के लोगों से भिन्न थे। बातों की कितनी भी जादूगरी की जाय, पर इन वीरों को विनोबा भावे की श्रेणी में नहीं डाला जा सकता। यह एक बहुत बड़ी बात है जिससे १६४२ का चरित्र स्पष्ट होता है।

इस प्रकार १६४२ का आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक युगोपयोगी रूप-मात्र था। जैसा कि हम दिखा चुके हैं क्रान्तिकारी आन्दोलन बराबर बदल रहा था, इस कारण उसका यह रूप बिल्कुल आश्चर्यजनक नहीं था।

२६

बम्बई ने क्रान्ति का बिगुल फूंका

शर्त के साथ सहयोग—अगस्त १९४२ में पूर्व निश्चय के अनुसार भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। सुप्रसिद्ध अगस्त प्रस्ताव को पंडित नेहरू ने पेश किया, और सरदार पटेल ने उसका समर्थन किया। प्रस्ताव पेश करते हुए भी सहयोग के लिए हाथ बढ़ाने की बात कही गई। पं० नेहरू ने कहा कि "प्रस्ताव कोई धमकी नहीं है, यह तो एक निमत्रण है। हमने सहयोग का हाथ आगे बढ़ाया।" उन्होंने कहा—"किन्तु इसके पीछे एक साफ बात यह है कि यदि कुछ बातें न हुईं तो परिणाम क्या हो सकता है। यह स्वतन्त्र भारत के सहयोग का दावतनामा है। स्वतन्त्रता के अलावा किसी शर्त पर हमारा सहयोग नहीं हो सकता।"

युद्ध और कांग्रेस—पंडित नेहरू ने कांग्रेस की महायुद्ध सम्बन्धी नीति को स्पष्ट करते हुए यह कहा कि 'मित्र राष्ट्रों' के ध्येय नकारात्मक दृष्टि से केवल इसलिए ठीक हैं कि जर्मनी और जापान इनसे भी बुरे हैं। पर यदि भारत स्वतन्त्र कर दिया जाय, तो उससे लड़ाई का रूप बदल जायेगा, और मित्रराष्ट्रों का ध्येय व्यावहारिक रूप में ठीक हो जायेगा। इसका नात्सी लोगों पर भी प्रभाव पड़ेगा। और उनकी मदद करने वालों पर भी एक गहरा और जबरदस्त नैतिक प्रभाव पड़ेगा। मुझे अफसोस है कि इंग्लैंड और अमेरिका के लोग इस प्रश्न पर संकीर्ण दृष्टि से सोच रहे हैं, और उनके ध्यान में अभी तक यह बात नहीं आई कि भारत की आजादी का इस लड़ाई से क्या सम्बन्ध है……हम अंग्रेजों और अमेरिकनों से कहीं अधिक जानते हैं कि गुलामी क्या है, क्योंकि हम उसके अभिशापों को सह रहे हैं।"

करो या मरो का मंत्र—महात्मा जी ने इस अवसर पर बोलते हुए कार्यक्रम का जो खाका खींचा, वह यों है—"अब क्या करना है, वह सुना दूं। आपने प्रस्ताव तो पास कर लिया, पर हमारी सच्ची लड़ाई शुरू नहीं हुई। आप मेरे

मातहत हो गए। अभी तो वायसराय से प्रार्थना करूँगा। समय तो देना होगा, उस बीच आपको क्या करना होगा। मौलाना साहब ने पूछा कि तब तक कोई कार्यक्रम तो बताइए। मैंने कहा, चरखा है। मौलाना साहब निराश हो गए। मैंने कहा चौबीस घण्टे काम करना है, तो कुछ तो चाहिए। इसलिए चरखा बताया। और भी कहता हूँ। आप मान लें कि हम आजाद बन गए। आजादी के माने क्या हैं? गुलामी की जंजीरें तो छूटीं। उसके दिल से तो छूटीं। अब बीच में समझौता नहीं है। मैं नमक की सुविधाएँ या शराब बन्दी लेने को नहीं जा रहा हूँ। मैं तो एक ही चीज लेने जा रहा हूँ आजादी। नहीं देना है तो कत्ल करे। मैं वह गांधी नहीं जो बीच में कुछ चीज लेकर आ जाय। आपको तो मैं एक मंत्र देता हूँ 'करो या मरो'। जेल को भूल जाएँ। आप सुबह-शाम यही कहें कि खाता हूँ, पीता हूँ, साँस लेता हूँ, तो गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए। जो मरना जानते हैं उन्हीं ने जीने की कला जानी है। आज से तय करें कि आजादी लेनी है। नहीं लेनी है तो मरेंगे! आजादी डरपोकों के लिए नहीं है। जिनमें करने की ताकत है, वे ही जिन्दा रह सकते हैं।"

मंत्र की अस्पष्टता—यह द्रष्टव्य है कि महात्मा जी ने इस आन्दोलन के लिए 'करो या मरो' का ध्येय बतलाया, पर यह नहीं बतलाया कि क्या करो। चरखे का उन्होंने जो उल्लेख कर दिया; अवश्य ही उनका ध्येय यह नहीं हो सकता था कि उससे आजादी मिल जाय। करो या मरो एक बहुत ताकतवर मन्त्र था, पर यह अस्पष्ट था, इसमें संदेह नहीं। इस अर्थ में यह इस आन्दोलन का प्रतीक था, यानी नेताओं की तरफ से जो अस्पष्टता तथा कार्यक्रमहीनता रही, उसका प्रतीक रहा। अवश्य जनता ने करो या मरो को किसी और ही अर्थ में लिया। यह भी द्रष्टव्य है कि गांधी जी के इस वक्तव्य में जेल जाने की बात नहीं थी, मरने की ही बात थी, और जनता अपनी सहजात बुद्धि से जानती थी कि कौन से ऐसे काम हैं जिनमें जेल जाना नहीं है और मरना है। फिर एक बार यह प्रश्न उठता है कि शब्द-शास्त्र के कुशल ज्ञाता गांधी जी ने आकस्मिक रूप से यह अस्पष्ट मन्त्र दिया या जान-बूझ कर दिया? हम इस पर पहले ही अपने वक्तव्य को स्पष्ट कर चुके हैं।

८ अगस्त की रात—८ अगस्त को साढ़े दस बजे अ० भा० कां० कमेटी

की बैठक समाप्त हुई। उसके बाद का जो चित्र समसामयिक पत्रों में निकला था, उसका कुछ हिस्सा यहाँ पर उद्धृत किया जाता है। जिस समय बैठक समाप्त हुई, उस समय अ० भा० कां० कमेटी के पंडाल के अन्दर सौ से अधिक रिपोर्टर मौजूद थे। इनमें भारतीयों के अतिरिक्त अंग्रेज, अमेरिकन तथा चीनी रिपोर्टर भी थे। जब बैठक समाप्त हो गई तो यह लोग रिपोर्ट भेजकर अपनी-अपनी जगह पर सोने चले गए। 'टाइम्स आफ इंडिया', इलस्ट्रेडेड वीकली के रिपोर्टर कुछ देर तक काम करते रहे, पर वह भी काम खत्म कर चले गए। केवल 'क्रानिकल', फ्री प्रेस के सम्वाददाता देर तक टाइपराइटर खटकाते रहे। सम्वाददाताओं का काम ऐसे समय बहुत ही परिश्रम का होता है, उनको इन दिनों रात को भी जागना पड़ता था।

खतरे की घण्टी—फिर खतरे की घण्टी बजी। वायसराय की कौंसिल में जो प्रस्ताव पास हुआ था, उसकी प्रति उस समय तक मौजूद सम्वाददाताओं के हाथ लगी। इस प्रस्ताव के रुख से मालूम हुआ कि अब चीजें एक निर्दिष्ट स्वरूप लेने जा रही हैं। कहा जाता है कि एक सम्वाददाता ने टेलीफोन उठाकर सरदार पटेल को खबर दी कि इस तरह की परिस्थिति है, इस पर उन्होंने कहा कि कोई नहीं जानता था कि इतनी जल्दी जेल के लिए बिस्तर बांध लेना पड़ेगा।

टेलीफोन भी कटे—इसके बाद मालूम हुआ कि टेलीफोन काम नहीं कर रहा है। यह रात डेढ़ बजे की बात थी। जब कोई दस साल पहले गांधी जी गिरफ्तार हुए थे तो उस समय भी इसी प्रकार टेलीफोन का कनेक्शन काट दिया था। पर यह भी तो हो सकता था कि एक टेलीफोन खराब हो गया था इसलिए और टेलीफोनों को देखा गया। मालूम हुआ कि सब जगह टेलीफोन कटे हैं। तजरबेकार लोग समझ गये कि क्या होने वाला है। यह भी मालूम हुआ कि स्टेशन पर पुलिस का सख्त पहरा है। सम्वाददाता चटपट वहाँ पहुँचे जहाँ गांधी जी थे, पर वहाँ भी सन्नटा था। गांधी जी दो बजे सोने के लिए गए थे, पर जल्दी ही उठ गए थे। पुलिस आ गई थी। गांधी जी को खबर दे दी गई। फिर उन्होंने बकरी का दूध और सन्तरे का रस पीया 'वैष्णव जन तो तेने कहिये' गाना सुना, कुरान का कुछ हिस्सा सुना फिर वह तैयार हो गए। कार्य-

समिति के लोग भी गिरफ्तार हो गए। खबर बिजली की तरह फैल गई और 'इन्कलाव जिन्दाबाद' नारे के बीच से नेताओं की लारी निकल गई।

अश्रुगैस व्यर्थ—अगले दिन गांधी जी ने हर प्रान्त के दस-बारह प्रमुख व्यक्तियों को इसलिए अपने पास बुलाया था कि वह अपना कार्यक्रम लोगों से बतायेंगे, पर इस कार्यक्रम के बताने के पहले ही गांधी जी तथा अन्य नेता गिरफ्तार हो गए। बम्बई में उपस्थित कांग्रेसजनों में किंकर्तव्यविमूढ़ता छा गई। जनता में पहले आश्चर्य फिर रोष के भाव दृष्टिगोचर हुए। ६ अगस्त को ८ बजे गवालिया मैदान में स्वयंसेवकों की परेड होने जा रही थी, पर पुलिस ने आकर उस पर कब्जा कर लिया। अपार जनता भी इकट्ठी थी। पुलिस ने जनता को तितर-बितर करने के लिए अश्रुगैस का प्रयोग किया। अश्रुगैस से बचने के लिए लोग जमीन पर लेट गए। दो मिनट बाद वे खड़े हो गए। पुलिस ने कोई ६ बार अश्रुगैस का प्रयोग किया। पर जनता ने वही नीति अख्तियार की। तब पुलिस ने लाठी चलाई। लाठियों से जनता तितर-वितर हो गई।

क्रान्तिकारी परिस्थिति—बम्बई की हालत बिल्कुल क्रान्तिकारी हो गई। ६ अगस्त को ही १५ जगह पुलिस ने गोलियाँ चलाईं। जनता के जोश का सबसे बड़ा परिचय यह था कि सर्वत्र जिधर देखिए उधर, यहाँ तक कि पेड़ों पर करो या मरो लिखा हुआ था।

अन्य ब्योरे—युवक तथा छात्र भी आन्दोलन में आगे बढ़े और अब मोटरों तथा ट्रामों पर हमला शुरू हो गया और वे जलाए जाने लगे। नेताओं ने जनता को कोई कार्यक्रम नहीं दिया था, पर इस बीच में जो खुले तथा गुप्त प्रचार-कार्य हुए थे उसके कारण जनता को यह ख्याल हुआ था कि अब की बार क्रान्ति कर देनी है, तदनुसार वे अपने विचारों के अनुसार चलने लगे। कोई संगठन ऐसा नहीं था जो जनता के कार्यों को नियन्त्रित करता, पर समय पर बहुत से नेता जनता में से निकल आए। कुछ जिम्मेदार कांग्रेसियों ने जिनमें वामपक्षी तथा दक्षिण-पंथी दोनों थे, एक गुप्त संगठन बना लिया। एक ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन भी चला। कोई संगठित तैयारी तो थी नहीं फिर भी बराबर तोड़-फोड़ के कार्य होते रहे। तोड़-फोड़ के अलावा झंडा सलामी आदि सत्याग्रह के तरीके भी चलते रहे, जिसका जो मन आता था वह जनता के सामने उसी कार्यक्रम को रखता

था, इस प्रकार एक अजीब खिचड़ी आन्दोलन चला। आठ दिन तक मजदूरों ने बिल्कुल कोई काम नहीं किया। पर कम्युनिस्टों तथा लीगियों के जहरीले प्रभाव के कारण वे काम पर लौट गए। स्कूल कालेजों में भी हड़ताल रही। तीन-चार महीने तक करीब-करीब हड़ताल चली, पर बाद को यह खत्म हो गई। सितम्बर तक आन्दोलनकारी बम तक का भी इस्तेमाल करने लग गए थे। ३ अक्टूबर को पजगाँवकोट में एक भयंकर धड़ाका हुआ। उसी महीने की १८ तारीख को अरगेली रोड पर टाइम्स आफ इण्डिया के कागज के गोदाम में जो आग लगी, उसे राजनीतिक समझकर कुछ लोगों पर मुकदमा भी चला, पर सब लोग छूट गए। टाइम्स आफ इंडिया पर जनता का द्वेष इसलिए सही था कि यह अध-गोरा अखबार हमेशा भारतीयों के विरुद्ध लिखा करता था। नवम्बर १९४२ तक कांग्रेस का रेडियो स्टेशन पकड़ा गया। इस सम्बन्ध में लोगों को लम्बी सजाएँ हुईं। गांधी जी के १९४३ की फरवरी के अनशन तक सारा आन्दोलन कुछ-न-कुछ तेजी के साथ चला, पर गांधी जी के अनशन के सम्बन्ध में जो पत्र निकले, उनसे आन्दोलन एक दफे बढ़कर फिर घट गया। १९४४ की फरवरी तक फिर भी आन्दोलन कुछ-न-कुछ घिसटता रहा। हजारों व्यक्ति इस सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए। सैकड़ों गोलियों से मारे गए। बहुत-सी इमारतें नष्ट कर दी गईं, स्टेशन, चौकियाँ तथा पुलिस वालों के खड़े होने की गुमटियाँ नष्ट कर दी गईं, कई सरकारी अफसर मारे गए। जो मारे गए उनमें फौज के चार बड़े अफसर भी थे। घायल तो बहुत से अफसर हुए। रेलगाड़ियाँ उलट दी गईं। संक्षेप में जनता ने निडर होकर अपनी क्रान्तिकारी शक्ति का उपयोग किया, पर कोई स्पष्ट कार्यक्रम तथा संगठन न होने के कारण उनकी ये चेष्टाएँ महान होते हुए भी बिखर गईं, और चारों तरफ एक बुलबुला पैदा करके रह गईं। इसके लिए सारा दोष नेताओं को दिया जाना चाहिए। बुलेटिनें भी निकाली गईं, अवश्य गुप्त रूप से। गांधीवादी अहिंसा का कहीं पता नहीं था।

३०

संयुक्त-प्रान्त (उत्तर-प्रदेश) में क्रान्ति

नेताओं की गिरफ्तारी की प्रतिक्रिया—यह सम्भव नहीं कि ब्योरेवार तरीके से प्रत्येक घटना का वर्णन किया जाय। इसलिए हम प्रत्येक प्रान्त की मुख्य घटनाओं का ही वर्णन करेंगे। सबसे पहले हम संयुक्त-प्रान्त (अब उत्तर-प्रदेश) की क्रान्ति का वर्णन करेंगे। उसमें भी हम बलिया की घटनाओं को सबसे पहले लेंगे। ६ अगस्त को बम्बई में नेताओं की जो गिरफ्तारी हुई, उसकी खबर बलिया में शाम को रेडियो से मालूम हो गई। यह भी मालूम हुआ कि गिरफ्तारी नेताओं तक ही सीमित नहीं है। १० अगस्त तक खबर सारे जिले में फैल गई। विद्यार्थियों में इससे बहुत जोश बढ़ा। १० तारीख को बलिया के सब स्कूल बन्द हो गए और छात्रों ने नारे लगाते हुए जुलूस निकाले। स्मरण रहे कि इस जुलूस के निकालने में विद्यार्थियों ने अपनी बुद्धि से ही काम लिया था। ११ अगस्त को जनता तथा छात्रों का जुलूस निकला और वह शहर घूमता हुआ चौक में एक सभा के रूप में परिणत हो गया। वहाँ के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्रीराम अनन्त पांडे ने लोगों को ब्रिटिश सरकार द्वारा दी हुई चुनौती स्वीकार करने के लिए कहा।

सभा समाप्त हो जाने के बाद जनता कचहरी बन्द कराने के लिए चली। बात-की-बात में कचहरियाँ बन्द हो गईं और श्री पांडे गिरफ्तार कर लिए गए।

छात्रों का प्रदर्शन—१२ अगस्त को फिर छात्रों का एक जुलूस निकला, जनता छात्रों के साथ हो गई। यह जुलूस फिर कचहरियों को बन्द कराने के लिए आगे बढ़ा, पर रेल की गुमटी के पास १०० सशस्त्र पुलिस वालों ने जुलूस को रोक लिया। वहाँ तो करो या मरो का नारा था, फिर जुलूस क्यों रुकता। कहा जाता है कुछ ईंट-पत्थर भी चले, रेल लाइन के कंकड़ तो थे ही। फिर सब डिवीजनल अफसर मिस्टर वयस ने जुलूस पर लाठी चार्ज का हुकुम दिया। एक-एक विद्यार्थी पर बीसियों लाठियाँ पड़ीं। कई विद्यार्थी बहुत सख्त

घायल हुए, एक को तो इतनी चोट आई कि यह अस्पताल जाकर शहीद हो गया।

ऐमरी के भाषण से तोड़-फोड़—१२ अगस्त को ही समाचार-पत्रों में भारत सचिव ऐमरी का भाषण निकला, जिसमें उन्होंने बतलाया कि कांग्रेस ने अपने आन्दोलन के लिए जो तरीके चुने हैं, वे ये हैं—उद्योग धन्धों, व्यापार, प्रशासन, अदालत आदि में हड़ताल कराना, टेलीग्राफ और टेलीफोन के तार काटना तथा फौज की भर्ती करने वाले केन्द्रों पर धरना देना। कहते हैं कि इस भाषण से अधिकांश थानों की जनता को यह पता लगा कि उन्हें क्या करना है। यह कांग्रेस के नेताओं तथा संगठन के लिए बड़ी लज्जा की बात थी कि ऐमरी के व्याख्यान में जनता को कार्यक्रम का पता मिला, पर हमने अगस्त प्रस्ताव तथा उसके पहले की घटनाओं का विश्लेषण किया है, उससे यह कुछ आश्चर्यजनक न ज्ञात होगी। मिस्टर ऐमरी के भाषण के बाद से तोड़-फोड़ का कार्य जोर पकड़ गया। इस बीच में बाहर से भी खबर आई कि सर्वत्र तोड़-फोड़ हो रही है। १३ अगस्त को विलथरा रोड स्टेशन पर हमला कर दिया और इमारत जला दी गई। यह मजे की बात है कि स्टेशन के सेफ खोलने पर नोटों का जो पुलिन्दा मिला उसे लूटा नहीं गया, बल्कि जला दिया गया। पानी का पम्प और टंकी तोड़ डाली गई। एक मालगाड़ी लूट ली गई, और उसका इंजिन तोड़ डाला गया। डाकखाने पर भी हमला हुआ। बीज गोदाम और थानों पर भी हमला होने लगा।

और भी क्रान्तिकारी कार्य—१६ अगस्त को रसड़ा तहसील खजाने और थाने पर हमला हुआ। बीजगोदाम पर हमला होने पर गोलियाँ चलीं। झिड़-हरापुर स्टेशन भी जला दिया गया। इसी प्रकार अन्य स्टेशनों तथा थानों पर हमले हुए। १७ तरीख को एक थाने पर हमला हुआ तो वहाँ के दारोगा ने गांधी टोपी पहन ली और राष्ट्रीय नारे लगाए। लोगों ने उससे हथियार मांगा तो उसने अगले दिन का वायदा किया। अगले दिन हजारों की भीड़ थाने पर गई तो थानेदार ने चालाकी से नेताओं को भीतर कर लिया और जनता पर गोली चलाने का हुकुम दिया। इसी समय थाने पर लगा हुआ कांग्रेसी तिरंगा झंडा भी उतार लिया गया। तब कौशल्या कुमार नामक नवयुवक झंडा फिर से लगाने के इरादे से आगे बढ़ा, इस पर वह गोली से मार दिया गया। साढ़े

तीन बजे से ८ बजे तक गोली चलती रही। जब पुलिस की सारी गोली खत्म हो गईं तो पुलिसवालों ने आत्म-समर्पण कर दिया। एक अन्य विवरण यह है। रात को जनता ने थाने पर घेरा डाल रखा था और थानेदार भाग गया। जब पता लगा कि थाने में कोई नहीं है तो थाने में आग लगा दी गई।

नोट जलाए गए—बलिया में इस प्रकार कई थाने जलाए गए। पर कुछ जगहों के थानों पर तिरंगा झंडा फहरा कर छोड़ दिया गया। यदि इन सारी घटनाओं का वर्णन किया जाय तो वह न तो रोचक ही होगा, और न इस छोटे से दायरे में यह सम्भव ही है। संक्षेप में १९ तारीख़ तक जिले की प्रधान जगहों पर कब्जा हो गया। अब जनता ने यह तय किया कि सरकारी चिह्न बिल्कुल मिटा दिया जाय। उधर बलिया के अधिकारी यह सोच रहे थे कि बाहर से फौज आकर उनकी मदद करेगी, पर रेल तथा तार कट जाने से यह उम्मीद जाती रही। फिर भी वे आशा लगाए बैठे हुए थे और इस बीच में चाहते थे कि किसी तरह क्रान्ति टले। इतने में जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर निगम को मालूम हुआ कि बलिया शहर की उन सड़कों पर, जो उसे देहात से मिलती हैं, हजारों की तादाद में लोग आ रहे हैं। इनके सम्बन्ध में यह पता चला कि ये लोग नेताओं को रिहा करके खजाने तथा कचहरी पर धावा करेंगे।

अधिकार समर्पण—इस पर मिस्टर निगम स्वयं जेल पर गए और पंडित चीतू पांडे तथा बाबू राधा मोहन सिंह से यह कहा कि वे इस शर्त पर छोड़े जा सकते हैं कि वे जनता को समझाएँ। नेताओं ने इनकार कर दिया। तब मिस्टर निगम ने उनसे कहा कि कम-से-कम ख़जाना, जेल और जान-माल की जिम्मेदारी ले लें। इस पर नेताओं ने कहा कि हम इसकी भी गारन्टी नहीं दे सकते क्योंकि न मालूम कांग्रेस का क्या आदेश है। तब जिला मजिस्ट्रेट ने सब नेताओं को रिहा कर दिया। नेता टाऊन हाल में गए और वहाँ अपार भीड़ के सामने उनका भाषण हुआ। श्री चीतू पांडे ने तोड़-फोड़ से लोगों को रोका, कुछ जनता मान गई, पर बाकी इसके लिए तैयार नहीं थे। श्रीगजाधर शर्मा, महानन्द मिश्र, प्रसिद्ध नारायण, नगीना चौबे, मंगल सिंह, परशुराम सिंह आदि जनता के नेताओं ने जनता से दूसरी ही बातें कहीं। तोड़-फोड़ के कार्य फिर होने लगे। मिस्टर वयस, जिन्होंने विद्यार्थियों को पिटवाया था, पकड़े तथा

पीटे गए। कपड़े, गांजे और शराब की दुकानों पर हमला हुआ। गांजे के दुकानदारों को इस बात के लिए मजबूर किया गया कि वे अपने सारे सामान में खुद आग लगाएँ। जिला मजिस्ट्रेट समझ गए कि अब खजाना लुटेगा, तब उन्होंने एक डिप्टी कलेक्टर को यह आज्ञा दी कि नोटों का नम्बर ले लेने के बाद उन्हें जला डालो। ऐसा ही किया गया, पर सिपाहियों ने लाखों के नोट बचाकर जेबों में धर लिए। बीज गोदाम पर भी आक्रमण हुआ। लोगों ने अनाज लूट लिया।

सरकार की ज्यादती—जिस समय नेता जेल से निकाले गए थे उस समय उनसे यह वायदा किया गया था कि पुलिस वाले लाइन के बाहर नहीं निकलेंगे। पर ऐसा उन्होंने हृदय परिवर्तन के कारण नहीं बल्कि केवल भय तथा मसहलत के कारण किया था, यह इस बात से प्रगट है कि २० तारीख को पुलिस की एक लारी शहर में घूमी और उसने कई जगह गोली भी चलाई। पर अब भी परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि कुछ कर सके।

बलिया का प्रजातंत्र—२० अगस्त को बलिया में एक बहुत बड़ी सभा हुई। यदि नेताओं के पास कोई कार्यक्रम होता तो वे इस समय बचे-खुचे सरकारी केन्द्रों पर हमले का कार्यक्रम बनाते, पर उन्होंने इसकी बजाय दूसरी ही बातें कीं। मुहल्लों के लिए अलग-अलग पंचायतें बनीं और नगर-रक्षा के लिए कांग्रेसी स्वयंसेवक नियुक्त हुए। बलिया प्रजातन्त्र बना और कांग्रेस कमेटी का दफ्तर उसका केन्द्र बना। पंडित चीतू पाण्डे पहले जिलाधीश कहलाए। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस समय तक जिले के दस थानों में से सात पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था। शहर में ढिंढोरा पीटकर यह बता दिया गया कि अब बलिया में कांग्रेसी राज्य है।

सभा से इनकार—२२ अगस्त को श्री चीतू पाण्डे ने एक सभा बुलाई जिसमें उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर निगम को हाजिर होने के लिए कहा, पर वह नहीं आए। उन्होंने लिख भेजा कि तरह-तरह की अफवाहें फैल रही हैं, इसलिए मैंने एक नोटिस निकाला है, जिसे सभा में पढ़कर सुना दीजिएगा। इस नोटिस में यह कहा गया था कि कस्बे में जो आतंक फैलायेंगे वे गिरफ्तार कर लिए जाएँगे।

फिर से अंग्रेजी राज्य—जिला मजिस्ट्रेट की इस नोटिस से तथा २० तारीख को पुलिस ने जो गोलियाँ चलाईं थीं उससे यह साफ जाहिर है कि एक घड़ी के लिए भी मिस्टर निगम का हृदय परिवर्तित नहीं हुआ था, वह तो एक चतुर व्यक्ति की तरह परिस्थिति की ताक में बैठे थे। २० अगस्त तक सेना आ गई, और जनता के साथ कई बार डटकर लड़ाई करने के बाद बलिया पर फिर से अंग्रेजी राज्य हो गया। इस प्रकार बलिया की स्वतन्त्रता कुछ ही दिन स्थायी हुई। इस सरकार के सम्बन्ध में सबसे बड़ी बात यह है कि इसे जनता का विश्वास प्राप्त था और बात-की-बात में इनके खर्च के लिए हजारों रुपए एकत्र हो गए। नई सरकार ने लोगों से यह भी कहा कि लोग लूट के माल वापस कर दें, तो सचमुच बहुत से लोगों ने लूट का सारा माल लौटा दिया।

असली नेताओं का पता नहीं—इतिहास केवल घटनाओं का समूह नहीं है। इसलिए हम यहाँ पर ठहर कर यह बतला दें कि बलिया की जनता की अद्भुत क्रान्तिकारी शक्ति को देखते हुए उनके नेता अयोग्य साबित हुए। यदि नेता चाहते तो इस शक्ति का उपयोग करके सारे जिले में अपना अधिकार बैठा सकते थे, पुलिस लाइन में पुलिस वालों को रहने देना कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए था। यदि सच्ची बात कही जाय तो बलिया एक मिनट के लिए भी स्वतन्त्र नहीं हुआ। जब दुश्मन के सशस्त्र सिपाही पड़े हुए थे, और मौका देख रहे थे, तब उसे स्वतन्त्र कैसे कहा जा सकता है? सही अर्थ में श्री चीतू पाण्डे की सरकार एक सफल समान्तराल सरकार-मात्र थी।

सेना आने के बाद—सेना आने के बाद बलिया का बहुत जोरों से दमन हुआ। सेना के साथ मि० स्मिथ और नेदरसोल भी आए। श्री देवनाथ उपाध्याय ने लिखा है कि सबसे पहले उन नौजवानों की गिरफ्तारी हुई जो आन्दोलन के दिनों नेता का काम कर रहे थे! इनमें सर्व श्री उमाशंकर, सूरजप्रसाद, हीरा पनसारी, विश्वनाथ, बच्चालाल और राजेन्द्रलाल के नाम उल्लेखनीय बताए गए हैं। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि असल में बलिया क्रान्ति के नेता श्रीचीतू पाण्डे या ऐसे व्यक्ति नहीं बल्कि ये ही नौजवान तथा इस प्रकार के नौजवान थे। यही कारण है कि ज्योंही फौज की टुकड़ी पहुँची त्योंही सबसे पहले ये गिरफ्तार हुए, और यही नहीं इनको बार-बार पीटा तथा घसीटा गया। अभी कल

ही का तो इतिहास है, पर असली इतिहास किस प्रकार गायब हो गया, और दूसरे लोग क्रान्ति के नेता के रूप में यशस्वी बने। रसड़ा बाँसडीह तथा क्रान्ति के अन्य केन्द्रों में जो असली नेता थे, उनको शायद इतिहास कभी न जान सके।

दमन का दौरदौरा—इसके बाद बलिया में जो दमन हुआ है, उसका पूरा इतिहास देना सम्भव नहीं है। हम कुछ उदाहरण मात्र देंगे। जिनके सम्बन्ध में यह रिपोर्ट मिली कि ये क्रान्ति के मददगार थे, उनके घर भी जलाए गए। उल्लिखित क्रान्तिकारी नौजवानों को मुर्गा बनाया गया, चूतड़ों और अंडकोषों पर ठोकर मारी गई, फिर पेड़ों पर चढ़ाकर नीचे से संगीनों से भोंका गया। बहुत से लोगों के मकान लूटकर उनके सारे सामान पुलिस लाइन भेज दिए गए। एक हवाई जहाज भी डराने के लिए ऊपर घूमा। चौक में लोगों पर बेंत लगाए गए, और जब यह देखा गया कि बेंत लगते समय लोग कपड़ा पहने हुए हैं, तो हुक्म हुआ कि नंगा करके फिर बेंत लगे। ऐसी धाँधली मची कि सीनियर गवर्नमेंट प्लीडर अपने वर्षों की खैरख्वाही के बावजूद केवल इस कारण पकड़े गए कि ये बलिया के कांग्रेसी नेता बाबू राधा गोविन्द सिंह के भाई हैं जिन्होंने बाँसडीह का खजाना लुटवाया था। इस पर उन पर जूतों, थप्पड़ों और बेंतों की मार पड़ी, फिर बाद को उनके लिए यह तय हुआ कि रात को बंद रखो सवेरे गोली मार दो। तदनुसार सवेरे उनको खड़ा करके गोली मारने की तैयारी की गई, इतने में मिस्टर निगम आ गए, और उनकी जान बची। फिर भी वे सात दिन तक हवालात में बन्द रहे। कई कोठियाँ लूट ली गईं और फिर आग लगा दी गई।

गांवों में अत्याचार—गांवों में भी अत्याचार हुआ। फौज की टुकड़ी बलिया से आठ मील उत्तर २४ अगस्त को सुखपुरा पहुँची, इस गाँव के पास कई दिन पहले बन्दूकें छीनी गई थीं। फौज की लारी की आवाज पाते ही गाँव के सब पुरुष भाग गए। आते ही फौज वालों ने मनमानी गोली चलानी शुरू की। यहाँ एक महंत थे, जो सरकार के खैरख्वाह थे। उन्होंने दो महीने पहले ही १० हजार युद्ध चंदा दिया था, पर उनकी ऐसी दुर्गति की गई कि वह ४० फीट ऊँचे से कूद पड़े और उनकी टाँग टूट गई। उनके हाथी को गोली मार दी गई। उनका अपराध केवल इतना ही था कि उन्होंने अपने मठ पर तिरंगा फहराया

था। फिर गाँव लूट लिया गया। यहीं पर मिस्टर मार्श स्मिथ ने चन्दीप्रसाद नामक एक किसान को इसलिए गोली मार दी कि वह सन् २१ से कांग्रेस में था, यद्यपि बाद को वह कांग्रेस से अलग हो गया था। बाँसडीह में भी अन्धा-धुन्ध गोली चलाई गई। २५ अगस्त को मिस्टर नेदरसोल ने रामकृष्णसिंह और वागेश्वरसिंह को इतना पिटवाया कि वे मर गए। इसी प्रकार गाँव-गाँव में घूमकर लूट मचाई गई, बलिया के तीस गाँवों में आग लगाई गई। रेवती में सारा बाजार लूट लिया गया। जो लोग भाग कर खेतों में चले गए थे उन पर भी गोलियाँ बरसाई गईं। लोगों पर ऐसा आतंक बैठा कि चौकीदार पुलिस कप्तान बन गए। प्रत्येक व्यक्ति को सिपाही के देखते ही सलाम करना पड़ता था।

गांधी टोपी पर मार—श्री उपाध्याय लिखते हैं—"अगस्त १९४२ के अंत से लगाकर फरवरी १९४४ तक बलिया में कोई भी ऐसा आदमी नहीं था जो अपने सिर पर गांधी टोपी रख सके। फरवरी १९४४ से बलिया के राजनीतिक बंदियों के मुकदमों की पैरवी के लिए जब इलाहाबाद के कुछ लोग बलिया आने-जाने लगे तब से गांधी टोपी कहीं-कहीं दिखाई देने लगी।" यहाँ तक कि ट्रेन में भी कोई व्यक्ति गांधी टोपी लगाकर बलिया होकर नहीं जा सकता था। अप्रैल १९४४ में मुज्जफरपुर जिले के श्री हरिहरसिंह बलिया स्टेशन से जा रहे थे, उन्हें हुक्म दिया गया कि टोपी उतारो। उन्होंने अपने हाथ से नहीं उतारी, इस पर वह वहीं गाड़ी से उतार दिए गए और प्लेटफार्म पर मारते-मारते ढेर कर दिए गए। सामूहिक जुर्माना मनमाने ढंग से लगाया गया और दस की जगह पर पचास वसूल किया गया।

गिरफ्तार लोगों पर अत्याचार—जो लोग गिरफ्तार होते उन्हें पहले तो खूब पीटा जाता, कोतवाली हवालात में उन्हें खाना नहीं दिया जाता था। कैदी से जो प्रश्न किए जाते, यदि वह उनका उत्तर नहीं देता तो उसे उलटा लटका देते। श्री उपाध्याय लिखते हैं—"कुछ अधिक खतरनाक बन्दियों के लिए और अधिक खतरनाक यातनाएँ थीं। गुह्यांगों पर मिर्च लगाना और पुरुषेन्द्रिय पर छड़ी मारना तथा उसे रगड़ना भी खास मौकों पर बड़े काम का सिद्ध होता था। पुलिस की आज्ञा पाकर भंगी पुरुषेन्द्रिय को हाथों से रगड़ता, पहले तो

वीर्य निकलता, किन्तु बाद को रगड़ते-रगड़ते खून निकलता।"

जेल में अत्याचार—जो लोग जेल में थे, उनके लिए और भी आफत थी। इतने लोगों को जेल में ठूंस दिया गया कि उन सबके लिए बैठने तक की जगह नहीं थी। लोगों को ओढ़ने-बिछाने-पहनने के लिए कुछ नहीं दिया जाता था। तसला कटोरी की जगह पर एक मिट्टी का कसौरा दिया जाता था। एक वक्त किसी तरह चोकर की रोटी दी जाती थी। लोगों को आमतौर से पेचिश हो गई। पर दवा मांगने पर गालियाँ मिलती थीं। जेल में जब कोई कैदी दाखिल होता तो उसे गुड़ खिलाया जाता अर्थात् मारा जाता, इसके अलावा बेड़ी दी जाती थी। बेगुनाहों को पकड़ कर जेल में भर दिया गया था और उनसे घूस मांगी जाती थी। बहुत से लोग रोग लेकर लौटे। जिस समय कांग्रेस का जोर था, उस समय सरकारी अफसरों के साथ बहुत अच्छा बरताव किया गया था। इसीका नतीजा यह था कि जब बलिया में फिर से अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ तो उनको यह सलूक मिला। श्री देवनाथ उपाध्याय ने ६४ ऐसे व्यक्तियों का पता लगाया है जो शहीद हुए। इसमें संदेह नहीं कि इनका त्याग चिरस्मरणीय रहेगा।

गाजीपुर की घटनाएँ—गाजीपुर में भी क्रान्तिकारी जनता ने १९-२० और २१ अगस्त को ब्रिटिश शासन बिल्कुल खत्म कर दिया और बलिया की तरह पंचायतें स्थापित कर दी गईं। यद्यपि १९४२ के सम्बन्ध में बलिया को विशेष ख्याति प्राप्त हुई, जैसा कि हम देखेंगे भारतवर्ष के बहुत से स्थानों की जनता ने बलिया के समान कार्य किए। रहा यह कि बलिया की ख्याति क्यों हुई, सो इसके सम्बन्ध में इतना ही मालूम होता है कि बलिया में मजिस्ट्रेट ने ऊपरी तौर पर आत्मसमर्पण कर दिया।

तोड़-फोड़ कार्य शुरू—गाजीपुर में नेताओं की गिरफ्तारी की खबर से लोगों में जोश फैला और तार के खम्भे उखाड़ने तथा रेल की लाइन काटने का कार्यक्रम शुरू हुआ। स्टेशनों में आग लगा दी गई, डाकखाने लूट लिए गए। रेल के इंजन तोड़ डाले गए, तथा माल गाड़ियों को लाइन पर से उतार दिया गया। नन्दगंज स्टेशन पर जनता पर गोली चली। यह अनुमान है कि वहाँ ८० आदमी शहीद हुए। सादात और जमानिया स्टेशनों में भी गोलियाँ चलीं

और कुछ व्यक्ति मरे।

गाजीपुर के क्रान्तिकारी कार्य—गाजीपुर में विद्यार्थियों ने बहुत अधिक भाग लिया और १५ अगस्त को गाजीपुर शहर में एक विराट जुलूस निकला। जुलूस ने यह कोशिश की कि कोतवाली पर झंडा लगाया जाय, तदनुसार वह आगे बढ़ा। पर मादात थाने पर उस पर गोलियाँ चलीं। जब गोलियाँ खत्म हो गईं और जनता के बहुत से लोग गोलियों के शिकार हो चुके, तब जनता ने थानेदार तथा सिपाहियों सहित थाने को जला दिया। इस प्रकार जनता की विजय हुई। सैदपुर में तहसीलदार ने आफत देखकर कचहरी पर तिरंगा फहरा दिया। शेरपुर गाँव के लोगों ने १४ अगस्त को मोहमदाबाद स्टेशन तथा पास के हवाई अड्डे पर हमला किया। हमला सफल रहा और श्री यमुनागिरि गोली से शहीद हुए। इससे जनता में और भी जोश बढ़ा, पर जनता ने नीति बदलकर यह तय किया कि रात को हमला किया जाय। तदनुसार ऐसा ही हुआ, पर इसके पहले ही हवाई अड्डा खाली हो चुका था। शेरपुर गाँव के एक डॉक्टर साहब के हाथों में झण्डा होने के कारण उन्हें एक के बाद एक तीन गोलियाँ मारकर शहीद कर दिया गया।

गाजीपुर मे दमन—२२ अगस्त को गोमती पार कर सेना आई और उसने बिना कारण बेरहमी का बरताव किया। शेरपुर के रामशंकर राय तथा शोभनराम मारे गए। गाँव में १२ घंटे तक कत्लेआम तथा लूट चलती रही! एक महिला राधिका देवी को कुएँ में डालकर मार डाला गया। गमहार गाँव में दूधनाथ सिंह और दारोगासिंह को गोली मार दी गई। स्त्रियों पर बलात्कार भी हुआ। २४ अगस्त को 'आज' के सम्वाददाता विक्रमादित्य सिंह बिना कारण पकड़े गए और उन्हें मारा-पीटा गया। करूयाबाद, सदन, नन्दगंज आदि बहुत से गाँवों में अत्याचार हुआ। ७५ गाँवों पर विशेष अत्याचार हुए। १६७ व्यक्ति शहीद हुए, न मालूम कितने घायल हुए। सवा तीन लाख रुपए सामूहिक जुर्माना हुआ।

बनारस में क्रान्ति—बनारस में आन्दोलन का प्रारम्भ हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के जुलूस से हुआ। अन्य जुलूस भी इस जुलूस के साथ आकर मिल गए और वह फौजदारी अदालत पर झण्डा फहराने के लिए चला। पुलिस

के अधिकारियों ने जुलूस को तितर-बितर होने के लिए कहा । मिस्टर टीजडेल ने, जो बाद को कुछ क्रान्तिकारी कैदियों को जेल से अदालत तक घसीटने के सम्बन्ध में मशहूर हुए, जनता पर हन्टर चलाया । बस इसके बाद तो लाठी चार्ज शुरू हुआ । जनता देर तक डटी रही, पर तितर-बितर हो गई ।

जनता झण्डा लगाकर खुश—अगले दिन फिर यही चेष्टा हुई । अधिकारियों ने बड़ी बुद्धिमता से काम लिया । वे इस बात को समझ गए थे कि यदि गोली चलाई गई तो आन्दोलन बढ़ेगा । और जुलूस वाले चाहते ही क्या थे ? इतना ही न कि इमारत पर झण्डा फहराएँ । तदनुसार उन्होंने फौजदारी अदालत पर तिरंगा झण्डा लहराने दिया । बस इतने ही से कार्यक्रमहीन जनता खुश हो गई और नारा लगाती हुई दीवानी अदालत की ओर चली । वहाँ एक नौजवान ने जान हथेली पर लेकर झण्डा चढ़ा दिया । यहाँ अधिकारियों ने यह चालाकी की थी कि छत पर जाने के रास्ते बन्द कर दिए थे, पर उस बहादुर नौजवान ने झण्डा लगा ही दिया । इन दोनों जगहों पर झण्डा लग जाने से जनता खुश होकर घर लौट गई । ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसे मजे में इसलिए देख सका कि यह तो एक खिलौना था, यदि जनता इतने से खुश हो रही थी, तो क्या हर्ज था ? यदि जनता खजाने या मैगजीन पर कब्जा माँगती या सामने खड़ी सशस्त्र पुलिस से कहती कि अपने हथियार हमें दे दो, तभी साम्राज्यवाद के लिए खतरे की बात होती ।

गोलियां चलीं—फिर भी जो कुछ हुआ था उतने से ही नौकरशाही की मानहानि होती थी, इसलिए उन्होंने शक्ति से बरताव शुरू किया । सैकड़ों वर्ष का रोब मिट्टी में मिला जा रहा था उसे बचाना था । १३ तारीख को दशाश्वमेध से जुलूस निकलने वाला था, पर रास्ते में ही उस पर लाठी चार्ज किया गया । श्री रमाकान्त मिश्र तथा श्री विन्ध्येश्वरी पाठक घायल हो गए । जनता ने इसका जवाब पत्थर से दिया । तब गोलियाँ चलीं । बहुत से व्यक्ति शहीद हुए ।

अन्य क्रान्तिकारी कार्य—टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार भी कटे, खम्भे उखाड़ डाले गए, करीब-करीब सभी स्टेशन लूट लिए गए और सब तरह की लाइनें उखाड़ ली गईं । राजवाड़ी और इब्बतपुर के हवाई अड्डे खत्म कर दिए

गए, डाकखाने, रेल, गोदाम, पुलिस चौकियाँ लूट ली गईं। इनमें से जो बच रहीं, उन पर तिरंगा झंडा फहरा दिया गया। कई जगह तो पुलिस वालों को झंडा फहराने के लिए मजबूर किया गया। धानापुर थाने पर जनता झण्डा चढ़ाने गई, तो थानेदार ने उलटा पुलिस को बाजार लूटने का हुक्म दे दिया। इस पर क्रुद्ध जनता ने दारोगा तथा दो सिपाहियों को मार डाला। १५० आदमियों पर मुकदमा चला, और लम्बी सजाएँ हुईं। ग्रैंडट्रंक रोड से होकर कहीं फौज न आए इस कारण जगह-जगह सड़क में गड्ढे कर दिए गए। इस प्रकार क्रान्तिकारी जनता ने केवल अपनी बुद्धि से उन सब कामों को किया, जिन्हें कर सकती थी।

सैयद राजा बाजार में गोली—बनारस के कुछ स्थानों में जैसे सैयद राजा बाजार में २८ अगस्त को भी आन्दोलन जीवित था। यहाँ उस दिन जलूस निकला तो उस पर गोली चली। श्री जगत नारायण तथा कुछ और लोगों को चोटें आईं। तब श्री चन्द्रिका नायक लोगों को हिम्मत बंधाते हुए आगे बढ़े। यहाँ पर पुलिस वाले छिपकर गोली चला रहे थे। जनता ने यहाँ एक नया तरीका अख्तियार किया। जब-जब गोली चलती तो जनता लेट जाती, फिर उठ खड़ी होती। इसी प्रकार संध्या हो गई। फिर सिपाही बाहर निकल कर घायलों की खोज में चले, पर उनके हाथ एक घायल न लगा। तब उन्होंने बाजार पर अत्याचार किया। अत्याचार इतना अधिक हुआ कि बहुत से लोग बस्ती छोड़ कर भाग गए। यहाँ तक स्त्रियों के साथ बहुत अत्याचार हुआ। कइयों को नंगी करके पीटा गया।

१९४२ और हिन्दू विश्वविद्यालय—बनारस के आन्दोलन में हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों का बहुत बड़ा स्थान रहा। इसलिए जब सरकारी दमन-चक्र चला तो फौज ने विश्वविद्यालय पर विशेष रूप से प्रहार किया। छात्र तथा छात्राओं के होस्टल जबरदस्ती खाली किए गए, और खाली करते समय बहुत-सा सामान लूट लिया गया। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी प्रान्त-भर में फैल गए और उन्होंने जाकर आन्दोलन का नेतृत्व किया। देश के कार्यों में केवल यहाँ के छात्र ही नहीं, बल्कि कुछ अध्यापक भी बराबर १९२० में कांग्रेस के साथ रहे। इस विश्वविद्यालय के देशभक्त अध्यापकों में श्री कृपलानी, अध्यापक

राधेश्याम, अध्यापक असरानी, अध्यापक गैरोला के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ की छात्राओं ने भी बहुत काम किया था।

इलाहाबाद में क्रान्ति—नेताओं की गिरफ़्तारी की खबर इलाहाबाद में कुछ पहले पहुँची। ९ अगस्त को ही कांग्रेस के सब नेता गिरफ्तार कर लिए गए और कांग्रेस के दफ्तरों पर ताला डाल दिया गया। १० अगस्त को पुरुषोत्तम-दास पार्क में तथा मुहम्मद अली पार्क में सभाएँ हुईं। ११ अगस्त को विश्व-विद्यालय के छात्र तथा छात्राओं का एक जुलूस निकला। यह जुलूस 'झा' होस्टल तक ही पहुँचा था कि उस पर पुलिस अधिकारियों ने लाठी चार्ज करना चाहा पर कहा जाता है कि सिपाहियों ने ऐसा करने से इनकार किया। युद्धनीति तय करने के लिए उसी दिन यूनियन हाल में छात्रों की एक सभा हुई। यहाँ पर यह तय हुआ कि १२ अगस्त को जुलूस निकाला जाय।

खूब गोलियां चलीं—यह जुलूस निकला। जुलूस के आगे-आगे कुछ लड़-कियाँ थीं। पुलिस ने उनकी तरफ गोलियाँ चलाईं। तब एक विद्यार्थी ने आगे बढ़कर सीना खोलते हुए कहा, "मुझे गोली मार दो, लड़कियों पर क्या गोली चलाते हो।" बस इसी पर वह गोली से मार दिया गया। एक अन्य जुलूस श्री यदुवीरसिंह के नेतृत्व में निकला। इसमें भी लड़कियां थीं। पहले जुलूस पर कंकड़ बरसाया गया। फिर गोली चलाई गई। गोलियाँ चलती गईं और भीड़ आगे बढ़ती गई। लड़कियों ने इस अवसर पर बड़ी बहादुरी दिखलाई, उन्होंने एक तो झण्डा देने से इनकार किया, फिर घुड़सवारों के घोड़ों की लगाम पकड़ लीं। इसके बाद तो कई गोली-काण्ड हुए, जिनमें बहुत से व्यक्ति मारे गए। कोतवाली की तरफ जाने वाले एक जुलूस में बैजन नामक व्यक्ति को इसलिए गोली मार दी गई कि वह जनता से यह कह रहा था कि आगे बढ़े चलो, डरने की कोई बात नहीं है। दौलतराम उर्फ बंगाली नामक एक सोनार को कई गोलियाँ लगीं। यह व्यक्ति ८ दिन तक कालविन अस्पताल में रहे। अहिया-पुर के राजा पंडित को भी गोली लगी। कट्टू अहीर तथा यासीन को भी गोली लगी। लालपद्मधरसिंह नामक विद्यार्थी १२ अगस्त को इलाहाबाद जिला के अदालत के कम्पाउण्ड के अन्दर गोली से मारे गए थे। गोली खाने वालों में सबसे अधिक बहादुरी एक १४ साल के लड़के रमेश मालवीय ने दिखलाई।

वह बेलूची सैनिकों से गोली न चलाने के लिए कह रहे थे। इस पर बेलूचियों ने उनके दाहिने जबड़े पर गोली मार दी। एक चीख निकली और भारत मां का यह लाल हमेशा के लिए सो गया। इनके मृतदेह के लिए जनता और सिपाहियों में हाथा-पाई हुई पर अन्त तक मृतदेह सरकार के हाथ में रही। यह एक शहीद की मृत्यु थी। पी० सी० बनेर्जी होस्टल के पास एक घास वाले को अकारण गोली मार दी गई। एक अध्यापक के कथनानुसार एक लारी आई और उसमें से किसी ने निशाना बाँधा और घास वाला मर गया। पास ही एक मिलिटरी बैलगाड़ी में आग लगी हुई थी, यह उसी का बदला था।

मिस्टर रजा का इस्तीफा—मिस्टर अमीर रजा नामक एक दस साल के पुराने डिप्टी कलेक्टर ने बाद को अपने बयान में बतलाया कि लाला पद्मधर सिंह पर जो गोली चली थी उसे हत्या ही कहा जा सकता है न कि और कुछ। उनके अनुसार मिस्टर एम० एन० आगा शहर कोतवाल ने बिना कारण गोलियाँ चलवाईं। मिस्टर रजा ने अमृत बाजार के एक प्रतिनिधि से बताया कि उन्होंने एक बार मिस्टर आगा को किसी से टेलीफोन पर ऐसा कहते हुए सुना कि देखते ही गोली मार दो। इस पर मिस्टर रजा ने उपस्थित सिटी मजिस्ट्रेट मिस्टर एन्थोनी से इसका प्रतिवाद किया। वहाँ पर दो अन्य मजिस्ट्रेट मौजूद थे, उन्होंने भी मिस्टर रजा का समर्थन किया और कहा कि गोली चलाने के लिए हुक्म देने का अख्तियार केवल मजिस्ट्रेटों को ही है। इस पर आगा बहुत कुड़-कुड़ाए यहाँ तक कि उन्होंने अपमानजनक तरीके से इन दो मजिस्ट्रेटों के साथ बातचीत की और सामने खड़े एक सैनिक कर्मचारी से कहा कि इन मजिस्ट्रेटों की भली चलाई, तुम अपना काम करो। इन्हीं बातों से तथा पुलिस की ज्यादती से नाराज होकर मिस्टर रजा ने अपनी नौकरी से स्तीफा दे दिया और तब से कांग्रेसी हो गए।

हवाई अड्डा तथा रेल लाइन पर हमला—१३ अगस्त को बमरौली हवाई अड्डे पर भी हमला हुआ, पर अड्डा एकदम से खत्म नहीं किया जा सका। कई फौजी लारियाँ फूंक दी गईं। बहुत से डाकखाने भी लूट लिए गए। यहाँ पूरे तरीके से रेल लाइन काटी नहीं जा सकीं, फिर भी कुछ गाड़ियों का रास्ता कट गया।

देहात में आन्दोलन—हँड़िया तहसील में आन्दोलन बहुत जोर पकड़ गया और यहाँ करीब-करीब सरकार बेकार कर दी गई। पर जब सेना आई तो उसने बरोद बाजार, बनकट, सैदाबाद आदि जगहों में बहुत अत्याचार किया। बरोद बाजार में एक कांग्रेसी को कई बार पैर बाँध कर पेड़ से लटकाया गया, पर अन्त तक वह बच गया। हँड़िया में कुछ छात्रों को पेड़ से लटका कर उन पर गोली चलाई गई! बनकट की दो गर्भिणियों ने भय के मारे ज्वार में बच्चे जन्म दिए। बनकट गाँव खाली हो गया। सैदाबाद में एक कांग्रेसी का मकान जमींदोज कर दिया गया। गांधी टोपी पर विशेष कोप रहा।

गांधी टोपी पर प्रहार—गांधी टोपी लगाने वाले को पकड़ लिया जाता था और उसे टोपी पर थूकने तथा पेशाब करने के लिए बाध्य किया जाता था। दशरथ लाल जायसवाल नामक एक नवयुवक को यह बात बहुत बुरी लगी, और उसने जान-बूझकर गांधी टोपी पहन ली, इस पर उसे पकड़ कर टोपी पर थूकने आदि के लिए कहा गया। उसने इनकार किया, तब उसे पीटा गया। किसी ने गोली चलाई जो दशरथ लाल का पेट पार करके निकल गई फिर भी उसने गांधी टोपी नहीं छोड़ी। वह उठकर वहाँ से जाने लगा तो उस पर लगातार दो गोली मारी गईं। इनमें से एक उसे पार कर एक धोबी को लगी, और वह मर गया। कहते हैं कि दशरथ लाल फिर भी नहीं मरे।

अगस्त क्रान्ति में इलाहाबाद—इलाहाबाद के कुछ व्यक्तियों ने विशेषकर छात्र तथा छात्राओं ने बहुत बहादुरी दिखलाई, पर इलाहाबाद में जितने नेता रहते हैं और यहाँ के जितने एम० एल० ए० हैं, उसको देखते हुए अगस्त क्रान्ति में इलाहाबादियों का हिस्सा पूर्वी जिलों के मुकाबले में बहुत फीका रहा। सच तो यह है कि जो कुछ हुआ वह पूर्वी जिलों में ही अधिक हुआ।

आजमगढ़—आजमगढ़ में आन्दोलन बहुत जोर पकड़ गया था। १० अगस्त को एक विराट् जुलूस निकला और वह कर्बला मैदान में जाकर सभा में परिणत हो गया। पहले तो मजिस्ट्रेट जुलूस तथा सभा को रोकना चाहते थे, पर उन्होंने कुछ समझ कर ऐसा नहीं किया।

मधुबन का हमला—आजमगढ़ के देहात में आन्दोलन बहुत ही क्रान्तिकारी ढंग से हुआ। ७० हजार की भीड़ मधुबन थाने के सामने पहुँची। उनके नेता

ने थाने के अधिकारियों से आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। पर अधिकारियों ने न आत्मसमर्पण किया न झंडा फहराने दिया। तब अपार भीड़ आगे की ओर बढ़ी। इस पर उसके ऊपर गोली चलाई गई। फिर भी वह आगे बढ़ी। जब मशीनगन की खबर आई तब भीड़ हटी। इस अवसर पर ३४ व्यक्ति वहीं शहीद हो गए और बाद में से जो लोग घायलों में से शहीद हुए उनको लेकर ७५ के करीब व्यक्ति शहीद हुए। शायद कुछ अधिक ही मरे हों। मधुबन में जनता ने जो बहादुरी दिखलाई थी, वह ऐतिहासिक है।

अन्य क्रान्तिकारी कार्य—महाराजगंज थाने पर जब आक्रमण हुआ तो थानेदार मौजूद नहीं था और बाकी लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया। राष्ट्रीय झण्डा फहरा दिया गया। तरवा थाने में जनता ने पीछे से हमला करके पुलिस वालों की बन्दूकें छीन लीं, और उनके सब हथियार ले लिए। यहाँ भी राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। तरवा में जनता ने सरकारी कर्मचारियों पर मुकदमा चलाने के लिए एक पंचायत कायम की। इसने थानेदार को इलाके से निकल जाने की सजा दी। काझा थाने में एक अंग्रेज जमींदार श्रीमती स्टारमार के बँगले में आग लगा दी गई। उनके पूर्व पुरुषों को यह जमींदारी गदर के दिनों की सेवाओं के लिए मिली थी। उसकी यह उपयुक्त सजा थी। पर श्रीमती स्टारमर विलायत में थीं। डाकखानों पर हमले हुए। रेल लाइन उखाड़ी गई। एक फौजी गाड़ी गिरा दी गई। रानी की सराय के पास एक इंजन तोड़ डाला गया। कई जगह सड़कों के पुल तोड़े गए। पटबध गाँव के पास २३ अगस्त को लोगों ने एक फौजी लारी को घेर लिया। सैनिक समझे कि दो चार को मार सकते हैं। इसलिए उन्होंने भीड़ से कहा कि हम तो तुम्हारे ही हैं, तब भीड़ हट गई तो उस पर गोली चली। ३ मरे कई घायल हुए।

नेतृत्व की कमी—यहाँ जनता ने जितनी बहादुरी दिखलाई उतनी से अच्छी तरह क्रान्ति हो सकती थी, पर नेतृत्व तथा कार्यक्रम के अभाव के कारण यह आन्दोलन किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका। जब ब्रिटिश सरकार की बारी आई तो उसने कोई अत्याचार उठा नहीं रखा।

दमन का जोर—जुड़ावा परदेवारा के कांग्रेस कार्यकर्ता महादेव सिंह के घर की दीवारें ढाकर आग लगा दी गई। उनके मुँह में पेशाब भी किया गया

तथा उन्हें पेड़ में लटकाया गया। इस जिले मे करीब सा मकान जलाए गए।

स्त्रियों पर अत्याचार—स्त्रियों पर मारपीट तथा बलात्कार भी हुआ। रामनगर गाँव में चेत नामक अछूत की स्त्री के साथ बीस गोरों ने इतना बलात्कार किया कि वह मर गई। मभा में एक स्त्री के साथ उनके घरवालों के सामने बलात्कार किया गया। दंदारा के निकट एक स्त्री एक साल के बच्चे को लेकर जा रही थी। उसे बिना कारण गोली मार दी गई। रानी की सराय में मेले पर गोली चलाई गई। रईसों के घर लूटे गए। इसी प्रकार अमीला में पुलिस घर लूटने पहुँची तो सुप्रसिद्ध नेता श्री अलगूराय शास्त्री की भाभी अड़ गईं और बोलीं कि यदि हमारा सामान फूंकना है तो पहले मुझे फूंक दो, इस पर सैनिक हार मान गए।

गोरखपुर आन्दोलन और दमन—गोरखपुर में आन्दोलन बहुत देर में शुरू हुआ, पर जब शुरू हुआ तो कई थानों तथा डाकखानों पर जनता ने अपना झंडा लगा दिया। कई जगह पुलिया भी तोड़ दी गईं। ऐसा मालूम होता है कि इस जिले के लोग संगठित ढंग से कुछ अधिक कर नहीं पाए और अत्याचार शुरू हो गया। यहाँ की कहानी मुख्यत: जनता को दबाने की कहानी है। कहीं गाँव लूटे गए तो कहीं घर लूटा गया। मार-मार कर लोगों को बेहोश किया गया। बपुवा, खोयापार, गोपालपुर, अभोड़ा, दुधरा, मालपुरी, उसवा, सिसई, भदरिया आदि कितने ही गाँवों में पुलिस का अत्याचार हुआ। पंडित रामबली मिश्र की पत्नी श्रीमती कैलाशवती को पीटा गया। उन्हें नंगी करने का हुक्म हुआ, पर कपड़े फाड़कर छोड़ दिए गए। सिसई गाँव में जब बहुत अत्याचार हुआ तो वहाँ के लोगों ने आए हुए सरकारी कर्मचारियों की अच्छी मरम्मत की। इस पर सरकार की ओर से बेलूची फौज भेजी गई, पर गाँव वाले गाँव छोड़ कर भाग चुके थे। मकानों में आग लगाई गई, और स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया गया।

गोरखपुर षड्यन्त्र—गोरखपुर की एक विशेष घटना गोरखपुर षड्यन्त्र है। सहजनवा ट्रेन डकैती की जाँच के सिलसिले में पुलिस को यह ज्ञात हुआ कि यद्यपि बहुत दिनों से श्री शिब्बन लाल सक्सेना जेल में बन्द पड़े थे, फिर भी वह जेल के अन्दर से ही बाहर अपने मित्रों को पत्र भेजते थे, तथा जेल से भागने की तैयारी कर रहे थे। पुलिस ने इस सूत्र का अनुसरण करते हुए राना प्रताप

सिंह नामक व्यक्ति को गिरफ्तार किया, जिनके जरिये से जेल जमादार को पत्र दिए जाते थे। राना प्रताप सिंह ने शहर गोरखपुर के बाहर धरमपुर गाँव में एक मकान का पता दिया, जिसमें एक कमरे में १३ षड्यन्त्रकारी गिरफ्तार हुए। इस तथा कुछ अन्य मकानों की तलाशी लेने पर तोड़-फोड़ के औजार, आठ तैयार बम, कुछ बम के सामान, हजारों पर्चे तथा छापने के यन्त्र बरामद किए गए। इस पर जिले-भर में गिरफ्तारियाँ हुईं, और एक षड्यन्त्र का मुकदमा चला। २० व्यक्ति अभियुक्त के रूप में पेश किए गए। मिस्टर आर० बी० जेम्स सेशन जज ने २१७ पृष्ठों के फैसले में इस बात पर तफसील के साथ लिखा कि अभियुक्तों के द्वारा अहिंसा की आड़ लिए जाने पर भी कांग्रेस के नेताओं ने जो खुला विद्रोह, करो या मरो का नारा दिया, उसी में हिंसा तथा तोड़फोड़ अन्तर्हित था। जज ने श्री शिब्बन लाल को षड्यन्त्र का नेता तथा दिमाग करार देकर १० साल की सजा दी। सूर्यनाथ पांडे तथा रामजी वर्मा को ७ साल की सजा दी गई। कैलाशपति गुप्त तथा ५ अन्य अभियुक्तों को ५ साल की सजा दी गई। बाकी दस अभियुक्तों को तीन-तीन साल की सजा हुई। श्री शिब्बनलाल सक्सेना पहले अध्यापक थे, फिर एम० एल० ए० और एक प्रतिष्ठित कांग्रेसी नेता रहे। पर इस कारण वह जेल में मार से न बच सके। और उनको जेल के किसी मूर्ख वार्डर ने नहीं, बल्कि स्वयं आई० सी० एस० मजिस्ट्रेट ने मारा। इसका विवरण अन्यत्र दिया गया है।

३१

उ. प्र. के अन्य जिलों का इतिहास

जौनपुर—जौनपुर कांग्रेस के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। जब-जब लड़ाई ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ कांग्रेस की हुई है, जौनपुर जिले ने अपना हिस्सा अदा किया है। जिस तरह भारतवर्ष में कांग्रेस में वाम पक्ष तथा दक्षिण पक्ष रहे हैं, जौनपुर जिला भी उससे अछूता नहीं रहा है। यहाँ पर भी वामपक्षी शक्तियों का जन्म पहले ही से हो चुका था। सन् १९३८ में ही राजदेव सिंह के प्रयास से कई वामपक्षी ट्रेनिंग कैम्प जिले में चला चुके थे, दो साल के अन्दर ही जिले में काफी सैनिक तैयार हो चुके थे। सन् १९४० में राजदेव सिंह के जेल चले जाने के बाद यह काम कुछ शिथिल तो अवश्य पड़ गया था, लेकिन उन्होंने सैनिकों में जो आग फूंक दी थी, वह भीतर-ही-भीतर जल रही थी।

राजनारायण पहले से तैयारी कर रहे थे—सन् १९४० के सत्याग्रह के सभी अवसर पर यहाँ के नौजवान सत्याग्रह करके जेल चले गए। जेल से छूटने पर लोगों ने फिर वही अपने ढंग से कार्य करना शुरू कर दिया। सन् ४२ के शुरू ही से लोगों ने हथियार वगैरह इकट्ठा करना शुरू कर दिया था। इसमें प्रमुख हाथ कामरेड सूर्यनाथ उपाध्याय तथा कामरेड राजनारायण मिश्र का था।

किसान हाई स्कूल प्रतापगंज—अगस्त में देशव्यापी आन्दोलन हो गया। यह आन्दोलन जौनपुर के नौजवानों को काफी प्रिय मालूम हुआ, और उसमें वे दिल खोलकर कूद पड़े। इस समय जिले-भर की क्रान्ति का केन्द्र किसान हाई स्कूल, प्रतापगंज हो गया। इस स्कूल की नींव सन् १९४१ में ठा० जगन्नाथ सिंह ने डाली थी। और सन् १९४२ में प्रान्तीय किसान कान्फ्रेंस यहीं पर हुई थी। सबसे पहले ८ अगस्त को इसी स्कूल पर एक मीटिंग हुई, जिसमें लगभग जिले के हर कोने से लोग आए थे। इस मीटिंग में सूर्यनाथ उपाध्याय इस लड़ाई के कमान्डर चुने गए। उन्होंने सबको अलग-अलग आदेश दिया।

क्रान्ति का प्रारम्भ—दूसरे दिन शहर में विद्यार्थियों ने बड़े जोर की हड़ताल की। कचहरी में उन पर गोली भी चलाई गई, लेकिन वे पीछे न हटे। कलेक्टर तथा कप्तान को लोगों ने घेर लिया और माफी माँगने पर ही उन्हें छोड़ा। कचहरी तथा अन्य सरकारी इमारतों पर तिरंगा झंडा फहरा दिया गया। १० तारीख को जिले के तमाम गल्ले के गोदामों को लूट लिया गया। खास तौर से सिकरारा का बीज गोदाम पूरी तरह से लूटा गया। इसके बाद थानों पर हमला किया गया। मछली शहर, बदलापुर तथा बख्शा के थानों पर झंडे लगा दिए गए और उनके कागज जला दिए गए। सबसे पहला हमला सुजानगंज के थाने पर राजनाराण मिश्र तथा रामशिरोमणि दूबे के नेतृत्व में हुआ। वहाँ पर थाने की तमाम रायफलें भी छीन ली गईं और थाने पर कब्जा कर लिया गया। यहाँ पर अगर पहले से प्रोग्राम दिया गया होता तो निश्चय ही जिले पर पूरी तरह से कब्जा कर लिया गया होता।

दमन का प्रारम्भ—यह सब कार्य १ हफ्ते के अन्दर हुआ। अब तक पुलिस तथा मिलिटरी बिल्कुल स्तब्ध थी। इसके बाद जिले में दमन शुरू हुआ। मिलिटरी का दौरा चारों तरफ होने लगा। गिरफ्तारियों के तांते लग गए, मकान जलाए जाने लगे। लोग बेरहमी के साथ पीटे जाने लगे। सबसे पहले १८ अगस्त को किसान हाई स्कूल मय सब सामान के पुलिस अधिकारियों द्वारा जला कर राख कर दिया गया। जिले में काफी लोग फरार हो गए। फरारों की संख्या इस समय लगभग १००० के थी।

सूर्यनाथ उपाध्याय—अब बाहर से कोई प्रोग्राम नहीं आता था। इस समय जिले की नौजवान पार्टी के कमान्डर सूर्यनाथ उपाध्याय थे। इसके बाद फरारों की टोली जत्था बनाकर जिले में सब जगह टहलने लगी, आतंकित जनता को संतोष देने लगी। कई बार इन जत्थों की पुलिस से मुठभेड़ भी हो गई। पुलिस की हिम्मत इन जत्थों को गिरफ्तार करने की नहीं पड़ती थी। वे जिस गाँव को छोड़ कर जाते थे पुलिस वाले उनको परेशान करते थे। कितने गाँव वालों को अनायास पकड़ कर थानों पर ले जाते थे। उनसे रुपया ऐंठते थे। कितनी औरतों को यही कह कर बेइज्जत करते थे कि तुमने कांग्रेसियों को अपने यहाँ टिकाया था। कितनी औरतों को थाने में ले जाकर उनके पिता तथा भाइयों के

सामने बेइज्जत किया गया।

गद्दारों पर हमले—वँधवा के स्थान पर कांग्रेस के एक जत्थे की पुलिस से मुठभेड़ हो गई, उसमें एक खुफिया इन्सपेक्टर तथा एक कानस्टेबल मारा गया। जिले में गद्दारों की संख्या को घटाने के लिए कई गद्दारों का मकान लूटा गया और उन्हें मारा भी गया। कांग्रेस के एक जत्थे ने अक्टूबर के आखिरी हफ्ते में कुल्टना मऊ के स्थान पर गवर्नमेंट की डाक लूट ली। वहाँ पर जनता द्वारा उपाध्याय, वैजनाथ सिंह, दुखहरन मौर्य, उदरेज सिंह तथा दयाशंकर सिंह गिरफ्तार करके कोतवाली तक पहुँचा दिए गए।

क्रान्ति के नेता गिरफ्तार—इसके थोड़े ही दिन बाद रामशिरोमणि दूबे, राजनारायण मिश्र तथा नन्दकिशोर सुजान गंज थाने के अन्तर्गत मूर्ख जनता द्वारा गिरफ्तार कराए गए। थाने में इनके साथ बहुत ज्यादा सख्ती की गई। मिश्र जी के हाथ-पैर तोड़ दिए गए। सब नाखून फोड़ दिए गए। आग में डालकर जलाए गए। लेकिन उन्होंने आह तक नहीं की।

इसके बाद जिले के नौजवानों का नेतृत्व मास्टर जगन्नाथ सिंह के हाथ आया। उन्होंने तमाम जिले-भर में फिर से नवयुवक संगठन किया। इसी समय जिले में भूप-नारायण सिंह का पैशाचिक जुल्म शुरू हुआ। इन्होंने जिले में लगभग १०० आदमियों को करंट लगाकर प्रायः नपुंसक कर दिया। कितनी ही औरतों को थाने में ले जाकर बेइज्जत किया। सुजानगंज थाने की दो राइफलें डँवरूआ गाँव में मंगल चमार के यहाँ बरामद हुईं। उनकी वजह से उस मौजे पर ४६००) जुर्माना हुआ। वँधवा कांड में राजनारायण मिश्र, रामशिरोमणि दूबे, गौरीशंकर, गिरजाशंकर सिंह तथा अन्य ७ व्यक्तियों को फाँसी की सजा हुई थी।

आन्दोलन टिका—जौनपुर जिले की क्रान्ति की यह विशेषता थी कि वह बहुत दिनों तक टिका रहा। दूसरी जगहों के आन्दोलन ज्यादा-से-ज्यादा दो हफ्ते में खत्म हो गए लेकिन यहाँ का आन्दोलन सालों तक चलता रहा। यहाँ के बहुत से आदमी अन्त तक नहीं गिरफ्तार हुए। मास्टर जगन्नाथ सिंह, जिनकी गिरफ्तारी के लिए ३०००) इनाम रखा गया था, अन्त तक फरार रहे। कांग्रेस मंत्रिमंडल ने सन् १९४६ अप्रैल में उनका वारन्ट कैन्सिल किया।

कानपुर—संयुक्तप्रान्त के पश्चिमी जिलों में अगस्त आन्दोलन पूर्वी जिलों के मुकाबले में बहुत कमजोर रहा। कानपुर मजदूरों का नगर है, इस क्रान्ति में उससे बड़ी आशा थी, पर कम्युनिस्टों के प्रभाव तथा आम तौर पर कानपुर के नेताओं की ढुलमुलयकीनी के कारण यहाँ पर आन्दोलन धीमा ही रहा। ९ अगस्त को यहाँ की जनता ने कांग्रेस दफ्तर तिलक हाल पर कब्जा करने की कोशिश की थी। कुछ गोरों तथा उनकी मोटरों पर भी हमले हुए। १० अगस्त को कुछ थानों पर आक्रमण हुए, जनता पर गोली चली और इस प्रकार से हमले सफल न हो सके। सरकार ने कानपुर में शुरू से ही दमन से काम लिया, फिर भी कहीं डाकखानों पर तो कहीं सरकारी इमारतों पर कुछ इक्के-दुक्के हमले जारी रहे। विद्यार्थियों ने डेढ़ महीने तक हड़ताल रखी। कानपुर सेन्ट्रल स्टेशन पर हमला हुआ, जिसके सम्बन्ध में श्री दलपत आदि छात्र नेताओं पर मुकदमा चला और उन्हें सजा हुई।

आगरा—आगरा में भी आन्दोलन बहुत धीमा रहा। विद्यार्थियों तथा जनता ने थानों पर झंडा चढ़ाने के लिए जुलूस निकाले, पर ये जुलूस सफल न हो सके। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि पूर्वी जिलों के लोगों ने क्रान्ति के लिए जिस तत्परता तथा साहस का परिचय दिया, पश्चिमी जिलों में वैसा कहीं नहीं देखने में आता। सात दिन के अन्दर ही आगरा का सामूहिक आन्दोलन बिल्कुल दब गया। इसके बाद कहीं तार काटे जाते तो कहीं पटरी उखाड़ी जाती। ई० आई० आर० के कुछ स्टेशनों में आग लगा दी गई। बी०बी० एण्ड सी० आई० के दो इंजन तोड़ डाले गए। इनकम टैक्स आफिस पर भी हमला हुआ। जो कुछ काम हुआ उसे विद्यार्थियों ने तथा जनता के लोगों ने किया। कांग्रेस के नेता तो बिना कार्यक्रम दिए ही गिरफ्तार हो चुके थे। कुछ थानों में जनता आग लगाने में सफल रही। बाद को आगरा षड्यन्त्र मामला चला, जिसके नेता सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्री श्रीराम शर्मा करार दिए गए। इनके नेतृत्व में कुछ उच्च शिक्षित नवयुवकों ने अच्छा काम किया था। यह मुकदमा सफल नहीं हुआ और सरकार को सब अभियुक्तों को छोड़ देना पड़ा। पर छूटे हुए लोग करीब-करीब सभी नजरबन्द कर लिए गए। चन्दौला स्टेशन पर जो आक्रमण हुआ था, उसमें पाँच शहीद हुए और ३४ घायल हुए।

मथुरा, वृन्दावन, अलीगढ़, बिजनौर—संयुक्तप्रान्त के शेष जिलों के अलग अलग इतिहास देने की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ विशेष घटनाओं का वर्णन किया जाता है। सभी जगह नेताओं की गिरफ्तारी की प्रतिक्रिया में जुलूस निकले और हड़ताल हुई। अक्सर जगह-जगह तार काटे गए। रेल की पटरियाँ भी उखाड़ी गईं। मथुरा के परखम स्टेशन के पास एक इंजन को गिरा दिया गया। वृन्दावन में जुलूस पर गोली चलाई गई, जिसमें कई मरे और घायल हुए। अलीगढ़ के अतरौली में एक जगह गिरफ्तारी हो रही थी, तो साथ-ही-साथ पुलिस वाले गिरफ्तार व्यक्ति को गाली देते जाते थे। इस पर गिरफ्तार व्यक्ति के भाई को क्रोध आया और उसने उठाकर पुलिसवालों को बांस मारा। इस पर वह फौरन गोली से मार दिया गया। दूसरे एक भाई को भी गोली मारी गई, वह मरा नहीं घायल हो गया। गोली चलाने के बाद मरे हुए व्यक्ति की लाश पुलिस अपने साथ लेती गई। हरदुआगंज का डाकखाना जलाया गया। रेल की लाइन भी उखाड़ी गई, और एक जगह एक पुल करीब-करीब तोड़ दिया गया। बिजनौर में १६ अगस्त को नूरपुर थाने की देहाती जनता ने कुछ तोड़-फोड़ के कार्य किए, रतनगढ़ का डाकखाना तोड़ डाला। इस जुलूस पर बाद को लाठी चार्ज हुआ और एक व्यक्ति शहीद हो गया। इसी प्रकार बिजनौर में अन्य तोड़-फोड़ के कार्य हुए। ६ व्यक्ति पुलिस की गोली से शहीद हुए। बिजनौर शहर में कोई खास बात नहीं हुई। बल्कि इस जिले में धामपुर में आन्दोलन तेजी पर रहा। यहाँ सरकारी इमारतों, तहसील और थानों पर तिरंगा फहराया गया। गढ़वाल में नेताओं की गिरफ्तारी के प्रतिवाद में जुलूस निकला, उसकी विशेषता यह थी कि सरकारी कर्मचारियों के लड़के जुलूस में शामिल थे। जो छात्र जुलूस का नेतृत्व कर रहा था, वह किसी रायबहादुर का लड़का था। इन्हीं कारणों से इस जुलूस पर गोली चलाना तय करके भी इस कारण बन्द करना पड़ा कि कहीं इसके फलस्वरूप सरकारी कर्मचारी भी सरकार के विरुद्ध न हो जाएँ। इस जुलूस ने अदालत पर झंडा फहराया।

लखनऊ—संयुक्तप्रान्त की राजधानी की दृष्टि से लखनऊ बहुत पीछे रहा, फिर भी जुलूस हड़ताल आदि के अतिरिक्त यहाँ के आन्दोलन की विशेषता यह रही कि यहाँ कई गैरकानूनी पर्चे निकलते रहे। फ्री इंडिया, आजादी, गदर,

जन्मभूमि आदि कई पत्र निकलते रहे। शिवकुमार द्विवेदी, मुनीश आदि के प्रबन्ध से ये पर्चे निकले। श्री द्विवेदी ने इधर सबसे अच्छा काम किया। कहा जाता है कि उन्हीं की देख-रेख में आलमबाग पर हमला हुआ था तथा इधर जो भी तोड़-फोड़ के कार्य हुए, उनमें द्विवेदी परिवार का हाथ रहा। पं० नेहरू ने छूटकर इस परिवार को अभिनन्दित किया था। श्री शिवकुमार द्विवेदी अन्त तक पुलिस की गिरफ्त में नहीं आए। लखनऊ में कुछ डाकखानों के अलावा ए० आ० पी० सेन्टर्स में आग लगा दी गई। यहाँ के विश्वविद्यालय के छात्र हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों की तरह तो नहीं साबित हुए, पर तोड़-फोड़ में उनका हाथ रहा। कान्यकुब्ज स्कूल के लड़के तथा महिला विद्यालय की लड़कियों ने विशेष कार्य किए। यद्यपि यहाँ सरकार किसी समय बेकार न की जा सकी, फिर भी बराबर इक्के-दुक्के कार्य जारी रहे, और पुलिस को कुछ पता नहीं लगा।

गढ़वाल—गढ़वाल में समानान्तर सरकार के संगठन की चेष्टा भी की गई और स्वराज्य अदालतें भी खोली गईं। एक सेना का संगठन भी किया गया, जिसमें मुख्यतः बालक थे। इस सेना के लोग जनता को सही खबर देते थे और यह कोशिश करते थे कि जनता घबराए नहीं। इस जिले के लोग स्वभावतः सैनिक प्रवृत्ति के होते हैं, इस कारण यहाँ के लोगों को आसानी से दबाया नहीं जा सका और फौज की सहायता लेनी पड़ी। फरार कांग्रेसियों के घरवालों पर खूब अत्याचार किया गया।

अलमोड़ा—अलमोड़ा जिले में पं० मदनमोहन उपाध्याय तथा अन्य क्रान्तिकारी मनोवृत्ति के नेताओं के कारण आन्दोलन अपेक्षाकृत संगठित ढंग से चला। उपाध्याय जी एक बार ११ अगस्त को गिरफ्तार भी हुए पर वह निकल भागे। बाद को सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के लिए २ हजार रुपए इनाम की घोषणा की और अन्य विशेष तरीके भी अपनाए, पर वह गिरफ्तार न हो सके। देहाती जनता सरकारी अफसरों से बिल्कुल असहयोग कर रही थी। सरकारी आदमियों को कहीं खाना तक नहीं मिलता था। कहते हैं, इस असहयोग का असर यह हुआ कि एक पुलिस के सिपाही ने यह कहकर इस्तीफा दे दिया कि मुझे खाना नहीं मिलता मैं काम क्या करूँ, इस पर उस सिपाही को एक साल की कड़ी सजा दी गई। ११ अगस्त को छात्रों के जुलूस के हाथ से स्वयं कलेक्टर ने राष्ट्रीय झंडा

लेकर फाड़ डाला। इस पर उसे किसी ने एक ढेला मारा। शहर में फिर ४४ हो गया। देघार में पुलिस वाले एक मकान में छिपकर एक सभा की कार्यवाही सुनते रहे, फिर बाद को उन्होंने वहीं से भीड़ पर गोली चला दी। इस जिले में गोरी फौज अत्याचार के लिए यत्र-तत्र भेजी गई। सरयूतीर के वगेश्वर में कई महीनों तक ब्रिटिश सरकार का अस्तित्व ही नहीं रहा। इस जिले की एक विशेषता जंगल सत्याग्रह था। सलन और सल्ट में सफलता-पूर्वक टैक्सबन्दी की गई।

अन्य जिलों में आन्दोलन—मुरादाबाद, एटा, बरेली, बाँसबरेली, मेरठ, सहारनपुर, देहरादून, बुलन्दशहर, मैनपुरी आदि स्थानों में वही जुलूस निकालना, हड़ताल करना, मामूली तोड़-फोड़ तक कार्य सीमित रहा। इनमें से कई स्थानों में देहातों में हफ्तों ब्रिटिश राज्य खत्म-सा हो गया, पर ढंग का कार्यक्रम न होने के कारण कहीं भी आन्दोलन कुछ विशेष उच्चता तक नहीं पहुँच सका। कहीं-कहीं तो आन्दोलन बिल्कुल ही नहीं के बराबर रहा, जैसे सुलतानपुर। यहाँ केवल ७०० रुपए सामूहिक जुर्माने में वसूल किए गए। सम्भव है इन जिलों की कोई घटना छूट गई हो, पर ये घटनाएँ उसी प्रकार की थीं।

शहीद राजनारायण का बयान—संयुक्तप्रान्त की क्रान्ति का विवरण श्री राजनारायण मिश्र के उल्लेख के वगैर पूरा नहीं हो सकता। इनको खीरी लखीमपुर के तहसील भीखमपुर के एक गुप्त दल के नेतृत्व का सौभाग्य प्राप्त था। इस दल ने वहाँ के जिलेदार को जान से मार डाला। इनका सक्षिप्त जीवन यों है—श्री राजनारायण मिश्र लखीमपुर के श्री बलदेव मिश्र के पुत्र थे। ये जन्मजात क्रान्तिकारी थे। फाँसी की रस्सी उनके जीवन से बचपन में ही जुड़ गई थी। जब यह २ साल के थे, इनको तभी इनकी माँ तुलसी देवी ने असहाय छोड़कर फाँसी लगाकर अपनी जान दे दी थी। इस वीर बालक के पालन-पोषण का भार इनकी बहिन रमादेवी पर पड़ा। इनकी रुचि बचपन से ही मारपीट की तरफ थी। भाइयों ने इनकी बालसुलभ उद्दंडता को रोकने के साथ ही इन्हें सदा हिम्मत दिलाई, आखिर वे हिम्मत क्यों न दिलाते, उन्हें तो राजनारायण को शेर जो बनाना था। बालक राजनारायण की निडरता और स्वतन्त्रता-प्रियता बचपन से ही झलकती थी। इनके हृदय पर भगतसिंह की

फाँसी सदा के लिए अपनी अमिट छाप छोड़ गई। यद्यपि इनकी उम्र अभी अधिक नहीं थी, फिर भी इन्होंने आत्म-बलिदान की भावना को अपने मन में स्थान दिया। भगतसिंह की वीरगाथा को सुनकर भगतसिंह बनने के लिए इनका हृदय मचल पड़ा।

छात्र-जीवन में ही राजनीति—१९३० के असहयोग की आँधी उठी और इस आँधी के झकोरों से भीखमपुर गाँव अछूता न रह सका। इन्होंने राष्ट्रीय पताका को लेकर कदम आगे बढ़ाया। इस दुःसाहस के फलस्वरूप मास्टरों ने इन्हें बेतों की सजा दी। गाँव की पाठशाला से निकलकर यह सिकन्दराबाद मिडिल स्कूल में दाखिल हुए। अपने उग्र तथा क्रान्तिकारी स्वभाव के कारण इन्हें इस पाठशाला से भी हटना पड़ा। अध्यापक यह चाहते थे कि यह सरकार की प्रशंसा से भरे हुए गाने गाएँ, पर उस वीर को सिर्फ भगतसिंह का ही तराना याद था, इस कारण इस पाठशाला को भी छोड़ना पड़ा। इनके राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ सीतापुर के युक्तप्रान्तीय नवयुवक संघ के अधिवेशन से होता है। इस अधिवेशन में आप स्वयंसेवक की हैसियत से गए हुए थे। यह इनके जीवन का पहला मौका था जब यह प्रान्त के अन्य नवयुवकों के सम्पर्क में आए। वहाँ से वापस लौटने पर इन्होंने इस बात की कोशिश की कि नवयुवक संघ स्थापित किया जाय। आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिए इन्होंने अपनी साइकिल बेच दी। नवयुवक संघ इनके नेतृत्व में स्थापित हुआ। इस संघ का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकना था। उधर छात्र-जीवन सुचारु रूप से चल न सका क्योंकि एक धनी लड़के से इनकी लड़ाई हो गई। इस पाठशाला से निकाले जाने पर इन्होंने अपना नाम क्षत्रिय स्कूल में लिखवाया, और ८ वीं श्रेणी वहीं से पास की।

एक साल की सजा—अब तक राजनारायण जी को देश की राजनीतिक परिस्थिति का काफी ज्ञान हो चुका था। इनका स्वाभाविक झुकाव क्रान्ति की ओर था। इनके बड़े भाई पंडित बाबूराम मिश्र अपने जिले के प्रमुख नेता थे। इन्हें ३८ साल की सजा हुई थी। राजनारायण जी को भी जेल यात्रा करनी पड़ी। इनको राजद्रोहात्मक भाषण देने पर सजा हुई थी। इनके जेल जाते ही इनके गांव पर पुलिस वालों ने हमला किया। प्रायः सभी घरों की तलाशी

ली गई क्योंकि राजनारायण पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने उन्नाव के इन्स्पेक्टर का रिवाल्वर उठाया है। राजनारायण पर यह झूठा आरोप था। वह पुलिस के चंगुल में न आ सके और १ वर्ष की सजा काटकर लौटे। इसी समय घर पर इनके पिता जी का देहान्त हुआ।

पिता जी की अन्तिम क्रिया से अवकाश पाए कुछ दिन भी नहीं हुए कि १९४२ का अगस्त विद्रोह छिड़ा। इस विद्रोह की चिनगारी यहाँ भी आई। राजनारायण जी इस विद्रोह को अपने गाँव में सफल बनाना चाहते थे। इनके नेतृत्व में सैकड़ों नवयुवक थे। इन्होंने अपने व्याख्यान के द्वारा नवयुवकों में जोश भर दिया। ३०० के करीब नवयुवकों की एक टोली कायम की गई। इसके नेतृत्व का भार राजनारायण जी ने खुद अपने हाथों में लिया। यह वीर नवयुवक यह प्रतिज्ञा कर चुका था कि अन्य जिलों की भाँति वह भी अपने जिले पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करेगा। इसी उद्देश्य से उन्होंने गाँव के बाहर मार्च किया।

जिलेदार की हत्या—राजनारायण जी सबसे पहले अपने दल को शक्तिशाली बनाना चाहते थे। अतएव इन्होंने जमींदारों तथा अंग्रेजों के खैरख्वाहों की बन्दूकें छीनने तथा तहसील पर कब्जा करने का निश्चय किया। बात-की-बात में इन लोगों ने पास-पड़ौस की सारी बन्दूकें छीन लीं, और जिलेदार की अन्तिम बन्दूक लेने के लिए आगे बढ़े। जिलेदार ने इन लोगों को देखते ही अपनी बन्दूक सीधी की। इसी समय गोली की आवाज आई, और जिलेदार मारे गए। इसके तीन दिन बाद गोरी पल्टन की सहायता से पुलिस ने गाँव पर हमला बोल दिया। दमनचक्र जोरों से चला, और सैकड़ों आदमी तबाह हो गए। सरकार ने कोई अत्याचार उठा नहीं छोड़ा था।

फांसी—राजनारायण का दल तितर-बितर हो गया, वह फरार हो गए। इन्होंने इस दशा में देश के प्रमुख स्थानों का भ्रमण भी किया था। इसी हालत में वह नाम बदलकर आन्दोलन के फलस्वरूप दो बार जेल भी काट चुके थे। जेल से रिहा होने के बाद इनको आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। इनके सभी पुराने साथी जेल में थे। अन्त में लखनऊ में श्यामवीर जी से इनकी भेंट हुई और इन्होंने अपना असली परिचय भी मित्रता के कारण बता दिया। यह पुलिस के चंगुल में फँस गए। दो मास के अन्दर ही इनके भाग्य का फैसला हो

गया। मुकदमे की पैरवी भी धनाभाव के कारण ठीक से न हो सकी। २२ जून को फाँसी की सजा सुना दी गई।

अन्तिम सन्देश—९ दिसम्बर को अपनी पत्नी तथा बच्चों से सदा के लिए विदा होते हुए अमर शहीद राजनारायण मिश्र ने कहा था—'हम देश के लिए मर रहे हैं, फिर पैदा होंगे और फिर मरेंगे।" २४ वर्ष की भरी हुई मचलती जवानी में ही यह वीर माँ के बन्धनों को तोड़ने के पूर्व ही अपना बन्धन तोड़ गया। इनका यह बलिदान अनुपम था। राजनारायण जी हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गए। फाँसी पर झूलने के पूर्व इनके चेहरे पर एक दिव्य प्रभा भासित हो रही थी। इनका वजन भी बढ़ गया था। फाँसी के पूर्व इन्होंने क्रान्तिकारी नारे दिए, 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' उनका आखिरी नारा था।

शहीद को अपने त्याग के सम्बन्ध में सन्देह—अन्त में मैं पाठकों को यह स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि फाँसी की प्रतीक्षा करते हुए श्री मिश्र ने फाँसीघर से अन्तिम पत्र लिखते हुए यह भय जाहिर किया था कि कहीं उनके त्याग का दुरुपयोग न हो। उन्होंने यह कहा था कि इसे रोकना चाहिए। उनका पत्र यों था—

डिस्ट्रिक्ट जेल, लखनऊ
फाँसीघर

श्री मान्यवर भाईजी

प्रणाम,

...सगदरपुर को पत्र डाला था जप करान के लिए, अभी तक कोई उत्तर नहीं दिया है। हमें तो जप में कोई विश्वास नहीं है, पर आपकी आज्ञा हमें शिरोधार्य है।

.. हमारे बलिदान का लाभ सुधारवादी या कांग्रेस में मध्यम वर्ग वाले नहीं उठा सकते, क्योंकि मैं अपने को वर्गहीन समाज-सेवक मानता हूँ। वर्गहीन समाज का समाजवाद कायम करूँगा, मध्यम वर्ग तथा सुधारवादी सभी को मिटानें का हमारा ध्येय है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि चन्द सुधारवादी धनिक लोग हमारे बलिदान का लाभ उठाएँ। हमारे परिवार वाले लाभ न उठाकर चन्द मध्यम वर्ग के लोग उठाएँ। हमारा बलिदान तो गरीब वर्ग के ऊपर है। मध्यम वर्ग,

धनिक वर्ग का विनाश समाजवादी क्रान्ति में किया जाएगा। समाजवादी समाज, वर्गविहीन व्यवस्था स्थापित की जाएगी, जहाँ न धनी रहेंगे न गरीब, हालांकि हमारे केस की पैरवी कुँवर खुशवक्त राय ने की है। लेकिन हमने उन्हें कई बार साफ करके लिखा है। उन्होंने अपने पास से एक पैसा खर्च नहीं किया है गरीब किसानों से लिया है, यह और भी अच्छा हुआ। मेरा परिवार आप ही हैं, आप ही हमारे बलिदान का लाभ उठाएँ। परिवार को विकसित करें, जनता को समझाएँ किस कारण हमारा बलिदान हुआ है। आशा है स्पष्ट हो जाएगा, हम तो आप से यही आशा करते हैं। हमारे बलिदान के बाद हमारे बलिदान का सही प्रयोग करेंगे, जिस कार्य के लिए हुआ उस कार्य में वृद्धि होगी, भारत को भी लिखा है, अपने परिवार के सभी साथियों से नमस्कार कहना।

आपका छोटा भाई
राजनारायण मिश्र
ता० २३-११-४४

द:
Superintendent Dist.
Jail, Lucknow

यह पत्र इनके भाई श्री ललना डामिल के नाम लिखा गया था, जो उस समय फतेहगढ़ जेल में राजबंदी थे। १९४५ के एक शहीद का यह संदेह बहुत ही हृदयद्रावक है। आखिर फांसी चढ़ने के पहले इस शहीद शिरोमणि को यह शंका क्यों हुई थी? यह स्पष्ट है कि फांसीघर में बंद इस भावी शहीद को प्रतिक्रान्ति अपने भयंकर जबड़ों को खोले हुए दिखाई पड़ी। शहीद को प्रतिक्रान्ति अपने भयंकर जबड़े खोले हुए दिखाई पड़ी। शहीद ने अपने अनुभूतिशील हृदय से यह अनुभव किया कि मौजूदा परिस्थिति में उनके तथा दूसरे शहीदों के त्यागों के दुरुपयोग की सम्भावना है।

३२

आसाम क्रान्ति की गिरफ्त में

नेताओं की गिरफ्तारी से तैश—बम्बई में नेताओं की गिरफ्तारी के साथ-ही-साथ आसाम कांग्रेस के प्रमुख नेता फखरुद्दीन अली अहमद, तयबुल्ला, विष्णु राम मेधी, डी० शर्मा आदि आसामी नेता गिरफ्तार कर लिए गए। आसाम के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री गोपीनाथ बरदोलोई, डी० शर्मा आदि जो नेता बम्बई गए हुए थे, वे भी धुबड़ी में उतरते ही गिरफ्तार कर लिए गए। आसाम की जनता तथा सरकार दोनों एक-दूसरे पर टूट पड़ने के लिए पहले ही से तैयार थे। जापानी आक्रमण की बातें आसामियों के लिए कोई दूर की चीज नहीं, बल्कि एक बहुत ही पास की चीज थीं। जापान के हाथों में अंग्रेजों की हार-पर-हार के कारण जनता में ब्रिटिश सरकार की साख बिलकुल खत्म हो गई थी। फिर लाखों की तादाद में आसाम में जो ब्रिटिश फौज पड़ी थी, उसके अत्याचारों के कारण ब्रिटिश शासन के प्रति जनता की रही-सही रुचि भी जाती रही थी। फौज के लोग जबरदस्ती गाँवों के भेड़, बकरों, मुर्गियों तथा फल-फलेरी उठा ले जाते, नाममात्र का दाम देते थे, या कुछ भी नहीं देते थे। हवाई अड्डों के लिए बात-की-बात में गांवों को ढहा देते तथा गांव वालों की बहू-बेटियों पर अत्याचार करते। इसलिए जब 'करो या मरो' का सन्देश पहुँचा तो आसामियों ने बड़े जोरों से उसे अपनाया।

शान्तिपूर्ण आन्दोलन—आसाम में आन्दोलन ने फौरन ही तोड़-फोड़ का रूप धारण नहीं किया। पहले लोग जुलूस आदि निकालते रहे, पर बाद को जब सरकार ने शान्तिपूर्ण प्रदर्शनों को भी दबाना चाहा, तभी आन्दोलन ने क्रान्तिकारी रूप धारण किया। यहाँ हड़ताल इतनी व्यापक रही कि सब शिक्षा संस्थाएँ बंद हो गईं। मजे की बात है कि शुरू में आसाम में कहीं भी कोई तोड़-फोड़ का कार्य नहीं हुआ। १५ अगस्त को ग्वालपाड़ा के छात्रों ने एक जुलूस निकाला। यह जुलूस क्रान्तिकारी नारे दे रहा था। इस पर पहले लाठी

चार्ज किया गया, तिस पर भी जब जुलूस तितर-बितर नहीं किया जा सका तब उस पर संगीन से हमला कर दिया गया। ६ व्यक्ति बहुत बुरी तरह घायल हुए। बाद में चार व्यक्तियों को लम्बी सजाएँ दी गई।

गोपुर का जुलुस—२० सितम्बर १६४२ को दारांग जिला के गोपुर थाने की घटना ली जाय। इस जुलूस में ५ हजार के करीब देहाती जनता थी। इस जुलूस का उद्देश्य थाने पर झण्डा लगाना था। थाने के सामने एक पोखरा पड़ता था, इसलिए पोखरे के सामने आकर जुलूस दो हिस्सों में बँट गया और लोग दो तरफ से थाने में पहुँचने लगे। कनकलता बरुआ नाम की एक चौदह वर्ष की लड़की जुलूस के आगे-आगे थी। जब जुलूस बिल्कुल थाने के सामने पहुँचा तो कनकलता ने पुलिस वालों से यह कहा कि वे अपने ही भाई हैं, उन्हें चाहिए कि विदेशी शासन की नौकरी से अलग हो जाएँ। यह कह कर वह थाने के फाटक की तरफ बढ़ी। इस पर पुलिस वालों ने कनकलता से कहा कि भीतर मत आओ। कनकलता बोली कि थाने तो जनता की सम्पत्ति हैं, यदि जो लोग उनकी रक्षा के लिए नियुक्त हैं, वे अपने को जनता का सेवक समझ कर कार्य नहीं करते, तो जनता को यह अधिकार है कि वह अपनी सम्पत्ति पर अधिकार जमा ले और अनधिकारियों को वहाँ से खदेड़ दे।

कनकलता शहीद हुई—थानेदार एक बच्ची के मुँह से ऐसी बातें सुनने के लिए तैयार नहीं था। उसने कनकलता तथा जुलूस वालों को थाने के हाते से निकल जाने को कहा। कनकलता एक क्षण भी नहीं हिचकिचाई और आगे बढ़ी। थानेदार ने फौरन गोली चलाई और वीरांगना कनकलता वहीं पर चिरनिद्रा में सो गई।

झण्डा चढ़ कर रहा—थाने वालों ने इसके बाद भीड़ पर भी गोली चलाई और श्री मुकुन्द काबता नामक एक नौजवान, जिसने कनकलता के हाथ से झंडा ले लिया था, पुलिस की गोलियों का शिकार हो गया। अन्य लोगों को भी गोलियाँ लगीं। इधर जब पुलिस गोली चलाने में लगी हुई थी तो कुछ क्रान्तिकारी थाने पर चढ़ गए, और थाने की छत पर तिरंगा फहरा दिया। इस हत्याकाण्ड में ६० के करीब आदमी मरे। पुलिस तो यही कहती रही कि केवल ६ व्यक्ति मरे।

ढोकाईजुली हत्याकाण्ड—इसी दिन तेजपुर से १६ मील दूर पर ढोकाई-जुली में भी इतिहास निर्माण हो रहा था। इस इलाके में पहाड़ी तथा चाय बगान के कुलियों की संख्या अधिक थी। यहाँ भी जनता ने थाने पर झण्डा फहराने की कोशिश की। जुलूस वालों ने शान्तिपूर्ण तरीकों से थानेवालों से कहा कि हमें झण्डा फहरा लेने दीजिए। थाने वाले राजी नहीं हुए और अंधा-धुन्ध गोली चलाने लगे। इस गोलीकाण्ड में २० व्यक्ति शहीद हुए, जिनमें फुलेश्वरी नाम की एक १२ साल की लड़की भी थी। यहाँ भी झण्डा फहरा दिया गया। यह इलाका विशेषकर उन लोगों का था जो आदिवासी करके अभिहित किए जाते हैं। भला सरकार इस बात को कब बरदाश्त कर सकती थी कि इन लोगों में इस प्रकार जोश फैले? इसलिए इस घटना के बाद ही फौज आई और जनता पर उसने मनमाना अत्याचार किया और अत्याचारों के अलावा स्त्रियों पर बलात्कार भी हुआ। किराए के गुंडे भी जनता के विरुद्ध इस्तेमाल किए गए। पास ही एक मेला लगा हुआ था। फौजियों ने यह समझा कि ये लोग भी कुछ प्रदर्शन कर रहे हैं, उनपर अंधाधुन्ध गोली चलाई। १६ व्यक्ति मारे गए और १०० से अधिक बुरी तरह घायल हुए। जो लोग मारे गए उनमें से ६ स्त्रियाँ भी थीं, जिनमें से एक गर्भवती थी। अधिकारी वर्ग निहत्थी भीड़ पर गोली चलाकर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। बाद को इन फौजियों में से एक व्यक्ति टहलता हुआ अस्पताल पहुँचा। वहां पर उसने एक व्यक्ति को बहुत घायल अवस्था में पड़ा हुआ पाया, तो उसने समझा कि यह आज के झगड़े में घायल हुआ है। बस, उसने फौरन उसके सीने पर रिवाल्वर तान दिया और गोली भी चला दी होती, पर खैरियत यह हुई कि डॉक्टर वहीं पर मौजूद थे, और उन्होंने फौजी से कह दिया कि यह उस झगड़े का घायल नहीं है।

तेजपुर में गोलीकाण्ड—जब इन गोली काण्डों की खबर तेजपुर में पहुँची तो इसके विरुद्ध आवाज उठाने के लिए एक सभा बुलाई गई। देहाती जनता इस सभा में भाग न ले सके इस उद्देश्य से शहर आने-जाने वाली सब सड़कों पर सशस्त्र पहरा बैठा दिया गया। फिर भी कुछ लोग आ ही गए। पर अधि-कारी तो तुल चुके थे। वे चाहते थे कि यदि तेजपुर में जनता को दबा दिया

जाय तो आसाम के इस इलाके में शान्ति रहे। जनता से कहा गया कि सभा न करे, पर जनता ने इस नादिरशाही हुक्म को मानने से इनकार किया। बस अंधाधुन्ध गोली चलाई जाने लगी और उसमें करीब १०० आदमी बुरी तरह घायल हुए।

दारोगा जी ने नाम कमाया—यह हत्याकाण्ड कोई आकस्मिक नहीं था, सरकार की नीति ही यह थी कि इस इलाके में लोगों को कुचल दिया जाय। पारचारकूची थाने के जोलाछोट ग्राम में कांग्रेसियों की एक सभा हुई थी। शायद पुलिसवालों को ठीक समय का पता नहीं लगा। इस कारण वे सभा के समय नहीं पहुँच सके। पर दारोगा जी को तो अपनी नामवरी करनी थी और यह दिखाना था कि वह लड़खड़ाते हुए साम्राज्यवाद को बचाने के लिए हर तरह की चेष्टा कर रहे हैं। इसलिए वह आगे बढ़ कर रास्ते में खड़े रहे और सभा से लौटे हुए कुछ लोग आपस में बातचीत करते हुए चले जा रहे थे, उनसे बोले कि इस तरह क्यों चल रहे हो, फौरन तितर-बितर हो जाओ। इस पर लोगों ने कहा कि हम तो अपने-अपने घर जा रहे हैं। इस पर दारोगा जी ने कहा कि घर जा रहे हो तो अलग-अलग जाओ, पर जनता ने इस अपमान-जनक हुक्म को मानने से इनकार किया। बस, दारोगा जी ने फौरन गोली चलाई, और बजाली हाईस्कूल की चौथी श्रेणी के छात्र मदनचन्द्र बर्मन तथा सदारी गाँव के रामतरन दास पुलिस की गोलियों से मारे गए। दारोगा जी को इतने ही से खुशी नहीं हुई। वह लपककर एक दूसरी सड़क पर पहुँचे, जहाँ लोग सभा से लौट रहे थे। दारोगा जी ने इनपर भी गोली चलवा दी। दारोगा जी का मतलब कदाचित यह था कि सभा हो गई, पर लोग उसके जहरीले असर को अपने साथ लेकर न जाएं। इसी कारण उन्होंने यह गोलियाँ चलाईं। एक दारोगा ने इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य को बचाना चाहा। पता नहीं वह अब कहाँ हैं।

घर से निकालकर मारा—१९४२ की क्रान्ति में जनता ने ही नये तरीके का इस्तेमाल किया, ऐसी बात नहीं। हम देख चुके कि पारचारकूची के थानेदार ने सभा से लौटकर घर जाते हुए लोगों पर गोली चलाने का नया तरीका इस्तेमाल किया। छोटिया तथा बेहला थानों के थानेदारों ने भी नया तरीका

इस्तेमाल किया। २० सितम्बर को जनता ने इन थानों पर झण्डा फहरा दिया उस समय तो दारोगा ने कुछ नहीं कहा, पर बाद को वे पुलिस लेकर इस झण्डा समारोह के अगुओं के घर पर पहुँचे, और उन्हें घर से निकाल-निकालकर मारा-पीटा, घर वालों पर अत्याचार किया, छाती पर रेंगवाया, और जो भी उपाय समझ में आए उनसे उनको सताया।

शान्ति सेना के शहीद—नवगाँव जिले में क्रान्ति की ज्वाला बहुत प्रबल रूप से भड़की। यहाँ की जनता ने शान्ति सेना बना रखी थी और लोग तुरही बजाने पर इकट्ठा हो जाया करते थे। सरकार इस बात को जनती थी पर कुछ कर नहीं पाती थी। एक दिन सरकारी छापेमार फौज चुपके से बेकजिया गाँव पर पहुँची, वहाँ शान्ति सेना का एक सैनिक पहरे पर था। उसने सरकारी फौज को देखा तो तुरन्त तुरही उठा लिया और फूँक मारने की तैयारी की। फौजी कमांडर ने तमंचा तान दिया और कहा—'फूँका कि मारे गए", पर उस सैनिक ने, जिसका नाम तिलक डेकाह था फौरन तुरही बजा दी। साथ-साथ गोली भी चली और उसकी लाश वहीं पर गिर गई। फौरन जनता इकट्ठी हो गई और उसने फौज को घेर लिया, पर फौजियों ने गोली चलाना जारी रखा और जनता अपने वीर की मृतदेह को लेकर तितर-बितर हो जाने को बाध्य हुई। कई आदमी घायल हो गए, बाद को लाश ले जाने के अपराध में इस गांव के ३०० आदमी गिरफ्तार हुए। इन गिरफ्तार व्यक्तियों पर हर तरीके का अत्याचार किया गया। शान्ति सेना के दफ्तर में आग लगा दी गई और जब एक शान्ति सैनिक ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई तो उसे पकड़ कर उसी आग में झोंक दिया गया।

पुल पर काल्पनिक हमले से रक्षा—इस गांव पर बराबर अत्याचार हुए। २० अगस्त को ही गाँव के पास एक पुल के नीचे फौज छिपी हुई थी। मुखबिर ने शायद यह खबर दी थी कि गाँव वाले पुल को उड़ाने वाले हैं। जब उस तरफ से कुछ निरीह गाँव वाले शौच आदि के लिए निकले, तो उन पर फौजियों ने अंधाधुन्ध गोली चला दी। कई व्यक्ति वहीं पर घायल होकर गिर पड़े। इस प्रकार साम्राज्यवाद का पुल बचाया गया था।

झंडा नहीं उतरा—रोहा हाई स्कूल की इमारत पर राष्ट्रीय झंडा लहरा रहा था। छात्र बहुत दिनों से नहीं आते थे। वहां पर सिर्फ शिक्षक डटे हुए

थे। एक दिन एक गोरा सिपाही उधर से जा रहा था, झंडा देखकर चौंक पड़ा और वहीं पर खड़े होकर उसने शिक्षकों को हुक्म दिया कि उस झंडे को उतार लो। शिक्षकों ने इससे इनकार किया। बस वह गोरा आगबबूला हो गया और उसने शिक्षकों पर मार-पीट करना शुरू किया। शिक्षक मारे गए पर झंडा नहीं उतरा।

झंडे के लिए बुढ़िया पर गोली—नवगांव जिले के बहरमपुर नामक स्थान में कांग्रेस की एक सभा होने वाली थी। इस उपलक्ष में गाँववाले झंडा ले लेकर आए हुए थे। पुलिस और फौज को भी खबर लग गई और वहाँ स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी इकट्ठे हुए। फौजी तथा सिपाही भी आ गए। रत्नमाला नाम की एक बच्ची के हाथ में एक झंडा था। पुलिस वालों ने जो जनता के हाथ से झंडा छीनना शुरू किया तो रत्नमाला का झंडा भी छीन लिया, और झंडा छीनकर उसे एक धक्का भी दे दिया, जिससे वह गिर पड़ी। उस लड़की की दादी भोगेश्वरी, फुफू, नानी वहीं पर मौजूद थीं। दादी ने जो इस झंडे का अपमान देखा और पोती को गिरते देखा, तो उसने झंडे को छीन लिया और उसके डंडे से उस गोरे सार्जेन्ट पर हमला कर दिया। बस, इस पर उस बुढ़िया को गोली मार दी गई और वह झंडा हाथ में लेकर शहीद हो गई।

शहीदों की टोली—इस पर जनता ने जोर का जयकारा किया और झंडे की मर्यादा के लिए दौड़ पड़ी। पुलिस ने फौरन गोली चलाई। इस अवसर पर लक्ष्मीराम हजारिका और थानूराम सूत तथा बालूराम सूत दो भाई मारे गए। लक्ष्मीराम हजारिका मरते समय अपनी जेब से ६ पैसे निकालकर जनता को देश के नाम देते गए। इस वीर के दिए हुए ये पैसे राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में रखे हुए हैं। जिस समय लक्ष्मीराम की पत्नी को अपने पति की मृत्यु की बात मालूम हुई तो उसने बड़ी खुशी प्रकट की कि देश के काम में उसका पति शहीद हुआ। यद्यपि पुलिस ने इस अवसर पर अंधाधुन्ध गोली चलाई, पर शहीदों की लाशों को नहीं पा सकी। जनता रात-भर उनको अगोरे बैठी रही और जब सवेरे फौजी तथा पुलिस वाले अपना कर्तव्य करके चले गए, तो जनता ने उनका जुलूस निकाला।

कामरूप में आन्दोलन—कामरूप जिले में आन्दोलन पहले शान्तिपूर्ण जुलूसों

और सभाओं तक सीमित रहा, पर जब सरकार ने दमन किया और व्यर्थ में लोगों की हत्या की, तब आन्दोलन ने क्रान्तिकारी रूप ग्रहण किया। २६ अगस्त को जनता ने इस जिले के सोरभग नामक हवाई अड्डे पर धावा बोल दिया, और वहाँ जो कुछ भी मिला उसमें आग लगा दी। ३ सामरिक लारियों में भी आग लगा दी गई। जनता ने यह केवल सामूहिक जोश में नहीं किया था, यह इस बात से प्रमाणित है कि ऐसा करते समय जनता ने पहले से वहाँ आने के सब रास्तों को काट दिया था तथा नदी पार करने की नावों को जला या छिपा दिया था। इस कारण जब महकमा अफसर को इस अग्निकांड की बात ज्ञात हुई तो वह आग बुझाने तथा जनता को सजा देने के उद्देश्य से चल पड़े, पर वह पहुँच न सके। सरकार को लाखों का नुकसान हुआ। इस तोड़-फोड़ में स्त्रियों का भी हाथ था। आसाम की वीर महिलाओं ने बराबर आन्दोलन में पुरुषों का हाथ बँटाया। इस हवाई अड्डे के अतिरिक्त अन्य अनेक सरकारी इमारतों में आग लगा दी गई थी।

८ रुपए के लिए संगीन से छेदा गया—ग्वालपाड़ा जिले में आन्दोलन का कोई बहुत अधिक जोर नहीं रहा। फिर भी यहाँ सरकार को कई दिन तक बेकार कर दिया गया था। यहाँ भी तोड़-फोड़ के कुछ कार्य हुए। यहाँ पर निधन नामक एक व्यक्ति से ८ रु० जुर्माना वसूल करने के लिए उसके दो बैल खोल लिए। इस पर निधन ने आपत्ति की तो चौकीदार ने जाकर झूठी रिपोर्ट कर दी कि उस पर भाला चलाया गया। बस इस पर सैनिक लारी आ गई और अंधाधुन्ध गोली चलाई। निधन ने घर बन्द कर लिया था, इसलिए उसे दरवाजा तोड़कर निकाला गया, और संगीनों से कोंचकर मार डाला गया।

स्वतन्त्र राष्ट्र—चारीगाँव, हाथीगढ़, तेवका आदि स्थानों में स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना की गई थी और इस राष्ट्र की तरफ से यह चेष्टा हुई थी कि फौजियों को गाय, भेड़, बकरी, मुर्गी कुछ न मिले। इस पर फौजी गाँवों पर चढ़ आए और उन्होंने मनमाना तरीके से गाँव वालों को पीटा तथा लूटा। तेवका की वीर नारियों ने जब फौजियों को आते देखा तो हाथ में तिरंगा ले लिया और संगीनों की मार के बावजूद तिरंगा लेकर डटी रहीं। आसाम में आन्दोलन का क्रान्तिकारी रूप सितम्बर में शुरू हुआ और जब तक गांधी जी के अनशन वाले पत्र

प्रकाशित न हुए तब तक चलता रहा। चार महीने तक सरकार को समारिक शासन करना पड़ा, फिर भी पुलिस और फौज केवल कुछ केन्द्रों में ही अपना अधिकार कायम रख सकी। देहातों में क्रान्तिकारियों का जोर रहा।

कौशल कोनवर—अब हम आसाम के विवरण को कुछ शहीदों के विवरण से समाप्त करते हैं। कौशल कोनवर अहोम जाति के थे। उन्होंने रेल लाइन के तोड़-फोड़ में हिस्सा लिया था। उन पर मुकदमा चला और फांसी की सजा दी गई और १९४३ के १५ जून को उन्हें फाँसी दे दी गई। उन्होंने फांसी पर चढ़ने के पहले यह कहा था कि "जिस सार्थक लक्ष्य के लिए मुझे फांसी हो रही है, इसका मुझे गौरव है, ईश्वर मुझ पर अधिक कृपा रखते हैं, इसी कारण उन्होंने मुझे इस काम के लिए चुना।" वह 'पार करो दीनानाथ संसार सागर' गाना गाते हुए फांसी पर झूल गए। श्री बरदोलोई उन दिनों उसी जेल में थे और उन्हें किसी तरह इस वीर बन्दी से फांसी के पहले दिन मिलने का अवसर मिला था। इस भेंट का उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। शहीद की बातों से ईश्वर पर विश्वास टपकता था। फाँसी के सम्बन्ध में कौशल कोनवर ने कहा कि यह तो कोई बात नहीं, पैदा होते समय डेढ़ घण्टा कष्ट झेला था, इसमें तो कुछ मिनटों का ही काम है। फाँसी घर में कौशल कोनवर का वजन बढ़ गया था। वह बराबर गीता पढ़ा करते थे। जब सवेरे जल्लाद फाँसी के लिए आए तो पांच मिनट तक प्रार्थना करने के बाद वह उठ खड़े हुए, ऐसे चल दिए जैसे कहीं टहलने जा रहे हों।

कमला मिरी—जो लोग जेल में भेजे गए, उन पर कैसे-कैसे मानसिक तथा शारीरिक अत्याचार किए गए, यह कमला मिरी के जीवन से पता लगता है। उन्हें जेल में ले जाकर माफी मांगने के लिए तरह-तरह का कष्ट दिया गया। पर उन्होंने माफी मांगने से इनकार किया। उन्हें मानसिक कष्ट देना जारी रहा और वह घुलघुल कर जेल में मर गए।

३३

बङ्गाल में अगस्त क्रान्ति

सांगठनिक कमजोरी—बंगाल के आन्दोलन के पहले ही २ हजार नवयुवक नजरबन्द हो चुके थें। फिर बंगाल की कांग्रेस १९४२ में बड़ी विभक्त हालत में थी। सुभाष बाबू को कांग्रेस के पदों से हटा दिए जाने के कारण वहाँ दो कांग्रेस हो गई थीं। कर्यसमिति द्वारा स्वीकृत कांग्रेस बिल्कुल बेकार थी, पर दूसरी कांग्रेस भी फूट के कारण कुछ विशेष सफल नहीं रही। इसके अतिरिक्त इस कांग्रेस के वहुत से लोग गिरफ्तार हो चुके थे। बंगालियों में गांधी जी की विचार-धारा के प्रति कभी श्रद्धा नहीं थी, साथ ही ऐतहासिक कारणों से, जिनका वर्णन हम पीछे कर चुके हैं, आतंकवादी संगठन बिखर गए थे। कम्युनिस्ट पार्टी तो लोक-युद्ध का नारा देकर कांग्रेस के कार्यक्रम से अलग हो ही चुकी थी। इस कारण बंगाल में करो या 'मरो का नारा' देते ही कुछ नहीं हो पाया। बंगाल में मुसलिम लीग का जोर बढ़ता जा रहा था, इस कारण मुसलमान अर्थात अधिकतर बंगाली जनता आन्दोलन से पृथक रही।

नावें और साइकिलें जब्त—फिर भी बंगाल के मेदिनीपुर में आन्दोलन ने जो सफलता प्राप्त की वह अभूतपूर्व है। मेदिनीपुर में १९३९ में ही कांग्रेस अच्छी तरह संगठित थी। जापानी आक्रमण शुरू होते ही सरकार का ध्यान मेदिनीपुर पर गया, और मेदिनीपुर खतरनाक रकबा घोषित किया गया। मेदिनीपुर में रेल कम हैं, इस कारण बसें चलती थीं, पर बसों का तेल बहुत कम कर दिया गया था। १९४२ की ८ अप्रैल को सरकार ने यह हुक्म दिया कि कांथीं और तमलूक महकमे के नन्दीग्राम और मैना थाने के इलाके की सब नावें ३ घण्टे के अन्दर हटा दी जाएँ और ९० मील दूर पहुँचाई जाएँ। इस हुक्मनामे का पालन सम्भव नहीं था। नतीजा यह हुआ कि सब नावें जला दी गईं। स्मरण रहे कि नावें बंगालियों के लिए केवल यातायात के साधन नहीं हैं, बल्कि जीविका के भी साधन हैं, क्योंकि बंगाल में मछली मारना कृषि के बराबर

ही महत्वपूर्ण धन्धा है। उसके बाद सरकार की तरफ से हुक्म आया कि साइकिलें जमा कर दी जाएँ। तदनुसार सब साइकिलें जमा हो गईं।

विद्युत वाहिनी—नावें छिन जाने तथा फौजी कार्य के लिए अनाज की खपत बढ़ जाने के कारण लोगों को पहले ही से मालूम था कि जिले में दुर्भिक्ष पड़ेगा। इसके लिए लोगों ने जाकर अधिकारियों से कहा भी, पर कोई सुनाई नहीं हुई। तब लोग जहाँ तक हो सका अपनी मदद आप करने लगे। ९ अगस्त के पहले ही मेदनीपुर में जापानी आक्रमण के समय संगठित रहने के उद्देश्य से विद्युत वाहिनी नाम की सेनाएँ बनाई गईं। सैनिकों की संख्या पांच हजार तक पहुँची थी, ५० स्वयंसेविकाएँ भी थीं। ये स्वयंसेवक तथा स्वयंसेविकाएँ २४ घण्टा काम करने वाले थे।

चावल की मिल पर संघर्ष—१९४२ के आठ सितम्बर को एक थानेदार ने मेदिनीपुर की एक चावल की मिल के मालिक को इस सम्बन्ध में मदद देनी चाही, जिससे वह चावल बाहर भेज सके। कोई ढाई हजार गाँव वाले इकट्ठा होकर इसके विरोध में खड़े हो गए। पुलिस ने गोली चलाई, ३ आदमी मारे गए। यह सब जनता ने खुद किया था। जब गोली चली तो वह पीछे हट गई, और कांग्रेस में खबर दी गई। कांग्रेस की ओर से ४० स्वयंसेवक आए और उधर ४० सशस्त्र पुलिस वाले आए। स्वयंसेवक यह माँग करने लगे कि चावल बाहर न भेजा जाय और उन तीन व्यक्तियों की लाशें दे दीं जाएँ। अधिकारी वर्ग लाशें देने पर राजी हुआ, पर अन्त तक उसने वायदाखिलाफी की, और लाशों को नदी में डाल दिया। गाँव वालों ने उन्हें नदी से निकाल लिया और उन तीनों का दाह एक चिता पर किया गया। इस अपराध के कारण अगले दिन पुलिस ने ६ गाँवों पर धावा किया, २०० व्यक्तियों का गिरफ्तार किया, दिन-भर उन्हें धूप में बैठाया, और बाद को १८ व्यक्तियों को डेढ़ से लेकर २ साल तक सजा कर दी। पर चावल के मिल मालिक को दबना पड़ा, जनता ने उस पर डेढ़ हजार रुपया जुर्माना किया। ये रुपए गोली के शहीद हुए व्यक्तियों के घर में बाँटे गए। मिल मालिक ने चावल की रफ्तनी न करने का वायदा किया।

सभा जुलूस—अन्त में सरकार ने चावल बाहर भेजना बन्द कर दिया, पर इसका पालन नहीं होता था, इस कारण कांग्रेस के लोगों को खबर लगते ही वे

पिकेटिंग आदि करके चावल को रोकते थे। १६ अक्टूबर को जो भयंकर आँधी आई तो सरकार ने चावल पर सचमुच रोक लगा दी। अब मेदिनीपुर में कांग्रेस का सन्देश पहुँच गया। गाँव-गाँव में सभाएँ हुई तथा जुलूस निकाले गए। प्रत्येक इलाके में सभा हुई और उस इलाके को स्वतन्त्र घोषित किया गया। स्वयंसेवक लोग पुलिस का काम करते थे।

महिषादल स्वतन्त्र—महिषादल थाने के सामने २० हजार जनता की सभा में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई, इस पर एक उच्चकर्मचारी मिस्टर शेख पहुँचे, और उन्होंने चार व्यक्तियों को गिरफ्तार करना चाहा, पर जनता ने गिरफ्तारी नहीं होने दी। तव उन्होंने सिपाहियों से कहा कि लाठी चार्ज करके भीड़ तितर-बितर कर दो, पर सिपाही राजी नहीं हुए। इस पर मिस्टर शेख झेंप कर वापस चले गए। महिषादल में स्कूल के शिक्षकों तथा छात्रों ने कांग्रेस का साथ दिया।

अपना डाक विभाग अपना राज्य—इस जिले में कांग्रेसी डाक विभाग भी चालू किया गया था। इसी डाक विभाग के जरिए से कांग्रेस संगठन तथा कांग्रेसी एक-दूसरे से सम्बन्ध रखते थे। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी से भी इसी डाक विभाग के जरिए सम्बन्ध कायम था। 'विप्लवी' नाम से साइक्लोस्टाइल से छपा हुआ एक पर्चा बराबर निकलता था। सरकार के साथ युद्ध घोषणा के पहले भी मेदिनीपुर के स्वयंसेवकों के अपने शिविर थे। जब आन्दोलन चला तो शिविर तथा स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ी। अदालतों का बायकाट वाला कार्यक्रम बहुत सफल रहा। १९३० के आन्दोलन में ही सरकार ने मेदिनीपुर जिले की म्युनिसिपालिटियों को अपने कब्जे में कर लिया था, पर १९४० से उन पर कांग्रेसियों का अधिकार था। इनके जरिए से राष्ट्रीय कार्य होते थे। चौकीदार और जमादारों की सरकरी वर्दी इकट्ठी कर जला डाली गई। जिन यूनियन बोर्डों ने क्रान्तिकारियों से सहयोग नहीं किया था, उन पर कब्जाकर लिया गया, और उनके कागजात जला दिए गए।

क्रान्ति शुरू—१९४२ के २९ सितम्बर को मेदिनीपुर के क्रान्तिकारियों की एक सभा में यह तय हुआ कि थाने, अदालत तथा अन्य सरकारी केन्द्रों पर एक साथ हमला कर दिया जाए। पांसकुड़ा और मैना थानों के अतिरिक्त सब थानों

पर हमला किया गया। २८ सितम्बर की रात को पेड़ काटकर महत्त्वपूर्ण सड़कों पर गिरा दिए गए, और रास्ते बन्द कर दिए गए। ३० पुल तोड़ दिए गए। २७ मील टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार काटे गए और १९४ तार के खम्भे गिरा दिए गए। कोशी और हुगली नदी की नावें डुबा दी गईं।

ब्रिटिश सरकार आफत में—ब्रिटिश सरकार को उसी रात को खबर लग गई और तम्लूक पांसकुड़ा सड़क को सरकार ने मुक्त कर लिया और २९ सितम्बर २ बजे दिन तक सड़क मोटर आने-जाने लायक हो गई। दूसरे रास्तों को साफ करने में १५ दिन लगे। इस बीच में नावें भी बन्द थीं। २९ तारीख को ही थानों पर हमले हुए। एक खास बात यह है कि जिनको भी गोली लगी, उनको सामने की तरफ गोली लगी। २९ तथा इसके बाद सात दिन के अन्दर बहुत-सी सरकारी इमारतों के अतिरिक्त १२ शराब की दुकानें भी जला डाली गईं, चौकीदारों की ३०० वर्दी जला दी गईं, क्रान्तिकारियों ने १३ सरकारी कर्मचारियों को गिरफ्तार किया, पर जब इन्होंने यह वायदा किया कि वह आगे सरकार की नौकरी नहीं करेंगे, तो उनको अपने-अपने घर का किराया देकर छोड़ दिया गया। क्रान्तिकारियों ने कुछ बन्दूकें तथा तलवारें भी इकट्ठी कर लीं।

रामचन्द्र बेरा की शहादत—२९ तारीख को ३ बजे दिन को बड़ी भारी भीड़ों ने चार जुलूस बनाकर शहर पर हमला किया। बड़ा जुलूस पश्चिम से आया। उसमें ८ हजार क्रान्तिकारी जनता थी। थाने के पास पहुँचते ही जुलूस पर लाठी चार्ज किया गया, लाठी चार्ज व्यर्थ हुआ तो गोली चली। ५ व्यक्ति शहीद हो गए तब भीड़ तितर-बितर हुई, पर कुछ लोग आगे बढ़ते हुए फिर भी मारे गए। रामचन्द्र बेरा नामक एक घायल व्यक्ति के घाव से बहुत खून जा रहा था पर यह वीर आगे बढ़ता हुआ थाने के दरवाजे तक पहुँचा और "मैंने थाने पर कब्जा कर लिया" कहकर वहीं पर वीरगति को प्राप्त हुआ।

मातंगिनी हाजरा—उत्तर से जो जुलूस आ रहा था उसका नेतृत्व मातंगनी हाजरा नाम की ७३ साल की बुढ़िया कर रही थी। वानपुकुर के पास जुलूस पर फौज ने लाठी चार्ज किया। तब लक्ष्मीनारायण दास नामक एक लड़के ने आगे बढ़कर एक फौजी की बन्दूक छीन ली, इस पर फौजियों ने उसे

बहुत मारा और मार डाला। मातंगिनी हाजरा के नेतृत्व में फिर जुलूस आगे बढ़ा। उनके हाथ में तिरंगा था। फौज ने उनके दोनों हाथों में गोली मार दी, हाथ झुके पर झण्डा न झुका। वह फौजियों को नौकरी छोड़ने के लिए कहती हुई आगे बढ़ीं। इस पर उनके ललाट पर एक गोली लगी और वहीं गिर पड़ीं, पर हाथ में झण्डा कसकर पकड़ा हुआ था। एक फौजी ने जाकर लात मार कर झण्डे को अलग कर दिया।

फौजी झेंपा—मातंगिनी हाजरा तथा लक्ष्मीनारायण के अतिरिक्त १४ साल का लड़का पूरी माधव प्रामाणिक, नागेन्द्र नाथ सामन्त और जीवन चन्द्र वंश भी शहीद हुए जो घायल हुए उनमें से कुछ को जनता ने अस्पताल पहुँचाया। एक घायल पानी-पानी चिल्ला रहा था, इस पर एक स्त्री आंचल भिगो कर उसे पानी की बून्दें देने के लिए आगे बढ़ी तो एक फौजी ने उसे मना किया इस पर उस वीरांगना ने चिल्ला कर कहा कि तुम मुझे मारना चाहो तो मार सकते हो, पर मैं पानी दूंगी। इस पर वह फौजी झेंप कर अलग हो गया।

दक्षिण के जुलूस पर गोली—दक्षिण से जो जुलूस आ रहा था, वह ज्योंही राकर आरा पुल में पहुँचा तो उस पर गोली चला दी गई। १७ साल का निरंजन जना तथा २२ साल का पूर्णचन्द्र माइती घायल हुए, बाद को वे अस्पताल में मर गए। अन्य बहुत से लोग घायल हुए। जुलूस में जो स्त्रियाँ थीं वे घायलों की परिचर्या करने लगीं, फौजियों ने बाधा दी, तो वह चली गईं, और एक-एक बाल्टी पानी तथा हंसुआ लेकर लौटीं, और चिल्लाकर फौजियों से बोलीं कि यदि हमारे काम में बाधा दोगे तो इस हंसुआ से गला काट डालेंगी। इस पर फौजी चुप हो गए। इन स्त्रियों ने सब घायलों को घर तथा अस्पताल पहुँचा दिया।

महिषादल—दक्षिण-पश्चिम से ३ हजार का एक जुलूस आया, पर उस पर लाठी चार्ज हुआ, और गिरफ्तारियाँ हुईं। अन्त तक सात ही व्यक्ति गिरफ्तार रहे। इनको बाद को दो-दो साल की सजा दे दी गई। पश्चिम से भी एक जुलूस आया, उस पर लाठी चार्ज हुआ।

यद्यपि शहर पर जनता का कब्जा न हो सका पर देहातों में जनता सफल रही। २९ सितम्बर को महिषादल थाने की तरफ को जुलूस गया, उस पर

गोली चलाकर दो मार दिए गए और १८ जख्मी हुए। पर इस बीच में विद्युत वाहिनी के नेतृत्व में संगठित एक २५ हजार का जुलूस इस जुलूस से आकर मिला। फिर गोली चली। जनता कुछ पीछे हटी। चार बार थाने पर हमला हुआ। दारोगा के मकान में आग लगा दी गई। सुभाषचन्द्र सामन्त और खुदी राम बेरा घायल होने पर भी गिरफ्तार किए गए। खुदीराम हवालात में मर गए। अन्त तक जनता की जीत हुई।

सूताहाटा—२९ सितम्बर को सूताहाटा थाने पर पूर्व तथा पश्चिम से ५० हजार जनता टूट पड़ी। इन जुलूसों के सामने वर्दी से लैस विद्युत् वाहिनी तथा भगिनी सेना शिविर के सदस्य तथा सदस्याएँ थीं। सूताहाटा थाने के इनचार्ज ने जनता से तितर-बितर होने के लिए कहा। पर जनता ने उसे गोली चलाने का मौका न देकर, गिरफ्तार कर लिया, और उसके हथियार छीन लिए। कुछ कारतूसों के साथ ६ रायफल और २ तलवारें ले ली गईं। थाने की पक्की इमारत में आग लगा दी गई, और थाने के अन्दर की सब चीजें जला दी गईं। इस मौके पर तीन हवाई जहाज आकर बहुत नीचे जनता पर उड़ने लगे, और इनमें से कम-से-कम एक बम गिराया गया। (बाद को सेशन की अदालत में पुलिस की गवाही में यह बताया गया कि यह गिराई हुई वस्तु बम नहीं थी, बल्कि तरल आग की-सी कोई वस्तु थी) इसके बाद क्रान्तिकारी जनता इलाके-भर में फैल गई और खासमहल, सबरजिस्ट्रार तथा यूनियन बोर्ड के दफ्तरों में आग लगा दी गई। जो सरकारी नौकर गिरफ्तार हुए उनके साथ अच्छा बरताव किया गया, और उन्हें किराया देकर घर भेजा गया।

३० सितम्बर को १० हजार जनता ने नन्दीग्राम थाने पर हमला किया। पुलिस वालों ने आड़ में रह कर गोली चलाई। चार उसी समय मरे, बाद को एक अस्पताल में मरा, १६ घायल हुए। पर जनता ने लौटकर बाकी सब सरकारी इमारतों में आग लगा दी। गाँव वालों को तंग करने के लिए पास में फौज का पड़ाव डाल दिया गया, फौजी गाँवों में जाते और मनमाना अत्याचार करते। पर फौजियों को भी गाँव वालों से इतना डर था कि वे कभी छोटी टुकड़ी में गांव की तरफ नहीं जाते थे।

ताम्रलिप्त जातीय सरकार—१६ अक्टूबर को जो भयंकर आँधी आई उसमें

दस हजार व्यक्ति और तीन चौथाई ढोर मर गए। इस प्राकृतिक विपत्ति के साथ-साथ दुर्भिक्ष भी पड़ा। सरकारी पिट्ठुओं ने यह प्रचार किया कि कांग्रेसियों के कारण यह सब हुआ। पर जनता इससे नहीं बहकी। १९४२ के १७ दिसम्बर को ताम्रलिप्त जातीय सरकार की स्थापना हुई और इसी सरकार के अधीन १९४३ की २६ जनवरी को सूताहाटा, नन्दीग्राम, महिषादल और तमलूक के प्रत्येक थाने में अपने थाने की जातीय सरकार स्थापित हुई।

विद्युत वाहिनी के विभाग—महिषादल में पहले पहल विद्युत वाहिनी संगठित हुई थी, पर बाद को तमलूक आदि स्थानों में विद्युत वाहिनी का संगठन हुआ। इसकी तीन शाखाएँ थीं। (१) सैनिक (२) खुफिया (३) एम्बुलेंस। बाद को इसी विद्युत वाहिनी को जातीय सरकार ने अपनी सेना घोषित किया और इसके दो विभाग और खोले गए। (१) गुरील्ला (२) भगिनी सेना। अब इन सेनाओं के जरिये से चोर डकैत भी गिरफ्तार गिए जाते थे और जातीय सरकार उनको सजा देती थी।

जातीय सरकार समाप्त—जातीय सरकार के प्रथम सर्वाधिनायक सतीश चन्द्र सामन्त हुए। इसके बाद कई अधिनायक हुए। चतुर्थ सर्वाधिनायक वरदाकान्त कुइती ने १९४४ के ८ अगस्त को एक वक्तव्य देकर इस संस्था को भंग कर दिया, महात्मा जी के वक्तव्यों के कारण ही ऐसा हुआ था। इसके बाद विद्युत वाहिनी भी भंग कर दी गई।

न्याय विभाग—जातीय सरकार ने अपने करीब-करीब २ साल के जीवन में बहुत से मुकदमों का फैसला किया। इस अदालत में मुकदमा चलाने के लिए एक रुपया फीस देनी पड़ती थी। बाद को यह फीस २ रुपए कर दी गई, फिर १९४४ की पहली जनवरी को फीस ४ रुपए हो गई। इन अदालतों में दीवानी, फौजदारी दोनों तरह के मामलों के फैसले किए जाते थे। थाने की अदालत की अपील महकमे में और महकमे की अपील तीन जजों के स्पेशल ट्राइब्यूनल में सुनी जाती थी। जनता के सुविधार्थ चलती-फिरती अदालतें भी थीं। मुद्दई तथा मुद्दालह अदालत में मौजूद रहते थे, कभी-कभी ३ सौ तक दर्शक मौजूद रहते थे। फौजदारी मामले में जुर्माना, अदालत उठने तक कैद, चेतावनी आदि सजा दी जाती थी। अदालत के हुक्म से फरारों की सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। डिग्री

जारी होने पर भी सम्पत्ति जब्त होती थी। अधिकांश क्षेत्रों में दोनों पक्ष फैसले को मान लेते थे। सूताहाटा जातीय सरकार ने ८३६, नन्दीग्राम सरकार ने २२२, महिषादल सरकार ने १०५५ और तमलूक सरकार ने ७६४ मामलों की, अर्थात सब मिलाकर २९०७ मामलों की सुनाई की। इनमें से कुछ ही मामलों में ऊपर तक अपील हुई। जब जातीय सरकार तोड़ दी गई, तो मुल्तबी मुकदमों की फीस लौटा दी गई, पर बहुतों ने वापस नहीं लिया।

अन्य विभाग—जातीय सरकार का युद्ध-विभाग दुर्भिक्ष, रोग, साथ ही डकैतों-चोरों का सामना करता था। दुर्भिक्ष के समय जातीय सरकार की सेना एक वक्त भात और दूसरे वक्त उबले चने पर गुजारा करती थी। बहुत दिनों तक इन सैनिकों ने दिन-भर में तीन छटांक चावल और २ छटांक चने पर गुजारा किया। ७९००० रुपयों की दवा और कपड़े गरीबों में बाँटे गए। जातीय सरकार ने स्कूल भी ढंग से चलाए और उनके लिए अच्छे परिदर्शक नियुक्त किए।

दमन—ब्रिटिश सरकार ने मेदिनीपुर की जनता को दबाने में कुछ उठा नहीं रखा। एक तो दुर्भिक्ष तिस पर नावें नहीं, और फिर सरकारी अत्याचार। एक गोरे ने सताने का एक नया ढंग निकाला। आदमी को पकड़कर उसके मलद्वार में एक रूल घुसा दिया जाता था, और फिर उसे घुमाया जाता था। मेदिनीपुर में स्त्रियों पर बलात्कार हुआ, पर उनका विवरण हम अन्यत्र देंगे। बालूहाटा बाजार में एक सत्याग्रही छबीलाला बेरा को नंगा करके उसके लिंग पर चूना और सोडा लगा दिया गया, उस बेचारे ने आफत के मारे माफी माँग ली। सूताहाटा के डॉक्टर जनार्दन हाजरा के घर में आग लगा दी गई। सतीशचन्द्र मायती पर बेंत का प्रहार हुआ, फिर नाखून में सूई चुभोई गई, फिर फौजी लेटाकर बूट सहित छाती पर चढ़ गए इस पर भी उसने बांड नहीं लिखा। खुदीराम कुईसा को नङ्गा करके पीटा गया, फिर उँगली में सूई चुभोई गई। इसके बाद पैर अलग करके खड़ा रहने पर मलद्वार में उँगली धर कर घुमाई गई। इस प्रकार दो हजार व्यक्तियों के साथ अत्याचार हुए। १०४४ घर लूट लिए गए।

कांथी—कांथी में अगस्त में ही नेताओं की गिरफ्तारी पर कई हड़तालें हुईं। देहातों में भी सभाएँ होती रहीं और जुलूस निकलते रहे। ८००० स्वयंसेवक तैयार हो गए, और प्रत्येक यूनियन में ८२ शिविर स्थापित हुए। सब स्कूलों

के छात्र स्वयंसेवक हो गए । १४ सितम्बर को १००००० जनता बीस जुलूसों में दिन के तीन बजे ८ सड़कों से कांथी कस्बे की ओर बढ़ी । सरकार पर इतना आतंक छा गया कि पुलिस वाले भी चुप रहे । ६ सितम्बर को परगना के हाकिम ने युद्ध-फंड के लिए नाच की व्यवस्था की, स्वयंसेवकों ने इस नाच पर पिकेटिंग की, इस पर कुछ गिरफ्तार हो गए । तीन सप्ताह तक कांथी की यह हालत रही कि वहाँ के लोग बाहर चले गए । बहुत से चौकीदारों ने खुशी से नौकरी छोड़ दी, पर कुछ को मजबूर किया गया । २० सितम्बर को जनता ने ११ गिरफ्तार स्वयंसेवकों को छुड़ा लिया । कहीं स्वयंसेवकों के शिविर पर पुलिस का हमला न हो इसलिए आने का रास्ता काट दिया गया । इस पर पुलिस ने आसपास वाले गाँवों को धमका कर रास्ते की मरम्मत कराई । बाद को जनता आ गई और पुलिस ने गोली चलाई, जिससे २४ आदमी घायल हुए । कांथी पर जनता का पूरा कब्जा नहीं हुआ । पर १९ सितम्बर को परासपुर थाने पर जनता ने आक्रमण किया तो थानेदार भाग गया, और जनता ने पुलिस वालों की बन्दूकें छीन लीं । फिर थाने में आग लगा दी । इसके बाद कई सरकारी इमारतें जला दी गईं । २८ सितम्बर को खजुरी थाने पर आक्रमण हुआ, और वहाँ थानेदार तथा सिपाहियों से हथियार ले लिए गए, थाने में आग लगा दी गई तथा अन्य इमारतों में भी आग लगा दी गई । जनता ने हेनरिया, हलुदबाड़ी, कलागाछीया, अजय, जङ्का और खजुरी डाकखानों के सब पोस्टकार्डों, लिफाफों आदि में आग लग दी । कई पुल जला दिए गए, दो आबकारी की दुकानों में आग लगा दी गई । बाद को इनको दबाने के लिए ११ सिपाहियों के साथ सर्किल अफसर आए, पर वे नदी पार होते ही गिरफ्तार कर लिए गए, और उन्हें १० दिन तक कांग्रेस के कैदखाने में रखने के बाद सुन्दर वन में ले जाकर छोड़ दिया गया । २९ सितम्बर को २०००० जनता ने भगवानपुर थाने पर आक्रमण किया । इसी प्रकार अन्य कार्य हुए ।

मेदिनीपुर की अन्य घटनाओं का हम वर्णन नहीं करेंगे । सच तो यह है कि मेदिनीपुर के गांव-गांव में इतिहास की सृष्टि हुई । केवल उसी के वर्णन के लिए एक विराट् पुस्तक चाहिए ।

कलकत्ता—१० अगस्त को बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को गैरकानूनी

घोषित कर दिया गया। ११ और १२ को कलकत्ता में बहुत बड़े-बड़े जुलूस निकले और सभाएँ हुईं। १३ से मिटलिरी लारियाँ सड़क पर पहरा देती हुई घूमने लगीं। फिर भी कलकत्ता तथा बंगाल अब तक इतना पीछे था कि १३ अगस्त को मिस्टर चर्चिल को यह कहने की हिम्मत हुई कि बम्बई में नेताओं की गिरफ्तारी से कलकत्ता तथा बंगाल सम्पूर्ण अविचलित है। शायद इसी कारण उसी दिन से कलकत्ता में संघर्ष शुरू हुआ। बंगाली छात्र बिगड़ खड़े हुए और हरीसन रोड और मिर्जापुर रोड के संगम तथा शंकर घोष लेन और कार्नवालिस स्ट्रीट के सङ्गम पर तीन ट्राम गाड़ियाँ जला दी गईं। श्रीमानी बाजार के निकट पुलिस के साथ जनता का संघर्ष हुआ और गोली चली जिसमें वैद्यनाथ सेन शहीद हुए।

१४ अगस्त—१४ अगस्त को आन्दोलन और भी व्यापक हो गया। चौरङ्गी के अतिरिक्त शायद सभी मुहल्लों में गोली चली। टेलीफोन के तार काटे गए तथा ट्राम जलाए गए। डाकखानों पर हमले हुए। कुछ मिलों में हड़ताल हुई। फिर भी जनता यत्र-तत्र इकट्ठी होती रही और उस पर अश्रुगैस तथा गोलियों का प्रयोग किया गया। मिलिटरी लारियाँ भी जलाई जाने लगीं। १४ तारीख को बम्बई मेल, दून एक्सप्रेस, दिल्ली एक्सप्रेस आदि गाड़ियाँ कलकत्ते से रवाना नहीं हुईं। १३ अगस्त की शाम को जो अप-पंजाब मेल रवाना हुआ था, वह झाझा से लौट आया।

१५ अगस्त—१५ अगस्त को कलकत्ता का रूप भीषण हो गया। कलकत्ता के चित्तरंजन एवन्यू से बराबर सैनिक लारियाँ चलती रहीं और वे ब्रेनगन तथा टामीगन से बराबर गोली बरसाती रहीं। उस दिन हाथीबगान बाजार की एक मिठाई की दुकान में मिलिटरी वाले घुस पड़े और लूटपाट की। ट्राम तथा बसों का चलना बन्द रहा।

१६ अगस्त—१६ तारीख को बालीगंज ट्राम डिपो के पास एकडलिया रोड में बालीगंज सब-पोस्ट-आफिस में आग लगाई गई। दमकल आकर उसे मुश्किल से बुझा पाया। संध्या समय विद्यासागर होस्टल के सामने गोली चली। उसी दिन ताराचन्द लाहा एवन्यू के पास एक ट्राम में आग लगा दी गई थी, और उधर की जनता ने बाधा डालकर रास्ते को बन्द कर दिया था। पुलिस वाले तथा फौजी इस दिन भी मिठाईवाले के यहाँ घुसे। इन दिनों कितने आदमी गोलियों से

मारे गए. इसका कुछ पता नहीं क्योंकि पुलिस ने सम्वाददाताओं को आने-जाने नहीं दिया, केवल 'बँगला भारत' पत्र कुछ-कुछ खबरें छापता था, पर इस अपराध में इस पत्र के दफ्तर पर ताला लगा दिया गया।

आन्दोलन धीमा, पर चालू—कलकत्ता में आन्दोलन इसके बाद धीमे-धीमे बराबर चलता रहा। जहाँ भी जनता को मौका मिलता, वह सरकारी रेल कम्पनी, ट्राम कम्पनी तथा फौजी विभाग की चीजों में आग लगा देती, या उन्हें नुकसान पहुँचाती।

ढाका—बंगाल के अन्य जिलों में जो आन्दोलन हुआ उसमें कोई विशेषता नहीं है। इसलिए हम संक्षेप में ही उनका वर्णन करेंगे। कलकत्ता के बाद बंगाल के सबसे महत्त्वपूर्ण शहर ढाका में १० अगस्त को हड़ताल रही। विद्यार्थियों ने विशेष भाग लिया। जब हड़ताली विद्यार्थी एक स्कूल को जा रहे थे तो उनके कार्य में बाधा पहुँचाई गई। ११ अगस्त को भी विद्यार्थियों का जुलूस निकला, पर ईडेन गर्ल्स कालेज के सामने विद्यार्थियों पर लाठी चार्ज हुआ। १३ अगस्त को जनता ने ढाका के मुंसिफ कोर्ट पर हमला किया और वहाँ कागजात में आग लगा दी। इस पर गोली चली और एक मरा तथा कई घायल हुए। इस दिन टेली-फोन तथा टेलीग्राफ के तार भी काटे गए। ढाका की सड़कें रोक दी गई और रेल की पटरियाँ भी उखाड़ी गई। १४ अगस्त को कुछ लोगों ने नवाबपुर, उआरि, टिकाटूशी, लक्ष्मी बाजार, फरहासगंज और वाल्टर रोड के डाकखानों के कागजात में आग लगा दी। ढाकेश्वरी और लक्ष्मी नारायण कॉटन मिल्स में हड़ताल रही। १५ अगस्त को कई जगह जनता और पुलिस का संघर्ष हो गया। गोली चली और जनता के लोग मरे। नारायण गंज और ढाका के बीच गंडारिया स्टेशन पर आग लगाई गई। कई जगह बम विस्फोट हुए। विशेषकर पुलिस अफसरों के घरों पर बम फेंके गए। ए० आर० पी० की इमारत में आग लगा दी गई।

१७ अगस्त को फरहासगंज थाने के दो देहाती डाकखानों में आग लगा दी गई। इसके बाद बराबर कहीं तार कटता तो कहीं बम फटता। इस प्रकार कुछ-न-कुछ तोड़-फोड़ के कार्य होते रहे। मुन्शीगंज में बहुत दूर तक तार काटा गया। १४ सितम्बर को वहीं एक सभा पर पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें तीन

मरे। २२ सितम्बर को जनता ने नवाबगंज थाने पर कब्जा करना चाहा। एक व्यक्ति मरा और कई घायल हुए।

फरीदपुर—नेताओं की गिरफ्तारी पर यहाँ भी पहले जुलूस आदि निकाले गए, फिर तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हुए। देहातों में भी तोड़-फोड़ फैल गई। ५ सितम्बर को मदारीपुर के छात्रों के एक जुलूस पर लाठी चार्ज हुआ। ६ सितम्बर को एक सभा पर लाठी चार्ज करके उसे भंग कर दिया गया। २ सितम्बर को एक जुलूस चिकंदी अदालत की ओर बढ़ने लगा तो इस पर लाठी चार्ज हुआ। नरिया में नजरबंद मजदूर नेता सुरेश बनर्जी को गिरफ्तार करते समय गाँव वालों में तथा पुलिस वालों में संघर्ष हुआ। गाँव वाले उन्हें गिरफ्तार नहीं होने देना चाहते थे। पुलिस ने लाठी चार्ज किया। मंगा में पुलिस वालों ने हिन्दू-मुसलमान दंगा करवा दिया। कुछ तार भी काटे गए। बसन्तपुर स्टेशन नष्ट कर दिया गया, कुछ सरकारी तथा अर्धसरकारी इमारतों में आग लगा दी गई।

मुर्शिदाबाद—बंगाल के बाकी जिलों में कोई विशेष महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई। फिर भी जो थोड़ी-बहुत घटनाएँ हुईं उनमें से कुछ का हम वर्णन कर देते हैं। मुर्शिदावाद में नाजिम नगर के आसपास के तार काट दिए गए। अजीमगंज तथा वेलडांगा स्टेशनों पर हमले हुए। कई जगह नशे की दुकानें जला दी गईं। एक सेकेण्ड क्लास का डब्बा जला दिया गया। यहाँ आन्दोलन कुछ मामूली तोड़-फोड़ के कार्यों तक ही सीमित रहा।

हाबड़ा—हाबड़ा में भी पहले जुलूस आदि निकले, फिर बिजली तथा टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार काटे गए। भैंसागढ़ लाइन की पटरियाँ उखाड़ दी गईं। विसनपुर हवाई अड्डे पर हमला हुआ। चन्दर और अलूनी के सामरिक आवजरवेशन कैम्प को नुकसान पहुँचा। कुछ डाकखाने नष्ट किए गए। हाबड़ा में भी कलकत्ते की तरह शुरू-शुरू में कुछ मिलों में हड़ताल रही।

हुगली—हुगली में चूंचड़ा, श्रीरामपुर, हुगली खास के म्युनिसिपल कमिश्नरों ने नेताओं की गिरफ्तारी पर पदत्याग कर दिया। मार्टिन एण्ड कम्पनी की रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गईं, जिसके कारण उस लाइन पर कई दिनों तक रेल नहीं चल सकी। ई० आई० आर० की पटरियाँ भी उखाड़ दी गईं। आराम वाग के इलाके में तोड़-फोड़ का कार्य अधिक हुआ और वहाँ खास महल, यूनि-

यन बोर्ड तथा डाकखाने में आग लगा दी गई। कोन नगर के पास तार काट दिए गए। धनियाँ काँदा, चटूल तथा देवखादा डाकखाने जलाए गए। सरकार ने जिला कांग्रेस कमेटी के दफ्तर पर ताला दे रखा था, जनता ने उस पर कब्ज़ा कर लिया। ३० अक्तूबर को चम्पाडाँगा बाजार में जनता का हमला हुआ, इस पर गोली चली, जिसमें तीन मरे। वरीशाल में स्टीमर स्टेशन तथा डाकखाने में आग लगाई गई।

मैमनसिंह—मैमनसिंह में कई जगह जैसे नीलगंज, नेतकोना आदि में रेल तथा डाकखानों पर हमले हुए। सरकारी भूसे के गोदाम में आग लगाई गई। ३१ अगस्त को जनता ने सेल्सटैक्स तथा इनकमटैक्स के दफ्तर पर आक्रमण किया। ११ सितम्बर को जनता का जोश सबसे अधिक रहा, उस दिन एक क्रान्तिकारी जुलूस पर, जिसमें छात्राओं की संख्या अधिक थी, पुलिस ने कई बार लाठी चार्ज कर तितर-बितर किया। १२ सितम्बर को जनता ने मुक्तागछा डाकखाने में आग लगा दी। रायेर बाजार तथा अथरबरी के बाजार पर हमले हुए। पहले बाजार में गोली चली तो ३ मरे, और दूसरे बाजार में गोली चली तो १०० के करीब घायल हुए।

बर्दवान—बर्दवान में पहले जुलूस आदि निकले, फिर तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हुए। कालना के डाकबँगले तथा स्टेशन में आग लगा दी गई। १६ सितम्बर को कालना अदालत पर तिरंगा फहरा दिया गया। कासियारा डाकखाना भी जला दिया गया। इसी प्रकार अन्य तोड़-फोड़ के कार्य हुए। ववनिया गाँव का कनाल आफिस, जमालपुर का डाकखाना, स्टेशन, आबकारी की दुकान, थाना आदि जलाए गए।

बोलपुर—कवीन्द्र रवीन्द्र का बोलपुर भी चुप न रहा। २९ अगस्त को हिन्दू-मुसलमान, संताल सबने मिलाकर बोलपुर स्टेशन पर हमला किया, और उसे नुकसान पहुँचाया। ७ व्यक्ति घायल हुए। टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार भी कटे।

नदिया—नदिया में कुसठिया के छात्र तथा छात्राओं ने सबसे पहले आन्दोलन कया। रानाधार में रेल तथा तार सम्बन्धी तोड़-फोड़ हुए। नेताओं की गिर-फ्तारी के प्रतिवाद में नवद्वीप की म्युनिसिपलिटी के ७ सदस्यों ने इस्तीफा दे

दिया। श्यामनगर तथा उसके पास के डाकखाने में आग लगाई गई। कृष्ण नगर स्टेशन पर खड़े चार अव्वल दर्जे के तथा दूसरे दर्जे के डिब्बे जलाए गए। शान्तिपुर फटका बाड़ी रामपुर के पोस्ट आफिस जलाए गए। बेलडांगा और अजिमगंज स्टेशन पर हमले हुए। बहरमपुर की अदालत पर आक्रमण हुआ। मुड़ागाछा स्टेशन जला दिया गया।

हवाई जहाज से बम—इसी जिले के रानाघाट में हवाई जहाज से मशीनगन चलाई गई। यह घटना कितनी अन्यायपूर्ण थी, इसी से पता लग सकता है कि १९४२ के २ अक्टूबर को प्रधान मन्त्री मिस्टर फजलुलहक ने यह कहा कि कुछ कुली रेल लाइन पर काम कर रहे थे, ऊपर से एक पहरे वाले हवाई जहाज ने यह समझा कि लोग लाइन काट रहे हैं, बस उसने आव देखा न ताव, कुलियों पर बम बरसा दिया।

बगुड़ा—बगुड़ा जिले में ११ सितम्बर को एक जुलूस कलेक्टरी में घुस गया। और वहाँ सब कागजात ले लिए। भालूरपाड़ा स्टेशन में अव्वल तथा दूसरे दर्जे के डब्बों में आग लगा दी गई। शेरपुर और चन्द्रदेवना के बीच तार काटे गए। माल्दह जिला के रतन थाने में आन्दोलन जोर पर रहा, वहाँ डाकखाना, आबकारी, यूनियन बोर्ड तथा अन्य सरकारी इमारतों में आग लगा दी गई। जिलेभर में तार काटे गए। दार्जिलिंग में भी अगस्त प्रस्ताव की गूँज पहुँची। ९ सितम्बर को ९ अगस्त का मासिक दिवस मनाने के लिए एक जुलूस निकला, इस पर गोली चली, ३ मरे १२ घायल हुए।

बालूर घाट—दीनाजपुर के बालूर घाट में २४ घण्टे के लिए सरकारी शासन बिल्कुल खत्म हो गया था। १३ सितम्बर की रात को देहात से कांग्रेसियों के नेतृत्व में एक सौ से अधिक टोलियाँ चलकर बालूर घाट कस्बे से ३ मील दूर अत्रेयी नदी के पश्चिमी किनारे डंगीरघाट पर इकट्ठा हुई। इसमें से कोई-कोई टोली ३० मील दूर से आई थी। बालूर घाट शहर के कांग्रेसी नेता सरोजरंजन चटर्जी ने इनका स्वागत किया। जनता ५ हजार के लगभग थी। यहाँ से क्रान्तिकारी नारे के साथ जनता कस्बे की ओर बढ़ी और दिन के ८ बजे कस्बे में दाखिल हो गई। जब जुलूस खजाने के पास पहुँचा तो श्री चटर्जी ने ट्रेजरी के भारतीयों को नौकरी छोड़ देने के लिए कहा। इसके बाद तो फिर

डाकखाना, सब-ट्रेजरी आफिस, जूट इन्सपेक्टर का आफिस कोआॅपरेटिव भवन, ऐग्रीकलचरल डिमांस्ट्रेटर का दफ्तर और गोदामों आदि पर हमले हुए। ११ बजे जुलूस शहर से वापस हुआ। जुलूस वाले फिर से डंगीरघाट पहुँचे, वहाँ पर सरकारी धान मौजूद था। उसे जनता ने ले लिया, सीमुलतली में भी जो धान मिला वह ले लिया गया। जिला मजिस्ट्रेट वहाँ हथियार सहित मौजूद थे, पर वे चुप रहे। पर १५ सितम्बर को जिला मजिस्ट्रेट को यह खबर मिली कि तपन थाने पर आक्रमण होगा, असल में २०० गाँव वाले तेलीघाट में धान बाहर भेजे जाने के लिए इकट्ठे थे। जिला मजिस्ट्रेट ने इन्हीं को थाने पर हमला करने वाला समझा और उन पर गोली चलाई। जनता फौरन तितर-बितर हो गई। और वहाँ से जाकर उसने एक सरकारी मुखबिर की दुकान लूट ली।

दारोगा कांग्रेसी बना—२२ सितम्बर को पुलिस वाले फूल चाँद मण्डल के घर पर पहुँचे और उनके घर में पहुँचकर चीज-वस्तु लूटी और लोगों को मारा-पीटा। फौरन गाँव वाले इकट्ठा हो गए, तो पुलिस ने गोली चलाई, पर गोली खतम हो गई, तो गाँव वालों ने पुलिस वालों को गिरफ्तार कर लिया। उन्हें कसकर रस्सी से बाँधा गया और उनसे कहा गया कि नौकरी छोड़ दो और कांग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत करो, तब छोड़े जाओगे। इस पर उन्होंने ऐसा ही किया। तब उन्हें नाश्ता कराकर छोड़ दिया गया।

परिलाहाट गोलीकांड—२४ सितम्बर को भोराडांगा के सम्बन्ध में पुलिस को यह खबर लगी कि वहाँ पुलिस के लोग गिरफ्तार हैं। इस पर थानेदार आदि वहाँ चले। रास्ते में परिलाहाट में पुलिसवालों ने दो राजवंशियों को गिरफ्तार किया। इस पर आस-पास के गाँव वाले इकट्ठे हो गए, और सौंताल तीर-धनुष लेकर चढ़ आए। इससे पुलिस वालों को उन आदमियों को छोड़ना पड़ा और वे किसी तरह गोली चलाते हुए जान बचाकर भागे। ३ व्यक्ति मारे गए, जिनमें माधाकुड़ी के ७० वर्ष के आधार मंडल भी मारे गए। इसके बाद तो इस इलाके में फिर पुलिस आई और हर तरीके का अत्याचार हुआ। सरोज-रंजन चटर्जी पर १ हजार का पुरस्कार घोषित किया गया।

हिन्दू-मुसलमान लड़ाए गए—यहाँ पर ब्रिटिश सरकार ने जो सबसे खराब बात की, वह यह थी कि उसने मुसलमान देहातियों को बुलाकर हिन्दू गांवों को

लुटवा दिया और इस सिलसिले में कई स्त्रियों की लज्जाहानि भी हुई। पुलिस काफी नहीं पड़ती थी, इसीलिए इस जघन्य उपाय का अवलम्बन किया गया। मुसलमान देहाती बेचारे क्या जानते कि इसमें क्या रहस्य है, वे यह समझ कर दौड़ पड़े कि मुसलमानी राज्य स्थापित हो गया। ऐसी घटनाएँ अन्त तक जो कड़वापन छोड़ जाती हैं, वे भले ही भारतीय राष्ट्रीयता के लिए घातक हों, पर ब्रिटिश सरकार का तो काम बनता था। सरकार का यह अपराध कदाचित उसी श्रेणी में आता है, जिस श्रेणी में राजनीतिक दमन के उद्देश्य से स्त्रियों पर बलात्कार करना।

३४

उड़ीसा में आन्दोलन

संगठन कमजोर—इस आन्दोलन में उड़ीसावासी भी पीछे नहीं रहे। इन्डिया ऐक्ट १९३५ के समय से उड़ीसा पृथक प्रान्त बन गया था। जबसे उधर जापान ने आक्रमण किया तब से बराबर यह खबर फैल रही थी कि शायद उड़ीसा की तरफ से भारत पर आक्रमण हो। इस कारण समुद्र तट कटक से राजधानी उठाकर सम्भलपुर ले जाई गई। मेदिनीपुर की तरह यहाँ की नाव तथा साइकिलें भी ले ली गई थीं। यहाँ गरीबी तो हमेशा से है, तिस पर ये कारण, इसलिए ९ अगस्त का नारा उड़ीसा में पहुँचते ही वहाँ की जनता क्षुब्ध हो उठी। पर यहाँ भी संगठन की कमी थी। यहाँ के आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि सरकार के साथ-ही-साथ अत्याचारी जमींदारों के विरुद्ध आन्दोलन किया गया। यहाँ किसानों तथा विद्यार्थियों ने ही आन्दोलन में सबसे बढ़कर हिस्सा लिया। यहाँ पर भी १९३९ में युद्ध छिड़ते समय कांग्रेस मन्त्रिमण्डल था, उसने इस्तीफा दे दिया था। पर बाद को कुछ कांग्रेसी एम० एल० ए० कांग्रेस से अलग होकर वहाँ मन्त्रिमण्डल बनाने पर तुल गए और पार्लकमेडी के के राजा के नेतृत्व में एक मन्त्रिमण्डल बना। पर यह मन्त्रिमण्डल बिल्कुल सरकार का पिट्ठू था। फिर कांग्रेस के एम० एल० ए० जनों के विश्वासघात के कारण यहाँ की कांग्रेस को धक्का पहुँचा, इसमें संदेह नहीं।

कटक—नेताओं की गिरफ्तारी से कटक में सर्वत्र हड़तालें तथा सभाएँ हुई। छात्रों ने विशेष भाग लिया। रावेनशा कालेज के विद्यार्थियों ने नेतृत्व किया। छात्राओं ने भी अच्छा हिस्सा लिया। छात्राओं को डराने के लिए यह धमकी दी गई कि यदि हड़ताल तोड़कर कालेज में नहीं आयँगी तो उनका नाम काट दिया जायेगा। इस पर इन लड़कियों ने कालेज के दफ्तर पर हमला बोलकर उसके जो कागजात मिले उनमें आग लगा दी। कटक के मुसलमान छात्रों ने भी आन्दोलन में पूरा भाग लिया।

जनता द्वारा हमले—अब तो तोड़-फोड़ का कार्यक्रम शुरू हो गया। १६ अगस्त को कुछ राजनीतिक कैदी बाहर भेजे जा रहे थे, इस पर तीन-चार हजार की भीड़ इकट्ठी हो गई और उसने इसे रोका। इस पर गोली चली, एक मरा तथा कई घायल हुए। कांग्रेस दफ्तरों पर पुलिस पहले ही ताला डाल चुकी थी। उन पर हमले हुए। कई सरकारी इमारतें जिनमें जगतसिंहपुर की तहसील, अरसभा का डाकखाना, रेवेन्यू दफ्तर आदि थे, जला दिए गए। १० अगस्त से ही कटक में १४४ लगा था, फिर भी रोज इसे तोड़कर जुलूस निकलते। यहाँ भी सरकार ने हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों को भड़काया और जब सामूहिक जुर्माना हुआ तो मुसलमान उससे बरी कर दिए गए, यद्यपि तथ्य यह है कि मुसलमान आन्दोलन में शामिल थे।

पुरी—पुरी में छात्रों ने बहुत दिनों तक हड़ताल की। इस जिले में तोड़-फोड़ के कार्य कम हुए। नीम पाड़ा के थाने पर हमला हुआ, पर पुलिस ने गोली चलाई, एक मरा और कई घायल हुए।

बालासोर—बालासोर में छात्रों ने आन्दोलन शुरू किया। इस जिले में तोड़-फोड़ के कार्य बहुत हुए। धाम नगर और खड़िया के इलाके में क्रान्तिकारी कार्य अधिक हुए। एकाध मजेदार घटना भी हुई। ६ व्यक्ति बालासोर की अदालत में चुपके से घुस गए और उन्होंने एकाएक रिकार्ड जलाना शुरू किया और बात-की-बात में उन्होंने रिकार्ड जला भी डाला। बाद को ये लोग गिरफ्तार कर लिए गए। इस जिले के क्रान्तिकारी नेता मुरलीधर पंडा चोरबाजारियों को लूट कर धन जनता में बँटवा देते थे। सरकारी अफसरों का घर भी इसी ढंग से लूटा जाता था। २२ सितम्बर को ब्रिटिश सरकार को खबर मिली कि कटसाही के पास मुरलीधर हैं। वहाँ ५-६ हजार की भीड़ भी थी। पुलिस वाले वहाँ पहुँचे, पर वे कुछ कर भी नहीं पाए और उन पर हमला हो गया। दारोगा बुरी तरह घायल हो गया। गोली चली और ६ व्यक्ति मारे गए। मुरलीधर ने यह समझा कि भागने को तो मैं भाग सकता हूँ, पर जनता की बुरी गति होगी, इसलिए उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया।

प्रान्त में अन्य क्रान्तिकारी कार्य—गंजाम के जमींदार के घर पर हमला हुआ। बात यह है कि इस व्यक्ति ने सैकड़ों मन गल्ला छिपा रखा था, और

उधर जनता भूखों मर रही थी। जमींदार ने पुलिस को खबर भेजी तो पास के थाने से १८ सिपाही और एक दारोगा रवाना हुए। रास्ते में भीड़ ने पुलिस वालों पर हमला किया और उनके सामानों के थैले छीन लिए। इस पर गोलियाँ चलीं। यहाँ ४० के करीब आदमी मारे गए। इसी प्रकार दामनगर में एक गोलीकांड हुआ जिसमें ८ मरे। इस जिले में आन्दोलन का जोर सबसे अधिक रहा। गंजाम तथा संभलपुर में कोई खास बात नहीं हुई। हाँ गंजाम में एक शराब की भट्टी तथा थाने पर हमले के सिलसिले में गोली चली, जिसमें ४ मारे गए।

३५

बिहार में क्रान्ति

बिहार क्रान्ति के आगे की कतार में—यद्यपि १९४२ तक राजनीतिक भारत के मानचित्र पर बिहार कम दिखाई पड़ता था, यानी वहाँ के नेताओं के नाम के पीछे न दौड़ने के कारण यद्यपि बिहार का नाम कम सुनाई पड़ता था, पर बिहार के उस श्रेष्ठ नीरव सेवक राजेन्द्र बाबू ने बिहार को किस सुन्दर तरीके से संगठित किया था तथा यहाँ की जनता किस प्रकार जाग्रत हो गई थी, इसका पता १९४२ की क्रान्ति में लगा। इस प्रान्त के मुसलमानों ने भी काफी तादाद में आन्दोलन में भाग लिया। बिहार की शहरी तथा देहाती जनता ने करो या मरो के नारे को अपनाकर जो असाध्य साधन किए वे इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाएँगे। बिहार में मजदूरों ने भी जोरों के साथ हिस्सा लिया।

आन्दोलन में नेतृत्व कांग्रेस से नहीं आया—उड़ीसा प्रान्त में यद्यपि यहाँ कांग्रेस का संगठन देहातों तक पहुँचा हुआ था, फिर भी अगस्त क्रान्ति के समय तक जनता के सामने कोई कार्यक्रम नहीं रखा गया था। बाबू अनुग्रह नारायण सिंह ने फ्री प्रेस जनरल के फ्रीडम सप्लीमेन्ट में १९४४ में लिखते हुए साफ कह दिया था कि—"Bihar gave a very good account of itself during the last trial and although the movement was neither initiated nor controlled by official congress organisation. अर्थात् यद्यपि कांग्रेस के संगठन ने न तो आन्दोलन शुरू ही किया, और न उनका नियन्त्रण ही किया, फिर भी बिहार ने गत परीक्षा के अवसर पर बहुत अच्छा उदाहरण उपस्थित कर दिया। इसलिए जनता की बहादुरी की और भी अधिक सराहना करनी पड़ती है कि उसने बिना नेतृत्व के तथा बिना क्रान्तिकारी संगठन के इतना जबरदस्त काम किया।

क्रान्ति न कि अहिंसात्मक संग्राम—दूसरी बात जिस पर हम जोर देना चाहते हैं वह यह है कि जैसा कि श्री सिंह ने ही कहा कि "It proved be-

yond doubt the potentialities of what a non-violent struggle for freedom if scruplously pursued, could, achieve in the fullness of time." अर्थात् "इसने यह दिखला दिया कि समय पाकर यदि अहिंसात्मक स्वातत्र्य युद्ध चलाया जाय तो उसमें कितनी शक्ति है।" यह बिल्कुल गलत है। बिहार के आन्दोलन को क्रान्ति के दायरे से निकालकर अहिंसात्मक युद्ध के दायरे में घसीटने की अपचेष्टा कभी सफल नहीं हो सकती। अहिंसात्मक संग्राम में बिहार किसी प्रान्त से पीछे नहीं रहा, पर १९४२ के अगस्त में अहिंसात्मक संग्राम का कोई प्रश्न ही नहीं था। यदि १९४२ में बिहार में जो कार्य हुए, वे अहिंसा के अन्तर्गत हैं, तब तो फिर अहिंसा यानी दबाव राजनीति और क्रान्ति में कोई भेद ही नहीं है। यह अपचेष्टा नितान्त हास्यास्पद है।

पटना पहले से तैयार—९ अगस्त के पहले ही पटना के क्रान्तिकारी छात्र स्वतन्त्रता के लक्ष्य को लेकर मर मिटने के लिए व्याकुल हो रहे थे। श्री अनुग्रह नारायणसिंह ने उक्त लेख में लिखा "१९४२ की ३१ जुलाई को बहुत जोर का पानी पड़ रहा था, फिर भी उसी में छात्रों की एक बहुत महत्त्वपूर्ण सभा हुई। अंजुमन इस्लामिया हाल खचाखच भरा हुआ था, नौजवानों का बहुत बड़ा समूह बाहर खड़ा भीग रहा था। उन नौजवानों के चेहरों पर जोश की दिव्य प्रभा थी, यद्यपि उनमें से कोई भी नहीं जानता था कि क्या कार्यक्रम अपनाया जायगा। ९ अगस्त को देश-भर में नेताओं की गिरफ्तारी शुरू हुई। यद्यपि यह पहले से कानाफूसी हो रही थी कि अगस्त प्रस्ताव के पास होते ही कुछ घण्टों के अन्दर नेताओं की गिरफ्तारी हो जायगी, फिर भी लोग यह समझते थे कि प्रस्ताव में जो रुख दिखलाया गया है, उसके कारण गिरफ्तारियाँ शायद न हों। मेरे प्रान्त में किसी को भी यह पता नहीं था कि कांग्रेस का स्वीकृत कार्यक्रम क्या है। हमने इस सम्बन्ध में जानकारी हासिल करने की बहुत कोशिश की, पर हमें कुछ भी सफलता नहीं हुई। इधर-उधर स्पष्ट अफवाहें तो फैल रही थीं, पर कोई प्रामाणिक बातचीत नहीं मालूम होती थी। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद ही प्रान्त-भर में अजीब बेचैनी फैल गई। विशेषकर विद्यार्थियों के जोश का कोई ठिकाना नहीं था।"

१० अगस्त—१० अगस्त को छात्रों की हड़ताल से कार्यक्रम का सूत्रपात हुआ। अधिकतर छात्र तो निकल आए पर कुछ संस्थाओं पर पिकेटिंग भी करनी पड़ी। पिकेटिंग में कई जगह छात्रों पर लाठी चार्ज हुआ। गर्ल्स हाई स्कूल के पास छात्रों के जुलूस पर घोड़े दौड़ाए गए, बेंत चलाए गए। बहुतों को चोटें आईं, फिर भी लोग पीछे नहीं हटे और जनता में जोश बढ़ता ही चला गया।

सेक्रेटेरियट पर झंडा—सेक्रेटेरियट पर झंडा चढ़ाने का जो कार्यक्रम था, वह बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण था। सच तो यह है कि इसी कार्यक्रम ने बाद को बिहार के बारूदखाने में चिनगारी का काम किया। अनुग्रह नारायण जी के अनुसार "११ अगस्त का दिन बड़े महत्त्व का था। मुख्यतः नौजवानों का एक जुलूस सेक्रेटेरियट पहुँचा और अपने असेम्बली चेम्बर पर तिरंगा झण्डा चढ़ा दिया। यह विद्रोह का सिगनल था, और इसे आसानी से दबाया नहीं जा सकता था। असेम्बली चेम्बर के बाहर तैनात अफसर और लाट भवन में बातचीत हुई। गोली चलाने की आज्ञा मिली। आधे दर्जन से अधिक नौजवान जिनमें कि एक बालक भी था, शहीद हो गए। अन्य कई घायल हुए। घायलों की प्राथमिक सुश्रूषा का कोई इन्तजाम नहीं था। घायल तथा मरे हुए उठाकर अस्पताल भेज दिए गए।"

वीर बालक—इस अवसर पर जो बालक मरा था उसके सम्बन्ध में ज्ञात हुआ है कि जिस समय वह अस्पताल पहुँचाया गया था, उस समय तक वह जीवित था। उसे कुछ मुहूर्तों के लिए होश भी आया तो उसने डॉक्टर से यह पूछा कि गोली कहाँ पर लगी है, सीने में या पीठ में ? डॉक्टर ने इसका उत्तर दिया कि 'सीने में'। बस इस पर उस वीर बालक के चेहरे पर एक तृप्ति की हँसी खेल गई और उसने हमेशा के लिए आँखें मूँद लीं। यह भी ज्ञात हुआ है कि घायलों पर जो गोली मारी गई थीं, वह दमदम गोलियाँ थीं, जिनका व्यवहार अन्तर्राष्ट्रीय विधान से इस कारण मना है कि इसकी चोट से भले ही बच जाय, पर इसके छूते ही सड़न पैदा हो जाती है। निहत्थी जनता पर इस प्रकार की गोली चलाना साम्राज्यवाद की बर्बरता का परिचायक था, इसमें कोई संदेह नहीं।

क्रान्तिकारी कार्य—इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने आतंकवाद का प्रारम्भ

किया। जनता ने इसका जवाब क्रान्तिकारी कार्यों से दिया। पटना के स्टेशन, सब लेटरबॉक्स, डाकखाने और स्टेशन के गोदामों पर जनता के हमले हुए। तार काटना, पटरियाँ उखाड़ना, इञ्जन तोड़ना यह सब होता रहा। ११-१२ और १३ अगस्त को सम्पूर्णरूप से जनता का राज्य रहा। पर सरकार कब तक इस बात को बर्दाश्त करने वाली थी। १४ अगस्त को गोरे सैनिक काफी तादाद में आ गए। जब इस तरह शहर के लोग क्रान्तिकारी मार्ग पर आगे बढ़े तो उधर देहातों में भी भयंकर रूप से तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हुए। फतुहा में दो कनाडियन अफसर जनता द्वारा जला दिए गए। हिलसा और बिहार शरीफ में सरकारी इमारतों पर झण्डा फहराया गया। भोकासा और बेहरा में कपड़े की गाँठें लूटी गईं। फुलवारी में जनता ने हमले किए तो उस पर गोली चली। १७ मरे। इसी प्रकार देहात में सर्वत्र जोर के तोड़-फोड़ हुए। फौज आने पर भी ये हमले चलते रहे।

चम्पारन—चम्पारन में १० और ११ को जुलूस निकले। जुलूसों पर मनमाना लाठी चार्ज हुआ तो तोड़-फोड़ का काम शुरू हुआ। कहते हैं कि इस विषय में रक्सौल ने नेतृत्व किया। नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं है, इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि सभी सरकारी इमारतों पर किसी-न-किसी रूप में आक्रमण हुए। पुलिसवाले थाने छोड़ कर हेडक्वार्टर भाग गए। इस जिले में सबसे मजेदार बात यह हुई कि आन्दोलन जब शुरू हुआ तो कलेक्टर हिन्दू थे। सरकार ने इनको निकाल कर उनसे कहीं नीचे दर्जे के एक गोरे को कलेक्टर बना दिया। जब फौज आई तो इस जिले में कोई अत्याचार बाकी नहीं रखा गया।

गोविन्दगञ्ज थाने के कार्यकर्ता सबसे अधिक क्रान्तिकारी साबित हुए। ऋषिजी, सहदेव प्रसाद, जगन्नाथ प्रसाद, ब्रह्मानन्द तिवारी ने एक समान्तराल सरकार-सी बना रखी थी। पुलिस ऋषि जी को गिरफ्तार नहीं कर सकी, यानी तभी गिरफ्तार कर सकी जब उन्होंने एक सभा में अपने को गिरफ्तार कराया। बेतिया में जनता पर गोली चली, आठ मरे। ऋषि जी का संगठन मुखबिरों को सजा देता था, तथा जनता की हर तरीके से सहायता करता था।

शाहाबाद—शाहाबाद में १० अगस्त को प्रदर्शन हुआ। शाम के समय

रमना मैदान में सभा हो रही थी। प्रद्युम्न मिश्र नामक एक नेता का भाषण हो रहा था। इतने में पुलिसवाले भीड़ के अन्दर पहुँचे और मिश्रजी को गिरफ्तार करने के लिए आगे बढ़े। जनता को तैश आ गया और पुलिस को घेर लिया। बस पुलिस वाले भाग खड़े हुए। इतने में और पुलिस आ गई, पर वह चुपचाप खड़ी देखती रही। पुलिसवालों को यह हुक्म दिया गया कि वे गोली चलाएं, पर उन्होंने ऐसा करने से इनकार किया। इसके बाद तो जनता ने सरकारी इमारतों पर झण्डा फहराने का कार्यक्रम अपनाया और उसमें सफलता मिली। बाद को जब गोरे आए तो वे महीनों में मुश्किल से क्रान्ति को दबा पाए। जब दमन शुरू हुआ तो वीरपुर गांव के चन्द्रमणि सिंह का घर लूटा गया। श्री जगतनारायण लाल के बयान के अनुसार सिंह जी के मकान को गाँववालों से तोड़वाया गया और जिन्होंने तोड़ने से इनकार किया वे बुरी तरह मारे गए।

एक रिपोर्ट—एक रिपोर्ट के अनुसार प्रायः सभी गाँव के धनी, जमींदारों, सरकारी नौकरों जैसे मजिस्ट्रेटों, रिटायर्ड अफसरों आदि ने अपने-अपने घर पर गोरे सिपाही तथा सशस्त्र पुलिस को निमंत्रण देकर अपने यहाँ पड़ाव डलवा रखा था। वह अपने एजेन्टों के द्वारा क्रान्तिकारियों तथा कांग्रेसियों की गिरफ्तारी करवाते थे। यह तो इनका हाल था, पर रेल, तार डाकखाने के कर्मचारियों तथा देशी सिपाहियों को एक मास तक जनता से पूरी सहानुभूति रही। व्यापारियों ने कुछ भय के कारण और कुछ देशभक्ति से कार्यकर्ताओं को महीनों तक खाना आदि खिलाया। क्रान्ति दब जाने पर इन देशी सिपाहियों ने भी जनता पर काफी जुल्म किए। थानेदारों ने कार्यकर्ताओं के परिवार से नाजायज तरीकों से काफी रुपए लिए। कम्युनिस्टों ने भी सरकार का हाथ बटाया।

झण्डे पर कई शहीद—डुमराँव में १६ अगस्त को ५ हजार का एक जुलूस झण्डा फहराने के लिए आया। कपिल मुनि नाम का एक नौजवान इसका नेतृत्व कर रहा था। झण्डा लेकर जब जुलूस आगे बढ़ा तो थानेदार ने चेतावनी दी, पर कपिल मुनि बढ़ते ही गए। फौरन गोली चली और कपिल मुनि वहीं पर शहीद हो गए। इस पर रामदास लोहर नामक एक व्यक्ति आगे बढ़ा तो उसे भी गोली मार दी गई। ६० वर्ष का एक बूढ़ा आगे बढ़ा, उसको भी गोली मार

दी गई। तब १६ वर्ष का एक लड़का गोपाल राम आगे बढ़ा, उसको भी गोली मार दी गई। इस प्रकार की घटना शायद १६४२ के इतिहास में भी यह एक ही है।

गया—गया में बिहार के अन्य स्थानों के मुकाबले में आन्दोलन देर में शुरू हुआ। १३ अगस्त तक जनता देखती रही कि नेताओं की ओर से कुछ होता है या नहीं, पर नेता तो गिरफ्तार हो गए और उन्हें भी यह नहीं मालूम था कि क्या कार्यक्रम है, इसलिए अब जनता ने अपना काम शुरू किया। देहातों में थानों पर आक्रमण हुए। जब यह समझा गया कि थानों की रक्षा नहीं हो सकती, तब बहुत से थाने खाली कर दिए गए और सिपाही तहसीलों में इकट्ठे हो गए। कई डाकखाने तथा नहर के दफ्तर फूँक दिए गए। जब जनता कुरथा थाने पर झण्डा फहराने पहुँची, तो लाठियों तथा बर्छियों से उसका स्वागत हुआ। श्यामविहारी लाल नामक एक कांग्रेसी शहीद हुए। मुसलमानों ने भी आन्दोलन में भाग लिया। मास्टर दुसाधसिंह अरवाल थाने में मारते-मारते मार डाले गए। उनका अपराध यह था कि वह कांग्रेसियों का साथ देते थे।

भागलपुर—भागलपुर में १० अगस्त को ही कचहरी, कलेक्टरी, तथा हेड पोस्ट आफिस पर धावा बोला गया और झण्डा फहराया गया। ब्रिटिश सरकार ने भी नेताओं को गिरफ्तार करने के अतिरिक्त कांग्रेस-भवन पर ताला डाल दिया। १६ अगस्त को जनता ने इसे मुक्त कर लिया। रेल-गोदाम लूटा गया, फिर कई सरकारी इमारतें जलाई गईं। खगरिया लाइन में बड़ी दूर तक पटरी उखाड़ी गई। देहातों में आन्दोलन फैला तो १३ अगस्त को पुलिस ने सैदाबाद के चर्खा-शिक्षण शिविर के चरखों को तोड़-फोड़ डाला और लोगों को थाने में रोटी पकाने के लिए पकड़ ले गए। इस पर जनता को क्रोध आया, और वह थाने पर टूट पड़ी। थाने की सब चीजों को नष्ट किया गया, और गाँववाले चरखे वापस छीन ले आए। बनगाँव इलाके में कांग्रेस कैम्प नाम से क्रान्तिकारी शिविर खुला और उसकी तरफ से यह हुक्म निकाला गया कि इलाके के सब लायसेन्सी बन्दूकवाले फौरन अपनी बन्दूकें दाखिल करें। ७ बन्दूकें जमा भी हो गईं। इसके अतिरिक्त और भी स्थानों पर क्रान्तिकारियों ने बन्दूकें छीन लीं।

परशुराम बाबू का दल—इस जिले में परशुराम बाबू ने और उनकी गिर-

फ्तारी के बाद सियाराम बाबू ने एक गुप्त दल का नेतृत्व किया जो बाकायदा पुलिसवालों से हथियार छीनता था, मुखबिरों के नाक-कान आदि काटे गए। सरकार ने महेन्द्रगोप तथा अन्य ७५ अपराधियों को सजा पूरी होने के पहले ही जेल से छोड़ दिया। ये लोग सब-के-सब उक्त दल में शामिल हो गए। इनके शामिल होने से दल बहुत प्रचंड हो गया। पुलिसवाले तो इस दल के नाम से थर-थर कांपते थे। इस दल का नाम सुनते ही उनकी घिग्घी बँध जाती थी। बाद को महेन्द्रगोप पकड़े गए और उनको फाँसी दे दी गई। राजेन्द्र बाबू तथा अन्य नेताओं की कोशिश के बावजूद भी यह फाँसी होकर रही। सियाराम बाबू अन्त तक गिरफ्तार नहीं किए जा सके। इस दल का जोर बांका तथा भागलपुर तहसीलों में था। बाद को दमन के युग में बहीपुर थाने में जो इस दल का मुख्य केन्द्र समझा गया, प्रत्येक चौराहे पर फौजी कैम्प खोला गया। इस कैम्प के लोगों ने पूरी नादिरशाही मचा दी। जब चाहते गाँव में घुस पड़ते, जो चीज चाहते उठा ले जाते, तथा जिस स्त्री पर चाहते बलात्कार करते। इस प्रकार साम्राज्यवाद की खोई हुई साख फिर से स्थापित की गई।

मुजफ्फरपुर—मुजफ्फरपुर जिले में अगस्त क्रान्ति बड़े शानदार तरीके से हुई। पहले यहाँ भी जुलूस आदि निकला और फिर ऐमरी के व्याख्यान से क्रान्ति की ज्वाला भड़की। जनता ने करीब-करीब सभी सरकारी इमारतों पर तिरंगा फहरा दिया। पुलिस वाले तहसील या जिले में भाग गए। २४ तारीख को बाजपट्टी में एकत्र जनता ने एस० डी० ओ० हरदीप सिंह, एक थानेदार तथा दो सिपाहियों को जान से मार डाला। इसका बदला लेने के लिए ११ लारी फौज सहित प्रान्त के तथा जिला के उच्च अधिकारी पहुँचे। पुपरी के भागे हुए थानेदार भी पहुँचे। वहाँ के प्रसिद्ध लालचन्द मदनगोपाल फर्म को लूटा गया। स्मरण रहे इस लूट के समय पुलिस के आई० जी० तथा जिला कलेक्टर मौजूद थे। सेठ साहब के एक लड़के देवकी प्रसाद को मार डाला गया। अन्य लड़कों को अपमानित किया गया। घर की बड़ी बहू की लज्जाहानि की कोशिश सफल न हो सकी, क्योंकि वह वीर महिला छुरा तान कर खड़ी हो गई। पुपरी पर सरकार का विशेष कोप रहा और यहाँ बारबार लूट मचाई गई। इसी इलाके में अत्याचार से घबराकर बन्द गाँव के लोग भाग गए, और इस गाँव में फौजियों

ने आग लगा दी। यह सारा अत्याचार इसलिए और भी अधिक हुआ कि पुपरी का थानेदार रक्षक के रूप में भक्षक था। खैरियत यह है कि बाद को उसे डकैती के अभियोग में साढ़े आठ साल की सजा दे दी गई। पर इस एक जालिम को सजा देकर साम्राज्यवाद सुर्खरू नहीं बन सकता। एक को सजा दी पर हजारों तो मजा कर रहे हैं, वे शायद आगे भी मजा करें क्योंकि कांग्रेस ने पहले जो यह मांग रखी थी कि ऐसे सब कर्मचारियों को सजा दी जाए जिन्होंने १६४२ में अत्याचार किया था, उसे बाद को भुला दिया गया, और अब वे कांग्रेस सरकार के खैरख्वाह बने हुए हैं।

थानेदार जलाया गया—मीनापुर के थाने पर हमला हुआ तो गोली चली। १ मरा कई घायल हुए। इस पर जनता ने रुष्ट होकर हमला किया, थानेदार को पकड़कर थाने की मेज, कुर्सी आदि की चिता बना कर जला दिया गया।

सीतामढ़ी के स्टेशन पर जनता ने ११ अगस्त को कब्जा किया, इसके बाद १४ अगस्त को उधर की रेल की पटरी भी उखाड़ दी गई। मुजफ्फरपुर और सीतामढ़ी के बीच में जो मोटर की बहुत चालू सड़क है उसे भी तोड़ दिया गया और बीच-बीच में पुलियाँ खराब कर दी गईं।

बाद को जब साम्राज्यवादी शक्ति बढ़ी तो ठाकुर रामनन्दन सिंह का बँगला लूट लिया गया। बन्दगाँव के कत्ल में रामफल को फाँसी की सजा हुई तथा अन्य लोगों को कालेपानी की सजा दी गई।

पूर्णिया—पहले पूर्णिया जिले में भी आन्दोलन सभाएँ करने तथा जुलूस निकालने तक सीमित रहा। १३ अगस्त को जनता ने कटिहार थाने पर झंडा चढ़ाने के लिए धावा किया। गोलियाँ चलीं, आठ मरे और कई घायल हुए। ध्रुव नाम का एक १३ वर्ष का बालक मारा गया। ध्रुव के पिता डॉ० कुण्डु अभी पुत्र का दाह संस्कार कर घर के लिए रवाना हो रहे थे कि गिरफ्तार कर जेल भेज दिए गए। ऐसे पुत्र का पिता होना भी जुर्म था। इसके अतिरिक्त डॉ० कुण्डु एक प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ता भी थे। इस गोलीकाण्ड के बाद जनता में जोश और बढ़ा और फिर तो आमतौर से थानों और डाकखानों पर हमले शुरू हो गए। जनता ने एक जगह एक थानेदार और ३ सिपाही मारे, पर पुलिस ने अपनी गोलियों से सब स्थानों को मिलाकर ५० के करीब आदमी

मार डाले। २ खादी भण्डार जला दिए गए। बहुत से गांवों पर सरकार ने विशेष जुल्म किया। सैकड़ों परिवारों के घर लूटे गए तथा जला दिए गए। यहाँ के मुसलमानों ने भी आन्दोलन में कुछ भाग लिया।

सारन—सारन जिला में भी जुलूस तथा सभाओं से आन्दोलन शुरू हुआ। पर पुलिस को यह भी गवारा नहीं हुआ और सेवान में सभा पर गोली चलाई जिससे ३ मरे। इसी के बाद तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हो गए और जनता ने इस क्षेत्र में काफी सफलता पाई। छपरा स्टेशन, कचहरी, इंजिन रोड जला दिए गए। सोनपुर जंकशन पर धावा हुआ। तीन इंन्जन जलाकर छोड़ दिए गए, और चूँकि पटरी कटी हुई थी, इसलिए वे जाकर खड्ड में गिरे और बेकार हो गए। एकाध तोड़-फोड़ के समय पुलिस आ गई और गोली चली। अवश्य जनता के ही आदमी मरे।

शहीद फुलेना प्रसाद—सेवान थाने पर झण्डा लगाने की घटना इसलिए अधिक स्मरणीय रहेगी कि इसी सम्बन्ध में श्री फुलेना प्रसाद जी शहीद हुए। श्री फुलेना प्रसाद जी पुराने राजनीतिक कार्यकर्ता थे, वह तथा उनकी पत्नी श्रीमती तारावती भारत के इतिहास में सदा अमर रहेंगी। चश्मदीद गवाहों का कथन है कि आठ गोली तक श्री फुलेना प्रसाद नहीं गिरे, नवीं गोली में उनके सिर के टुकड़े-टुकड़े हो गए। इस अवसर पर ३ और व्यक्ति शहीद हुए। जिस समय फुलेना प्रसाद जी को गोली लगी, और वह गिर पड़े उस समय उनकी पत्नी उन्हीं के साथ थीं। पति के गिरने पर इस वीरांगना ने थोड़ी देर तक रुककर अपनी साड़ी का एक टुकड़ा फाड़कर पति का सिर बांध दिया, फिर वह उसी अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए आगे बढ़ी, जिसके कारण उसके पति की यह दशा हुई थी। जब झण्डा लग चुका और वह लौटी, तो फुलेना प्रसाद शहीद हो चुके थे।

सारन में दमन—जिस समय दमन चक्र चला, उस समय जनता को दबाने की सब चेष्टाएं की गईं। श्री जगलाल चौधरी के २ साल के बच्चे को जान-बूझकर मार डाला गया। रामविनोद सिंह का मकान डायनामाइट से उड़ा दिया गया। नादिरशाही की हद हो गई। जेल में राजबन्दी नारे लगा रहे थे, इसी समय बाहर से गोरों की एक टुकड़ी जा रही थी, बस यह टुकड़ी जेल में

घुस पड़ी, और चुन चुनकर लोगों को बेंत लगवाए। सारन जिला में सरकार बहुत दिनों तक बेकार रही और यहाँ की बहादुर जनता ने अपना राज्य कायम रखा।

दरभंगा—दरभंगा में जुलूसों से शुरू करके आन्दोलन तोड़-फोड़ में परिणत हो गया। १७ अगस्त को एक बहुत भारी जुलूस स्टेशन पर पहुँचा तो उस पर गोली चलाई गई। एक मरा और कई घायल हुए। जानकी मिश्र को पीटते पीटते मार डाला गया। बेहरा में श्रीमती जानकी देवी के नेतृत्व में १६ अगस्त को एक बहुत बड़ी भीड़ बेहरा थाने पर पहुँची और वहाँ के कागजात तथा अन्य सामानों में आग लगा दी। थाने वाले पहले ही से भाग चुके थे। इस प्रकार अब डाकखानों में आग लगाना तथा रेल की पटरियाँ उखाड़ना शुरू हुआ। २२ अगस्त तक यानी जब तक कि गोरे नहीं आए इधर के इलाके पर जनता का राज्य रहा। इसके पहले शहर में १२ तारीख को कचहरी पर झण्डा लग चुका था। यहाँ के अधिकारियों ने उस समय गोली चलाना उचित नहीं समझा। खलौली तथा अन्य थानों पर भी आक्रमण हुए। जब दमनचक्र चला तो फिर सरकारी अफसर कहीं पर नहीं हिचके। स्त्रियों पर बलात्कार भी हुए। जहाँ तहाँ गाँव लूटे तथा जलाए गए। दीप गाँव में दो सौ मकान जला दिए गए। इन दिनों पुलिस वालों ने जो धन लूटा उससे वे अमीर हो गए।

मानभूम—मानभूम जिले के कांग्रेसी नेताओं की अहिंसावादिता के कारण बहुत दिनों तक जनता का जोश दबा रहा। संताल तथा महतो लोग तीर-धनुष लेकर लड़ने के लिए तैयार थे, पर उन्हें अहिंसावादियों ने शान्त किया। फिर भी जब दूसरे जिलों की तोड़-फोड़ की खबर आई तो यहाँ भी वह कार्यक्रम शुरू हो गया। इस बीच में नेतागण भी बीन लिए गए थे। जिले-भर में तार काटना तथा पटरी उखाड़ने का कार्यक्रम जारी रहा। बड़ा बाजार और बांधवान के थाने में आग लगा दी गई। लालपुर और लधुरमा के सैनिक कैम्पों में जनता ने आग लगाने की चेष्टा की। जरगाँव, कबराजगढ़ तथा मानवमार में गोलियाँ चलीं। जब दमन हुआ तो और जिलों की तरह यहाँ भी भयंकर दमन हुआ।

जमशेदपुर—सिंहभूमि जिले में जमशेदपुर के मजदूरों की हड़ताल से कार्यक्रम शुरू हुआ। मजदूरों के नेतागण जेलों में ठूँस दिए गए। इसमें त्रेतासिंह भी

थे जो जेल में भूख हड़ताल के कारण शहीद हो गए। हड़ताल बहुत ही शान्ति-पूर्ण ढंग से चलती रही। मजदूरों की इस हड़ताल का सिपाहियों पर भी प्रभाव पड़ा और २८ सिपाहियों ने इस्तीफा दे दिया। ६ सितम्बर को एक विराट भीड़ जेल के फाटक पर पहुँची। उसने जेल के अफसरों से यह कहा कि हम नेताओं का दर्शन करना चाहते हैं। इस पर जेल के अफसरों ने परिस्थिति देख कर नेताओं को बाहर ला दिया। फिर व्याख्यान हुए, नेताओं को मालाएँ पहनाईं। मानपत्र भेंट किया गया, और जनता खुश होकर वापस चली गई। इस घटना को पढ़कर एक तरफ जनता स्वयं अपनी बुद्धि से इतनी आगे बढ़ी, इस पर खुशी होती है, पर दूसरी तरफ इन्हें कोई कार्यक्रम न देकर केवल भावुकता-पूर्ण नारे देकर छोड़ दिया गया, इस पर चिढ़ मालूम होती है। यदि जनता को शक्ति पर कब्जा का नारा दिया जाता तो सिंहभूमि का यह बास्टाइल तोड़ दिया जाता।

रांची—रांची के अधिकारियों ने आन्दोलन के साथ बड़े अजीब तरीके से से बरताव किया। इस कारण आन्दोलन पनप न सका। प्रदर्शनकारी सरकारी इमारतों पर झंडा फहराने आए, तो इन्होंने इसकी परवाह नहीं की। जनता झंडा लगाकर खुश होकर चली गई। कुछ जगहों पर जनता ने फिर भी सरकारी इमारतों पर ताले लगा दिए, इस पर भी अधिकारियों ने चुप्पी साध ली और जनता से कहा कि हम तो आजाद सरकार के भक्त हैं, यदि ताले डालोगे तो हमें ही कष्ट होगा। इस पर कार्यक्रमहीन भोली भाली जनता ने ताले खोल दिए। कुँडु थाने को छोड़कर सब थानों में ताले डाले गए थे। हीनू के हवाई अड्डे, लोहरदगा के फौजी कैम्प आदि कई जगहों पर तोड़-फोड़ की चेष्टा की गई। यहाँ भी एक जुलूस जेल के पास पहुँचा, राजनीतिक बन्दियों ने यह चेष्टा की कि तोड़कर बाहर आएँ, पर इखलाकी कैदियों ने उन्हें रोक लिया। बाहर जनता में कुछ इस किस्म की गलतफहमी पैदा की गई कि राजनीतिक बन्दी तो गांधी जी का हुक्म मानकर बाहर आने से इनकार कर रहे हैं। नतीजा यह हुआ कि जनता नारे लगा कर लौट गई। बाद को जब जनता चली गई तो राजनीतिक बन्दियों को गिराकर मारा गया, जिसमें आत्माराम नामक एक नौजवान को बहुत चोटें आईं।

पालामऊ—पालामऊ जिले में छात्रों ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। हड़ताल जुलूस के बाद डालटनगंज, हुसेनाबाद, लैन्सिलीगंज और लतिहार थानों पर झंडा फहरा दिया गया। डालटनगंज के जेल पर आक्रमण हुआ और नेता छुड़ा लिए गए। यहाँ डाकखानों पर भी आक्रमण हुआ। आन्दोलन का केन्द्र डालटनगंज रहा। यहाँ थाना भी जला दिया गया। शराब की भट्ठियाँ भी जला दी गईं।

हजारीबाग—हजारीबाग में आन्दोलन ने विशेष जोर नहीं पकड़ा। श्रीमती सरस्वती देवी के नेतृत्व में एक जुलूस निकला, पर कोई तोड़-फोड़ का कार्य ऐसा नहीं हुआ जो उल्लेखनीय हो। हजारीबाग शहर मुख्यतः व्यापारियों, वकीलों तथा इस प्रकार के परोपजीवियों का ही शहर है, इस कारण यहाँ कुछ न होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। इसके अतिरिक्त यहाँ की कांग्रेस नाममात्र के लिए संगठित थी, फिर जनता से उसका कभी कोई सम्पर्क नहीं था। मासिक झंडाभिवादन की बात तो दूर रही नेतागण २६ जनवरी, राष्ट्रीय सप्ताह आदि मनाना भी जरूरी नहीं समझते थे। घर बैठे सब नेता गिरफ्तार हो गए। पर इस जिले के मजदूरोंवाले इलाकों में अर्थात डोमचांच, कोडरमा आदि स्थानों में आन्दोलन बल्कि जोरों पर रहा। कोडरमा में जनता के जोश को दबाने के लिए लोगों को चौराहे पर नंगा करके मारा गया। इसके बाद लोग जेल भेज दिए जाते थे। कोडरमा में एक गोली कांड भी हुआ। डोमचांच में जनता पर गोली चली, जिसमें २ शहीद हुए।

जयप्रकाश का पलायन—हजारीबाग सेंट्रल जेल में प्रान्त-भर के बहुत से राजनीतिक कैदी इस जेल में एकत्र किए गए थे। अगस्त आन्दोलन के छिड़ते ही बहुत से क्रान्तिकारी नेता इस बात के लिए व्याकुल रहने लगे कि किसी प्रकार बाहर पहुँचा जाए। जेल में उच्च श्रेणी के नजरबन्द रात को खुले रहते थे। कार्यक्रम बना कि भागा जाए। इसके लिए दीवाली की रात (११ नवम्बर) चुनी गई, क्योंकि उस दिन जेल में भी कैदी खेल-तमाशा करने वाले थे, उसका फायदा उठाकर एक टोली ने भागने का निश्चय किया। इनमें जयप्रकाश जी, सुप्रसिद्ध भूतपूर्व क्रान्तिकारी योगेन्द्र शुक्ल, रामनन्दन मिश्र, सूर्यनारायण सिंह

गुलाबचन्द्र गुप्ता और शालिग्राम सिंह थे। ये लोग उत्सव का फायदा उठाकर चुपके से दीवार लांघ कर बाहर निकल गए, फिर मोटर पर रांची पहुँचे। यहाँ से ये रही-सही क्रान्ति का नेतृत्व करने के लिए देश में फैल गए। फिर इन लोगों ने, जो लोग पहले से गुप्त रूप से काम कर रहे थे, उनके साथ सम्बन्ध स्थापित किया, और यह कोशिश की कि क्रान्ति फिर से सुलगे। कई बार जय-प्रकाश जी गिरफ्तार होते-होते बचे। एक बार गिरफ्तार होकर भी भाग निकले। इसमें संदेह नहीं कि जयप्रकाश जी ने बहुत वीरता का परिचय दिया, पर यह कहना हास्यास्पद है कि वह अगस्त क्रान्ति के नेता थे। उन्हें अगस्त क्रान्ति का एक प्रतीक तथा प्रतिनिधि माना जा सकता है, पर नेता नहीं क्योंकि जब तक वह बाहर निकले तब तक तो अगस्त क्रान्ति एक तरह से खत्म हो चुकी थी। जो कोयले इधर-उधर छिटफुट रूप से जल रहे थे, उन्हें इसके बाद भी धधकाने की कोशिश की गई, इसमें सन्देह नहीं।

मुंगेर—मुँगेर क्रान्ति की अगली कतार में रहा। १४ तारीख से ही तोड़-फोड़ का कार्य शुरू हो गया। छात्रों तथा छात्राओं ने भाग लिया। यों तो २० में से १० थानों पर जनता का कब्जा हो गया, पर तारापुर में मेदिनीपुर की तरह अपनी सरकार संगठित की गई। एक पार्लियामेंट बनी, जज बने तथा सेना बनी। चौकीदारों से कहा गया कि वे नई सरकार के अधीन चलें। गाँवों से कहा गया कि पंचायत बनाकर अपने झगड़ों का फैसला करो। व्यवस्था इतनी अच्छी रही कि इधर के इलाकों में इन दिनों चोर-डकैत बिलकुल शान्त हो गए। अवश्य बाद को इसी कारण से ब्रिटिश सरकार ने यहाँ पर बहुत अत्याचार किया। तारापुर की एक विशेष घटना यह है कि जनता पर गोली चलाने के लिए अमेरिकन फौज बुलाई गईं, पर उसने गोली चलाने से इनकार किया। तब दूसरी फौज बुलाई गई। तारापुर के अतिरिक्त तोड़-फोड़ इतनी अधिक हुई कि ब्रिटिश सरकार बहुत दिनों के लिए खत्म हो गई। यहाँ करीब-करीब सब सर-कारी इमारतों पर झंडा फहरा दिया गया। अन्त तक सरकार ने यहाँ दमन करने के लिए हवाई हमले की शरण ली और चलती-फिरती जनता पर बिना कारण गोलियाँ बरसाईं, जिनसे सैकड़ों घायल हो गए और ४ मरे। स्मरण रहे

कि केवल हवाई हमलों से ही इतने शहीद हुए। बरियारपुर की घटना है कि वहाँ एक टोली के एक व्यक्ति को गोली मार दी गई।

आरा—आरा में भी आन्दोलन बहुत जोरों पर रहा। कोइलवर स्टेशन से मुगल सराय तक ई० आई० आर० की पूरी लाइन काट दी गई। इधर की सभी लाइनें रोज तोड़ी जातीं। ५ सितम्बर तक मास्टर जग्गूलाल की अध्यक्षता में तोड़फोड़ के कार्य हुए। देहात की क्रान्तिकारी जनता शहर में पहुँची और शहर आरा के सरकारी दफ्तरों, कचहरी, मैगजीन पर जनता का कब्जा रहा। बाद को मास्टर जग्गूलाल के घर में डाइनामाइट डालकर उड़ाने की धमकी दी गई। जब मास्टर साहब गिरफ्तार हुए तो उन पर अमानुषिक अत्याचार हुए, इस पर उनके पिता को इतना शोक हुआ कि वह मर गए। भाई कपिलदेव गोरों की गोली से मारा गया, फिर गोरों ने अपने हाथ से उसकी अंतड़ियाँ निकाल डालीं। गोरे रेलवे लाइन की तरफ किसी बटोही को भी देखते, यहाँ तक कि भेड़, बकरी, बैल, भैंस को भी गोलियाँ मार देते थे। स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया गया और उन्हें मोटर पर ले जाकर निर्जन स्थान में छोड़ दिया जाता था। एक पुराने खैरख्वाह शशिशेखर प्रसाद सिंह कहते ही रह गए कि हम हमेशा ब्रिटिश सरकार के खैरख्वाह रहे, तथा ५७ के गदर में हमारे खानदान ने अंग्रेजों को मदद दी, पर उन्हें चार गोलियाँ मारी गईं, फिर भी वह बच गए। कोइलवर से आरा जाता हुआ प्रत्येक पथिक मारा जाता था। आरा कोइलवर के बीच १ मील दूरी से एक व्यक्ति को गोली से मारा गया। चांदी गाँव के हाईस्कूल के पुस्तकालय को गोरों ने नष्ट किया। जमीरा में कुछ लोग पाखाना फिर रहे थे, उनको गोली मार दी गई। घोड़ादेई के कवि कैलाश सिंह को गरम पानी में डुबो-डुबो कर मार डाला गया। बबूरा में दीप नारायण सिंह के घर में पेट्रोल छिड़क कर आग लगा दी गई। जगदीशपुर थाने के बलिगाँव के छट्ठन राय के कांग्रेसी पुत्र को गिरफ्तार करने के सिलसिले में छट्ठन राय को गोली मार दी गई। लसाढ़ी में जब गोरी फौज आई तो वहाँ की जनता, जिसमें ग्वाले अधिक थे, जोश में आकर नगाड़े बजाते हुए उन पर टूट पड़ी, इसमें १२ व्यक्ति गोली से शहीद हुए जिनके नाम ये हैं—वासुदेव सिंह, शीतल

सिंह, केशव सिंह, जगन्नाथ सिंह, सभापति सिंह, गिरवर सिंह, महादेव सिंह, रामानुज पांडे, शीतल मिस्त्री, केशव प्रसाद सिंह, अक्लिदेवी और द्वारिका प्रसाद सिंह।

इन घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि सब जिलों को देखाजाए तो अगस्त क्रान्ति में बिहार का स्थान सब प्रान्तों से ऊंचा रहा।

३६

मध्यप्रान्त का आन्दोलन

नागपुर—इस भूतपूर्व प्रान्त के दो हिस्से थे, एक मराठी मध्यप्रान्त और एक हिन्दुस्तानी मध्यप्रान्त। मराठी मध्यप्रान्त में ही अस्ठ और चिमूर स्थित है जिनका नाम भारतवासी बच्चे-बच्चे की जीभ पर हो गया था। पहले हम नागपुर को लेते हैं। यहाँ पर भी जुलूस, सभाओं के बाद तोड़-फोड़ शुरू हुई। खाया में रेल की पटरियाँ उखाड़ी गईं। कुछ गोरों के बँगले पर भी हमले हुए। जिनके कारण बाद को फौजियों ने बाजार लूट लिया, फिर भी सावेनर में रेल की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाया गया। अमरेढ़, रामलेट आदि ताल्लुका में भी थानों पर हमले हुए। नागपुर में ३ दिन तक जनता का राज्य रहा। शंकर नामक नागपुरी को बाद को फाँसी हुई। शहर की अदालत पर झण्डा फहराने के सिलसिले में तथा अन्य कई अवसरों पर गोली चली। नागपुर शहर तथा देहात में बाद को बहुत बार गोलियाँ चलीं। इस जिले के रामटेक ताल्लुका में आन्दोलन जोरों पर रहा। तहसील पर धावा बोला गया और खजाना लूट लिया गया। जनता को ११ लाख रुपए मिले।

हिन्दुस्तान लाल सेना—इसी जिले में कांग्रेस के आन्दोलन के पहले ही १९३९ में 'हिन्दुस्तान रेडआर्मी' का संगठन हुआ था। इस आर्मी के नेता मगनलाल बागडी तथा श्यामलाल नायक थे। यह एक सैनिक सस्था थी, और नाम से तथा काम से श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल स्थापित और चन्द्रशेखर आजाद तथा भगतसिंह द्वारा बढ़ाई हुई हिन्दुस्तान रिपबलिकन एशोसिएशन से मिलती-जुलती थी। इसका झण्डा लाल था, पर यह कांग्रेसी झण्डे का भी इस्तेमाल करती थी। मालू कोष्ठी और मदनलाल बागडी हिन्दुस्तान लाल सेना के संगठनकर्त्ता थे। यह एक गुप्त संस्था थी। अगस्त क्रान्ति ने और पार्टियों को अप्रस्तुत पाया, वे तो बातों का ही जमा-खर्चा करती थीं, पर हिन्दुस्तान लाल सेना तो इसी ढंग पर काम करती आ रही थी, इसलिए क्रान्ति

का नारा दिए जाते ही इसने जोरों के साथ अपना कार्यक्रम जारी किया। १९४२ के १४ अगस्त को इस संस्था ने शेखपाऊद नाम के एक सिपाही को गिरफ्तार कर लिया। वह एक थाने से हेड क्वार्टर को कुछ खबर लेकर जा रहा था कि और सिपाही भेजे जाएँ। यह खबर पाकर जनता तथा बागडी थाने पर पहुँचे और वहाँ जनता के हमले के साथ-साथ बागडी तथा श्यामलाल नायक ने पुलिस पर गोली चलाई, जिससे गजानन्द पासी नामक एक सिपाही घायल हुआ, बाकी सिपाही भाग गए। हेड कानस्टेबिल गौरी शंकर शोर सुनकर अपने क्वार्टर से निकल रहा था कि बागडी ने उस पर गोली चलाई और घायल कर दिया। थाने में आग लगा दी गई। बागडी के दल ने थाने के सब हथियार ले लिए। बागडी जब बाद को गिरफ्तार हुए तो उनके साथ एक बहुत खतरनाक डायरी पकड़ी गई। बागडी और मालू कोष्ठी को कालेपानी की सजा हुई। जब ऐसी संस्था मौजूद थी तो फिर नागपुर आगे क्यों नहीं रहता।

वर्धा—जब से गांधी जी ने साबरमती त्याग दिया, तब से वर्धा उनका प्रधान केन्द्र हो गया। नेताओं की गिरफ्तारी पर यहाँ सभा हुई और लोगों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी, इस पर इस सभा पर गोली चलाई गई और जंगलू नामक व्यक्ति शहीद हो गया। वर्धा में सकसरिया कामर्स कालेज के लड़कों ने आन्दोलन में बहुत कार्य किया, इस कारण उसमें ताला डाल दिया गया। ३०० छात्रों में २४ को सजा हुई। जनता अभी शान्तिपूर्ण थी कि सरकार ने हमला बोल दिया और जुर्म होने लगे।

अस्टी—वर्धा जिले में ही अस्टी नामक स्थान है। यहाँ नेताओं की गिरफ्तारी पर लोगों में जोश बढ़ा और वे थाने पर झण्डा चढ़ाने के लिए गए। थाने के पास उन पर गोली चलाई गई, जिससे जनता को जोश आया, और वह पुलिस पर टूट पड़ी। इसमें एक थानेदार रामनाथ मिश्र तथा चार अन्य पुलिस वाले मारे गए। अब थाने पर झण्डा फहराया गया। इस घटना के बाद इस इलाके पर बहुत जुल्म हुआ। एक मुकदमा चला, जिसमें ६ व्यक्तियों को फांसी की सजा हुई, जिनमें से अन्त में दो को फाँसी दे दी गई।

देवली-हिंगनधार आदि स्थानों में कुछ-न-कुछ तोड़-फोड़ के कार्य हुए, पर विशेष उल्लेख के योग्य नहीं हैं।

चिमूर—चाँदा जिले में चिमूर नामक स्थान है। १३ अगस्त को एक शान्तिपूर्ण जुलूस निकल रहा था, पर पुलिस ने इस पर ही नहीं बल्कि जहाँ-तहाँ अन्धाधुन्ध गोली चलाई। जनता को इस बात पर तैश आ गया और वह सब-कुछ भूलकर पुलिस वालों पर टूट पड़ी। ५ पुलिसवाले मारे गए। इसके बाद कस्बे के सारे रास्तों को बन्द कर दिया गया। फिर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट फौज सहित आए। डा० मुन्जे बाद को चिमूर के अत्याचार को देखने के लिए गए थे। उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि करीब १३० गिरफ्तार व्यक्तियों को तीन-चार छोटी कोठरियों में बन्द रखा गया। उन्होंने लिखा है कि "हमें यह एक छोटा-सा हाल मालूम पड़ा, लोगों पर क्या बीती होगी इसकी कल्पना की जा सकती है।" फिर श्री मुँजे मिस्टर बागडे के घर पर गए और वहां श्रीमती बागडे ने उनके सामने १७ स्त्रियाँ पेश की, जिनमें से १३ ने उनके सामने बयान दिया कि उन पर बलात्कार हुआ। नायक परिवार की एक लड़की पर एक गोरे ने तथा एक सिपाही ने बलात्कार किया, फिर उसकी सोने की अंगूठी ले ली, और उसकी बुढ़िया मां से भी दस रुपए ऐंठे। डाक्टर मुँजे ने लिखा है कि लूट के दृश्य तो हृदयविदारक थे। एक छोटी लड़की का गला घोंट दिया गया। चिमूर में पुलिस वालों के मारे जाने के सम्बन्ध में मुकदमा चला और उसमें से कई लोगों को फांसी की सजा दी गई।

भंडारा—भंडारा जिले में १४ तारीख को प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाई गई। इससे जनता नाराज हो गई और तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हो गए। डाक-खाने, स्टेशन, तारघर आदि पर हमले हुए। गोंदिया, शिरोहा, मोहरा आदि स्थानों में भी कुछ-न-कुछ आन्दोलन हुआ।

बेतूल—बेतूल में स्थानीय नेताओं की गिरफ्तारी के बाद जनता क्रोध में आपे से बाहर हो गई और पुलिस पर पत्थर फेंके गए। गोली चली, जिससे एक व्यक्ति मारा गया। कई जगह ऐसे ही छोटे-मोटे गोली काण्ड हुए। तोड़-फोड़ के कार्य भी जारी रहे। पुलिस वालों के दमन का एक नमूना यह है कि श्री वेला नामक एक कांग्रेसी कार्यकर्ता का लड़का गोली से मार दिया गया।

जबलपुर—महाकोशल के अन्य जिलों में भी इसी प्रकार छोटे-मोटे गोली काण्ड तथा तोड़-फोड़ के कार्य हुए। जबलपुर में हाई स्कूल के लड़कों ने आगे

बढ़कर काम किया, पर १४ तारीख को उनके जुलूस पर गोली चलाई गई। गुलाबसिंह नामक नौजवान शहीद हुआ। मदन महल स्टेशन जला दिया गया।

अमरावती—अमरावती में जगह-जगह तार काटे गए तथा अन्य तोड़-फोड़ के कार्य हुए। यहाँ के लोगों पर जब सामूहिक जुर्माना लगा तो उन्होंने देने से इनकार किया। यहाँ तक कि कलेक्टर भी आए, तो भी नहीं दिया। कलेक्टर ने राष्ट्रीय झण्डा उतारना चाहा, इस पर जनता से मुठभेड़ हो गई। ५ वहीं मर गए। जिले में ६ बार गोलियां चलीं, १४ मरे, ४० घायल हुए।

अकोला आदि—अकोला में सरकार ने पहले ही अत्याचार शुरू कर दिया। लोगों ने हड़ताल की, इसी पर लोग पकड़-पकड़ कर पीटे गए। स्कूली लड़कों ने विशेष कर तिलक राष्ट्रीयशाला और अकोला नेशनल स्कूल के लड़कों ने आन्दोलन में अच्छा भाग लिया। बुलडाना, यवतमाल आदि में आन्दोलन धीमा रहा।

अत्याचार का एक नमूना—जब नेता लोग १९४४ में छूटे और १९४२ की कहानियाँ सामने आने लगीं, तब सेठ गोविन्ददास के सभापतित्व में महा-कोशल के अत्याचारों पर एक जाँच कमेटी बैठी। हम उसके ब्योरे में न जाएँगे। १९४२ के २३ अगस्त को नर्मदाप्रसाद और बाबूलाल दो व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे। स्टेशन दूर होने के कारण वे चिचली के राजा साहब के घर पर टिकाए गए। इस पर एक भीड़ वहाँ इकट्ठी हो गई। नायब तहसीलदार मिस्टर अग्र-वाल ने जनता से चले जाने के लिए कहा और नहीं तो गोली मार देने की धमकी दी। इस पर जनता जाने लगी। सबसे पीछे मनसाराम था। वह अनि-च्छुक तरीके से जा रहा था। इस पर मिस्टर अग्रवाल ने मनसाराम को रिवा-ल्वर से गोली मार दी। इस हत्याकाण्ड के विरुद्ध हड़ताल रही। तब पुलिस ने लोगों को फिर निकलवा-निकलवाकर पिटवाया। २ व्यक्ति सुखलाल और प्रेमचन्द्र मार के कारण पागल हो गए। 'पुलिस आ रही है, दरवाजा बन्द कर लो' कहते-कहते ये दोनों कई दिन बाद मर गए।

३७

दिल्ली में कुछ आन्दोलन

दिल्ली में सनसनी—दिल्ली का सरकारी संगठन इस प्रकार का था तथा यहाँ की पुलिस अपने अत्याचारों के लिए इतनी मशहूर थी कि राजनीतिक आन्दोलन पर हमेशा यहाँ पर बहुत रोक-थाम रही है। बात-बात में लोग दिल्ली से निकाल दिए जाते थे। दिल्ली में नेताओं की गिरफ्तारी की खबर ९ तारीख को ही दोपहर तक लग गई। किसी ने एलान नही किया पर बहुत सफल हड़ताल हुई और संध्या समय गांधी ग्राउंड में एक विराट् सभा भी हुई।

नई दिल्ली चुप—अवश्य नई दिल्ली इन बातों से करीब-करीब अछूती रही। नई दिल्ली को तो सरकार ने अपना शहर करके बनाया ही था। वहाँ के लोग भारतीय नेताओं की गिरफ्तारी से प्रभावित नहीं हुए हों, यह बात नहीं थी पर उन सबके मुँह में किसी-न-किसी कारण ताले पड़े हुए थे। नई दिल्ली ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य में पुरानी दिल्ली से अच्छी हो सकती है और है भी, पर उसके दिमाग का वह हिस्सा गायब है, जिसके कारण लोग राजनीतिक आन्दोलनों में कूद पड़ते हैं।

लोग नई दिल्ली पहुँचे—इस कारण १० तारीख को पुरानी दिल्ली के घण्टाघर के इर्दगिर्द जो जनता इकट्ठी हुई उसने पहले यही सोचा कि नई दिल्ली को उसकी नींद से जगाया जाय। तदनुसार जनता इसी पर तुल गई, पर सरकार को पहले ही खबर लग चुकी थी और उसने शहर को पहले ही से काँटेदार तारों से सुरक्षित कर दिया था। फिर भी जनता इक्के-दुक्के करके नई दिल्ली पहुँची, और वहाँ दुकानें बन्द कराने लगी। अधिकांश दुकानें तो नुकसान के भय से पहले ही बन्द हो चुकी थीं।

कोतवाली की तरफ जुलूस—११ अगस्त को यह तय हुआ कि जुलूस बनाकर कोतवाली की ओर चला जाए, पर पुलिस ने भयंकर रूप से लाठी चार्ज किया और जुलूस के नेता खलीलुर्रहमान को गिरफ्तार कर लिया। इस पर

जनता आपे से बाहर हो गई, किसी ने पास ही खड़े डिप्टी कमिश्नर को ताक-कर ढेला या पत्थर मार दिया, बस इस पर गोली चली, और एक व्यक्ति मरा तथा कई घायल हुए ।

क्रान्तिकारी हमले शुरू—इसके बाद आमतौर से तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हो गए । म्युनिसिपल दफ्तर ने हड़ताल मानकर दफ्तर बन्द करना अस्वीकार किया, इस पर जनता ने आग लगा दी । पुलिस आई, गोली चली तो जनता ने आग बुझाने वाले दमकल वालों पर हमला कर दिया । पीली कोठी और क्वींस रोड पर पेट्रोल में आग लगाई गई । शहर के सबसे बड़े रेलवे आफिस में आग लगी । एक दारोगा जान से मारा गया । जनता का हौसला बढ़ गया तो पहाड़गंज के फौजी बैरक तथा डाकखाने पर हमला कर दिया, फौजी भाग गए । बिजली के तार काट दिए गए । पुलिस ने खूब गोलियाँ चलाई । १३ अगस्त को १५० व्यक्ति मारे गए ।

बराबर जारी—जनता में जोश बढ़ता ही गया । मजदूर, विशेष कर दिल्ली क्लाथ मिल तथा बिड़ला मिल के मजदूर, भी हड़ताल में शामिल हो गए । छात्रों ने तो खैर भाग लिया ही, पर छात्राओं ने भी एक्जिक्युटिव अफसर के घर पर पिकेटिंग की । आन्दोलन छिटफुट तरीके से चलता रहा । कहीं जुलूस निकल जाता, तो कहीं तोड़-फोड़ के कार्य होते । पर्चे तो बरावर निकलते रहे । कभी छपे हुए और कभी साइक्लोस्टाइलशुदा । नवम्बर तक कभी-कभी प्रभात फेरियाँ निकल जातीं । स्त्रियों की एक प्रभात-फेरी पर लाठी चार्ज हुआ, दो मरीं ।

देहात भी पीछे नहीं—देहातों में भी तोड़-फोड़ के कार्य हुए । कई स्थानों पर पटरियाँ उखाड़ी गईं तथा तार काटे गए । बादली तथा घेवरा स्टेशन पर हमले हुए ।

३८

पंजाब और सीमाप्रान्त का आन्दोलन

पंजाब का पिछड़ापन—पंजाब ब्रिटिश सरकार का रिक्रूटिंग ग्राउंड रहा था, तिसपर यहाँ लीग तथा यूनियनिस्ट पार्टी का जोर था, यहाँ की कांग्रेस हमेशा साहूकारों के हाथों में रही, इन्हीं कारणों से यहाँ कांग्रेस का आन्दोलन कभी नहीं पनपा। यहाँ के पढ़े-लिखे वर्ग ने अंग्रेजी सभ्यता के ऊपरी टाट को अपना रखा था और वह बहुत कुछ जनता से दूर रहने में ही भलाई समझता था। इन कारणों से पंजाब में १९४२ की क्रान्ति जोर नहीं कर पाई।

नाममात्र आन्दोलन—फिर भी नेताओं की गिरफ्तारी की कुछ प्रतिक्रिया तो हुई ही विरोध में सभाएँ हुई। कांग्रेसवाले भले ही बेखबर रहे हों, पर सरकार बेखबर नहीं रही। उसने फौरन स्थानीय नेताओं को गिरफ्तार किया, और कांग्रेस के दफ्तरों पर ताले लगा दिए। कुछ नौजवानों ने जैसा समझ में आया, वैसा काम किया। कहीं-कहीं रेल की पटरी तथा तारों को हानि पहुँचाई गई। पंजाब, वीरता का घर समझा जानेवाला पंजाब, इस प्रकार १९४२ में बिलकुल पिछड़ा रहा और कोई ऐसी घटना नहीं हुई जो उल्लेख योग्य हो।

सीमाप्रान्त के आन्दोलन की विशेषता—उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त ने इस आन्दोलन में गौरवमय हाथ बँटाया। हाँ एक बात बता दी जाय कि सीमाप्रान्त इस अवसर पर गांधीवादी दबाव-राजनीति के दायरे में ही रहा, वह शक्ति पर कब्जा करने वाली नई क्रान्तिकारी नीति को अपनाकर इसमें अपना जौहर नहीं दिखा सका। और उससे इतनी उम्मीद थी। इस प्रकार सीमाप्रान्त के कांग्रेसी क्यों कथित अहिंसा या दबाव राजनीति से बाहर नहीं निकल सके, इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि साम्राज्यवाद ने यहाँ गिरफ्तारी की नीति ही नहीं रखी। यह कहना गलत होगा कि उधर जापानी आक्रमण और इधर अगस्त विस्फोट के कारण नौकरशाही पागल हो गई, नहीं वह कभी पागल नहीं हुई, यानी पागल भी हुई तो उसके पागलपन में एक तरीका था। उसने इस क्रान्ति के दमन में

भी ऐसी नीति रखी कि जहाँ तक हो सके मुसलिम जनता में जोश तथा घृणा की भावनाएँ उत्पन्न न हों। इसी नीति के कारण उसने ऐसे स्थानों में जहाँ मुसलमान जनता ने आन्दोलन का साथ भी दिया, वहाँ भी जब सामूहिक जुर्माना किया तो मुसलमानों को उससे बरी रखा। डा० मुंजे ने मध्यप्रान्त के दमन के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट लिखी, उसमें इस अजीब बात पर विस्मय प्रकट किया। उन्होंने लिखा—"हम जिन शहरों में गए, वहाँ के तोड़-फोड़ में मुसलमानों का अच्छा-खासा भाग था। इसलिए जुर्माने के समय केवल हिन्दुओं पर जुर्माना कर उन्हें बरी करना एक ऐसी बात है जिसके सम्बन्ध में यह सन्देह होता है कि इससे हिन्दू-मुसलिम सद्भाव में ठेस लगेगी।" मैं यह भी दिखा चुका हूँ कि कुछ स्थानों में मुसलमानों द्वारा हिन्दू आन्दोलनकारियों को लुटवाया गया।

आन्दोलन का रुख बदला—इसी प्रकार सरकार ने सीमाप्रान्त में प्रदर्शनकारियों को शुरू-शुरू में गिरफ्तार नहीं किया। यहाँ तक कि खान अब्दुलगफ्फार खाँ को भी गिरफ्तार नहीं किया। इस प्रकार सारा अहिंसात्मक प्रदर्शन ही बेकार हो गया। दमन दबता भी है, पर उसमें स्फूर्तिदायक शक्तियाँ भी हैं। यदि खान अब्दुलगफार गिरफ्तार हो जाते, तो भी शायद आन्दोलन कुछ पनपता क्योंकि फिर खुदाई खिदमतगार दूसरे प्रान्तों का अनुकरण कर क्रान्तिकारी कार्यक्रम अपनाते, पर वे गिरफ्तार नहीं हुए। मशरूवाला आदि की तरह वे अहिंसा की नई व्याख्या को लेकर नहीं चले। फिर भी अक्टूबर तक वे ऊब गए, और उन्होंने आन्दोलन को एक नया रुख देते हुए शराब की दुकानों पर पिकेटिंग शुरू करवा दी।

और रुख भी बदला—पर सरकार इस पर भी चुप रही तो सरकारी इमारतों पर भी पिकेटिंग शुरू हुई। साथ-ही-साथ फौजी कैम्पों पर भी पिकेट भेजे जाने लगे। अब ब्रिटिश सरकार के दुम पर पैर पड़ने लगे, इसके अलावा इस बीच अन्य प्रान्तों में दमन द्वारा स्थिति काबू में लाई जा चुकी थी। अब सरकार यहाँ नीति बदल सकती थी। अकेले सीमाप्रान्त वाले क्या बिगाड़ लेंगे? अब लाठी चार्ज होने लगा। ६ अक्टूबर को नेता गिरफ्तार भी हुए। आन्दोलन में कुछ तेजी आई, अब तो सरकारी इमारतों पर पिकेटिंग ही नहीं, उन पर

झण्डा चढ़ाने का भी कार्यक्रम आया। जनता पर लाठी चार्ज हुआ। कुछ घायल हुए, कुछ गिरफ्तार हुए। बन्नू, कोहाट, मरदान सर्वत्र आन्दोलन का यही रूप रहा। एक जगह गोली चली, पर यह शायद स्थानीय अफसर की गलती थी, वह शायद ब्रिटिश सरकार की पालिसी समझ नहीं पाया था। और जगहों पर तो जुल्म करने के लिए लोगों को तमग़े मिले, पर इस अफसर का ग्रेड ही घटा होगा। वह ब्रिटिश सरकार की long range पालिसी के विरुद्ध गया था। दूसरे स्थानों पर आन्दोलन-कारियों के कारण अन्य लोग भी गिरफ्तार हुए, स्त्रियों पर बलात्कार हुए, पर यहाँ जो लोग बढ़कर आन्दोलन में शरीक हुए थे, वे ही गिरफ्तार किए गए। कुल अढ़ाई हजार व्यक्ति अन्त तक गिरफ्तार हुए। इतने छोटे प्रान्त के लिए ढ़ाई हजार गिरफ्तारी कम नहीं थी, इसके लिए वहाँ की कांग्रेस बधाई के योग्य है, पर ये लोग जिस प्रकार और जितनी देर में गिरफ्तार हुए, उससे जनता में विशेष जोश उत्पन्न नहीं हुआ।

३९

गुजरात, सिन्ध, काठियावाड़

गुजरात, गांधीवाद से आगे बढ़ा—सीमाप्रान्त अहिंसा के प्रति सच्चा रहा, पर स्वयं गांधीजी का जन्म प्रान्त गुजरात-कठियावाड़ अहिंसा के प्रति उस प्रकार सच्चा नहीं रहा। बात यह है कि खानबन्धु गांधी जी से भी अधिक गांधीवादी हो गए थे, पर गुजरात तथा कठियावाड़ क्रान्ति की अगली कतार में रहे।

अहमदाबाद—स्वाभाविक रूप से अहमदाबादवालों ने अपने शहर के अतिरिक्त सारे गुजराती भाषी इलाके को संगठित किया। मजदूरों ने यहाँ कांग्रेस का पूरा साथ दिया, और उन्होंने हड़ताल कर दी। इसका एक कारण तो यह था कि यहां के मजदूरों पर कम्युनिस्टों का कोई प्रभाव नहीं था, दूसरे पूँजीपति भी आन्दोलन की सफलता चाहते थे। रायिस्टों तथा कम्युनिटों का यह कहना है कि पूँजीपतियों ने दो-दो महीने की तनख्वाह देकर मजदूरों को विदा कर दिया, पता नहीं यह कहाँ तक सत्य है, पर यदि सत्य भी है तो यह कोई लज्जा की बात नहीं। पूंजीपतियों ने भले ही ऐसा अपने मतलब से किया हो, और भले ही वे स्वतन्त्रता का अर्थ पूँजीपति राज्य लगाते हों, पर इस अवसर पर उन्होंने जो कुछ किया, उससे क्रान्तिकारी शक्तियों को स्फूर्ति ही मिली।

श्री विनोद किनारीवाला—मजदूरों, विद्यार्थियों तथा गुमाश्तों की एक सम्मिलित युद्ध समिति बनी। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की कई स्थानीय तथा प्रान्तीय संस्थाएँ तो थीं ही। १० तारीख को विद्यार्थियों के एक जुलूस पर गोली चली, और श्री विनोद किनारी वाला नामक एक छात्र शहीद हो गया। वह झण्डा लेकर आगे-आगे चल रहा था। पुलिस ने झण्डा हटाने को कहा पर झण्डा नहीं उतरा, छात्रों ने उसे देने से इनकार किया। अन्त में लाठी चार्ज और अश्रुगैस का प्रयोग कर भीड़ को तितर-बितर किया गया। लाठी चार्ज से कई छात्रों को सख्त चोटें आईं। एक हजार के करीब सैनिक अहमदाबाद में दमन के उद्देश्य से घूमने लगे।

बढ़ी हुई गति—फौजियों ने नागरिकों पर तरह-तरह के जुल्म किए। ये जब-तब गोलियाँ भी चलाने लगे। रास्ते में जो मिलता उसी की पिटाई होने लगी। फिर गोलियाँ कभी इधर से सन् से आतीं, तो कभी उधर से। १२ अगस्त को ८ बार गोलियाँ चलीं। जब लोगों को बाहर निकलना मना हो गया, तो लोग छत पर चढ़कर रात को नारे लगाने लगे। साथ ही तोड़-फोड़ के कार्य होने लगे। कहीं थाने पर बम डाले गए, तो कहीं स्टेशन को नुकसान पहुँचाया गया। शहर के सारे तार काट दिए गए। दारोगाओं के बँगलों तथा पुलिस हेडक्वार्टर पर हमले हुए।

खेड़ा का अडास कांड—खेड़ा जिला भी पीछे नहीं रहा, वहाँ भी जुलूस आदि निकले। लाठी तथा गोलीकांड हुए। फ्री प्रेस जर्नल में अडास में जो कांड हुआ था, वह यों है। बड़ौदा से बम्बई जाने वाली गाड़ी पर ३४ छात्र रवाना हुए। उनका उद्देश्य यह था कि दीवारों पर कार्यक्रम खरिया-मिट्टी से लिखा जाय, तथा अन्य तरीके से कांग्रेस के कार्यक्रम का प्रचार किया जाय। वह अपना काम कर अडास पहुँचे, जहाँ से वे बड़ौदा लौटना चाहते थे। ज्योंही वह अडास पहुँचे, त्योंही चार या छै रायफलधारी पुलिस वाले जो उन्हीं की टोह में थे उनके पास आए, और बोले कि बैठ जाओ, इस पर छात्र बैठ गए। उन्होंने समझा कि या तो पुलिस वाले उन्हें गिरफ्तार करेंगे या मारेंगे। वे इसके लिए तैयार हो गए। इसके बाद पुलिस वालों ने छात्रों के सीने से बन्दूक लगाकर गोलियाँ चलाईं। दो या तीन के सीने में गोली लग गई। चार छात्र वहीं मर गए, १२ घायल हुए, जिनमें से १ बाद को अस्पताल में मर गया। पुलिस ने केवल इन्हें मार ही नहीं डाला, बल्कि अन्तिम समय में लोगों को पानी भी नहीं देने दिया। इसी हालत में मृत तथा घायल ७ बजे से रात बारह बजे तक पड़े रहे। तब फौजदार आया तो उसने मृत देहों को जनता के सुपुर्द किया, और घायलों को आनन्द हस्पताल भेजा। पुलिस ने बाद को इन पर मुकदमा भी चलाया।

डाकोर गोलीकांड—डाकोर में भी गोली चली। यहाँ जनता को दौड़-दौड़ कर गोली से मारा गया। मजे की बात है कि जनता चाहती तो पुलिस वालों को गिरा लेती, और गिरा भी रही थी, पर श्री छोटा भाई नामक एक सज्जन ने

जनता को रोका। पर थोड़ी देर में जब अधिक पुलिस आई तो उसने छोटा भाई को ही गोली से उड़ा दिया। पुलिस वालों को बचाने का श्री छोटा भाई को यह पुरस्कार मिला।

सूरत—सूरत में भी पहले जुलूस निकला, फिर तोड़-फोड़ के कार्य हुए। बारदोली रेल की पटरी उखाड़ने के कार्य में आगे रहा। तार तो सर्वत्र कटे। तापती बेली नामक स्थान में गांधी जी के अनशन तक रेल की पटरियाँ उखड़ती रहीं, और तार कटते रहे। पुलिस किसी भी प्रकार इसे रोक नहीं पाई। सूरत-भर में जितने थाने थे, उन पर या तो रात को छिपकर आक्रमण हुआ, या सार्वजनिक तरीके पर आक्रमण हुआ।

भड़ौंच—भड़ौंच में मेघजी नायक (जो पहले डाकू थे) तथा श्री छोटाभाई के नेतृत्व में आन्दोलन ने पहले से ही क्रान्तिकारी रूप धारण किया। इन लोगों के अनुसार कार्यक्रम बने और थानों पर क्रान्तिकारी तरीके से छापा मार कर पुलिस वालों के हथियार छीन लिए गए। मेघ जी नायक तो पहले से ही लूटमार करने में सिद्धहस्त थे। उन्होंने इस अवसर पर भी उसी नीति से काम लिया और अमीरों को लूटकर गरीबों की झोली भरते रहे। पुलिस इन लोगों की संगठन प्रतिभा के सामने परेशान थी।

छात्र रोके गए—अडास में जैसे बड़ौदा के छात्र रोके गए थे, वैसे ही १५ अगस्त को बड़ौदा का छात्र दल भड़ौंच में रोका गया। इसको २४ घण्टा रोक रखा गया। फिर जब इन लोगों के सम्बन्ध में यह इतमीनान हो गया कि ये तोड़-फोड़ के लिए नहीं निकले हैं, तो छोड़ दिए गए।

पंचमहल—पंचमहल में आन्दोलन अपेक्षाकृत धीमा रहा। फिर भी यहाँ तोड़-फोड़ के कार्य काफी संख्या में हुए। कलोल में थाने तथा अन्य कई सरकारी इमारतों पर अज्ञात व्यक्तियों ने बम फेंके। तार काटे गए, रेल की पटरियाँ उखाड़ी गईं। इन्हीं बातों की सजा देने के लिए फौज आ रही थी, तो उसके रास्ते में जो पुल पड़ता था उसे तोड़कर रख दिया गया। कुछ फौजी चोट खा गए, पर फौज आई और उसने बुरी तरह दमन किया। इस जिले के लोग लुकाछिपी में यथेष्ट होशियार हो गए थे। बाकायदा कुछ गोरिल्ला जत्थे बन गए थे, जो पुलिस को चकमा देकर अपना काम करते थे।

सिन्ध पीछे नहीं—स्वतन्त्रता के इस संग्राम में सिन्ध प्रान्त भी पीछे नहीं रहा। जैसा कि आमतौर से समझा जाता है कि सिन्ध बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है, पर श्री परशुराम जी ताहिलरमानी ने प्रमाणित किया कि सिन्ध इस संग्राम में पीछे नहीं रहा। यद्यपि इस प्रान्त की आबादी ४५ लाख मात्र है, फिर भी २५०० आदमी तो जेल गए ही थे। एक मजे की बात यह है कि जिस समय १९४०-४१ का वैयक्तिक सत्याग्रह आन्दोलन हुआ था उस समय सिन्ध को इस आन्दोलन से बरी कर दिया गया था। पर १९४२ में सिन्ध खुलकर खेला।

करांची—करांची में भी जुलूस सभाओं से आन्दोलन शुरू हुआ, इस पर सरकार का प्रहार हुआ। इससे आन्दोलन ने दूसरा रुख पकड़ा। विद्यार्थियों ने इसमें काफी हाथ बँटाया और जिन विद्यालयों में हड़ताल नहीं भी हुई, वहाँ पर हड़ताली छात्रों ने पिकेटिंग की। पर जल्दी ही पुलिस ने ऐसी परिस्थिति कर दी कि लोग घर के बाहर निकलते तो पीटे जाते, तब लोगों ने रात को अपने-अपने घरों से नारे लगाने शुरू किए। इसके अलावा लोग छतों पर से राष्ट्रीय गाने भी गाते थे। इस प्रकार सामूहिक जोश का प्रदर्शन बराबर जारी रहा। इसके अलावा लोगों ने तोड़-फोड़ के कार्य भी शुरू कर दिए। कई जगह रेल-लाइनें काट दी गईं और उसका नतीजा यह हुआ कि फौजी गाड़ियों को भी रुकना पड़ा।

शखर और हेमू कलानी—शखर में शुरू में हड़ताल आदि हुई, पर जब इसमें बाधा पहुँचाई गई तो पटरी आदि उखाड़ना शुरू हो गया। पुलिस ने तोड़-फोड़ के कार्य के सम्बन्ध में पता लगाने के लिए लोगों पर अकथनीय अत्याचार किए, चौराहे पर गिराकर मारा तथा बर्फ पर बैठाया, फिर भी जब कुछ पता नहीं लगा तो वे और भी अत्याचार करने लगे। इधर तोड़-फोड़ के कार्यों की संख्या और भी बढ़ गई। शखर के एक छात्र श्री हेमू कलानी को फाँसी की सजा दी गई और देश-भर के विरोध करने पर भी जनवरी, १९४३ को उन्हें फाँसी दे दी गई। हेमू कलानी ही शायद इस आन्दोलन के सबसे प्रथम फाँसी पाने वाले शहीद थे। हेमू कलानी एक छात्र थे, उनका नाम भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा।

सिन्ध के अन्य जिले—हैदराबाद तथा शिकारपुर में आन्दोलन का वही

रूप रहा जो करांची तथा शखर में रहा। हैदराबाद तथा शिकारपुर में स्त्रियों ने अपना कर्तव्य बहुत सुन्दर तरीकों से निबाहा और कई बार उन्हें लाठी चार्ज भी सहना पड़ा। आन्दोलन कारिणी स्त्रियों को पकड़ कर दूर जंगलों में भी छोड़ दिया जाता था, जिससे उनको बड़ा कष्ट होता था।

भावनगर—काठियावाड़ में भावनगर, राजकोट, पोरबन्दर, जामनगर अमरेडी में १९४२ की गूंज उठी। भावनगर युद्धोद्योग का प्रमुख केन्द्र था। इसलिए यहाँ पर छात्रों ने यह कोशिश की कि युद्ध द्रव्य उत्पादन करने वाले इन कारखानों में हड़ताल हो जाए। इसीलिए लोग जुलूस बना-बना कर इन कारखानों के पास पहुँचते थे और यह कोशिश करते थे कि इनमें हड़ताल हो जाय। सरकार भला इस बात को कब बरदाश्त करने वाली थी। लोग गिरफ्तार हुए। श्री हीरालाल ने लिखा है कि इस पर भी आन्दोलन धीमा नहीं पड़ा, तब सरकार ने मजदूरों पर भी जुर्माना करना शुरू किया, और जुर्माना न देने पर उनके बरतन आदि उठा ले जाना शुरू किया। इससे वहाँ की जनता का जोश टूट गया, फिर भी कुछ तोड़-फोड़ के कार्य हुए ही।

राजकोट, पोरबन्दर—राजकोट में भी प्रदर्शन हुए। पोरबन्दर में खरवास अर्थात समुद्री मल्लाहों ने आगे बढ़कर हिस्सा लिया। शुरू में जनता ने आन्दोलन को यह रूप दिया कि रियासत को चाहिए कि जरूरत की चीजों को रियासत के बाहर न जाने दे। इस पर नेतागण गिरफ्तार कर लिए गए। समुद्री मल्लाहों को इस बात के लिए मजबूर किया गया कि वे शक्कर लादें उन्होंने बोरों को लादकर समुद्र में फेंक दिया। इस पर अधिकारी झुके और वे नेताओं को छोड़ने के लिए विवश हुए, पर ज्योंही जनता का जोश घट गया, त्योंही फिर नेता गिरफ्तार कर लिए गए। इस पर रियासत की जनता एक विशाल जुलूस बनाकर महाराज के पास गई। राजा ने कुछ सीधा उत्तर देने की बजाय ऊपर से तो बातचीत चलाई, पर भीतर-भीतर आस-पास के गाँवों से अहीर तथा दूसरे लोगों को लारियों में भरकर लाया गया। जब यह सब प्रबन्ध हो चुका तो ऐसा मालूम होता है कि एक सरकारी एजेंट ने राजा की तरफ एक ढेला मारा। बस इस पर जनता पर बेभाव की पड़ने लगी इस प्रकार देशी राजा अत्याचार में पीछे न रहा। बहुत दिनों तक अत्याचार रहा। लोगों को पकड़कर न मालूम कहाँ ले

जाया गया। गांधी टोपी की कौन कहे, सफेद टोपी देखते ही मार पड़ने लगती थी। कुछ दिनों तक तो घर से निकलना मुश्किल हो गया। इसके बाद जनता की तरफ से तार काटे गए, डाक के थैले लूटे गए, पुल तोड़े गए तथा रेल की पटरियाँ उखाड़ी गईं। इस प्रकार काठियावाड़ भी पीछे न रहा।

बड़ौदा—बड़ौदा में नेताओं की गिरफ्तारी के बाद श्री अम्बालाल गांधी के नेतृत्व में चरंडा में सभा हुई। प्रजामंडल के नेता गिरफ्तार कर लिए गए और १८ अगस्त को एक जगह गोली चली, जिसमें २ व्यक्ति मारे गए। सर्वत्र सभाएँ हुईं। कुराली में एक सभा हुई, जिसमें चरंडा से एक भीड़ के साथ अम्बालाल गांधी गए। यह खबर थी कि रेल से एक फौज जनता के दमन के लिए आ रही है। बस फिर क्या था, श्री गांधी ने जनता को यह नारा दिया कि रेल आने ही मत दो। इस पर दो मील तक पटरी उखाड़ डाली गई। स्टेशन जला दिया गया। डाकखानों, चोरों (ग्राम पंचायत) तथा लेटरबक्सों में आग लगा दी गई। इसके बाद फौज लारियों से आई। अम्बालाल गांधी गिराकर मारते-मारते बेहोश कर दिए गए और उनके नौकर भी पीटे गए। एक महीने तक जुल्म होता रहा। ४५ हजार रुपया सामूहिक जुर्माना किया गया। ७ दिन तक १०० गांव वालों को बिना खाने के एक रेल के डब्बे में बन्द रखा गया। गांव वाले चोरी से कुछ खाना पहुँचा देते। बाद को मुकदमा चला और अम्बालाल गांधी को १२½ साल की सजा तथा १५५५० रुपये जुर्माना, प्रेमानन्द भट को १० साल सजा और ५००० हजार रुपये जुर्माना किया गया। श्री गांधी की दुकान जब्त कर ली गई।

४०

महाराष्ट्र और कर्नाटक

महराष्ट्र की अगली कतार में पूना—महाराष्ट्र हमेशा से भारत के सब आन्दोलनों में आगे रहा है। यहाँ के लोग बुद्धिवादी हैं, साथ-ही-साथ उनमें क्रान्तिकारी प्रवृत्ति की भी कमी नहीं है। नेताओं की गिरफ्तारी होते ही पूना में तुरन्त पता लग गया और चारों तरफ से इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे लगने लगे। जनता इस बात की प्रतीक्षा करने लगी कि बम्बई से आने वाले नेता क्या कहते हैं। पर बम्बई से आने वाली गाड़ी के पूना पहुँचते ही उससे उतरने वाले सब नेता गिरफ्तार कर लिए गए। लोगों को यह पता ही नहीं लगा कि स्वतन्त्र होने को तो हो गए, पर कार्यक्रम क्या है? पर जैसा कि श्री अनन्त कलोखे पटील ने लिखा है कि ६ अगस्त को ही पूना के छात्रों ने यह तय कर लिया कि कुछ करना है। १० अगस्त को १० हजार छात्रों का जुलूस निकला। ये लोग एस० पी० कालेज के मैदान में जाना चाहते थे। कालेज बन्द कर दिया गया और पुलिस तैनात हो गई थी। १० हजार छात्र उसके फाटक पर बैठ गए। डेढ़ घण्टे तक छात्र धूप में बैठे रहे। पुलिस के लोग छात्रों से चले जाने के लिए कहते रहे, पर छात्र उठे नहीं। तब उन पर एकाएक गोली चलाई गई। जो लोग घायल हुए, उनको किसी प्रकार की डाक्टरी मदद नहीं दी गई। ४० छात्र घायल हुए। शहर में सैनिकों का पहरा हो गया। अब तो जब-तब गोली चलने लगी। १० से १८ अगस्त के बीच कई बार गोली चली। बहुत से ऐसे व्यक्ति भी मारे गए जो अपने बरामदे से खड़े झांक रहे थे। पूना की सब सड़कें जनता के खून से तर हो गईं।

गोरे मरे, बम फटे—अब तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हो गए। कैपिटल में गोरे सिनेमा देखने आया करते थे, वहाँ बम फटा और पाँच गोरे मरे, कई घायल हुए। एक बारूद के गोदाम में आग लगा दी गई, जिससे करीब एक करोड़ का नुकसान हुआ, और ऐसा धड़ाका हुआ कि शहर हिल उठा। इस प्रकार पूना ने

भी अपना कर्तव्य किया। नेतृत्व तथा कार्यक्रमहीन जनता और क्या करती?

अहमदनगर—अहमदनगर में तो कांग्रेस के सबसे प्रधान नेतागण बन्द थे। यहाँ किले की ओर जाने की चेष्टा हुई, जिसमें नेता बन्द थे। तोड़-फोड़ के कार्य बराबर होते रहे। कई विद्यार्थियों ने बड़े साहस के काम किए और कई जगह बम फटे। एक मजिस्ट्रेट की अदालत में आग लगाई गई। कुछ सिपाहियों को मौके से पाकर जनता ने उनकी वर्दी उतार ली।

सतारा—महाराष्ट्र के सतारा ने जिस प्रकार इतिहास निर्माण किया वह एक अमर कहानी है। इस जिले के १२०० गांवों में से प्रत्येक गाँव ने क्रान्ति के लिए कुछ-न-कुछ किया। १६२१ में यह जिला आगे रहा। यहाँ सत्यशोधक आन्दोलन भी चला, जिसका किसानों पर बहुत बड़ा असर पड़ा। १६३० के आन्दोलन में विलासी गाँव ने बहुत अच्छा काम किया। १६४२ में सतारा कांग्रेस बहुत तगड़ी संस्था थी। नेताओं की गिरफ्तारी पर यहाँ जनता में जोश छा गया। कार्यकर्त्ता गाँव-गाँव दौड़ने लगे, पर कुछ निर्दिष्ट कार्यक्रम न होने के कारण वे कोई निर्दिष्ट बात नहीं कह सके, पर धीरे-धीरे जनता की क्रांतिकारी बुद्धि सजग हो गई, और २४ अगस्त से लेकर १० सितम्बर तक ५ कचहरियों पर झंडा लगाने का कार्यक्रम हुआ। २४ अगस्त को कराद में एकत्रित २५०० किसान अंडाले के बालकृष्ण पटील के नेतृत्व में एक जुलूस बनाकर कचहरी पहुँचे। पर वहाँ जब हाते में घुसने को नहीं मिला, तो एक सभा हुई, इसमें पुलिस वाले घुस आए और कहा पटील गिरफ्तार किए जाते हैं। पाण्डुरंग देशमुख पर संगीन से हमला किया गया। इस पर पटील ने लोगों को शान्ति से घर जाने के लिए कहा। अभी तक जनता शान्त थी।

तसगांव—३ सितम्बर को तसगांव तालुका के ४००० किसान तसगांव कचहरी पर चढ़ गए। वे शान्तिपूर्ण तरीके से आगे बढ़े। वे चाहते तो आसानी से कचहरी पर कब्जा कर लेते, पर अभी जनता शान्त थी। इसी प्रकार बड़ज में शान्तिपूर्ण प्रदर्शन हुए। यहाँ प्रदर्शन के नेता परशुराम गर्गे थे। ६ सितम्बर को गर्गे जी बीमार होने के कारण बैलगाड़ी पर लिमरे भाइयों के साथ प्रदर्शन के पास गए। इसके बाद जुलूस कचहरी की तरफ रवाना हुआ। परशुराम झंडा लेकर आगे खड़े हुए और पुलिसवालों से कहा कि हम झंडा फहराने आए हैं।

इसपर गोली चली। परशुराम तीन गोली खाकर शहीद हो गए। तीन और मरे, तीन अस्पताल जाकर मरे, ५० घायल हुए।

इस्लामपुर—१० सितम्बर को इस्लामपुर में पुलिस और जनता में छिड़ गई। पाण्डु मास्टर दो हजार जनता का नेतृत्व कर रहे थे, वह पकड़ लिए गए। गिरफ्तारी के समय पाण्डु मास्टर ने जनता को शान्तिपूर्ण तरीके से घर जाने के लिए कहा। जनता घर गई, फिर भी पुलिस ने गोली चलाई। इसके फलस्वरूप वराडू बरापटे वहीं मर गए। मिस्टर पण्डया नामक एक इंजीनियर जो उस रास्ते से जा रहे थे, वह भी मर गए।

नाना पटील—अब तो पुलिस वालों की धांधली बहुत बढ़ गई। पुलिस वालों ने गाँव वालों पर अत्याचार तो किया ही, इसके अतिरिक्त हवालातियों पर 'सुन्दरी' अर्थात जुल्म किया जाने लगा। अब तो बदमाश लोग इसका फायदा उठाने लगे। लोग भयभीत रहने लगे। ऐसे समय में श्री नाना पटील ने जनता के क्रान्तिकारी अंश को संगठित किया और तुर्की-ब-तुर्की पुलिस का जवाब देने लगे। नाना पटील ने पुलिस वालों की नाक में दम कर दिया। कहीं मुखबिर मारे जाते तो कहीं चौकीदार का घर फूँक दिया जाता, तो कहीं धमकी के पत्र भेजे जाते। इस प्रकार सतारा में बिल्कुल सभान्तराल सरकार रही। पटील के लोग कभी पुलिस वालों का सामना जानबूझ कर नहीं करते, पर कभी सामना हो जाता तो फिर दोनों तरफ से चलती। सरकार इनके मारे इतनी परेशान हुई कि किसी प्रकार उसका वश ही नहीं चलता था। जब कांग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई तभी सतारा के क्रान्तिकारियों ने अपना अस्त्र टेका।

पूर्वी पश्चिमी खानदेश—पूर्वी तथा पश्चिमी खानदेश में भी आन्दोलन सतारा की तरह नहीं, पर जोरदार रहा। यहाँ विद्यार्थियों का एक जुलूस निकल रहा था, पुलिस ने लाठी चार्ज किया। विद्यार्थी अगल-बगल के मकानों में घुस गए। कुछ विद्यार्थी घुस नहीं पाए या नहीं घुसे। थानेदार उनकी तरफ, जिनमें छात्राएँ भी थीं, बन्दूक लेकर लपका। इस पर एक लड़के ने सीना खोल दिया। उसे गोली मार दी गई। कुल चार छात्र मरे। एक वकील साहब जो पास से जा रहे थे, उन्होंने कुछ सहानुभूति दिखलाई, तो उनको घसीट कर जूतों से पीटा गया। शाने गुरुजी तथा उत्तम पटील और उनकी स्त्री लीला पटील के नेतृत्व

में क्रान्तिकारी तोड़फोड़ हुए। लीला पटील गिरफ्तार हो गईं, उन्हें ६ साल की सजा भी दी गई, पर वह भाग गईं। पति-पत्नी का इस प्रकार एक साथ क्रान्तिकारी होना बहुत ही सराहनीय है। यहाँ सब तरह के तोड़-फोड़ के कार्य हुए। पुलिस के साथ कई जगह खण्ड युद्ध भी हुए।

नासिक—नासिक में आन्दोलन मामूली तरीके से शुरू होकर फिर तोड़-फोड़ में परिणत हो गया। सरकार यहाँ के आन्दोलन को भी बहुत दिनों तक दबा नहीं पाई और आन्दोलन वेग से चलने लगा।

कर्नाटक—कर्नाटक आन्दोलन में पीछे नहीं रहा, बल्कि डी० पी० कर्मकार का कहना है कि १८५७ के बाद इतना जोश कर्नाटक में कभी नहीं आया था। कर्नाटक में तोड़-फोड़ का कार्य बहुत अधिक हुआ। कुछ अर्थों में सारा कर्नाटक ही सतारा हो चुका था। सरकार को इतनी परेशानी हुई कि क्रान्तिकारी नेताओं की गिरफ्तारी के लिए पांच हजार तक इनाम घोषित किया गया, पर जनता ने किसी को गिरफ्तार नहीं कराया।

तोड़-फोड़ के कार्य—हुबली में एक जुलूस पर गोली चली और एक बालक शहीद हुआ। बैलहुँगल में गोली चली, ७ मरे। निपानी में डाकखाना तथा कुछ अन्य सरकारी इमारतों में उस समय आग लगा दी गई, जब कि प्रदर्शनकारियों पर गोली चली। सौंडटी में तालुका के दफ्तर पर हमला हुआ और एक कैदी छुड़ा लिया गया। १५ सितम्बर को एक साथ हुबली के पास चार रेलवे स्टेशनों में आग लगा दी गई। इसके बाद पी० डब्ल्यू० के दफ्तर तथा अन्य सरकारी इमारतों पर हमले हुए। १७ स्टेशनों को नष्ट कर दिया गया। जिन लोगों के पास हथियार थे, छीन लिए गए। सरकारी गल्ला लूट लिया गया। ये काम बड़े संगठित तरीके से हुए और सबसे मजेदार बात यह है कि लोग चाहते तो साथ-साथ अफसरों को भी खत्म करते जाते, पर उन्होंने भारतीय समझकर किसी को नहीं मारा। बेलगाँव में बराबर तोड़-फोड़ के कार्य होते रहे। कुछ सरकारी नौकरों ने जैसे भोराव के पुलिस पटील ने नौकरी छोड़ दी। गोकाक तालुका दफ्तर में कुछ स्त्री तथा पुरुष घुस गए और उन्होंने रिकार्ड जला डाला। बेलगाँव के कडवी शिवपुर के एक वीर ने पुलिस का हुक्म न मानकर गोली खाई। जब तक गांधी जी ने अनशन नहीं किया, तब तक यहाँ आन्दोलन चलता रहा।

पुलिस वाले पर पुलिस की गोली—धारावार में एक पुलिस अफसर पुलिस के हाथों से मारे जाते बच गया। पुलिस वालों ने सुन रखा था कि इधर से तोड़-फोड़ करने वाले आने वाले हैं, इसलिए उन्होंने रास्ते पर ईंट-पत्थर डालकर रास्ता बन्द कर रखा था। उधर से पुलिस अफसर आए तो उन्होंने समझा कि तोड़-फोड़ वाले सड़क रोके बैठे हैं। उन्होंने चाहा कि जल्दी मोटर दौड़ा दें, इस पर पुलिस वालों ने गोली चलाई तो इंजिन टूट गया, पर वहाँ तो तोड़-फोड़ वालों की जगह एक पुलिस अफसर निकले।

कर्नाटक पर साढ़े तीन लाख सामूहिक जुर्माना हुआ। ५ व्यक्तियों को तो फाँसी की सजा ही दी गई, करीब २० जगह गोलियाँ चलीं। पुलिस की वर्दी छीन लेने तथा उनको निरस्त करने की बहुत-सी घटनाएँ हुई थीं।

आन्ध्र, केरल तामिलनाड : दक्षिण की रियासतें

आन्ध्र—आन्ध्र की जनता अगस्त क्रान्ति में पीछे नहीं रही। आन्ध्र में मजदूर, विद्यार्थी, किसान, महिला सभी ने गौरवमय हिस्सा अदा किया। यहाँ तोड़-फोड़ के कार्य भी बहुत हुए। गुंटूर जिले के टेनाली ने विशेष बहादुरी दिखलाई। विद्यार्थियों ने नेतृत्व किया। १२ अगस्त को विद्यार्थी रेलवे स्टेशन में घुस गए, और उस पर कब्जा हो गया। पुलिस वालों की पगड़ी उतार ली गई, और बुकिंग क्लर्कों को घर जाने को कह दिया गया। तार टेलीफोन काट डाले गए। सबसे बड़ी इमारत में आग लगा दी गई और टिकट तथा नकद उसी में झोंक दिया गया। मद्रास से उस समय एक गाड़ी आई। उसके सब मुसा-फिरों को उतारकर उसमें आग लगा दी गई। टेनाली दुनिया से कट चुका था, पर पावर स्टेशन के तार कटे नहीं थे। उसने जिले में कोई खबर दे दी। जिला मजिस्ट्रेट आ गए और गोली चली। कई मरे। इस पर यहाँ फौज रख दी गई, और इस फौज ने घोर अत्याचार किया।

कुछ कार्यक्रम था—आन्ध्र की गश्ती चिट्ठी का हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं, इसलिए यहाँ के लोग भी कतई कार्यक्रमहीन रहे हों, ऐसी बात नहीं। इस कारण यहाँ तोड़-फोड़ के कार्य बहुत सफलता के साथ हुए। भीमावरम, राजमुंडी, कोकनाडा आदि कई जगह तोड़-फोड़ का विशेष जोर रहा। रेल की पटरियाँ मीलों तक उखाड़ी गईं। एलोर में सबसे मजेदार बात यह हुई कि वहाँ नोटिस देकर तार काटा गया। ऐसा क्यों न होता जब कि आन्ध्र गश्ती चिट्ठी के कारण कांग्रेसी यह समझ रहे थे कि अब की बार नए तरीके का सत्याग्रह करना है! एलोर में आन्ध्र गश्ती चिट्ठी सार्वजनिक रूप से पढ़कर सुनाई गई। जनता ने कई जगह कचहरी, थाने आदि पर झण्डा लगा दिया। कहीं-कहीं आग भी लगा दी गई। आन्ध्र पर बाद को ५½ लाख जुर्माना किया गया। २००० के करीब व्यक्ति जेल भेज दिए गए। भीमावरम में सबसे अधिक अत्या-

चार हुआ । यहाँ के लोगों पर इस तरह विशेष जुल्म इस कारण किया गया कि यहाँ रेवेन्यू डिविजनल आफिस पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया था और वहाँ के अफसर को झण्डे का अभिवादन करने तथा जनता के साथ जुलूस में चलने के लिए मजबूर किया गया था । इसके अतिरिक्त इधर तार बहुत काटे गए थे। वे किसी भी प्रकार रोके न जा सके ।

केरल—नेताओं की गिरफ्तारी के ६ घण्टे के अन्दर ही केरल के प्रसिद्ध नेता के० कलपन तथा के० माधव मेनन गिरफ्तार हो गए । आर० राघव मेनन और गोविन्द मेनन बाद को गिरफ्तार हुए । १० अगस्त को ही केरल कांग्रेस प्रान्तीय कमेटी गैरकानूनी करार दी गई और पुलिस ने इसके दफ़्तर पर छापा मारा । किसी ने किसी को कुछ नहीं कहा, पर छात्रों ने फौरन हड़ताल कर दी। कालीकट के जमोरिन कालेज, क्रिश्चियन कालेज और अन्य हाई स्कूलों में हड़ताल हो गई । जुलूस निकालते हुए या सभा में बोलते हुए मोईडू मौलवी, एम० पी० नारायण मेनन, करुणाकर मेनन तथा डा० चन्दू गिरफ्तर हो गए । इधर नेता गिरफ्तार होते रहे पर जनता के सामने कोई कार्यक्रम नहीं था, इस कारण लोग पिकेटिंग आदि करने लगे । कचहरियों पर पिकेटिंग हुई, जिसके कारण तेलीचरी का जिला कोर्ट और कालीकोट का मुंसिफ कोर्ट, बडगरा ओट्टापलम और पालघाट बन्द हो गए और बहुत दिनों तक बन्द रहे । मलाबार की पुलिस ने बहुत जोर का लाठी चार्ज किया । फिर भी प्रदर्शन होते रहे । १९४२ के २० अगस्त को मलाबार में जो सार्वजनिक हड़ताल हुई थी वह बहुत ही स्मरणीय है । पालघाट, किलांडी, तेलचरी सर्वत्र हड़ताल रही ।

चर्खा केन्द्र भी गैरकानूनी—यह एक मजे की बात है कि १९४२ में भी केरल में रचनात्मक कार्यक्रम की कथित बला जारी रही । २० चर्खा केन्द्र चले। अवश्य ये केन्द्र देशीय महिला समाज द्वारा परिचालित थे, इस कारण क्षम्य थे। पर ब्रिटिश सरकार इन बातों को भी बर्दाश्त करने के लिए तैयार न थी । इन केन्द्रों पर भी पुलिस ने छापा मारा और ये केन्द्र भी गैरकानूनी करार दिए गए ।

'स्वतन्त्र भारतम्' पत्र—इन्हीं सब कारणों से तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हुए। गोविन्द नैयर ने लिखा है कि एक गैरकानूनी साप्ताहिक 'स्वतन्त्र भारतम्' नाम से चला और बराबर निकलता रहा। इस पत्र की कापी जिसके पास भी मिलती

उसे सजा दी जाती। पर जनता में इस पत्र के लिए बड़ा जोश था।

तोड़-फोड़ का जोर—केरल में तोड़-फोड़ जोरों से हुआ। कई जगह सरकारी इमारतें विशेषकर कस्बों की इमारतें जैसे कुरुमद्रनद तालुक की इमारतें जलाई गईं। चोम्बल नामक डिपो जलाया गया। नडूवन्नूर तथा चमनचेरी के सब रजिस्ट्री दफ्तर जलाए गए। चमनचेरी का स्टेशन जलाया गया। फेरोक के रेलवाले पुल को उड़ाने की चेष्टा की गई। कोरायन में पटेल आफिस जला दिए गए। कालीकट और कलाई के बीच रेल का आना-जाना बन्द किया गया। पल्लीकुन्नू का डाकखाना जलाया गया। इनके सम्बन्ध में बाद को तेलचरी बमकांड मुकदमा, तिरूवलपूर बमकांड मुकदमा तथा खिजरियापुर षड्यन्त्र मुकदमा चले। खिजरिया पुर में कई प्रसिद्ध व्यक्तियों को १० साल की सजा हुई, जिनमें डा० के० वी० मेनन, एन० ए० कृष्णन नैयर, सी० पी० शंकरन नैयर और पी० केशवन् नैयर थे। इन मुकदमों में जो लोग फँसे थे, उनके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया गया। लोग इतने सताए गए कि कई बीमार हो गए। गोविन्दन नैयर ने लिखा है कि कम्युनिस्टों ने लोगों को पुलिस के हवाले किया। जेल में इतना अत्याचार हुआ कि बहुत-से लोग जेल में ही मर गए। ईश्वरलाल शराफ, कोम्बीकुट्टी मेनन, कुन्हीरमनन जेल में मरे। एल० एस० प्रभु जेल से बीमार होकर छूटे और मर गए।

कोचीन और ट्रावनकोर—जिस समय आन्दोलन चल रहा था, उस समय केरल में कुछ प्राकृतिक प्रकोप भी हुआ, और सरकारी नीति के कारण दुर्भिक्ष तो था ही। श्री गोविन्दन नैयर लिखते हैं कि केरल में दो देशी रियासतें कोचीन और ट्रावनकोर हैं, इनमें से ट्रावनकोर में सरकार ने शुरू से ही इतना अत्याचार किया कि लोगों को दुनिया से काट दिया गया और वहाँ की रियासत कांग्रेस के १०० व्यक्तियों को गिरफ्तार कराके ही ठप पड़ गई। कोचीन में १५० व्यक्ति जेलों में गए। त्रिचूर तथा एरनाकुलम के विद्यार्थियों ने बहुत अच्छा काम किया। छात्राओं ने भी अच्छा काम किया और वे भी पुलिस की मार की शिकार हुईं। देशी रियासतें दमन में ब्रिटिश भारत से पीछे नहीं रहीं।

तामिलनाड—तामिलनाड में आन्दोलन बहुत सफल रहा, यहाँ भी जुलूसों तथा सभाओं से आन्दोलन शूरू हुआ, साथ ही मजदूरों ने हड़ताल शुरू कर दी।

मद्रास से कलकत्ता की गाड़ी कई दिन तक नहीं चली, क्योंकि रेल कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। मद्रास में विद्यार्थी सबसे आगे रहे। नेताओं की गिरफ्तारी पर फौरन हड़ताल हो गई। शिक्षाविभाग के अधिकारियों ने बहुत चाहा कि लोग विद्यालयों में लौट आएँ, पर कोई विद्यार्थी नहीं लौटा। जब तक मद्रास के अन्दर आन्दोलन चला, वह विद्यार्थियों की बदौलत ही चला। चेतपुर में विद्यार्थियों पर लाठी चार्ज हुआ, भीड़ को तैश आ गया, और उसने एक दारोगा तथा सिपाहियों को खूब अच्छी तरह पीट दिया। यहाँ के मजदूर बड़े क्रान्तिकारी सिद्ध होते, पर कम्युनिस्टों ने उनको अपने कर्तव्य से रोका और जितना चाहिए था, वे उतना कार्य नहीं कर सके। नहीं तो मद्रास एक ऐसा प्रान्त था और यहाँ के रेलवे मजदूर इतने संगठित थे कि बिना पटरियाँ उखाड़े ही रेलें बन्द हो जातीं।

तामिलनाड के जिले—त्रिची जिले में रेल की तोड़-फोड़ बहुत हुई। मन्नार गुड़ी स्टेशन जला दिया गया। जिस समय स्टेशन जल रहा था, उस समय उस स्टेशन की सहायता के लिए अन्य गाड़ी आई, पर भीड़ ने उसे वापस लौट जाने के लिए विवश किया। यहाँ ऐसी हालत हो गई थी कि प्रत्येक गाड़ी के साथ सशस्त्र पुलिस के दो डिब्बे रखे जाते थे। रामनद जिले में पहले जुलूस तथा सभाओं से कार्य शुरू हुआ, फिर इसके बाद आन्दोलन ने दूसरा रुख पकड़ा। यहाँ जनता की शक्ति इतनी प्रबल मालूम पड़ी कि कई थानेदार अपने थानों को खाली करके चले गए। इसके बाद लोगों का थानों पर अधिकार हो जाता था। अन्य सरकारी इमारतों में आग लगा दी गई, और यहाँ पर जेल तोड़कर कैदियों को भी निकाल दिया गया। ७२ घंटे के लिए सरकार का कहीं पता नहीं रहा, पर धीरे-धीरे फौज आई और फिर से सरकार का अधिकार होने लगा। लोगों के घरों में आग लगा दी गई, गाँव-के-गाँव लूटे गए और जिसकी चाही इज्जत रखी, और जिसकी चाही लूटी। तंजौर जिलों के तीरुवाड़ी के मुंसिफ कोर्ट तथा अन्य सरकारी इमारतों में आग लगा दी गई और उनमें जो कुछ भी मिला लूट लिया गया। कोयम्बटूर में चहरे हवाई अड्डे पर आक्रमण हुआ और उसे खत्म कर दिया गया। इस कांड का बदला लेने के लिए सरकार ने आसपास के २० गांवों को बिलकुल उखाड़ दिया। जो पुरुष मिले गिरफ्तार कर लिए गए, और

जो स्त्रियाँ मिलीं, उनको मारा-पीटा गया तथा अन्य अत्याचार किया जाता। यहाँ सरकार ने जो अत्याचार किया वह दिल दहलाने वाला है। फिर भी जिले-भर में तोड़-फोड़ का कार्य बहुत जोरों के साथ हुआ। शायद ही कोई लाइन ऐसी बची हो जो उखाड़ी न गई हो।

अन्य जिले—कोमलकोनम, मदुरा आदि स्थानों में भी कुछ आन्दोलन हुआ, पर इनमें कोई खास बात नहीं हुई। देवकोटा में अत्याचार की हद कर दी गई थी। यहाँ पर श्री गोपाल केशवन की फरारी के कारण उनकी पत्नी को नंगी करके पेड़ में बाँध दिया गया। फिर उनके ऊपर तरह-तरह के अत्याचार हुए, जिनके कारण वह मर गई।

कोल्हापुर—अगस्त आन्दोलन का प्रारम्भ होते ही कोल्हापुर की रियासत कानफ्रेंस ने आन्दोलन की घोषणा कर दी, पर इस बीच कुछ वार्ता होती रही और १९४२ के १८ अक्टूबर को ही असली संग्राम का सूत्रपात हुआ। छात्र संघ ने भी मदद दी पर आन्दोलन के प्रारम्भ होते ही सब सभाएँ, जुलूस आदि गैरकानूनी करार दिए गए, और सब राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी हो गई। लोगों को जेल भेजने के लिए तथा सजा देने के लिए विशेष अदालतें खोली गईं। अब तो तोड़-फोड़ के कार्य शुरू हो गए और २६ चवाडा, ४ बँगलों, २ दफ्तरों, ३ स्टेशनों पर हमले हुए। ६ डाक के थैले लूटे गए। बम्बई के भूत-पूर्व गवर्नर लेसलि विलसन की मूर्ति बिगाड़ दी गई। ८ जगह बम फटे। ४४५५० रुपए सामूहिक जर्माना हुआ। पर इससे जनता का क्रान्तिकारी जोश घटा नहीं, कुछ लोग जेल से भी भाग गए। इस रियासत में १६ व्यक्ति शहीद हुए।

मिरज—मिरज में ९ अगस्त को ही आन्दोलन शुरू हो गया। मिस्टर चारुदत्त पटिल ने, जो प्रजापरिषद के सभापति थे, राजा को लिख भेजा कि वे फौरन ब्रिटिश सरकार से अपना सम्बन्ध तोड़ दें और जिम्मेदार सरकार की स्थापना करें। इसका कोई उत्तर नहीं मिला, तब आन्दोलन तेज कर दिया गया। शिकारे, पटिल आदि नेता गिरफ्तार हो गए। पर जनता की हालत ऐसी थी कि मिरज के राजा ने डरकर प्रजा परिषद से एक समझौता कर लिया कि जिम्मेदार सरकार की स्थापना के लिए एक कमीशन बैठाया जायगा। इस

समझौते के अनुसार प्रजापरिषद ने अपने उस अनुरोध को वापस कर लिया कि राजा ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध विच्छेद करे। इस समझौते के अनुसार श्री शिकरे के अतिरिक्त सभी राजनीतिक कैदी छोड़ दिए गए। श्री शिकरे ने जेल में यह माँग रखकर अनशन किया कि गरीबों को कम दाम पर राजा के कोष में जमा अन्न बेच दिया जाय और मिरज राज के छोटे कर्मचारियों को मँहगाई भत्ता दिया जाय। इस पर उन्हें मिरज जेल से नासिक जेल भेज दिया गया। इस बीच में राज्य में कुछ तोड़-फोड़ के कार्य हुए जैसे बरसी रेल स्टेशन जला दिया गया, दिगरस में डाक का थैला लूट लिया गया, बम फटे। इस कारण फिर गिरफ्तारियाँ हुईं। और समझौता, वह तो कहीं भी नहीं रहा।

मैसूर—मैसूर में भी आन्दोलन तेजी पर रहा। यहाँ प्रजा-परिषद और मजदूर सभा करीब-करीब एक होने के कारण मजदूरों ने आन्दोलनों में बहुत हिस्सा लिया। मैसूर में युद्ध के उपकरण तैयार हो रहे थे, उनमें बहुत नुकसान पहुँचने लगा। इस कारण सरकार ने अन्धाधुन्ध दमन करना शुरू किया। जुलूसों पर गोलियाँ चलाई गईं, और बिना किसी परवाह के एक-एक अफसर पर सौ-सौ आदमी मारे गए। पुलिस की सबसे बड़ी बदमाशी यह थी कि मरे हुए लोगों की लाश तक नहीं देती थी। शायद पुलिस के अधिकारी यह दिखाना चाहते थे कि उन्होंने नरमी से बरताव किया है। फिर भी जनता नहीं दबी और तोड़-फोड़ के कार्य जारी हो गए। तार बराबर कटते रहे। गिरंगपट्टम में मालगाड़ी पटरी से उतार दी गई। होतालकर, आजूर, सातापुर आदि स्टेशन जला दिए गए। रेलों को यदि चलने भी दिया गया तो उन पर लोग बिना टिकट सवारी करने लगे। विद्यार्थियों तथा मजदूरों ने बहुत आगे बढ़कर काम किया। मैसूर में शायद सब रियासतों से अधिक तोड़-फोड़ तथा क्रान्तिकारी कार्य अधिक हुए। साथ ही वहाँ पर अत्याचार भी अधिक हुआ। जनता को न तो कोई कार्यक्रम दिया गया था और न कोई नेतृत्व ही था, ऐसी हालत में उसने जो कुछ किया उससे उसकी बहादुरी का प्रमाण मिलता है। पर साथ ही हम यह कहे बगैर नहीं रह सकते कि इससे नेताओं की अयोग्यता ही साबित होती है क्योंकि

४२

फुटकर स्थानों का आन्दोलन

सारा वर्णन असम्भव—यह सम्भव नहीं है कि भारतवर्ष के प्रत्येक स्थान के आन्दोलन का पूर्ण इतिहास दिया जाय। सच कहा जाय तो भारतवर्ष में सभी जगह आन्दोलन हुआ। इसलिए थोड़े से ऐसे और फुटकर स्थानों का वर्णन करेंगे जहाँ कोई विशेषता रही।

ग्वालियर—ग्वालियर हिन्दू राजा की रियासत थी, पर अपने मतलब के लिए कैसे यहाँ की राजशक्ति ने हिन्दुओं को मुसलमानों के द्वारा पिटवाया, यह द्रष्टव्य है। ज्योंही नेताओं की गिरफ्तारी हुई, त्योंही यहाँ की प्रजा परिषद ने भारत छोड़ो का नारा दिया, और राजा को यह लिख भेजा कि ३० अगस्त तक ग्वालियर ब्रिटिश सरकार से अपना सम्बन्ध तोड़ दे, और रियासत में जिम्मेदार सरकार स्थापित करे। सरकार ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। इसके विपरीत नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। १३ अगस्त को विद्यार्थियों का जुलूस निकल रहा था। इस पर बोहरा मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया। स्मरण रहे कि यह जुलूस किसी प्रकार साम्प्रदायिक नहीं था, और बोहरों के विरुद्ध तो था ही नहीं, फिर भी इस प्रकार बिना कारण आक्रमण हुआ, उसका अर्थ स्पष्ट है। यह मान लिया जा सकता है कि बोहरे पागल नहीं थे, और उन्हें उकसाया गया था तभी यह हमला हुआ। इस हमले के फलस्वरूप, या यों कहा जाय कि सरकार के षड्यन्त्र के फलस्वरूप बोहरों की दुकानें लुटने लगीं, अब सरकार को यह मौका मिल गया कि वह १४४ लगा कर सब तरह के जुलूस, सभा आदि बन्द कर दे। साम्प्रदायिक मनमुटाव बढ़ाया गया, और सब काम बन्द हो गया। इस प्रकार केवल ब्रिटिश सरकार ही नहीं भारतीय रियासतें भी जब जरूरत पड़ती तो साम्प्रदायिक झगड़े करवाकर उनसे फायदा उठा सकती थीं।

कुछ अन्य ब्योरे—इस पर भी १४४ तोड़कर कुछ छोटे-मोटे जुलूस निकले। लश्कर में विद्यार्थियों के जुलूस पर घोड़ा दौड़ाया गया। उज्जैन में विद्यार्थियों

के जुलूस पर पुलिस का हमला हुआ, कई घायल हुए। बाजार में लोगों को पकड़कर मारा गया। ग्वालियर में सितम्बर तक आन्दोलन जोरों से चलता रहा। बाद को स्थानीय नेताओं में समझौता हो गया, जिसके फलस्वरूप सब राजनीतिक कैदी छोड़ दिए गए।

भूपाल—भूपाल में भी नबाव को उल्लिखित तरीके से अल्टीमेटम दिया जाता कि ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध तोड़ दो और जिम्मेदार सरकार कायम करो, पर वहाँ पर्चे पकड़ लिए गए और लोग गिरफ्तार हो गए। इलत्ताफ मजदानी जेल में बीमार हो गए, पर छूटते ही मर गए। अन्य नेताओं को सजाएँ हुईं।

इन्दौर में जेल टूटी—इन्दौर में ५०० के करीब राजनीतिक कार्यकर्त्ता गिरफ्तार करके मंडलेश्वर स्थान में रखे गए। यहाँ राजनीतिक बन्दियों ने मौका पाकर जेल तोड़ डाली और लोग भाग गए। इनमें से अधिकांश बहुत जल्दी पकड़ लिए गए, पर कुछ तोड़-फोड़ के कार्य भी हुए। अन्त में प्रजा-परिषद और महाराज में समझौता हो गया।

कोटा में जन सरकार—राजपूताने की कोटा रियासत की जनता में बहुत जोश फैला। शहर पर जनता का कब्जा हो गया। यह कब्जा कैसे हुआ, इसकी कहानी यों है। १३ अगस्त को पुलिस ने कुछ नेताओं को 'मित्रतापूर्ण बातचीत' के किए 'निमंत्रण' दिया और नेता गिरफ्तार कर लिए गए। एक नेता की पत्नी के साथ दुर्व्यहार किया गया और कोतवाली के सामने खड़ी कर लाठी चार्ज किया। इस पर जनता क्षुब्ध हो गई, और उसने शहर की दीवारों पर कब्जा करके शहर का रास्ता बन्द कर दिया। शहर की दीवारों के पास जो तोपें रखी थीं, जनता ने उन पर भी कब्जा कर लिया और कोतवाली पर तिरंगा फहराकर उसका नाम स्वराजभवन रख दिया। जब फौज आने लगी तो उसे शहर के फाटक बन्द मिले। इस पर फौज नावों पर चढ़कर नदी पार कर के आने लगी। जनता ने उनके साथ अच्छा व्यवहार किया, और गांधी जी की जय आदि कहकर उनका स्वागत किया। फौज से कहा गया कि वह जनता पर गोली चलाए। पर उसने ऐसा करने से इनकार किया। कोटा के राजा ने दूत भेज कर जनता से बातचीत की और अपनी सदिच्छा दिखाने के लिए फौज

तथा पुलिस को शहर से वापस कर लिया। अब जनता का राज्य हो गया। मजिस्ट्रेट, कोतवाल सब नियुक्त हुए। स्वयंसेवकों ने पुलिस की जगह ले ली। तीन दिन तक जनता का राज्य रहा और उसमें खूब अमन चैन रहा। इसके बाद राजा के साथ वार्ता हुई, जिम्मेदार सरकार का वायदा हुआ, और बाकायदा फिर शहर महाराजा को सौंप दिया गया। नेतृत्वहीन तथा कार्यक्रमहीन जनता से इससे अधिक क्या उम्मीद की जा सकती थी ?

मेवाड़—मेवाड़ के राना से भी जनता ने अनुरोध किया कि वह ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध खत्म कर दें और जिम्मेदार सरकार बना दें, इस पर गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। विद्यार्थियों ने आगे बढ़कर काम किया। एक अँग्रेज अफसर ने जुलूस से छीनकर तिरंगे झण्डे को पैर से कुचल दिया और पिस्तौल लेकर हरेक को धमकाया। कुछ कार्यक्रम न होने के कारण ५०० गिरफ्तारियों के बाद आन्दोलन समाप्त हो गया। बाद को उदयपुर के राना ने धीरे-धीरे कैदियों को छोड़ दिया। देहात में भी आन्दोलन हुआ।

तालचर में जनक्रान्ति—उड़ीसा की तालचर रियासत में आन्दोलन का अच्छा ज़ोर रहा। इस रियासत में खुला विद्रोह हुआ और गांधी जी के अनशन के बाद तक विद्रोह जारी रहा। यहाँ एक समान्तराल सरकार कायम कर दी गई, और मुखियों, चौकीदारों, जिलेदारों ने आकर इस सरकार को मान लिया और पहले की पोशाक आदि अपने हाथ से जलाकर नई सरकार के अधीन काम करने लगे। रेल लाइन काट दी गईं और यातायात के सब साधनों पर राष्ट्रीय सरकार का कब्जा हो गया। सब थानों पर कब्जा हो गया और पुलिस का हेडक्वार्टर का अफसर भाग गया। राष्ट्रीय सरकार ने फौज भी बना ली थी, देहात पर कब्जा करने के बाद यह तय हुआ कि शहर पर भी कब्जा कर लिया जाय, इस उद्देश्य से जिसको जो कुछ मिला, टोपीदार बन्दूक, तीर धनुष, तलवार लेकर ६ सितम्बर को लोग तालचर की ओर बढ़े। अब तो रियासत ने सरकार की मदद मांगी और हवाई जहाज घूमने लगे तथा पर्चे और साथ ही अश्रुगैस छोड़ी गई। सरकार ने मशीगन भी लगा दिए थे। फिर भी जनता आगे बढ़ी तो उन पर हवाई जहाज से बम फेंका गया। इस पर जनता तितर-बितर हो गई, इसके बाद तो भयंकर रूप से देहातों में पुलिस का अत्याचार

शुरू हुआ। इसका विस्तृत वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहने से पता लग जायगा कि ८५००० की आबादी वाली इस रियासत से १० लाख रुपये लूट में ले लिए गए। सामूहिक जुर्माना अलग हुआ, जिसे बेरहमी से वसूल किया गया।

अन्य रियासतें—उड़ीसा के नीलगिरि रियासत में जनता ने २९ सितम्बर को थाने पर आक्रमण कर अपने एक नेता को छुड़ा लिया। नयागढ़ रियासत में तोड़-फोड़ का कार्य बहुत हुआ। सरकार की इमारतों में आग लगा दी गई। ढेंकनाल रियासत में २ सितम्बर को विष्णु पटनायक के नेतृत्व में चांदपुर थाने पर आक्रमण कर सब बन्दूकें छीन ली गई।

४३

१९४२ और कम्युनिस्ट पार्टी

जनता ही नेता, कोई दल नेता नहीं—जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, इस क्रान्ति में जो कुछ किया गया, जनता द्वारा ही किया गया। यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि किसी-किसी वामपक्षी पार्टी ने ही सब कुछ किया, मैं तथ्यों के आधार पर इस दावे को कतई गलत समझता हूँ। मजे की बात है कि कई दल एक ही श्रेय के दावेदार हैं, इस प्रकार उनके दावे एक दूसरे से कट जाते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी द्रष्टव्य है कि श्रीमती अरुणा आसफ अली तथा श्री मदनलाल बागदी आदि जिन लोगों का इस क्रान्ति में गौरवजनक भाग था, और यह बता दिया जाय कि श्री मदनलाल का भाग अधिक सक्रिय तथा गौरवजनक था, वे लोग उन दिनों कांग्रेस समाजवादी दल में नहीं थे।

कांग्रेस समाजवादी दल—फिर इस क्रान्ति के दौरान में कांग्रेस समाजवादी दल का भाग बहुत ही गौरवपूर्ण रहा, क्योंकि इसके सभी सदस्य जनता के पीछे चलने में सफल रहे। इस दल ने शुरू से ही द्वितीय महायुद्ध को साम्राज्यवादी करार दिया, और रूस पर जर्मनी द्वारा आक्रमण होने पर भी ये साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे से च्युत नहीं हुए। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी क्योंकि कांग्रेस समाजवादी दल में ऐसे लोगों की संख्या यथेष्ट थी और है जो रूस के समाजवादी होने में शक रखते थे। सच तो यह है कि जयप्रकाश जी ने जेल से छूटने के बाद भविष्य समाज के सम्बन्ध में एक ऐसी लेखमाला लिखी, जिससे यह ज्ञात होता है कि वे सर्वहारा के अधिनायकत्व वाले समाजवादी सिद्धान्त को मानते ही नहीं और वे एक ऐसा राष्ट्र चाहते हैं, जिसे इंग्लैण्ड की लेबर पार्टी का आदर्श कहा जा सकता है।

दल की एक गलती—यह बहुत से लोगों को नहीं मालूम, और कांग्रेस समाजवादी दल स्वाभाविक रूप से इस बात को छिपाना चाहता है कि १९४२ के क्रिप्स प्रस्ताव के समय इसकी कार्यकारिणी ने यह प्रस्ताव किया था कि दल

युद्ध के प्रति उदासीन है, बाद को चलकर दल ने इस प्रस्ताव में संशोधन किया। उस समय तक इस दल के नेताओं ने कांग्रेस का पुछल्ला बना रहना ही अपना आदर्श बना रखा था, इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इस एक गलती के सिवा, और यह दल के नेताओं की सिद्धान्त सम्बन्धी अज्ञता को व्यक्त करता है, दल ने १९४२ की क्रान्ति में बहुत गौरवजनक हिस्सा अदा किया।

फारवर्ड ब्लाक और आर० एस० पी०—इस महायुद्ध के समय फारवार्ड ब्लाक बराबर साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे पर डटा रहा, इसके सदस्यों का इस आन्दोलन में बहुत गौरवजनक हिस्सा रहा। इसमें के बहुत से व्यक्ति इस युद्ध में जापान तथा जर्मनी की विजय चाहते थे, पर जैसा कि आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में हमने देख लिया कि जापानी संगठन के अन्तर्भुक्त होते हुए भी वे जापानी गुलाम नहीं हुए, ऐसा इनके इरादों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में आर० एस० पी० का भी यही सिद्धान्त रहा। इस दल के नेता (सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता भी) योगेश चटर्जी ने एटा में अपने मुकदमें में यह कहा था कि वे उम्मीद करते हैं कि पूर्व से जापान आएगा और पश्चिम से जर्मनी, इस प्रकार भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा। आजाद हिन्द फौज का भी यही विचार था। ये विचार कहाँ तक सही थे, और इसका राजनीतिक पहलू कहाँ तक दोषशून्य था, इसमें हमें सन्देह है। मेजर जनरल शाहनवाज की आजाद हिन्द फौज सम्बन्धी पुस्तक की भूमिका में पं० जवाहरलाल नेहरू ने आजाद हिन्द फौज के लोगों की देशभक्ति की प्रशंसा करते हुए भी यह जो कहा है कि अभी इसके राजनीतिक पहलू पर विचार करने का तथा अन्तिम मत कायम करने का समय नहीं आया, यह बहुत ही ठीक है और इस सम्बन्ध में एकमात्र सही मत है। आजाद हिन्द फौज का, तथा उसकी तरह के विचार वालों का राजनीतिक पहलू कहाँ तक सही था, आज यह प्रश्न बहुत कुछ अवांतर है, हम इतना जानते हैं कि आजाद हिन्द फौज के कारण ही भारतीय फौज की मनोवृत्ति में एकाएक वह क्रान्तिकारी तबदीली आई, जो कदाचित् दूसरे तरीके से बीसियों वर्षों में आती या न आती।

योगेश चटर्जी—आर० एस० पी के नेता श्री योगेश चटर्जी अनशन के कारण देवली जेल की नजरबन्दी से छूट चुके थे। वे १९४२ की क्रान्ति के समय

बाहर मौजूद थे और उन्होंने इस क्रान्ति को संगठित करने की एक बहुत गौरव-जनक चेष्टा की। इसी सम्बन्ध में उन पर पहले एटा में एक मुकदमा चला और फिर वह उस षड्यन्त्र में भी नेता करार दिए गए, जो बाद को बाराबांकी षड्यन्त्र के नाम से मशहूर हुआ। उन्हें अगस्त क्रान्ति के समय लम्बी सजा मिली।

जनता का नेतृत्व—जैसा कि मैंने बार-बार कहा है कि इस क्रान्ति के नेता न जयप्रकाश थे, न अरुणा आसफअली थीं, और न योगेश चटर्जी, इस क्रान्ति की नेत्री जनता खुद थी। फिर भी यह कहा जा सकता है कि कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त इस क्रान्ति के समय सभी पार्टियों का भाग गौरवजनक था। कम्युनिस्ट पार्टी का क्या भाग था, इसे समझने के लिए कुछ ब्योरे में जाना पड़ेगा।

रूस के समाजवादी सिद्धान्त पर डटे रहे—१९१४-१८ के साम्राज्यवादी महायुद्ध में केवल रूस की बोल्शेविक पार्टी ही उन सिद्धान्तों पर डटी रही, जिनको लेकर १९१० की कोपेनहेगेन कांग्रेस में तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी कानफ्रेंसों में आलोचनाएँ हुई थीं। इन अन्तर्राष्ट्रीय कानफ्रेंसों में यह तय हुआ था कि यदि लड़ाई छिड़ जाए तो मजदूरों की पार्टी की हैसियत से समाजवादी दलों को इनमें किसी प्रकार भाग लेना नहीं है, बल्कि इनका विरोध करना है; क्योंकि ये लड़ाइयाँ उपनिवेशों के बटवारे तथा अन्य साम्राज्यवादी उद्देश्यों को लेकर होती हैं, मजदूरों को इन लड़ाइयों से कुछ फायदा नहीं है, इसलिए वे क्यों नाहक पूँजीवादियों की इन आपस की लड़ाइयों में अपनी गर्दनें कटाएँ। केवल यही नहीं, लेनिन के नेतृत्व में रूसी बोल्शेविक पार्टी ने यह नारा दिया कि इस साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में परिणत कर दो, अर्थात् इस अवसर का फायदा उठाकर अपने यहाँ की तानाशाही को खत्म कर दो। रूस की बोल्शेविक पार्टी की इस सही नीति का क्या नतीजा हुआ, यह सब जानते हैं। रूस के क्रान्तिकारी दूसरों के दिए हुए देशरक्षा सम्बन्धी नारों में बहक नहीं गए और उन्होंने, जारशाही जो लड़ाई लड़ रही थी, उसे सचमुच गृहयुद्ध में परिणत कर दिया। इसका नतीजा रूसी मजदूर क्रान्ति है। यह क्रान्ति इतिहास में एक विशेष स्थान रखती है, किन्तु हमें यहाँ पर उसके विषय में आलोचना नहीं

करनी है।

पहले नाम सोशल डिमोक्रेट था—यह महान क्रान्ति जिस पार्टी के नेतृत्व में हुई, उसका नाम पहले से ही कम्युनिस्ट पार्टी रहा हो, ऐसी बात नहीं है। पहले इस पार्टी का नाम सोशल डिमोक्रेट पार्टी था। इस पार्टी के अन्दर दो गुट हो गए थे। जो गुट सुधारवादी था और यह सोचता था कि पूँजीवादी दलों की छात्रछाया में मजदूर पार्टी को चलना चाहिए तथा पग-पग पर समझौते का और जरा कुछ खतरा पड़ने पर ही पार्टी के गुप्त हिस्से को तोड़ कर पार्टी को निरी कानूनी बनाने का नारा दे देती थी, उस गुट का नाम मेनशेविक था। इसके विपरीत जिस गुट के नेता लेनिन थे, जो यह समझते थे कि न केवल समाजवादी क्रान्ति में मजदूरों का नेतृत्व रहेगा, बल्कि पूँजीवादी लोकतान्त्रिक क्रान्ति में भी सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व रहेगा, और किसान वर्ग सर्वहारा वर्ग का साथ देगा, वह गुट बोल्शेविक पार्टी कहलाता था। एक गुट सुधारवादी था तो दूसरा क्रान्तिकारी। बोल्शेविक पार्टी का सारा कार्यक्रम मजदूर और उसके मित्रवर्ग शोषित किसानों पर निर्भर था, जब कि मेनशेविक बराबर पूँजीवादी वर्ग का मुँह ताका करते थे। इसके अतिरिक्त इन दोनों गुटों में बहुत से और मतभेद थे, पर जहाँ भी जिन बातों में मतभेद थे, उनमें मेनशेविक हमेशा क्रान्ति-विरोधी पक्ष लेते थे, बोल्शेविक क्रान्ति का पक्ष लेते थे। जब १९१७ की फरवरी में क्रान्ति हो गई और उसके फलस्वरूप जार निकोलस गद्दी से उतार दिए गए। मेनशेविक इतने ही से खुश हो गए और उन्होंने यह भुला दिया कि इस लड़ाई को आगे चलने में मजदूर वर्ग का कोई हित नहीं है और उन्होंने अब यह नारा देना शुरू किया कि अब लड़ाई हमारी हो गई। इस प्रकार मेनशेविकों ने इस समय यह नारा दिया कि रूस के मजदूरों को साम्राज्यवादी यूद्ध में भाग लेना चाहिए; क्योंकि अब युद्ध देश की रक्षा के लिए रूसी जनता की ओर से लड़ा जा रहा है। यही नहीं, मेनशेविक खुल्लमखुल्ला इस विषय में रूस के पूँजीपतियों का साथ देने लगे। ऐसे समय में भी बोल्शेविक दल टस से मस नहीं हुआ। उसने कहा, यह लड़ाई हमारी नहीं है, हम रूसी पूँजीवादी वर्ग के हाथों में कठपुतले होकर नहीं लड़ सकते। फिर रूसी पूँजीवादी वर्ग तो इस समय लड़ाई के प्रश्न को अपने हित की दृष्टि से नहीं देख रहा है, बल्कि वह स्पेन, फ्रांस और इंग्लैंड

के पूंजीवादी वर्गों के हाथ का कठपुतला हो रहा है ?

कम्युनिस्ट पार्टी नाम पड़ा—फरवरी क्रान्ति के बाद लेनिन जब रूस में आए, (अब तक वह रूस के बाहर रहकर सारे आन्दोलन का नेतृत्व करते थे) तो उन्होंने यह अनुभव किया कि इस तमाशे का अन्त करना चाहिए। विशेषकर वह ऐसा करने के लिए इसलिए और भी उत्सुक हुए कि उन्होंने यूरोप की सोशल डिमोक्रेट पार्टियों के साम्राज्यवादी युद्ध में मदद करने तथा अन्य सुधारवादी नीतियों से अपनी पार्टियों को अलग करना चाहा। देश में जो काम मेनशेविक कर रहे थे, वही काम यूरोप के अन्य देशों में सोशल डिमोक्रेट पार्टियाँ कर रहीं थीं। लेनिन इन यूरोपीय पार्टियों पर इसलिए सबसे अधिक नाराज थे कि वह समझते थे कि ये पार्टियाँ अपने देश के मजदूरों-किसानों को पूँजीवादियों के निमित्त गर्दन कटाने तथा युद्ध के मैदान में अपने ही मजदूर किसान भाई का गला काटने के लिए भेज रही हैं। इसलिए लेनिन ने अपने मशहूर अप्रैल-वक्तव्य में यह प्रस्ताव पेश किया कि पार्टी का नाम बदलकर कम्युनिस्ट पार्टी कर दिया जाय। पार्टी के लोगों ने इस प्रस्ताव को मान लिया। यहीं से रूसी बोल्शेविक पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी हो जाता है। याद रहे कि यह नाम १९१७ में ठीक मजदूर क्रान्ति के कुछ महीने पहले ग्रहण किया गया था।

नया अन्तर्राष्ट्रीयता का नारा—इसी अप्रैल वक्तव्य में लेनिन ने यह भी प्रस्ताव रखा था कि चूंकि दुनिया के समाजवादियों की जो अन्तर्राष्ट्रीय संस्था 'द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय' के नाम से मशहूर है, वह अब दुनिया के क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति अपनी युद्ध नीति के कारण गद्दार साबित हो गई है, इसलिए अब उसकी जगह पर तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय या कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय की स्थापना की जाय, किन्तु इसी बीच रूस में मजदूर क्रान्ति हो जाने से काम इतना बढ़ गया कि मार्च, १९१९ के पहले यह विचार कार्यरूप में परिणत नहीं किया जा सका।

पहली कांग्रेस—इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय की स्थापना हुई। १९१९ वाली इस पहली कांग्रेस में बहुत थोड़े से देशों के मजदूर प्रतिनधि मौजूद थे, किन्तु उसी समय लेनिन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि किन उद्देश्यों के लिए नए अन्तर्राष्ट्रीय की स्थापना की जा रही है। इस सम्बन्ध में उनके विचार क्या हैं ?

संक्षेप में ये उद्देश्य दो थे—(१) विश्व क्रान्ति को अंजाम देना। (२) रूस की रक्षा करना।

कई वर्ष क्रान्तिकारी परिस्थिति—संदेह नहीं ये दोनों उद्देश्य बहुत महान थे, और द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय या उसकी अन्तर्गत पार्टियाँ इन उद्देश्यों को लेकर चलने में असमर्थ थीं। १९१४-१८ के महायुद्ध के दौरान में जब रूस में मजदूर क्रान्ति हो गई, तो उस क्रान्ति को देखकर लेनिन का यह विचार था कि यह क्रान्ति केवल रूस तक ही नहीं रुकेगी, बल्कि यहाँ से ज्वाला सारी दुनिया में भड़क उठेगी और तमाम देशों में मजदूर-क्रान्ति होगी। यह केवल कुछ क्रान्तिकारियों का स्वप्न ही नहीं था; बल्कि हंगरी और बवेरिया में १९१९ की वसंत ऋतु में समाजवादी क्रान्तियाँ हुई भी थीं; किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी-वादियों ने खाना न देकर तथा अन्य उपायों से यहाँ की क्रान्तियों का गला घोंट दिया। सच बात तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद ने रूस की क्रान्ति का गला घोंटने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी, रूस पर एक साथ २३ मोर्चों से हमले हुए थे, किन्तु रूस की क्रान्तिकारी लालसेना ने इन सब आक्रमणों को विफल कर दिया। जो कुछ भी हो विश्वक्रान्ति होने जा रही है, यह विचार इस युग के क्रान्तिकारियों में आम तरीके से फैला हुआ था। यह विचार कुछ अंशों में सही था, यह तो हम बवेरिया और हंगरी के दृष्टान्त से देख चुके। यह क्रान्ति-कारी परिस्थिति कई वर्षों तक रही।

दोनों उद्देश्य सामंजस्यपूर्ण—इन दो उद्देश्यों में प्रथम और द्वितीय उद्देश्य परस्पर विरोधी नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती, जब एक समाजवादी राष्ट्र का हित विश्वक्रान्ति के विरुद्ध जाएगा, फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि विश्वक्रान्ति का उद्देश्य विस्तृत है। इस लिए यह नहीं हो सकता कि केवल रूस की क्रान्ति की रक्षा के उद्देश्य से ही सारी बातें सोची जाएँ और उतने ही में विश्वक्रान्ति का तकाजा पूरा हो जाय। सभी क्रान्ति या रूसी मजदूर राष्ट्र की रक्षा विश्वक्रान्ति के अन्दर आ जाती है, पर केवल रूस की रक्षा का ही काम किया जाय तो विश्व-क्रान्ति का सब तकाजा पूरा हो जायेगा, ऐसा समझना गलत होगा। हमें तो इस प्रकार की आलोचना ही बुरी मालूम होती है कि विश्व-क्रांति और रूसी क्रान्ति में किसी प्रकार का विरोध हो

भी सकता है, पर हम देखेंगे कि दुनिया की कम्युनिस्ट पार्टियों ने बहुत बड़े हद तक चीजों को इतना गड़बड़ा दिया है कि हमें इस प्रकार की बाल की खाल मूलक आलोचना में प्रवृत्त होना पड़ता है। हम तो यह बहुत स्पष्ट रूप से समझते हैं कि वह व्यक्ति समाजवादी ही नहीं है जो रूसी मजदूर राष्ट्र की रक्षा अपना पवित्र-से-पवित्र कर्तव्य नहीं समझता है, किन्तु क्या एक समाजवादी का कर्तव्य यहीं पर खतम हो जाता है ? रूस की रक्षा तो खैर किसी भी हालत में करनी ही है, पर सब देशों में सर्वहारा राष्ट्र स्थापित करना प्रत्येक समाजवादी का बृहत्तर कर्तव्य है। इसी बुनियादी बात को न समझ पाने के ही कारण कोई तो विश्वक्रान्ति की रट लगाते-लगाते रूसी मजदूर राष्ट्र को ही लेकर बीतना चाहता है और रूसी मजदूर राष्ट्र का गीत गाते-गाते यह भूल गया कि रूसी क्रान्ति का ही यह तकाजा है कि विश्व के और देशों में रूस की तरह क्रान्तियाँ हों।

संयुक्त मोर्चे का नारा—अब हम संक्षेप में यह देखेंगे कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने जिस संयुक्त मोर्चे की पालिसी को ७ वीं कांग्रेस की हिदायत समझकर कार्यरूप में परिणत किया, उसका क्या अर्थ हुआ। क्या इसके फलस्वरूप साम्राज्यवादी शक्तियों में एकता बढ़ी, या कुछ मजबूती आई ? दूसरी बात को जाने दिया जाए, क्या इसके फलस्वरूप वामपक्षी शक्तियों का भी संयुक्त मोर्चा बना ? हमें बहुत दुख के साथ इन दोनों प्रश्नों का उत्तर 'ना' में देना पड़ता है। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने जबसे कांग्रेस में प्रवेश किया, तब से उसने कांग्रेस में फूट और बुद्धिभेद ही उत्पन्न किया। कांग्रेस के अन्दर तथा वामपक्षियों के साथ इनकी नई नीति का क्या असर रहा, इसे हम कुछ विस्तारपूर्वक कहेंगे, इसलिए मजदूर आन्दोलन के अन्दर इस नई नीति का क्या असर हुआ, यह हम पहले बता दें। हमें इस बात को मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि ऊपर से हिदायत पाकर कम्युनिस्टों ने ट्रेड यूनियन के जो टुकड़े बचा रखे थे, उनको एक करने के लिए जो चेष्टाएँ हो रही थीं, वे एकाएक इस हिदायत के कारण मजबूत हो गईं, और अन्त तक ट्रेड यूनियन की एक संस्था हो गई। अवश्य इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि भीतर से यह संस्था कुछ तगड़ी हुई, बल्कि इसके भीतर कम्युनिस्ट पार्टी के आ जाने

से तरह-तरह की पार्टीबाजी, एक-दूसरे को लड़ाना, झूठी बातों का प्रचार इत्यादि जो बातें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की विशेषता रहीं, वे उसी ओर बहुत जोरों के साथ हुईं। इसके फलस्वरूप मजदूर आन्दोलन की वृद्धि में बाधा ही पहुँची न कि विशेष लाभ।

६ महीने बाद चेते—जब हिटलर ने रूस पर भी हमला बोल दिया, तो रूस को आत्मरक्षार्थ लड़ाई में आना पड़ा, और वह खूब जोरों के साथ लड़ाई में आया। अब हम इसके आगे राजनीतिक और सामरिक घटनाओं पर न जाकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने इस पर जो रुख लिया, उसी पर आयेंगे। जिस समय १९४१ में रूस पर जर्मनी का हमला हुआ था, उस समय भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वर्तमान मन्त्री के अतिरिक्त सभी बड़े नेता देहली में तथा अन्य नजरबन्दी के स्थानों में बन्द थे। इस सम्बन्ध में यह बहुत ही दिलचस्प है कि बहुत पहले से कम्युनिस्ट पार्टी की समालोचना में लोग अक्सर कम्युनिस्टों से यह पूछा करते थे कि क्यों जी, यदि कोई लड़ाई हो और उसमें रूस और ब्रिटिश साम्राज्यवाद एक तरफ लड़ते हों, तो तुम लोग तो साम्राज्यवाद की तरफदारी करोगे। इस पर कम्युनिस्ट हमेशा बड़ी संजीदगी से यह कहा करते थे कि कदापि नहीं, हम उसके खिलाफ जायेंगे। जब रूस के विरुद्ध लड़ाई छिड़ी तो उन लोगों से यह प्रश्न पूछा गया और कहा गया कि अब तो तुम्हारी थीसिस बदल जायेगी। पर वे बड़े जोरों से इस बात का विरोध करते रहे और जेलों में अपने साथियों से कहते रहे कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। जो लोग इन दिनों देवली में या अन्य किसी जेल में किसी कम्युनिस्ट के साथ रहे हैं, वे इस बात को अपने तजरबे से तस्दीक कर सकते हैं। हमें जितनी भी जेलों की खबर मिल सकी, उनमें यही हाल रहा। इस बीच कई महीने गुजर गए। मालूम होता है कि लड़ाई की परिस्थिति में थीसिस आने में कुछ देर हो गई, अन्त में लन्दन से थीसिस आ ही गई। पहले तो बाहर के कामरेडों ने इस पर ठप्पा लगाया, फिर तरह-तरह से इस थीसिस को विभिन्न जेलों में तथा देवली में भेजा गया। यह नारा इतना आश्चर्यजनक था कि कदाचित लिखने पर लोग विश्वास नहीं करते कि जेलों के बाहर इस प्रकार का नारा बदला गया है, इसी बात से बचने के लिए कहा जाता है कि उन दिनों एक बहुत प्रसिद्ध कम्युनिस्ट

नेता जो फरार थे, सरकार की सहायता से देवली जेल में अपने साथियों से मिलने गए, और वहाँ लोगों को बताया कि किस प्रकार लन्दन से नया हिदायतनामा आया है। हमने यह जो लिखा है कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी रूस पर जर्मनी द्वारा हमला हो जाने के बावजूद बहुत दिनों तक साम्राज्यवादी युद्ध का नारा देती रही, इसका कारण यह है कि उनके पास बाहर से हुक्मनामा नहीं पहुँचा, इसका समर्थन कम्युनिस्टों के अनन्य समर्थक सुप्रसिद्ध लेखक एडगर स्नो ने किया है। वे लिखते हैं—

Incidentally it is interesting to note that the Indian Communist Party evidently was completely cut off from the Comintern some years prior to its dissolution in 1943. This was evident in the curious deviation of the Indian Party on the question of the war. Most national Communist parties immediately abandoned whatever qualifications they had attached to their support for the war when Hitler invaded Russia, but a full six months later the Indian Party was still opposing Indian participation in it.

(Glory and Bondage P. 489)

संक्षेप में एडनर स्नो का वक्तव्य यह है कि लड़ाई के कई साल पहले से बाहर के साथ भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का सम्बन्ध टूट गया था। तभी रूस पर जर्मनी के द्वारा हमला हो जाने के ६ महीने तक भी कम्युनिस्ट पार्टी साम्राज्यवादी युद्ध का राग अलापती रही। एडगर स्नो की लेखनी से यह तथ्य आने के कारण किसी कम्युनिस्ट को यह हिम्मत न हो सकी कि वह इस से इनकार करे। होते करते कोई दिसम्बर १ तक देवली तथा अन्यान्य जेलों में यह नई थीसिस पास हो गई। इस इतिहास को हमने इसलिए दिया कि यह ज्ञात हो जाय कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में स्वतन्त्र विचारों के लिए कितनी गुंजाइश है।

जनयुद्ध का नारा—भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अब यह नारा दिया कि रूस के लड़ाई में आने से यह लड़ाई अब साम्राज्यवादी नहीं रह गई, बल्कि यह

जनता की लड़ाई हो गई। फिर एक बार वे उसी गलती के शिकार हुए जिसके कुछ अपवादों के साथ वे बराबर शिकार रहे और जैसा कि हम देख चुके हैं कि ये अपवाद भी गलती के कारण ही हो गए थे। अब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने न केवल यह नारा दिया, बल्कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार से मिलकर बराबर युद्ध में मदद देनी शुरू की। इनमें से जो लोग जेलों में थे, वे बुला-बुलाकर पुलिस अफसरों से मिले और उन्होंने कहा कि हम छूटने पर सरकार की मदद करेंगे अतएव हमें छोड़ दिया जाय। सच बात तो यह है कि ब्रिटिश सरकार ने भी कुछ जांच पड़ताल के बाद इनको छोड़ दिया, इनमें से सिर्फ वे ही लोग जेलों में रह गए, जिनके सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास था कि ये केवल छूटने के लिए कम्युनिस्ट हुए हैं और सही अर्थ में अभी दिल में ब्रिटिश साम्राज्य की युद्ध चेष्टा में मदद करने के लिए तैयार नहीं हैं। इस नारे की तब्दीली के बाद ही कम्युनिस्ट पार्टी कानूनी हो गई। कहा जाता है कि इस प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी पर से रोक उठा लिए जाने में कांग्रेस से संधि-वार्ता करने के लिए आए हुए सर स्टेफोर्ड क्रिप्स ने बहुत भाग लिया। आखिर जो लोग विश्व क्रान्ति का नेतृत्व करने के लिए चल दिए, इनको इतना तो समझना ही चाहिए था कि भारतवर्ष ऐसे देशों की समस्या कुछ और है, रूस की समस्या कुछ और। नात्सी जर्मनी ने जब सोवियत रूस पर हमला कर दिया तो सोवियत रूस का कर्तव्य साफ था। उसने उसको बहुत बहादुरी से निभाया और अन्तर्राष्ट्रीय में जहाँ तक रूस का सम्बन्ध है साफ नारा दिया, किन्तु भारतवर्ष की समस्या रूस से अलग थी। भारतवर्ष यदि साम्राज्यवादी राष्ट्र या समाजवादी राष्ट्रों का यूनियन होता, साथ ही वह अपने अन्दर समाज-भर को मजबूत बना चुका होता (यह दूसरी बात पहली बात से कम जरूरी नहीं है) तो उसके लिए कर्तव्य स्पष्ट होता, और वह कर्तव्य यह होता है कि वह रूस की मदद के लिए सक्रिय रूप से युद्ध में उतर पड़ता। यहाँ तक बात बिल्कुल साफ है। एक और काल्पनिक अवस्था भी ली जाय। मान लीजिए भारतवर्ष समाजवादी राष्ट्र न होकर केवल लोकतान्त्रिक राष्ट्र होता, और यह देखा जाता कि वह लड़ाई में उतर सकता है और उतर कर रहेगा तो उस हालत में यहाँ के समाजवादियों तथा सब प्रगतिशील उपादानों का यह कर्तव्य होता कि वे इस अवसर से वहाँ

समाजवादी क्रान्ति करें, और इसी के लिए राष्ट्र पर ऐसा प्रभाव डालें कि वह रूस के पक्ष में लड़ाई में उतर पड़े। यहाँ तक भी कर्तव्य साफ है, पर जब अभी भारतवर्ष स्वयं पराधीन था और साम्राज्यवाद के शिकंजों के अन्दर तड़फड़ा रहा था तो उसके लिए क्या कर्तव्य था? उसके लिए क्या यह कर्तव्य नहीं था कि वह जिस परिस्थिति में था, उसमें समाजवाद की ओर बढ़ने के लिए जो कुछ भी कर्तव्य है, उसी को करे और इस प्रकार समाजवाद के प्रति, अतएव रूस के प्रति अपना काम करे। यहाँ पर बहुत कर्कश होते हुए भी कुछ लोगों को यह बात याद दिलाने की जरूरत है कि हम रूस को कोई बुत नहीं बनाते अर्थात् यदि बुत बनाते हैं तो उसके समाजवाद के लिए ही बनाते हैं। रूस की सरजमीन से या रूस के सागरों और पहाड़ों से हमें कोई विशेष प्रेम नहीं है बल्कि रूस में जो समाजवाद की स्थापना हुई है, वहाँ पर जो मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण खत्म कर दिया गया है, इसी से हमें प्रेम है, इसकी हम रक्षा करना चाहते हैं, और यह हमें प्राणों से प्यारा है। इसलिए समाजवादी रूप से प्रेम रखते हुए भी हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि विश्व में समाजवाद की स्थापना ही क्रान्तिकारियों का मुख्य कर्तव्य है। हम पहले ही बता चुके हैं, इस कर्तव्य का सम्पादन विभिन्न देशों में विभिन्न रूप से होगा क्योंकि प्रत्येक देश विभिन्न सामाजिक, आर्थिक स्तर पर स्थित है। इसलिए उनकी समस्याएँ भिन्न हैं और स्वाभाविक रूप से उनके समाधान भी भिन्न होंगे। इसी आधारगत तथ्य को न समझने के कारण विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने एक ही तात्कालिक कर्तव्य को अंजाम देने की कोशिश की और उसी में वे गुमराह हो गए।

एक नीति असम्भव—ऊपर की सब बातों को देखते हुए हम यह समझते हैं कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने जनयुद्ध का नारा देकर यहाँ के स्वतन्त्रता आन्दोलन को अपनी तरफ से बन्द कर दिया।

१९४२ और मजदूर—१९४२ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम पर एक विराट् आन्दोलन देश-भर में छिड़ा। हम इस आन्दोलन का विश्लेषण कर चुके, केवल इतना और कहेंगे कि यह आन्दोलन बहुत अंशों में १९०५ की रूसी क्रान्ति की तरह था। यद्यपि इस आन्दोलन में तथा १९०५ की क्रान्ति में सर्वहारा ही प्रधान शक्ति थी, पर १९४२ की अगस्त क्रान्ति में सर्वहारा का हिस्सा

बहुत मामूली रहा। पर इसके प्रधानतम कारणों में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य इस प्रकार की पार्टियों की नीति थी। नहीं तो यहाँ के मजदूर इतने राजनीतिक रूप से पिछड़े न थे कि वे क्रान्तिकारी पार्टियों के नारे पर बिल्कुल न उठते। ऐसा कहने में कहीं यह गलतफहमी न हो जाय कि मजदूरों में कम्युनिस्ट तथा इस प्रकार की पार्टियों का अधिक प्रभाव था, इसलिए वे क्रान्ति में अधिक शरीक नहीं हुए, इसलिए यह बता देने की आवश्यकता है कि भारतीय मजदूर जो इस समय खुलकर नहीं खेले, उसका सबसे बड़ा कारण आर्थिक था। और वह आर्थिक कारण यह था कि मँहगाई के बावजूद मजदूर अपेक्षाकृत खुशहाल थे, उनको बराबर मँहगाई का भत्ता आदि दिया गया, तथा थोड़ा असंतोष उठते ही कुछ-न-कुछ उसकी दवा की गई। इसके अतिरिक्त लड़ाई के कारण उद्योग-धन्धों में जो वृद्धि हुई, उससे बहुत से नए मजदूरों को जगह मिल गई, ये नए मजदूर बिलकुल क्रान्तिकारी इस लिए नहीं थे कि अभी ये मजदूर भी नहीं हो पाए थे, और जिस परिस्थिति में आए थे, उससे इनकी परिस्थिति अच्छी हो गई थी। भारतीय मजदूरों की ऐसी परिस्थिति थी, इसी के कारण उन्होंने १९४२ के आन्दोलन में क्रान्तिकारी पार्टियों की पुकार नहीं सुनी और वे कम्युनिस्टों के गलत-सलत प्रचार कार्य के शिकार हो गए। इस अवसर पर एक यह जो गलतफहमी १९४२ के तजरबे से फैल गई है कि मार्क्सवादियों का यह कहना है कि सर्वहारा वर्ग क्रान्ति का नेतृत्व करेगा, यह झूठा पड़ गया, हम इसका प्रतिवाद करना चाहते हैं। अव्वल तो यह क्रान्ति हो नहीं पाई, दूसरे जिन कारणों से मजदूरों ने इसमें खुलकर भाग नहीं लिया, वह भी हम दिखा चुके, और यह कारण मार्क्सवाद के बाहर नहीं है, बल्कि उसी को लागू करने पर ये कारण दिखाई पड़ते हैं। इस अवसर पर एक असाधारण प्रश्न और भी उठता है, वह यह है कि इसके माने तब यह हुए कि लड़ाई के कारण कोई क्रान्तिकारी परिस्थिति उत्पन्न ही नहीं हुई। ऊपर से देखने पर यह समालोचना कटु ज्ञान होने पर भी कुछ हद तक सही है और यह सही है इसीलिए तो क्रान्ति नहीं हुई। क्रान्ति के लिए जो दृष्टिगत (Subjective) और दृश्यगत (objective) परिस्थितियाँ उत्पन्न होनी चाहिए, वे सचमुच इस समय मौजूद नहीं थीं। जहाँ तक मजदूर वर्ग का सम्बन्ध है हम उस परिस्थिति को दिखा चुके।

अन्य वर्गों में अवश्य बहुत असन्तोष था। भारतीय पूँजीवादी वर्ग भी इस अवसर से कुछ काम निकालना चाहता था। वह चाहता था कि तमाम परिस्थितियों से दबाव पड़े और उसे कुछ जबरदस्त लाभ हो। जहाँ तक दृष्टिगत परिस्थिति का सम्बन्ध है, हमने यह लिखा है कि कांग्रेस के नेतृत्व में या उसकी पुकार पर आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, पर उसके नेता किस प्रकार सोचते थे, और उनका असली इरादा किस प्रकार केवल धमकी देना था क्रान्ति करना नहीं, यह उनकी रिहाई के बाद के उनके बयानों से स्पष्ट हो चुका है। जो दूसरी समाजवादी नामधारी पार्टियाँ थीं, उनमें कम्युनिस्ट पार्टी तो पीछे हट गई। बाकी जो पार्टियाँ बचीं वे भी बहुत कमजोर थीं, यहाँ तक कि एक बार चालू कर दिए जाने पर उसे जारी भी नहीं रख सकती थीं।

सरकार से दोस्ती—भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के लोग यदि केवल अपना प्रचार-कार्य करके ही चुप रहते, तो वह बात एक हद तक सम्मानजनक होती, पर वे इतने ही से सन्तुष्ट न रहकर बहुत आगे बढ़ गए। हम यह नहीं कहते कि उन्होंने जो कुछ किया, जैसे तार काटने, पटरी उखाड़ने वालों को पकड़वाया, यह किसी भी तरह उनकी थीसिस के विरुद्ध था। जब उनके मतानुसार वह सारा आन्दोलन ही पांचवें दस्ते का था तो फिर वे ऐसे लोगों को गिरफ्तार क्यों न करवाते? उन्होंने इसके अलावा मजदूरों को भी बरगलाया और ऐसा ब्रिटिश सरकार से मिलकर किया, जब अन्य लोगों के लिए मिल एरिया में सभाएँ आदि करना मना हो गया, तब भी कम्युनिस्टों को बराबर बे रोक-टोक निषिद्ध स्थानों में जाने की इजाजत बनी रही और इन्हें विशेष पास मिले रहे।

४४

अगस्त क्रान्ति में स्त्रियों का बलिदान

अगस्त क्रान्ति की नेत्रियाँ : अरुणा और सुचेता—हम पहले दिखा चुके हैं कि आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन में स्त्रियों का भाग कोई मामूली नहीं था, फिर १९४२ में यदि उनका भाग प्रधान रहा, इसमें आश्चर्य क्या ? शायद समस्त प्रान्तों की अपेक्षा आसाम में ही स्त्रियों का भाग सबसे अधिक रहा, पर यह अधिकांश लोगों को नहीं मालूम और न किसी लेखक ने ही लिखा है कि ठीक नेताओं की गिरफ्तारी के बाद क्रान्ति को संगठित करने के लिए जो कमेटी बनी उसमें श्रीमती आसफअली तथा श्रीमती सुचेता कृपलानी भी थीं । किसी कारण से इन लोगों ने उसके इतिहास को नहीं लिखा, पर श्रीमती आसफअली तथा अच्युत पटवर्धन ने १९४६ के दिसम्बर में फरारी हालत में जो वृहत पत्र मौलाना आजाद को लिखा था, उससे इस आन्दोलन की नेत्रियों में उनका स्थान तो ज्ञात है । सुचेता जी के भाग को बहुत कम लोग जानते हैं, पर उनका भी इस अन्तरंग कमेटी में उतना ही भाग था जितना श्रीमती आसफ अली का । स्मरण रहे कि इस कमेटी में कोई वामपक्षी या दक्षिणपक्षी की हैसियत से नहीं थे या थीं, सभी कांग्रेसी तथा अगस्त विद्रोही के रूप में थे या थीं । हर फैसले में सब की राय होती थी । दुःख है कि अगस्त क्रान्ति के इस पर्दे के पीछे के इतिहास को अभी लिखने के उपादान प्राप्त नहीं है, कभी प्राप्त होगा कि नहीं, इसमें अभी सन्देह है । अभी तक अगस्त क्रान्ति के इतिहास में घटनाएँ ही आ रहीं हैं, पर इस युग में जो बुलेटिन निकले, जो पर्चे निकले, उनका कौन लेखक तथा लेखिका थी, प्रत्येक फैसले में किसका कितना हाथ रहा, जब तक यह न जाना जाय, तब तक हम असली इतिहास से दूर ही होंगे, अस्तु । कुछ दक्षिणपंथी जिन्होंने वास्तविक तोड़-फोड़ में हिस्सा लिया, और खूब लिया, बाद को गांधीजी का रुख देखकर कपने कार्यों पर चुप्पी साध गए, जिससे अन्तरंग इतिहास लिखना बहुत ही मुश्किल है, इस कारण नेतृत्व में स्त्रियों का कितना

हाथ रहा, यह भी बताना मुश्किल है। कहीं गलतफहमी न हो जाय, इसलिए हम यह बता दें कि अन्तरंग कमेटी जो भी बनी हो, उसका प्रयास स्तुत्य होने पर भी मैं यह समझता हूँ कि जनता ने अपनी मौलिक क्रान्तिकारी बुद्धि से काम लिया, और जैसा कि अच्युत तथा अरुणा ने अपने उल्लिखित पत्र में लिखा—"जो हजारों-लाखों मन औपादानिक शक्तियाँ मुक्त हुईं, उनकी एक आध माशा परिचालना हमने दी।" इनका यह एक आध माशा केवल नम्रता-सूचक शब्द नहीं है। सचमुच ही इनकी आवाज बहुत दूर तक नहीं पहुँची। अस्तु।

सुचेताजी बाद को अलग—ऐसा सुना जाता है कि बाद को जब गांधी जी के अनशन (१९४३ फरवरी) वाले पत्र प्रकाशित हुए, तब सुचेताजी इस अन्तरंग कमेटी से अलग हो गईं। पर उस समय तक तो आन्दोलन बहुत कुछ खत्म हो चुका था, फिर तो कमेटी के लोग पर्चेबाजी करते रहे। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि अन्त तक सुचेताजी इस कमेटी की उतनी ही नेत्री थीं, जितनी अरुणाजी।

अन्य नेत्रियाँ—इन दोनों के अतिरिक्त इस आन्दोलन में छात्रों के साथ छात्राओं ने बराबर बहुत गौरवजनक भाग लिया। हिन्दू विश्वविद्यालय की छात्राओं ने, बम्बई की देशसेविकाओं ने तथा अन्य स्थानों की स्त्रियों ने जो भाग लिया, उसका कुछ-कुछ वर्णन आता गया है। मातंगिनी, फुलेश्वरी, कनकलता आदि का यथास्थान वर्णन आ चुका है।

स्त्रियाँ त्याग में पुरुषों से आगे—पुरुषों के साथ-साथ सब त्याग करने पर भी, और कई क्षेत्रों में उनका त्याग अधिक नीरव होने पर भी स्त्रियों को एक त्याग पुरुषों से अधिक करना पड़ा। वह है फौजियों के तथा पुलिसों वालों के हाथों उनकी लज्जाहानि तथा सतीत्व का नाश। कई क्षेत्रों में तो लज्जा तथा अन्य कारणों से स्त्रियाँ तथा उनके पति आदि इस प्रकार की घटनाओं को दबा गए होंगे, फिर भी सैकड़ों घटनाएँ प्रेस में आईं, और जितनी थोड़ी-बहुत घटनाएँ आईं, उन्हीं से यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को इस क्षेत्र में नात्सीवाद के मुकाबले में झेंपने की कोई जरूरत नहीं। जिस प्रकार किराए के टट्टुओंने हमारी माँओं तथा बहिनों की इज्जत को बात-की-बात में नष्ट करके धर दिया, उसे पढ़कर आने वाली सन्तानें हमेशा खून के आँसू रोयेंगी।

यहाँ हम कुछ ऐसी घटनाओं को उद्धृत कर रहे हैं—

काशीबाई की लज्जाहानि—बम्बई के प्रधान मंत्री (उन दिनों अर्थात ९ दिसम्बर, १९४४ को भूतपूर्व प्रधान मन्त्री) श्री बी० जी० खेर के सभापतित्व में एक जाँच कमेटी ने जो नतीजे निकाले वे इस प्रकार हैं। यह घटना कोल्हापुर राज्य की पुलिस ने १९४२ के आन्दोलन के सम्बन्ध में जो आतंकवाद फैलाया था, उसी का अंश है। मल्लू नामक एक व्यक्ति १९४२ की क्रान्ति के सम्बन्ध में फरार था। उसी का पता लगाने के लिए उसकी माँ काशीबाई पर अत्याचार किए गए। यों तो पंगीरे नामक गाँव के सभी लोगों पर अत्याचार हुए। कमेटी ने जाँच करके इस बात को प्रमाणित पाया कि काशीबाई, उसका पति, उसके छोटे बच्चे तथा दो अन्य व्यक्ति १९४४ के १९ अक्टूबर को चिखावल के पुलिस पटिल के घर पर ले जाए गए। वहाँ काशीबाई को इंगवाले नामक दारोगा के सामने पेश किया गया। उससे पहला प्रश्न तो यह पूछा गया कि तुम मल्लू की माँ हो या बीबी। फिर दारोगा ने काशीबाई के बाल पकड़ लिए, उसे जमीन पर गिरा दिया गया, और उसके पति से कहा कि तुम इसे नंगी कर दो। काशीबाई नंगी की गई, और उस पर हंटर पड़ने लगे। उस पर थोड़ा-थोड़ा पानी भी छिड़का गया, यह शायद इस कारण कि हंटर के दाग न पड़ें।

गुप्तस्थान में मिर्च की बुकनी—कमेटी के सदस्यों ने देखा कि काशीबाई के शरीर पर अब भी हंटर के दबे हुए दाग थे। चार सनदी यानी इनामी जमीन प्राप्त चौकीदारों की गवाही से जो घटनास्थल पर मौजूद थे, कमेटी को यह ज्ञात हुआ कि फिर उस दुष्ट दारोगा ने काशीबाई को धमकाया कि यदि वह मल्लू का पता न बतायेगी तो उसके गुप्तस्थान में मिर्चों की बुकनी डाली जायगी। अन्य गवाहियों से यह साबित होता है कि मिर्चों की बुकनी या तो दारोगा ने खुद डाली, या उसके लोगों ने डाली। शुक्रवार को सवेरे फिर वह नंगी की गई, और मारी गई। काशीबाई का पति, दो बच्चे तथा अन्य जो दो आदमी थे, वे भी मारे-पीटे गए। एक को तो इतने जोर से धक्का मारा गया कि दीवारों की ईंटों में भी दाग पड़ गया। कमेटी के सदस्यों ने इस दीवार को देखा था। पटिल के घर में ही यह सब मार-पीट होती रही। इन सब को जब तक पुलिस उस गाँव में रही तब तक खाने को दाना नहीं दिया गया। बाहर

से लोगों ने मारपीट की आवाज सुनी। इसमें सन्देह नहीं कि काशीबाई के गुप्तस्थान में मिर्चों की बुकनी दी गई। कोल्हापुर सरकारी अस्पताल में काशीबाई का इलाज हुआ था, पर कोशिश करने पर भी डॉक्टर या नर्सों को गवाही देने की इजाजत नहीं दी गई। पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल से इजाजत मांगी गई कि वे डॉक्टर को आज्ञा दें, पर यह आज्ञा नहीं दी गई। एक स्त्री ने यह गवाही दी कि घर लौटकर काशीबाई के गुप्तस्थान से रक्तस्राव हो रहा था। स्मरण रहे कि यह अत्याचार शिवाजी के साक्षात् वंशधर कोल्हापुर के राजा के राज्य में हुआ। और उनके प्रधान मन्त्री ने इस बात की पूरी चेष्टा की कि कमेटी को काशीबाई पर अत्याचार के सम्बन्ध में कोई गवाही न मिले, फिर भी चार सनदियों ने तथा पटिल ने समर्थनात्मक गवाही दी है।

सिन्धुबाला माइति पर बलात्कार—बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल इलाके के चंडीपुर मौजा के श्री अधरचन्द्र माइति की पत्नी श्रीमती सिन्धुबाला माइति ने बयान दिया था—

"मेरी उम्र १६ साल है, और मेरा एक बच्चा है। १६४३ की ६ जनवरी दिन के ६½ बजे 'एक पुलिस अफसर' कुछ फौजियों के साथ मेरे घर में दाखिल हुआ। उन लोगों ने मेरे पति को जबरदस्ती पकड़कर अलग कर दिया, फिर मुझ पर बलात्कार किया। मैं बेहोश हो गई थी बलात्कृता होने का यह दूसरा मौका था।"

इस स्त्री पर १६४२ के २० अक्टूबर को एक दफे और बलात्कार किया गया था। दूसरी बार बलात्कृता होने के बाद इस स्त्री को कोई भयंकर रोग हो गया जिससे वह चल बसी।

खुदिबाला पर बलात्कार—इसी गाँव के हरिपद पंडित की पत्नी श्रीमती खुदिबाला पंडित ने यह बयान दिया था—

"मेरी उम्र २१ वर्ष है, मैं तीन बच्चियों की माँ हूँ। १६४३ की ६ जनवरी को सवेरे 'एक पुलिस अफसर' कुछ फौजियों के साथ मेरे घर में दाखिल हुआ। मेरे पति को गिरफ्तार कर कहीं और ले जाया गया। वह व्यक्ति फिर मेरे कमरे में आया, और उसकी हिदायत के अनुसार दो फौजियों ने मेरे मुँह को कपड़े से बाँध दिया, और उन लोगों ने धमकाया कि यदि मैं चिल्लाऊँगी तो

मुझे गोली मार दी जायगी। इसके बाद उन दोनों फौजियों ने एक के बाद एक मुझ पर बलात्कार किया। मैं बेहोश हो गई······होश में आने के बाद देखा कि मेरे पति लौट आए हैं, उनके शरीर पर चोटें हैं, और उन चोटों से खून टपक रहा है।"

जिस समय इस स्त्री पर बलात्कार किया गया था, वह गर्भवती थी।

सुहासिनी पर बलात्कार—इसी गाँव के श्री मन्मथनाथ दास की पत्नी श्रीमती सुहासिनी दास ने यह बयान दिया—

"मेरी उम्र २० साल है, अभी कोई बच्चा नहीं है। १९४३ की ९ जनवरी को 'एक पुलिस अफसर' कुछ फौजियों के साथ मेरे घर पर आया। उन्होंने मेरे पति को पकड़कर कहीं अलग पहुँचा दिया। उस व्यक्ति के हुक्म से दो फौजियों ने कपड़े के एक टुकड़े से मेरा मुँह बन्द कर दिया, और मुझे धमकाया कि यदि मैं चिल्लाऊँगी, तो मुझे गोली मार दी जायगी। उन दोनों फौजियों ने मेरे साथ जबरदस्ती की। मैं लज्जा तथा घृणा से बेहोश हो गई, आप लोग हमें फिर से सामाजिक बनाएँ।"

इस स्त्री को हैजा हुआ था, और बलात्कार के तीन दिन पहले ही उसने स्वाभाविक खाना खाया था।

विधवा पर बलात्कार—इसी गाँव के स्वर्गीय सुशील मुखर्जी की श्रीमती स्नेहबाला ने यह बयान दिया—

"मेरी उम्र २८ साल है। मेरे चार लड़के हैं। १९४३ की ९ जनवरी को 'एक पुलिस अफसर' कुछ फौजियों को लेकर हमारे घर पर आया। उनमें से कुछ ने मेरे बड़े लड़के को पकड़कर और कहीं भेज दिया। उस व्यक्ति की आज्ञा से फौजी मेरे कमरे में आए, और उन्होंने मुझे पकड़ किया। फिर मेरे मुँह में कपड़ा ठूँसकर मुझ पर बार-बारी से बलात्कार किया। मैं बेहोश हो गई, फिर जब होश में आई तो देखा कि लड़का लौट आया है, पर उसके शरीर पर चोटें हैं, और उसके घावों से खून बह रहा है।"

तीन फौजियों द्वारा बलात्कार—इसी थाने के डिही मसुरिया गाँव के श्री गिरीश मापारू की पत्नी श्रीमती वसन्तबाला मापारू ने इसी प्रकार का बयान दिया। उस पर तीन फौजियों ने जबरदस्ती की।

राइमणि पर बलात्कार—इसी गाँव के श्री भुवन पाड़िया की श्रीमती राइमणि पाड़िया के बयान में भी ये ही बातें थीं। उनके बयान में विशेषता यह है कि वह भागकर एक बाँस के जंगल में जा रही थी, पर पकड़ ली गई, और मुँह में कपड़ा ठूँसकर उस पर बलात्कार किया गया। यह स्मरण रहे कि एक ही थानेदार ने यह सब कराया। मालूम होता है कि उस पशु ने बलात्कारों का एक कार्यक्रम बना लिया था। यदि इन निर्यातनों के शिकार जापानी विजय चाहते भी तो बेजा न होता, क्योंकि ब्रिटिशगण पाशविकता में कम कब थे ?

करीब-करीब भारत-भर में सर्वत्र अगस्त क्रान्ति को दबाने के लिए स्त्रियों की लज्जाहानि तथा उन पर बलात्कार किया गया।

४५

जेलों में अगस्त-बन्दियों पर अत्याचार

जेलों में इतिहास बना—१९४२ का कोई भी वर्णन उस सम्बन्ध में राजबन्दियों पर किए गए अत्याचारों के वर्णन के बिना अधूरा रहेगा। यों तो अन्य अत्याचारों के साथ-साथ जेल के अत्याचारों का कुछ वर्णन हम कर आए हैं, पर इस अध्याय में अगस्त कैदियों के साथ जेल में हुए दुर्व्यवहारों का कुछ वर्णन किया जाता है। सच तो यह है कि राजनीतिक कैदी जहाँ भी रहे, उनके साथ दुर्व्यवहार हुआ, पर यहाँ कुछ ही जेलों का वर्णन दिया जायगा। 'हाँडी के चावल न्याय से' ऐसे सभी जेलों की दशा समझी जाय।

अलीपुरम जेल की मार—पहले दक्षिण के अलीपुरम जेल से चला जाय। यहाँ बहुत से प्रतिष्ठित राजबन्दी बन्द थे, जिनमें वकील, डॉक्टर सभी तरह के लोग थे। एक राजबन्दी तथा एक वार्डर में कुछ झगड़ा हो गया था, पर वह निपट गया था, और किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया था। एकाएक सीटी बजी, और लोग राजनीतिक बन्दी वार्ड की तरफ दौड़ते हुए देखे गए। सामने देखा गया तो जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट, जेलर तथा रिजर्व पुलिस आ गई थी। फिर सुपरिण्टेण्डेण्ट ने लाठी चार्ज का हुक्म दिया। बस फिर क्या था, लोग बात-की-बात में गिरा दिए गए, जैसे जंगल में पेड़ गिरा दिए जाते हैं, और धूल कई फुट तक उड़ने लगी। लोग उठने की चेष्टा कर रहे थे, पर फौरन गिरा दिए गए और फर्श खून से लाल हो चला। कुछ राजबन्दी जो अभी बैरक के अन्दर थे, वे बचे थे, पर अधिकारियों का ध्यान शीघ्र ही उधर गया, और वे भी गिरा दिए गए। सुपरिण्टेण्डेण्ट के बायें हाथ में पिस्तौल थी। जो लोग टट्टी में बैठे थे, वे वहीं पर गिरा दिए गए थे, और उधर भी लोग कराह रहे थे।

फिर मार और ड्रिल ???—एकाएक सब राजबन्दियों के बीच की जगह पर जाने को कहा गया। लोग बताई हुई जगह पर जाकर बैठ गए। लोग यह समझे कि अब मार हो चुकी, कुछ उपदेश होगा। पर यह क्या, अब फिर लाठी

चार्ज शुरू हो गया। अब तो लोग ऐसी जगह पर थे कि भाग भी नहीं सकते थे। इसके बाद लोगों को बाहर ले जाकर चार-चार की कतार में खड़ा होने को कहा गया। कई तो खड़े नहीं हो सके, पर बाकी खड़े हुए। जो खड़े हुए उनसे ड्रिल करने के लिए कहा गया। पर लोग ड्रिल न कर सके तो उन पर कोड़े पड़े। कोड़ों की मार से लोगों को ड्रिल कराया गया। इस प्रकार राज-बन्दियों को एक वार्डर के साथ झगड़ा करने का सबक दिया गया। यह १४ सितम्बर, १९४२ की घटना है।

शिब्बनलाल पर जेल में मार—७ सितम्बर, १९४२ को डी० आई० जी० मिस्टर लक गोरखपुर जेल में श्री शिब्बनलाल सक्सेना से मिले। उसी दिन उन्होंने यह पत्र विलायत लिखा—

प्रियतमे,

...ट्राबटन तथा उसकी सेना परसों यहाँ से जा रही है, और उनकी जगह पर सफोक सेना आ रही है। वे बड़े काम की रहीं। कई बार ट्राबटन की सेना ने अपने अधिकार से बाहर आकर हमारी मदद की। मुझे आशा है कि सफोक सेना भी इसी प्रकार सहायक सिद्ध होगी...प्रसिद्ध कांग्रेसी विद्रोही शिब्बनलाल सक्सेना जिसके लिए हम इतने दिनों तक परेशान थे, कल महाराजगंज में एक गाँव के मुखिया के द्वारा पकड़ लिया गया। इससे बड़ी चिन्ता दूर हुई। यही वह आदमी है जो एरिक मास की हत्या करने की चेष्टा में लगा था, और इस जिले की तोड़-फोड़ का बहुत कुछ इसी व्यक्ति ने संगठन किया था। आज मैंने उससे जेल में मुलाकात की। इस सूअर ने कहा कि इसे संयुक्त प्रान्त तथा बिहार में कांग्रेस विद्रोहियों के द्वारा होने वाले तोड़-फोड़ के कार्यों के सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम। मैंने उसे बतलाया कि किस प्रकार थानेदार जिन्दा जला दिए गए, इस पर उस बदजात ढोंगी ने कुछ घड़ियाली आँसू निकाले और कहा कि वाकई ऐसी घटनाएँ कांग्रेस के झंडे के लिए कलंक स्वरूप हैं, और कहीं गांधी जी को ये घटनाएँ मालूम हो गईं तो वे इसके लिए भयंकर प्रायश्चित्त करेंगे। मुझे तो शक ही नहीं विश्वास है कि इस पाजी सूअर ने ही कई ऐसे काम कराए होंगे। कांग्रेसी देशभक्तों का यह ढोंग देखकर बदन में आग लग जाती है। सच तो यह है कि जो कछ उपद्रव, आफत तथा गुंडई हुई है, उसके लिए इसे कुछ

भी अफसोस नहीं था । यदि उसे अफसोस था तो इस बात पर कि और अधिक बदमाशी करने के पहले पकड़ा गया । फिर मैंने उसे जेल की कोठरी में मारते-मारते करीब-करीब मार डाला । उसके पकड़े जाने पर एरिक को इतनी खुशी हुई कि उसने हमें तास में हराया । बड़ी खुशी है कि तुम खूब पार्टियों में जा रही हो, पर अधिक रात तक न जगा करो । पर मैं जानता हूँ कि तुम बहुत अच्छी हो । मेरी प्यारी स्त्री, बहुत प्यार ।

तुम्हारा ही

जिम

१९४२ तथा उसके बाद के दिनों में लाहौर का किला अत्याचार के लिए मशहूर हुआ । यहाँ पर जयप्रकाश जी, डा० लोहिया, शीलभद्र याजी आदि कितने ही राजबन्दी रखे गए थे । श्री शरत बोस के भतीजे तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में बयान हुए । हम बाद को उन्हें उद्धृत करेंगे । पहले हम देखें कि संयुक्त प्रान्त की फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेल में अगस्त बन्दियों पर क्या अत्याचार हुए । लेखक वहीं पर स्वयं रहा, पर यह विवरण कानपुर स्टेशन बम कांड के श्री निरंजन सिंह (सजा कालेपानी) द्वारा संग्रह किए गए विवरण के आधार पर है; जो लेखक के पास चोरी से लेखक के जेल रहते समय ही १-१०-४७ को दिया गया था ।

फतेहगढ़ का हृदयविदारक इतिहास—फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेल संयुक्त प्रान्त का अंडमन है । यहीं बड़ी दयनीय परिस्थिति में क्रान्तिकारी शहीद श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी की मृत्यु हुई थी । यद्यपि इस बार बरेली जेल में जैसे श्री दीवानसिंह की मृत्यु हुई थी, वैसे यहाँ कोई राजबन्दी नहीं मरा, पर राजबन्दियों के साथ इस जेल में जो व्यवहार हुआ, वह हृदयविदारक है ।

हर बहाने मार—मैनपुरी के अगस्त बन्दी बाबूराम तथा मास्टर गयाप्रसाद फतेहगढ़ आते ही चक्की पीसने के लिए भेजे गए । किसी मामूली-सी बात पर मास्टर गयाप्रसाद को इतना मारा गया कि उनके बाएँ पैर की एक हड्डी टूट गई । और वे जीवन-भर के लिए लँगड़े हो गए । इस मार के बाद उन्हें एक अँधेरी कोठरी में बन्द रखा गया, और उन्हें तीन दिन तक पानी नहीं दिया गया । चौथे दिन वह फिर निकाले गए और उन पर फिर तड़ी डाली गई । अब

मास्टर साहब से और सहन नहीं हुआ, और उन्होंने उसी हालत में अनशन कर दिया। यह अनशन ४० दिन चला। जब ४० दिन पर उनकी हालत खराब हो गई, और अधिकारियों ने वायदा किया कि आगे उनके साथ दुर्व्यवहार न होगा, तब उन्होंने अनशन तोड़ा। इस वायदे पर भी अनशन करने के ही कारण उन पर मुकदमा चला और उन्हें ६ महीने की सजा दी गई।

मारा भी, और मुकदमा भी चलाया—इसी प्रकार इटावा के कन्हैयालाल जी को पहले चक्की दी गई, फिर इतनी मार पड़ी कि खोपड़ी टूट गई, और कुर्ता तथा जाँघिया खून से लथपथ हो गए। फिर वह बेहोश हो गए। बिना कारण मार पर उन्होंने अनशन किया, और अनशन के लिए उन पर दफा ५२ का मुकदमा चला। अदालत ने उन्हें बीस बेंत की सजा दी। इटावा के बाबूराम गुप्त और ओंकार सिंह तथा मैनपुरी के रामनारायण आजाद ने उनकी सहानुभूति में अनशन कर दिया, इसके लिए उनको भी २०-२० बेंत की सजा दी गई। खैरियत यह हुई कि अपील में भी बेंत की सजा ही दी गई।

फालिन तथा भूखों रखना—इसी जेल में कानपुर के शिवराम सिंह, रामनाथ वर्मा, रामरतन, गाजीपुर के सिद्धिनाथ, गिरिराज, फर्रुखाबाद के हलचल, बच्चीलाल, बलिया के रामनगीना तथा मूलराज सिंह को इतना मारा गया कि उनके मुँह से तथा टट्टी से खून गया। कन्हैयालाल तथा शिवराम सिंह के कान भी फट गए। कुछ राजबन्दियों के अतिरिक्त फतेहगढ़ के सब 'सी' श्रेणी के राजबन्दियों पर फालिन हुआ। गिरा कर टाँग उठाकर मारने को फालिन कहते हैं। जब इस प्रकार की मार से राजबन्दी बेहोश हो जाते थे तो उन्हें घसीटकर अन्धी कोठरी में बन्द कर दिया जाता था। जिस समय इन कैदियों पर फालिन होता था, उस समय गांधी जी तथा अन्य नेताओं को गालियाँ दी जाती थीं। जब ये मारकर कोठरी में डाल दिए जाते थे, तो किसी नम्बरदार या मामूली कैदी को दया आ जाती थी, तब उन्हें पानी मिल जाता था। पर यदि अधिकारियों को इसका पता लग जाता था, तो उस कैदी की शामत आ जाती थी।

नमस्ते पर मारे गए—राजनीतिक कैदियों पर क्यों मार पड़ती थी, यह भी देखा जाय। कुछ पर तो इस कारण मार पड़ी कि उन्होंने जेलर से शराफत से नमस्ते कह दिया। राजनीतिक कैदी इस लायक भी नहीं समझे जाते थे कि

उनका नमस्ते लिया जाय। यदि किसी की तबीयत खराब हो, और वह खाना न खाता तो उस पर भी मार पड़ती। इलाहाबाद के जमुनाप्रसाद, रामचन्द्र, जगन्नाथ, मेरठ के मिठनलाल और कामता प्रसाद पर कई बार मार पड़ी।

काम न करने पर मारे गए—मैनपुरी के सरदार मन्नासिंह पर इस कारण मार पड़ी कि वे जेल की मशक्कत पूरी न कर सके। इस पर प्रतिवाद में वह अनशन करते रहे। कई मौकों पर पूरी मशक्कत करने वाले राजबन्दी भी इस कारण मारे गए कि उन्होंने खुद तो काम किया, पर वे अपने साथियों से काम कराने में असमर्थ रहे।

रामदत्त शुक्ल जेलर—ये सारे अत्याचार रामदत्त शुक्ल जेलर के जमाने में हुए। मजे की बात यह है कि रामदत्त शुक्ल के छोटे भाई श्री जगदीश शुक्ल एक क्रान्तिकारी रहे। रामदत्त शुक्ल की हृदयहीनता का परिचय इसी से मिलेगा कि उसने अपने छोटे से लड़के को पुलिस की इस शिकायत पर हमेशा के लिए घर से निकाल दिया कि उसने किसी राजनीतिक जुलूस में भाग लिया था, और यह बेचारा दाने-दाने को मुहताज हो गया। रामदत्त शुक्ल के बाद अजीनतुल रहमान जेलर होकर आए, पर वह भी रामदत्त की लीक पर चलते रहे।

मुफ्त में बेंत—इसी जेल में अनुशासन भंग के कारण कानपुर के शिवराम सिंह, रामराखन, मन्नालाल द्विवेदी, इटावा के राधाकृष्ण और कन्हैयालाल, बनारस के देवनन्दन दीक्षित मिरजापुर के बिहारी राम, नैनीताल के दलीपसिंह को अनुशासन भंग पर सात-सात बेंत लगे। असल में इनको बेंत इस कारण लगे कि इन्होंने जेलों के आई० जी० के आते समय परेड पर खड़े होने से इनकार किया था।

खूब मार पड़ी—खीरी के रामेश्वर दयाल, मुन्नालाल, काशीराम, जगन्नाथ, कोमिल राम, छोटेलाल, बदाऊँ के हरिनारायणसिंह, फैजाबाद के रामसुन्दर, प्रतापगढ़ के लाला माधो सिंह, पीलीभीत के पं० रामलाल शर्मा भी मारे गए। इटावा के जगदीशचन्द्र यादव पर इस कारण मार पड़ी कि उन्होंने दीमक द्वारा खाए हुए कम्बल को लेने से इनकार किया। रामलाल शर्मा और प्रेम सिंह को लकड़ी ढोने को कहा गया, इससे इनकार करने पर उन पर मार पड़ी।

एक साथ पाँच-पाँच सजाएँ—जेलर शौकत वेग ने तो अपने हुक्म से राज-

बन्दियों का राशन घटा दिया, कहा कि वे इतना हजम नहीं कर सकते क्योंकि वे पूरी मशक्कत नहीं कर रहे हैं। कुछ कैदियों को गैरकानूनी तरीके से पाँच-पाँच सजाएँ एक साथ दी गईं—(१) डंडा बेड़ी (२) हथकड़ी (३) कोठरी (४) कम खाना (५) कड़ी मशक्कत। इसके अलावा मार तो घाटे में पड़ती थी। खीरी के काशीराम ने प्रार्थना की कि उनकी मशक्कत बदल दी जाय, इस पर उन्हें गिराकर मारा गया।

स्वास्थ्य गिरा—इन कारणों से कई कैदी बीमार हो गए। पर बीमार होने पर भी अस्पताल नहीं भेजा जाता था। फिर भी इटावा के स्वामी बुद्धूलाल, बदाऊँ के हरिनारायण सिंह, बलिया के हरगोविन्द सिंह तथा फर्रुखाबाद के बच्चीलाल को बराबर अस्पताल में रखना पड़ा। यही हाल इटावा के मिजाजी लाल का रहा।

सब को 'सी' श्रेणी—अत्यन्त प्रतिष्ठित अगस्त कैदियों को भी 'सी' श्रेणी में रखा गया। इटावा के भारतवीर श्री मुकुन्दीलाल जी काकोरी षड्यन्त्र के कैदी की हैसियत से ८ साल 'बी' श्रेणी के कैदी थे, पर अगस्त कैदी (सजा सात साल) की हैसियत से वह बराबर 'सी' श्रेणी में ही रखे गए। वह ४० पौंड घट गए। जौनपुर के श्री रामबली गुप्ता के घर को लूटकर पुलिस ७२,०००) रु० ले गई थी, पर वह भी 'बी' श्रेणी के योग्य नहीं समझे गए। इसी प्रकार अन्य कैदियों की हालत रही।

द्विजेन्द्र बोस तथा मि० ऋषि का बयान—श्री शरतचन्द्र बोस के भतीजे श्री द्विजेन्द्र बोस ने, जो लाहौर के किले से रिहा किए गए थे, अपनी रिहाई के बाद लाहौर की एक विराट् सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए जेल के घृणित अत्याचारों का करुणाजनक वर्णन किया। इसके साथ ही पंजाब के डॉक्टर ऋषि का वक्तव्य भी हम प्रकाशित कर रहे हैं, जिससे कि लाहौर के किले में राजनीतिक बन्दियों के प्रति होनेवाले घृणित व्यवहारों का पता चले।

स्वास्थ्य गिर गया—श्री द्विजेन्द्र बोस ने बतलाया कि एक बार मुझे एक ऐसे अलग कमरे में ले जाकर बन्द कर दिया गया, जिसमें ११६ डिग्री तक गर्मी पहुँचाई गई थी और मुझे तब तक उसमें रखा गया, जब तक कि मैं बेहोश नहीं हो गया।

श्री बोस इतने अधिक दुर्बल थे कि वह मंच तक भी नहीं आ सकते थे, और अपने भाई सुशील बोस की सहायता से मंच पर आए। मंच पर भी वह खड़े न रह सके, और बैठे-ही-बैठे भाषण किया, बोलने के कारण बीच-बीच में आप को थकान का अनुभव होने लगता था, और सुस्ताने के लिए रुक जाना पड़ता था।

गोली से उड़ाने की धमकी—आपने कहा कि मैं करीब साढ़े चार वर्ष तक जेल में बन्द रहा, और अब जाकर अंग्रेजी राज्य के कसाईखाने से छुटकारा पा सका हूँ। जब मैं लाहौर के किले में था, उस समय खुफिया पुलिस का एक अफसर मुझ से दिन-रात सवाल किया करता था—"क्या सुभाष बाबू महात्मा गांधी की सलाह से हिन्दुस्तान से भागे?" "क्या पंजाब के माल मन्त्री सरदार बल्देवसिंह सुभाष बाबू के मित्र हैं?" "क्या सरदार बल्देव सिंह ने सुभाष बाबू को भागने में मदद दी थी?" जब मैं इन प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार कर देता था, तो धमकाया जाता कि तुम्हें गोली से उड़ा दिया जाएगा।

ऋषि का बयान—पंजाब के डॉक्टर शिवनन्दन ऋषि ने, जो लाहौर के किले से रिहा किए गए थे, एक वक्तव्य प्रकाशित कर लाहौर के किले में बन्द राजबन्दियों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार पर प्रकाश डाला है और अध्यक्ष आजाद से अपील की कि देश-भर के जेलों में राजबन्दियों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार की जाँच के लिए कमीशन नियुक्त करें।

पृथ्वी पर नरक—आपने अपने वक्तव्य में कहा है कि श्री द्विजेन्द्र बोस इसलिए धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने लाहौर के किले के नारकीय दृश्यों को जनता के सामने उपस्थित किया। यह महत्व की बात है कि दिल्ली का किला, अहमद नगर के किले, आगा खां के महल या देवली कैम्प जेल की तरह नजरबन्द शिविर नहीं था। उस पर इन्सपेक्टर जनरल आफ प्रिजन्स का कोई अधिकार नहीं था और पुलिस वाले भी, जो कानूनी हवालातों के जिम्मेदार थे लाहौर के किले में कुछ नहीं कर सकते थे। वह किला पूरी तौर से पंजाब के खुफिया पुलिस विभाग की स्पेशल ब्रांच के हाथ में था जो ब्रिटिश सरकार के इण्टेलिजेन्स ब्यूरो की सहायता से काम करता था। इसलिए 'पृथ्वी पर इस नरक' की व्यवस्था का पूरा दायित्व खुफिया विभाग के हाथ में ही था।

बिल्कुल अलग कमरे में बन्द करना, छोटे से अँधेरे कमरे में बन्द कर

देना, उसी कमरे में छोटे से खुले हुए बरतन में शौच आदि से निवृत होना, जिस में चौबीसों घंटे बदबू से नाक फटती है, हफ्तों हजामत बनाने से रोककर, कपड़े साफ करने से रोककर, और नहाने से रोककर अस्वास्थ्यकर जीवन के लिए विवश करना लाहौर के किले की मामूली घटना थी। इस प्रकार गन्दी भाषा का प्रयोग और गालियाँ भी साधारण-सी बात थी।

तरह-तरह की यातनायें—लाहौर के किले में स्वयं अपने दो मास के बन्दी जीवन में मुझे इतनी शारीरिक और मानसिक यातनाएँ सहनी पड़ीं कि उस जीवन से मृत्यु कहीं अधिक अच्छी मालूम होती है। मुझे कड़ाके की सर्दी की तीन रातें बिना बिस्तर ओढ़ने के बितानी पड़ी, जिससे मुझे १०१ डिग्री तक ज्वर चढ़ आया, छाती में कफ इकट्ठा हो गया और कफ के साथ खून गिरने लगा, फिर भी मेरे औषधोपचार की कोई व्यवस्था नहीं की गई। इसका फल यह हुआ कि दो दिन बाद मुझे निमोनिया हो गया और बहुत शोरगुल मचाने पर एक डॉक्टर बुलाए गए। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उक्त डॉक्टर भी एक मिक्श्चर का नुस्खा लिखकर चलने लगे। इस पर मैंने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि बिना बिस्तरों के सील में पड़े रहने से कैसे अच्छा हो सकता हूँ। इसके दो-तीन दिन बाद किसी तरह मेरे लिए एक बिस्तर की व्यवस्था की जा सकी।

मेरे लिए सबसे अधिक शारीरिक यातना यह थी कि मुझे लगातार तीन दिन और रात सोने नहीं दिया गया। इन ७२ घंटों तक मुझे आँखें खुली रखने के लिए विवश किया गया। इस यातना की कल्पना से ही रोमांच हो जाता है।

अजीब प्रश्न—मुझसे जो प्रश्न किए जाते थे, उनका सम्बन्ध "आजाद पंजाब गजट" से होता था जो शिन उपनामधारी व्यक्ति के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था और पंजाब के भारत छोड़ो आन्दोलन से था। प्रश्नकर्त्ता इस बात का बहुत प्रयत्न करते थे कि विध्वंसक कार्यों का सम्बन्ध कांग्रेस नेताओं से जोड़ा जाए। मैंने उन्हें बताया कि "आजाद पंजाब गजट" ने कभी हिंसा या विध्वंस के कार्यों का प्रचार नहीं किया और पंजाब में सबसे पहली हिंसा तो वही है जो खास ब्रिटिश सरकार की देख-रेख में लाहौर के इस किले में

नजरबन्द, असहाय, एकाकी लोगों के साथ की जा रही थी।

जौनपुर जेल में दिन मारपीट से शुरू—जौनपुर जेल के सम्बन्ध में यह ज्ञात हुआ है कि अगस्त बन्दियों की दिनचर्या कुछ दिनों तक मार से ही कराई जाती थी। उन दिनों वहाँ ८०० राजबन्दी थे। अगस्त बन्दियों के साथ ऐसा व्यवहार था, जब कि मामूली बदमाशों के साथ भी ऐसा नहीं किया जाता था।

बीस-बीस बेंत—बरेली जिला जेल के क्रान्तिकारी बार्ड पर सरकार की विशेष कृपा रही। वहाँ राजनीतिक कैदियों से कहा गया कि अपने कुर्तों पर नाम स्टेन्सिल करवा लो। कैदियों ने ऐसा करने से इनकार किया तो उनको गाली-गुफ्ता दिया गया, इस पर उन्होंने अनशन कर दिया। इस पर आजमगढ़ के मुक्तिनाथ उपाध्याय, फैजाबाद के जगदीश शुक्ल, महाराष्ट्र के विरूपाक्ष, बनारस-गाजीपुर के हृदयनारायण पाठक, जौनपुर के शिवव्रतसिंह, जौनपुर के दुखहरण मौर्य, गोरखपुर के केशव पांडेय, बलिया के मृगराजसिंह, गोंडा के जगन्नाथ पुरी को बीस-बीस बेंत मारे गए। बरेली में रोज ६ बार तलाशी होती थी।

आपसी लड़ाई से सरकार को फायदा—इसी जेल में १९४३ के जाड़े में विभिन्न पार्टियों के राजबन्दियों में लड़ाई हुई। कम्युनिस्ट और आर० एस० पी० वाले एक तरफ तथा दूसरी तरफ एच० एस० आर० ए० वाले थे। सी० एस० पी० का वहाँ अस्तित्व नहीं था। इस लड़ाई में तसला, स्लेट चला। इस पर पचासों बन्दियों को तीन-तीन महीने की बेड़ी दी गई। आपसी झगड़ा था, आपस में निपट जाता, पर ब्रिटिश सरकार तो मौका ढूँढा करती थी। इस झगड़े के बहाने लालटेन, पुस्तकें आदि छीन ली गई।

भंगियों से कहा मारो—इसके बाद जेल के भंगियों को भड़का दिया गया कि राजबन्दियों को मारो। भला उन बदमाशों को क्या चिन्ता थी वे इसके लिए तैयार हो गए। इस पर राजनीतिक बन्दियों ने मौका देखकर खुद ही टट्टी काटना शुरू किया, और कहा कि हमारे वार्ड में भंगियों के आने की जरूरत नहीं, हम खुद ही टट्टी काट लेंगे। तीन दिनों तक टट्टी काटना जारी रहा, तब भङ्गी बदल दिए गए।

अनशन किया तो बेंत लगे—वहाँ १९४४ के २८ जनवरी को २४ राज-

बन्दियों ने अनशन किया। उनका अनशन दुर्व्यवहार के विरुद्ध था। उसी दिन अनशन की हालत में निम्नलिखित बन्दियों को बीस-बीस बेंत मारे गए—

(१) मिठाईलाल गुप्त (२) रामराज यादव (३) शिवव्रत सिंह (४) दुखहरण मौर्य (५) सूर्यनाथ उपाध्याय (६) बैजनाथ सिंह (७) दयाशंकर (ये सातों जौनपुर के थ।), (८) हृदयनारायण पाठक (९) कालका राय (१०) रमाशंकर राय (ये तीनों गाजीपुर के थे।), (११) शान्तिस्वरूप त्यागी (मेरठ), (१२) नेकराम शर्मा (आगरा), (१३) उदरेश सिंह (जौनपुर) (१४) मृगराज सिंह (बलिया), (१६) शंभुनाथ (झाँसी) (१७) गणेश चतुर्वेदी (ओरई), (१८) विरूपाक्ष (महाराष्ट्र), (१९) बद्रीनारायण मिश्र (गोरखपुर), (२०) केशव पांडे (गोरखपुर)

सरकार को झुकाया—इन लोगों को बेंत लगाने के बाद जो घाव हुए उनमें किसी प्रकार मरहम-पट्टी नही की गई थी। लोगों को बेंत लगाने के बाद बैरक में घसीट कर बन्द कर दिया। छः दिन तक कोई खबर नहीं दी गई। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, पर कम्बल ले लिए गए थे। कर्नल शेख आए, कहा कोठरी बन्द करो। बन्दी बेंत की मार तथा एक सप्ताह के अनशन से दुर्बल हो गए थे, इस कारण उन्होंने स्टेचर के बिना कोठरी में जाने से इनकार किया। इस पर वे एक फर्लांग तक घसीटकर कोठरी में ले जाए गए। कैदी दृढ़ बने रहे, इस पर १६ फरवरी को समझौता हो गया।

अन्य अत्याचार—१९४४ के १ नवम्बर को कुंजबिहारी सिंह, हृदय पाठक, अर्जुन सिंह पर दफा ५२ चला, और उनकी सजा ६ महीने बढ़ा दी गई। इनको ६ महीनों तक एक लंगोट तथा एक चादर पर रखा गया। इस पर उन लोगों ने प्रतिवाद में कोठरी से निकलने से इनकार किया, इस कारण ये रोज घसीट कर बाहर लाए जाते थे। गोरखपुर के हरि प्रसाद को टट्टी फिरते समय घसीट कर लाया गया, उन पर यह अभियोग था कि वे परेड के समय टट्टी गए थे। इसके प्रतिवाद में ३४ राजबन्दियों ने अनशन किया जो ६० रोज चला। इनमें से श्री भगवान शुक्ल को १२ दिन पानी नहीं दिया गया। अनशन के जमाने में भी लोग घसीटे और मारे जाते थे।

दीवानसिंह तथा उमाशंकर—इसी जेल में दीवानसिंह मरे। अत्याचार के कारण वह घुल-घुल कर शहीद हुए। गाजीपुर के उमाशंकर को निमोनिया होने

पर भी वह अस्पताल नहीं भेजे गए। अन्त में उनकी हालत इतनी खराब हो गई कि उन्हें सदर अस्पताल ले जाया गया, और वह वहीं मर गए।

विष्णु कुमार द्विवेदी पर अत्याचार—लखनऊ के अगस्त नेता श्री शिवकुमार द्विवेदी के छोटे भाई विष्णु कुमार द्विवेदी एक छोटे स्टेशन पर पकड़े गए। कई तमंचे एक साथ उन पर तान दिए गए थे, उनको खूब मारा गया, और बार-बार उठा-उठाकर पटक दिया गया। तीन दिन तक उन्हें बिना दाना-पानी के एक कोठरी में बन्द रक्खा गया। फिर चौथे दिन से उन्हें रोज तीन आने की खुराक दी जाती थी। इसी के बाद से उन्हें मुखबिर बनाने के लिए तरह तरह की यन्त्रणा दी जाने लगी। जब इन्होंने इनकार किया, तो उन पर लाठी, जूतों, घूसों की मार पड़ी, और वे बेहोश हो गए। होश आने पर फिर मार पड़ती, और फिर पुछाई शुरू होती। जब श्री द्विवेदी ने पुलिस अफसरों से बात करने से इनकार किया तो उन्हें टांग दिया गया। रोज कई घण्टे तक टांगना जारी रहा। नाखूनों में सुई चुभोई गई। उनके सीने पर कई लाठियाँ बिछाकर फिर दोनों तरफ कई पुलिस वाले बैठे। मार के कारण पेशाब तथा टट्टी हो जाती थी। श्री द्विवेदी बहादुरी से इन अत्याचारों को सहते रहे, पर उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया।

वीर योगेश चटर्जी—अगस्त क्रान्ति के अन्यतम वीर नेता श्री योगेश चटर्जी इन अत्याचारों की बात सुनते-सुनते ऊब गए, विशेषकर सब अगस्त बन्दी 'सी' श्रेणी में रखे जाते थे, इसका उन्हें बहुत मलाल था क्योंकि बन्दियों के वर्गीकरण तथा राजनीतिक कैदियों के लिए लड़कर सहूलियतें दिलाने में उनका जितना स्थान रहा, उतना कम व्यक्तियों को ही रहा। इस कारण उन्होंने १९४५ में आमरण अनशन शुरू कर दिया। सारे भारत में तहलका मच गया। अन्त में लोगों के आग्रह पर उन्होंने अनशन तोड़ दिया। इस प्रकार इस महावीर नेता का २५ साल जेल काटने पर भी जोश बराबर बना रहा, और वह अगस्त क्रान्तिकारियों की अगली कतार में रहे। उनके अनशन के कारण देश भर के लोगों का ध्यान अगस्त बन्दियों की दुर्दशा की ओर गया।

४७

१९४२ की क्रान्ति पर एक रोशनी

एक प्रसिद्ध वक्तव्य—१९४२ की क्रान्ति के विषय को समाप्त करते हुए यह उचित ही है कि उसके दो वीर नेताओं ने उसके सम्बन्ध में फरारी की हालत में जो बयान दिया था, उसे उद्धृत किया जाय। १९४५ के दिसम्बर में कांग्रेस कार्य-समिति ने १९४२ पर जो प्रस्ताव किया था, उसी के फलस्वरूप श्रीमती अरुणा आसफअली तथा श्री अच्युत पटवर्धन को वह बयान देना पड़ा था—

एक गुप्त संस्था—"हम लोगों ने अहिंसा पर २१-१२-४५ को पास किया कांग्रेस कार्य-समिति का प्रस्ताव देखा है। इस प्रस्ताव का गत तीन वर्षों की घटनाओं पर क्या असर पड़ा है तथा कांग्रेस के इस प्रस्ताव के अनुसार परिचालित होने पर आगामी आन्दोलन या संग्राम पर क्या असर पड़ सकता है, इस पर हमने खूब विचार किया है। बम्बई में आपकी गिरफ्तारी के बाद कोई एक दर्जन बहुत जिम्मेदारी कांग्रेसी मौजूद थे। इन लोगों में कुछ ऐसे साथी थे जिनके सम्बन्ध में यह सन्देह भी नहीं किया जा सकता कि वे कभी गाँधी जी के सत्य और अहिंसा के प्रति विश्वासघात भी कर सकते हैं। इन साथियों के साथ हमारी यह जिम्मेदारी है कि हमने एक ऐसी संस्था संगठित की जिसके द्वारा हम उन हजारों कांग्रेसियों को तथा दूसरों को जो अब भी जेल के बाहर थे और १९४२ के ८ अगस्त के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए उत्सुक थे, ऐसी हिदायत दी जाती थी, जो जरूरी समझी जाती थी। हम इस बात की बहुत अहम जरूरत समझते थे कि जो शक्तियाँ मुक्त हो रही थीं, उन्हें नेतृत्व दिया जाय। करीब-करीब आपकी गिरफ्तारी के तुरन्त बाद से हिदायतें, आवेदन, घोषणाएँ (कांग्रेस रेडियो से समय-समय पर दी जाती थीं, और यह सारा कार्य अखिल भारतीय कांग्रेस के नाम से होता था। यदि हम इस सिलसिले में अपने कार्यों का उल्लेख कर रहे हैं, तो यह केवल इस कारण कि इन वर्षों के

दौरान में जिस नीति का अनुसरण किया गया, उसके लिए वैयक्तिक जिम्मेदारी लेने से हम नहीं हिचकते। इस सम्बन्ध में अखिल भारतीय कांग्रेस के नाम पर हमने जो जिम्मेदारी ले ली थी, कभी किसी ने हमारे हक पर प्रश्न नहीं किया। बल्कि सबने दिल खोलकर हमारी सहायता की। कांग्रेस की पुकार पर जनता ने अपने आप जवाब दिया, यह आधुनिक इतिहास की सबसे बड़ी घटना है। जब जनता ने एक बार खुले विद्रोह के मार्ग में पैर रखा, तो उसने इसकी मांग की कि बाअसर और साहसपूर्ण नेतृत्व दिया जाय। उन्होंने यह चाहा कि सरकारी आतंकवाद में जहाँ तक सम्भव है, वहाँ तक संगठित हुआ जाय, और कुछ समय के लिए इस सम्बन्ध में उनकी प्रतिभा विजयी रही। रेल की पटरियों को उखाड़ने, तार काटने, गुप्त कार्य, सरकारी लोगों का जोरदार बायकाट तथा अन्य बहुत से विषय में स्पष्ट निर्देश दिए गए कि क्या करना है।

अकेला संगठन सम्भव नहीं—"······कांग्रेस ने यह नारा दिया था कि अहिंसात्मक रूप से बड़े-से-बड़े पैमाने पर जन संग्राम जारी किया जाय। वह कहा गया था कि 'जो भी भारतीय आजादी चाहता है, और उसके लिए काम करना चाहता है, वह अपना पथप्रदर्शक बने, और विश्रामहीन रूप से कठिन मार्ग पर चले।" यह सब ठीक है, पर प्रत्येक व्यक्ति न तो मौलिक बुद्धि का अधिकारी हो सकता है, और न संगठित चेष्टा ही कर सकता है।

हम भगोड़े नहीं—"···आप का यह भी निश्चित कहना है कि जिस-जिस प्रकार से संग्राम किया गया, वह कांग्रेस की अहिंसा नीति के विरुद्ध है, और उससे मेल नहीं खाते। इस प्रकार हमारे सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं। एक तो यह है कि जो कुछ हुआ उसे जनता का बिल्कुल स्वतः स्फूर्त विद्रोह का विस्फोटन मान लें और अपने को उसी से प्रभावित समझें, और भविष्य के लिए आपके फैसले को शिरोधार्य समझकर काम करें। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि उसमें हमारा जो भाग रहा है, हम उससे मुकर जायँ, और आपके फैसले को चुपचाप कबूल करें। पर ईमानदारी साथ ही विश्वास हमें दूसरे मार्ग को अपनाने से रोक रहे हैं। हम को बराबर यह चेतावनी दी गई थी कि हमारे कार्यों को अस्वीकार किया जा सकता है, और सही प्रतिरोध तथा संग्राम क्या है इस सम्बन्ध में हमारी व्याख्या गलत मानी जा सकती है। फिर भी हमने

एक ही व्यावहारिक कसौटी का अनुसरण किया कि जिन बातों से भी प्रतिरोध तथा संग्राम की शक्ति स्थाई होती है और स्वतन्त्र होने की भावना तगड़ी पड़ती है और अधिक होती है, वे जायज हैं। हम आन्तरिक रूप से इस बात के लिए मजबूर हैं कि हम फिर से अपना विश्वास व्यक्त करें।

जनता से असली नेतृत्व—"हमने ऊपर से जनता पर कोई बात लादी नहीं कि ऐसा ही करो, और अवश्य करो। इसके विपरीत हमने अपनी क्षुद्र बुद्धि से जनता के तौर-तरीकों का अध्ययन किया, और फिर इस बात की चेष्टा की कि दूर के विद्रोह केन्द्रों से हमें किस बात से क्या तजरबा हो रहा है। इन तरीकों को काम में लाते हुए हजारों ने जीवन बलिदान कर दिया। ऐसी हालत में यदि हम उनसे मुकर जाएँ तो वह कायरता होगी। हमारा संग्राम ब्रिटिश पद्धति के विरुद्ध सामूहिक संग्राम था, न कि यह हमारा निजी संग्राम था।"

गलती नहीं मानते—"हमारा यह वक्तव्य है कि कार्य समिति ने अपनी सुख्याति पर इस बात से बट्टा ही लगाया है कि स्वतन्त्रता के संग्राम में जो ऐतिहासिक कृत्य किए गए, उन्हें आप-से-आप होने वाली भावुकतापूर्ण गलत कृतियाँ बतला दिया। हम अपनी गलतियों को समझने में असमर्थ हैं, यद्यपि सभी तरह के संगठनों में जिस प्रकार की औसत गलतियाँ होती हैं, वे हुई ही होंगी।

संगठन की जिम्मेदारी—" जो लोग जनता को इस बात के लिए कहते हैं कि एकदम से विद्रोही होकर एक मुहूर्त में अपना सर्वस्व बलिदान कर दें, उन पर स्वाभाविक रूप से इस बात की जिम्मेदारी तथा मजबूरी है कि संग्राम की उपलब्ध शक्तियों को नेतृत्व दिया जाय, तथा उनमें सहयोग स्थापित किया जाय। यह बहुत ही जरूरी है, और उस हालत में और भी जरूरी हो जाता है जब कि प्रतिरोध का ढंग विकेन्द्रीकृत है।

फिर वही पुराना राग—"इसी बात को न समझने के कारण हम यह देखते हैं कि संगठन की अद्भुत प्रतिभा को एक देशीय तरीके से काम में लाया जाता है, लोगों में जोश तो पैदा किया जाता है, पर उसी के अनुपात से जोश को संगठित कर काम में लगाने की चेष्टा नहीं की जाती है। इसी नीति पर आगे भी चलते जाना इस बात को जाहिर करता है कि गत तीन वर्षों में जा

तजरबे हुए, उससे इनकार किया जा रहा है। मरे हुए लोगों को वीर तथा शहीद करके तारीफ करना, साथ ही उन कार्यों की निन्दा करना जिनको उन्होंने सामूहिक रूप से निर्भय होकर किया, इसका भी वही नतीजा हुआ कि जोश को कार्य से अलग कर दिया गया। इस प्रकार की नीति के कारण भूतकाल में बहुत से अच्छे कार्यकर्त्ता कांग्रेस से अलग हो चुके हैं। इसलिए हमारी यह प्रार्थना है कि इन वजनी विषयों पर फिर से विचार किया जाय।

भविष्य पर बुरा असर—"इस प्रस्ताव का भूतकाल की घटनाओं तथा वर्तमान के कर्तव्यों पर जो गम्भीर असर पड़ेगा, उसके अलावा भविष्य के संग्राम पर इसका असर बहुत ही और इससे कहीं भयंकर है।........ इस प्रस्ताव के अनुसार आगे इस समय देश के सामने जो काम है, वह है गांधीवादी रचनात्मक कर्यक्रम। कहने को तो धारा सभाओं का कार्यक्रम रचनात्मक कार्यक्रम की तुलना में गौण है, पर वास्तव में कुछ और ही बात है ....

अहिंसा का सार—"अहिंसा के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति मुख्यतः परिस्थिति के अनुसार रही है। समय-समय पर कांग्रेस ने व्यावहारिकता के अन्दर अहिंसा के दायरे की परिभाषा की है। भूतकाल में भी कांग्रेस ने गांधीवादी अहिंसा के कट्टर तर्क को मानने से इनकार किया है। कांग्रेस के प्रस्तावों के द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता।....... अहिंसा का सार यह है कि हम यह मानते हैं कि जो लोग सरकारी पद्धति को चलाते हैं, वे उतने जिम्मेदार नहीं, जितनी कि यह पद्धति जिसको सरकार कहते हैं, सारी बातों के लिए जिम्मेदार है......

हमारी सेवा बहुत साधारण—"हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि विपुल परिमाणों में जो औपादानिक शक्तियाँ मुक्त हुईं, उनकी अवज्ञा की जाए, और हम सारा श्रेय लें। फिर भी जो हजारों लाखों मन औपादानिक शक्तियाँ मुक्त हुईं, उनको एक आध माशा परिचालना हमने दी।"

यह वक्तव्य बहुत ही सुन्दर है, पर इसमें एक त्रुटि यह है कि लेखकों ने अपने समाजवादी ध्येय को स्पष्ट नहीं किया।

४८

आजाद हिन्द फौज

१९१४-१८ के महायुद्ध के समय भारतीय क्रान्तिकारियों ने किस प्रकार ब्रिटिश सरकार की शत्रुशक्तियों से मिलकर भारत को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न किया था, उसका विस्तृत इतिहास पीछे दिया जा चुका है। उस अवसर पर भी पकड़े हुए भारतीय सैनिकों को समझा-बुझाकर आजाद हिन्द फौज बनाई गई थी।

जापान में रासबिहारी—इस बार भी आजाद हिन्द फौज बनी, और अब की बार इस आन्दोलन का प्रारम्भ १९१४-१८ के युग के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस के हाथों हुआ। रासबिहारी के १९१४-१८ युग की सारी कथाएँ पीछे बताई जा चुकी हैं। वह भारत से फरार होकर जापान में जाकर बस गए थे, और एक जापानी महिला से शादी कर पूरे जापानी होकर रहते थे। पर उनके मन में भारत के लिए उत्कट प्रेम बना हुआ था। इस बीच में वह अंग्रेजी तथा जापानी भाषा में भारतीय स्वतन्त्रता तथा संस्कृति पर बोलते, लिखते रहते थे। बँगला में भी उनके लेख जब-तब प्रकाशित होते रहते थे। पर भारतीय रहने के साथ ही साथ वह अपनी जन्मभूमि जापान को भी प्यार करते थे, और इस प्यार के कारण उन्होंने १९३७ में जब जापान ने चीन पर बेजा तरीके से आक्रमण किया तो उन्होंने जापानी आक्रमण का समर्थन ही किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए भारतवर्ष में कुछ पर्चे भी भेजे।

मार्शल सुगियामा से भेंट--पूर्व में जापान की विजय का ताँता शुरू होते ही रासबिहारी जापानी सेना के इम्पीरियल जनरल स्टाफ के प्रधान फील्ड-मार्शल सुगियामा से मिले, और उनसे कहा कि इस युद्ध से भारत को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, और यदि जापानी इसका वायदा करें तो भारतीय इसमें हाथ बँटा सकते हैं। उन्होंने उनको अपनी योजना समझाई। सुगियामा के दिमाग

में यह बात नहीं आई, और उसने कहा कि भारत का ब्रिटिश सरकार से युद्ध हो रहा है, इस कारण भारतीयों के साथ शत्रुतापूर्ण बरताव होगा।

इण्डिपेण्डेण्स लीग का गठन—रासबिहारी समझ गए कि सुगियामा का दिमाग बिल्कुल कानूनी है, उसमें कोई क्रान्तिकारी योजना धँस नहीं सकती, इस कारण वह उपसमरसचिव से मिले, और रासबिहारी को इस सम्बन्ध में कार्य करने की सब सुविधाएँ दे दीं। तदनुसार इण्डियन इण्डिपेण्डेन्स लीग का जन्म हुआ, और रासबिहारी इसके सभापति हुए। यह लीग अब इस कोशिश में रहने लगी कि कैसे अंग्रेजों को नीचा दिखाकर भारत की स्वतन्त्रता हासिल की जाए।

जापान सरकार और भारतीय—जब थाईभूमि पर जापानियों ने कब्जा कर लिया, तो ज्ञात हुआ कि वहाँ भी बहुत से भारतीय हैं, फिर तो स्वामी सत्यानन्द पुरी के नेतृत्व में बैंकाक में भी इण्डिपेण्डेन्स लीग की स्थापना हुई। इस प्रकार ज्यों-ज्यों जापानी सेना आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों इस संस्था के दूत पहुँचने लगे और इसकी शाखाएँ खुलने लगीं। इस आन्दोलन का भारतीयों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। एक क्रान्तिकारी के रूप में रासबिहारी प्रसिद्ध थे ही, फिर लोग यह भी जानते थे कि जापानी सरकार उन्हें बहुत मानती है। जिन देशों में जापानियों का कब्जा होता जाता था, वहाँ के लोगों के साथ बहुत बुरा बरताव होता था, वे लूटे जाते थे तथा उनकी स्त्रियों की इज्जत खराब की जाती थी। पर रासबिहारी के प्रभाव के कारण जीते हुए देश की किसी भी भारतीय स्त्री के साथ कभी भी दुर्व्यवहार नहीं हुआ, मालूम होता है इस सम्बन्ध में जापानी सेना को ऊपर से कोई कड़ी हिदायत मिली हुई थी।

कैप्टन मोहनसिंह शामिल हुए—रासबिहारी इस बात की कोशिश करने लगे कि जो भारतीय सैनिक पकड़ कर आते जा रहे हैं, उनको जल्दी-से-जल्दी सेना के रूप में तो संगठित किया ही जाए, साथ-ही-साथ शत्रु सेना के अन्दर घुसकर भारतीय सैनिकों को यह समझाया जाए कि वे बेकार के लिए जापानियों के विरुद्ध लड़ रहे हैं, जापानी तो हमें स्वतन्त्रता देने वाले हैं, और यदि हमें लड़ना है तो जापान की मदद लें। इसी उद्देश्य को लेकर बहुत से भारतीय क्रान्तिकारी अंग्रेजी सेना में घुसने लगे। इसी के अनुसार श्री प्रीतमसिंह कैप्टन

मोहनसिंह से मिले। कैप्टन मोहनसिंह उन दिनों अंग्रेजी सेना से अलग कटकर अलोर स्टार नामक स्थान में पड़े हुए थे। प्रीतमसिंह के बहुत समझाने पर कैप्टन मोहनसिंह ने आत्म समर्पण कर दिया और वह आजाद हिन्द फौज के संगठन में लग गए।

संख्या बढ़ती गई—इसके बाद तो बराबर जापानियों की जीत होती रही, और नई-नई भारतीय फौजें जापानियों के हाथ में गिरफ्तार होती रहीं। शुरू में कैप्टन मोहनसिंह के दल में कुल मिलाकर २०० आदमी थे पर धीरे-धीरे इनकी संख्या ३० हजार तक पहुँच गई।

टोकियो कान्फ्रेंस—१९४२ के मार्च में इण्डियन इण्डिपेण्डेन्स लीग की एक बड़ी कान्फ्रेंस हुई, जिसमें कैप्टन मोहनसिंह के अतिरिक्त कैप्टन मोहम्मद अकराम खां, कर्नल गिल, राघवन, मेनन और गोहो गए। स्वामी सत्यानन्द पुरी और प्रीतमसिंह भी इसके लिए रवाना हुए पर वे इस कान्फ्रेन्स में पहुँच न सके क्योंकि रास्ते में हवाई जहाज की दुर्घटना से ये मर गए। कुछ लोगों का यह कहना है कि जान-बूझकर जापानियों ने इन्हें मरवा डाला क्योंकि ये ब्रिटिश विद्वेषी होने के साथ-ही-साथ जापान के भी विरोधी थे।

बिदादरी सम्मेलन—टोकियो में पूरी बात न हो सकी, और यह तय हुआ कि १९४२ के जून में बैंकाक में अधकितर प्रतिनिधिमूलक कान्फ्रेंस हो। यह कान्फ्रेंस हुई, पर उसके पहले सिंगापुर में बिदादरी में १९४२ के अप्रैल में प्रधान अफसरों की एक कान्फ्रेंस हुई, जिसमें यह तय हुआ कि हम लोग भारतीय हैं और भारतीय स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं, और इसी उद्देश्य से आजाद हिन्द फौज की रचना होगी।

बैंकाक कान्फ्रेंस—१९४२ की मई तक गिरफ्तार भारतीय अफसरों में से बहुत से लोग यह समझ गए कि जापान ईमानदारी के साथ भारतीयों की मदद करना चाहता है। यह ज्ञात हो गया कि अब यह सेना संगठित होकर रहेगी। १९४२ के १५ जून को बैंकाक में फिर एक कान्फ्रेंस हुई, और इसमें श्री रासबिहारी बोस सभापति चुने गए। कान्फ्रेंस में १७ प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव में रासबिहारी, कैप्टन मोहन सिंह, राघवन, मेनन और जिलानी इस सारे आन्दोलन के परिचालक नियुक्त किए गए। यह तय हुआ कि भारत

एक और अविभाज्य है। कांग्रेस एक-मात्र प्रतिनिधिमूलक संस्था है। जापानी सरकार के सम्बन्ध में कान्फ्रेंस ने यह निश्चय किया कि वह भारतीयों को स्वतन्त्र नागरिक समझे, पूर्वी एशिया के भारतीयों की सम्पत्ति को शत्रु सम्पत्ति न समझे। यह तय हुआ कि युद्धोपकरण आदि के रूप में भारतीय जो कुछ लेगा, उसे स्वतन्त्र भारत चुकता करेगा। निश्चय हुआ कि आजाद हिन्द फौज का बाकायदा सगठन हो, कप्तान मोहनसिंह उसके कमाण्डर हों, आजाद हिंद फौज धुरी शक्तियों के द्वारा एक स्वतन्त्र देश की सेना के रूप में स्वीकृत हो। इस कान्फ्रेंस ने यह भी तय किया कि श्री सुभाषचन्द्र बोस से अनुरोध किया जाए कि वह यहाँ आकर कार्यभार सँभालें।

क्रान्ति की खोज में दीवाना सुभाष—हम पहले ही बता चुके हैं कि किस प्रकार सुभाष बाबू अनशन के कारण १९४१ में जेल से छूट गए, उसके बाद वह चोरी से काबुल पहुँचे, और वहाँ से जर्मनी पहुँचे। यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि सुभाष बाबू ने जेल में जो अनशन किया था, उसी समय उन के दिमाग में यह बात थी कि अनशन के फलस्वरूप या तो हम शहीद हो जाते हैं, और क्रान्ति के ईंधन हो जाते हैं, और या तो सरकार हमें छोड़ देती है, और छूटते ही हम यहाँ से फरार हो जाते हैं। इन सारी बातों का इरादा करके ही वह अनशन में प्रवृत्त हुए थे। सरकार को यह हिम्मत नहीं हुई कि उन्हें अनशन में मार डाले, इसलिए वह छोड़ दिए गए, और छूटने के दिन से ही वह योजना बनाकर भागने की तैयारी करने लगे। कहा जाता है कि ६२ खुफिया उनके घर के इर्द-गिर्द घूमते रहते थे कि कौन उनसे बात करता है तथा मिलता है, पर उन्होंने सारा काम इस सफाई से किया कि उनके काबुल पहुँच जाने के बाद सरकार और जनता को यह पता लगा कि वह गायब हो गए। जब से वह जर्मनी पहुँचे तब से वह बराबर इस बात का षड्यन्त्र करते रहे कि भारत की आजादी की शक्तियों को संगठित किया जाए। वैयक्तिक सत्याग्रह की विफलता से वह इतने निराश हो गए थे कि उनको गांधी जी के तरीकों पर या उनके आन्दोलन पर कोई विश्वास नहीं था।

भारतीय जापानी कठपुतली नहीं—जिस समय भारतवर्ष में अगस्त क्रान्ति का नारा दिया गया, उस समय तक पूर्वी एशिया के भारतीय बहुत कुछ संगठित

हो चुके थे। ११ अगस्त को मलय में 'करो या मरो' का नारा तथा भारतीय नेताओं की गिरफ्तारी की खबर पहुँची। क्वालालमपुर के भारतीयों ने यह तय किया कि उस दिन एक रैली की जाए। तदनुसार एक विराट रैली हुई, जिसमें भारतीयों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लोग भी थे। इस रैली में शाहनवाज ने यह बताया कि आजाद हिन्द फौज कोई जापानी कठपुतली नहीं है, इस पर लोगों ने बहुत खुशी जाहिर की, और तालियाँ बजाईं। भारतीय यह कभी नहीं चाहते थे कि वे जापानी कठपुतली बनें। कम-से-कम इसी आदर्श को लेकर भारतीय आगे बढ़े।

पत्र तथा संगठन—अब आजाद हिन्द फौज की तरफ से 'आजाद हिन्द' नाम का एक अखबार भी निकलने लगा। यह पत्र अंग्रेजी, तामिल, मलयालम, रोमन, उर्दू तथा गुजराती में प्रकाशित होता था। कई इण्डिपेण्डेन्स लीग वाले कई रेडियो स्टेशनों से भारतीयों में प्रचार कार्य करने लगे। तीन रेजिमेण्ट बने, एक गांधीजी, दूसरा मौलाना आजाद, और तीसरा पंडित नेहरू के नाम पर बना। यह न समझा जाए कि सभी भारतीय अफसर जो कैद हुए थे, वे आजाद हिन्द फौज के साथ हो गए। सच तो यह है कि शुरू-शुरू में कप्तान शाहनवाज भी आजाद हिन्द फौज के विरोधी थे, पर बाद को वह समझ गए, और तब से वह बराबर इसमें जी-जान से काम करने लगे, और इसके नेताओं में हो गए। जो अफसर आजाद हिन्द फौज में शरीक नहीं हुए, उनके लिए एक अलग कैम्प खोला गया, और वे बन्दी के रूप में रखे गए। उनके लिए अलग नियम बने।

जापानियों से मनमुटाव—इस बीच जापानी अधिकारी वर्ग तथा आजाद हिन्द फौज के बीच कई बार मनमुटाव हो गया। १९४२ के अक्टूबर में इण्डिपेण्डेन्स लीग ने जापानी अधिकारी वर्ग के सामने यह दावा पेश किया कि बर्मा में भारतीय जो सम्पत्ति छोड़कर चले गए हैं, वह सब आजाद हिन्द फौज के सुपुर्द की जाए। पर इस पर जापानी राजी नहीं हुए। इसकी खबर जब जनरल मोहनसिंह को लगी, तो उन्होंने इस पर हुक्म दिया कि ऐसी हालत में बर्मा में आजाद फौज न भेजी जाए। इस पर किसी तरह एक समझौता हो गया। इसी प्रकार और भी कई घटनाएँ हुईं। मिस्टर राघवन ने एक राजनीतिक विद्यालय खोल रखा था। जापानियों ने इस पर छापा मारा और

विद्यालय के कुछ लोगों को उड़ा ले गए। इस पर राघवन ने क्रोध में १९४२ के २९ नवम्बर को वह विद्यालय बन्द कर दिया।

भारतीयों में असन्तोष—इन्हीं कारणों से भारतीयों की सर्वोच्च समिति ने जापानी सरकार को एक आवेदन पत्र भेजा, जिसमें जापान के इरादों में अविश्वास प्रकट किया गया। इस पर तोजो ने अपने एक बयान में कहा कि भारत में जापान के राज्य विस्तार का कोई उद्देश्य नहीं है। इसके साथ ही हस्तक्षेप न करने के वायदे किए गए। १९४२ के अक्टूबर में फिर एक बखेड़ा खड़ा हुआ। जो अफसर आजाद फौज में शरीक नहीं हुए थे, जापानियों ने उनको अपने अधिकार में रखना चाहा, जनरल मोहनसिंह ने कहा कि नहीं, वे हमारे अधिकार में रहेंगे। इधर ८ दिसम्बर को कर्नल गिल जापानियों के द्वारा शायद इस शक पर गिरफ्तार कर लिए गए कि वह सब बखेड़े की जड़ हैं। इस पर भरतीय कौंसिल आफ ऐक्शन ने त्यागपत्र दे दिया।

मोहनसिंह गिरफ्तार—पहले ही बताया जा चुका है कि रासबिहारी यदि भारतीय थे, तो जापानी भी थे, उन्होंने यह कहा कि ये सब छोटे मामले हैं और जापानी सरकार के साथ बातचीत से सब मामला तय हो सकता है। पर दूसरे लोग जापान के इतने भक्त नहीं थे। रासबिहारी ने मोहनसिंह को बुलाकर समझाना चाहा, पर वह इतने नाराज थे कि उन्होंने रासबिहारी से भेंट करने से इनकार किया। इस पर रासबिहारी ने जापानी सरकार से यह अनुरोध किया कि मोहनसिंह गिरफ्तार कर लिए जाएँ। तदनुसार २० सितम्बर को वह गिरफ्तार किए गए।

आजाद हिन्द फौज भंग—मोहनसिंह गिरफ्तार करके पहले सिंगापुर के पास एक टापू में रखे गए, फिर सुमात्रा भेज दिए गए। उनके गिरफ्तार होते ही उन्हीं की आज्ञा के अनुसार आजाद हिन्द फौज भंग कर दी गई, और उसके सारे बैज कागजात आदि जला दिए गए। साथ ही जापानी सरकार से यह कह दिया गया कि अब उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है और अब भारतीय युद्ध-कैदी समझे जाएँ, पर जापानियों ने न तो इन्हें कैदी माना, और न उन्हें कहीं जाने दिया।

रासबिहारी असफल—रासबिहारी बाबू ने भारतीयों से साफ-साफ यह कह

दिया कि उन्हीं के हुक्म से मोहनसिंह गिरफ्तार हुए थे। उन्होंने कहा कि मोहन सिंह को इस बात का कोई अधिकार नहीं था कि वह आजाद हिन्द फौज को तितर-बितर करें। रासबिहारी ने फौज को फिर संगटित करना चाहा, पर वह आजाद फौज संगठित करने में असमर्थ रहे।

वार्ता सफल—१९४३ की फरवरी में जापानियों ने आजाद हिन्द फौज के कोई ३०० अफसरों की एक कान्फ्रेंस बुलाई, जिसमें जापानियों की तरफ से बताया गया कि किस-किस प्रकार से मोहनसिंह गिरफ्तार हुए थे। मोहनसिंह को यह अख्तियार था कि वह कमांडरी से इस्तीफा दें, पर इस फौज को तितर-बितर करने का उनको कोई अधिकार नहीं था। इस पर कप्तान शाहनवाज ने कहा कि वह जापानी कठपुतला बनने को तैयार नहीं है। उस दिन की कान्फ्रेंस में कोई बात तय नहीं हुई। पर अगले दिन से बातचीत शुरू हुई, और यह तय हुआ कि फिर से आजाद हिन्द फौज का संगठन हो।

रासबिहारी नए युग को नहीं समझे—जापानियों ने अबकी बार जो संगठन किया उसमें इस बात की गुन्जाइश नहीं रखी कि एक व्यक्ति के हाथ में सब ताकत आ जाए। साथ-ही-साथ जापानी भीतर-भीतर अपनी चलाने लगे। एक फासीवादी शक्ति से और क्या आशा थी, पर कुछ ढंग का संगठन हो सका। रासबिहारी चीजों को और ही तरीके से देखने के अभ्यस्त थे, वह भारतीयों की मनोवृत्ति को समझ नहीं पाए, पर जब १९४३ की ४ जुलाई को सुभाष बाबू आ गए, तो वह बड़ी खुशी से उनके हाथ में अपनी शक्ति देकर अलग हो गए। वह १९४५ की जनवरी में टोकियो में ही मर गए। उनकी देह जापान ही में रही। वह जापान की कबाहत देख कर नहीं मरे।

जापान में नेताजी—श्री सुभाष बोस पहले ही से एक सबमेरिन में जापान पहुँच गए थे। १९४३ के २० जून को टोकियो रेडियो ने इस बात को घोषित कर दिया कि वह अब जल्दी ही इधर के आन्दोलन का चार्ज लेने वाले हैं। सुभाष बाबू एक जर्मन सबमेरिन से मडागास्कर के पास लाए गए थे, वहाँ से एक जापानी सबमेरिन उन्हें जापान ले आया। कितना जोखिम उठाकर वह आए थे, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि उन्हें यह कह दिया गया था कि शत्रुओं के पहरे से बचकर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने की बहुत ही

कम सम्भावना है, पर अकुतोभय सुभाष इससे कब डरने वाले थे ? सुभाष बाबू जर्मनी में रहते समय वहाँ आजाद हिन्द फौज का संगठन कर चुके थे। टोकियो में वह पहुँचे तो उनका सार्वजनिक स्वागत हुआ। सुभाष बाबू ने जापान में पहुँचते ही यह स्पष्ट कर दिया कि उनका या अन्य भारतीय क्रान्तिकारियों का यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि अंग्रेजों के जुए की जगह पर जापानी जुआ आ जाए, वह तो भारत को ब्रिटिश गुलामी से मुक्त करना चाहते हैं और इस सम्बन्ध में जापान की मदद चाहते हैं।

संगठन का लक्ष्य—टोकियो के बाद सुभाष बाबू १९४३ की जुलाई में सिंगापुर पधारे। कितनी तेजी से उन्होंने काम किया यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि १९४३ की ५ जुलाई को आजाद हिन्द फौज का बाकायदा संगठन हो गया। वह बराबर फौजियों में राजनीतिक व्याख्यान दिया करते थे, और उन्हें यह समझाया करते थे कि वे आजादी के सिपाही हैं न कि और कुछ। ९ जुलाई को अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा कि जेल में पड़ा रहना उनके लिए कहीं आसान होता, पर उन्होंने यह समझा कि देश की स्वतन्त्रता का तकाजा यह है कि वह विदेश जाकर संगठन करें। तदनुसार "तीन महीने तक प्रार्थना तथा ध्यान के बाद मैंने यह तय किया कि मुझ में यह शक्ति है कि अपने कर्तव्य को निभाने में जीवन की बाजी लगा दूँ। जेल से निकलना था, और इसलिए अनशन करना था, पर यह टेढी खीर थी। टेरेंस मैकस्वीनी और यतीन दास अनशन में मर चुके थे, पर मैंने अनुभव किया कि मुझे एक ऐतिहासिक कार्य करना है। मैंने अनशन किया, और जेल से छूट गया।...मैं फिर चल दिया। मुझे जो कुछ तजरुबा था, मैंने उससे यह नतीजा निकाला कि केवल भारत के अन्दर की कोशिश से काम न होगा। भारत छोड़ने में मेरा उद्देश्य यह था कि बाहर की चेष्टाओं से भीतर की चेष्टाओं को बल पहुँचाया जाय।" इस व्याख्यान से यह समझ में आ जाता है कि उनका क्या लक्ष्य था।

सुभाष बाबू की महानता—जानकार पाठक इस बात को जानते हैं कि कांग्रेस की नेताशाही द्वारा उन्हें किस प्रकार जलील करते-करते कांग्रेस से निकाला गया था। पर इसके लिए उनके मन में कभी कोई विद्वेष नहीं था, यह इस बात से ज्ञात है कि २५ अगस्त को नेताजी ने आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व अपने

हाथ में ले लिया, इसके कुछ दिन बाद ही अक्टूबर में उनके नेतृत्व में गांधी जी का जन्म दिवस सारे पूर्वी एशिया में मनाया गया। इस अवसर पर नेता जी ने गांधीजी का गुणगान करते हुए यह कहा कि यदि १९२० की असहाय हालत में गांधीजी संग्राम के अपने नए तरीकों को लेकर न आते, तो भारतवर्ष शायद अब भी ज्यों का त्यों पतित होता।

आजाद हिन्द सरकार की स्थापना—१९४३ के २१ अक्टूबर को आजाद हिन्द सरकार की स्थापना हुई। इस उपलक्ष्य में सिंगापुर में बहुत बड़ा समारोह हुआ और नेताजी ने एक बहुत ऐतिहासिक व्याख्यान दिया।

रासबिहारी का भाषण—सबसे पहले मंच पर श्री रासबिहारी बोस आए। भाषण मर्मस्पर्शी था। वह बोले—"पिछले बीस सालों से मैं अपनी माँ की गोद से दूर हूँ। कितनी बार भारत माँ ने हाथ बढ़ाकर मुझ जैसे जिद्दी शिशु को अपनी गोद में घसीटना चाहा, मगर माता के हाथों में हथकड़ियाँ जकड़ी हुई थीं, इसलिए मैं नहीं गया। पर आज मेरा दूसरा भाई, उम्र में छोटा. मगर लड़ाई में मुझ से आगे सुभाष, मसीहा बनकर इन्सानियत के घावों को आजादी के फाए से ठीक करने आया है। हम २० लाख नंगे भूखे प्रवासी भारतीय स्वतन्त्रता के दूत का स्वागत करते हैं।"

कर्नल चटर्जी का स्पष्टीकरण—उसके बाद कर्नल चटर्जी ने आकर रिपोर्ट पढ़ी। उन्होंने यह बताया कि पूर्वी एशिया में आजादी का आन्दोलन कैसे चला, भारतीय स्वतन्त्रता संघ कैसे बना, जापानियों ने सहायता के बदले रास्ते में कितनी रुकावटें डालीं, मगर आजादी के दीवाने इस तरह से नहीं झुकते, वे हर जगह, हर हालत में अपना सर ऊँचा रखते हैं।"

सुभाष का भाषण और शपथ ग्रहण—इसके बाद सुभाष आए, और उन्होंने डेढ़ घंटे तक एक मर्मस्पर्शी भाषण दिया। उन्होंने भारत की राजनीतिक परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए यह बताया कि आजाद हिन्द सरकार का क्या महत्त्व है, और आजाद हिन्द फौज को आज क्या स्थान मिल रहा है। उन्होंने कहा—"मुझे इसमें रत्ती-भर सन्देह नहीं है कि जब हम हिन्दुस्तानी सीमा को पार कर हिन्दुस्तान के अन्दर पहुँचेंगे उस वक्त एक विशाल क्रान्ति होगी, जिसमें एक भी ब्रिटिश सत्ताधारी न टिक सकेगा।"

उसके बाद उन्होंने खड़े होकर शपथ ली। भयंकर क्षण था वह। सारी जनता स्तब्ध थी, सन्नाटा छाया था, हिन्दुस्तान का पहला आजाद नेता मातृ-भूमि के प्रति वफादारी की प्रतिज्ञा करने जा रहा था। सुभाष अपनी कुर्सी से उठे, और सामने आए। उनके गोरे, भोले-भाले मुँह पर एक अजीब गम्भीरता थी, वैसी ही गम्भीरता जैसी तूफान के पहले छा जाती है। वह उठे और माइक के पास आए। बहुत गम्भीर स्वरों में उन्होंने कहा—भगवान को साक्षी कर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि भारत को आजाद करने के लिए अन्तिम साँस तक एक सिपाही की तरह लड़ता रहूँगा। मैं सदा भारत का सेवक रहूँगा और भारत का हित मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य रहेगा। स्वतन्त्रता मिल जाने के उपरान्त भी जब कभी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मेरी जरूरत होगी तो मैं अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक माँ के चरणों पर चढ़ा दूँगा।"

सब का शपथ ग्रहण—इसके बाद हिन्द सरकार के हर अधिकारी ने आगे बढ़कर शपथ ली—"भगवान को साक्षी कर मैं यह पवित्र शपथ लेता हूँ कि भारत को स्वतन्त्र करने के लिए मैं नेता जी श्री सुभाषचन्द्र बोस का आज्ञाकारी रहूँगा और भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने में जरा भी न हिचकूँगा।"

आजाद हिन्द सरकार का घोषणा पत्र—उसके बाद आजाद हिन्द सरकार का घोषणा पत्र पढ़ा गया। वह घोषणा पत्र हरएक भारतीय के हृदय में खून के अक्षरों से अंकित रहेगा—"पलासी में १७५७ की हार के बाद १०० साल तक हिन्दुस्तानी अपनी स्वतन्त्रता के लिए बराबर लड़ते रहे। इस युग का इतिहास स्वतन्त्रता की खूनी लड़ाई का इतिहास है। सिराजुद्दौला, टीपू सुल्तान, हैदर-अली, अवध की बेगमें, शक्तिसिंह अटारीवाला, झाँसी की रानी, ताँतियाटोपी और नाना साहब का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। दुर्भाग्य-वश हमारे पूर्वज यह नहीं समझते थे कि विजय के लिए एकता पहली शर्त है। इसलिए १८५७ में उनकी हार हो गई। उसके बाद कायर अंग्रेजों ने भारतीयों से हथियार छीन लिए। कुछ दिनों तक भारतीय शान्त रहे, मगर १८८५ में कांग्रेस की स्थापना से एक नई जागृति का प्रादुर्भाव हुआ।

"१९२० में जब हम निराश हो रहे थे तब गांधीजी ने असहयोग और

सत्याग्रह का अस्त्र हमें सौंपा। अतः राजनीतिक चेतना के साथ-साथ हममें राजनीतिक युद्ध की भी चेतना जगी। कांग्रेस मन्त्रिमंडलों के अन्तिम युग के समय हमने यह भी दिखा दिया कि प्रबन्धे में हम अंग्रेजों से अधिक कुशल हैं। इस द्वितीय महायुद्ध में हमें आजादी की अन्तिम लड़ाई छेड़ने का अवसर मिला है। हमें भूखे मारकर, हमें बर्बादकर ब्रिटिश सरकार ने हमसे सारी श्रद्धा छीन ली है। उस पाशविक शासन के अन्तिम अवशेषों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए एक भयानक क्रान्ति-ज्वाला की आवश्यकता है। आजाद हिन्द सेना उस ज्वाला को सुलगाने के लिए चल पड़ी है।

"इस स्वतन्त्रता के प्रातःकाल में हमारा पहला कर्तव्य है कि एक आजाद सरकार की स्थापना कर उसके संरक्षण में हम आजादी की लड़ाई शुरू कर दें। यह आजाद हिन्द सरकार प्रत्येक भारतीय के प्रति वफादार है, अतः प्रत्येक भारतीय को इसके प्रति वफादार होना चाहिए। भगवान के नाम पर, आजादी के लिए मर जाने वाली पिछली पीढ़ियों के नाम पर हम अपील करते है कि तिरंगे झंडे के नीचे इकट्ठे होकर हम अपनी लड़ाई छेड़ दें, और तब तक लड़ें, जब तक कि दुश्मन देश से बाहर न निकल जाएँ, और हम स्वतन्त्र न हो जाएँ।" उसके बाद सब ने मिलकर राष्ट्रीय गीत गाया, और प्रत्येक भारतीय आजाद हिन्दुस्तानी लड़ाई की तैयारियाँ करने चल पड़ा।

भारत के आजाद मन्त्री—इस घोषणा पत्र पर आजाद हिन्द की स्थायी सरकार के सदस्यों के दस्तखत थे, दस्तखत करने वाले ये थे—सुभाषचन्द्र बोस, राष्ट्रनायक, प्रधान मंत्री, वैदेशिक तथा युद्धमंत्री; कप्तान श्रीमती लक्ष्मी, स्त्री संगठन की नेत्री; एस० ए० ऐयर, प्रचारमंत्री; लेफ्टिनेण्ट कर्नल चटर्जी, अर्थमंत्री; ले० क० एन० एस० भगत; ले० क० जे० के० भोंसले; ले० क० गुलजारा सिंह; ले० क० एम० जेड० कियानी; ले० क० ए० डी० लोकनाथन; ले० क० एहसान कादिर; ले० क० शाहनवाज; सेना के प्रतिनिधि, ए० एम० सहाय, मन्त्री मर्यादा विशिष्ट, सेक्रेटरी; रासबिहारी बोस प्रधान परामर्शदाता; करीम गनी, देवनाथ दास, डी० एम० खान, वाय० ऐलप्पा, जे० थिवी, सरदार ईशर सिंह, परामर्शदातागण, ए० एन० सरकार, कानूनी परामर्श दाता।

क्रान्ति की गाड़ी आगे की ओर—इस सरकार की तरफ से ब्रिटेन तथा

अमेरिका के विरुद्ध युद्धघोषणा की गई। इसके बाद से बाकायदा सरकार अपना काम करने लगी। फौज का संगठन नए ढंग पर हुआ, और जनवरी १९४४ में आजाद हिन्द फौज का सुभाष ब्रिगेड रंगून पहुँच गया। यह तय हुआ कि अब युद्ध में भाग लिया जाय, पर इसके पहले यह मालूम करना जरूरी था कि किस आधार पर जापानी सेना और भारतीय सेनाएँ सहयोग करें। नेता जी ने यह कह दिया कि उनकी सेना जापानी सामरिक कानून के अधीन काम करने को तैयार नहीं है। स्थानीय कमांडर ने इस पर आपत्ति की, पर टोकियो सरकार को नेता जी की बात माननी पड़ी। इसके बाद सुभाष बाबू ने यह अनुरोध किया कि भारतीय भूमि पर पहले-पहल आजाद हिन्द फौज को घुसने दिया जाय। साथ ही उन्होंने यह इच्छा जाहिर की कि तिरंगे के अतिरिक्त कोई अन्य झण्डा भारत पर न उड़े। यह स्मरण रहे कि आजाद हिन्द फौज का सारा खर्चा भारतीय खुद बरदाश्त करते थे। हाँ वे जापानियों से युद्धोपकरण लेते थे। नेताजी को करोड़ों का दान मिला। बहुतों ने तो अपनी सारी जायदाद दे दी। दाताओं में मुसलमानों की संख्या भी बहुत अधिक थी।

भारत की भूमि पर स्वतन्त्र तिरंगा गड़ा—इसके बाद एक फौज भारत की सीमा की ओर रवाना हुई, और आजाद हिन्द फौजवालों ने १९४४ की मई में मोऊड्क (Mowdok) में प्रवेश किया। वहाँ पर बाकायदा तिरंगा झंडा फहराया गया, और 'शुभ सुख चैन' गाना गाया गया।

जापानी हारने लगे—पर इतने में परिस्थिति कुछ ऐसी हुई कि जापानी कुछ पीछे हटना चाहते थे। पर आजाद हिन्द फौज वाले इसके लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा कि जापानी भले ही पीछे हटें, हम तो दिल्ली के लाल किले पर झण्डा चढ़ाकर ही दम लेंगे। पर इधर जापानियों की परिस्थिति बिगड़ती गई। अमेरिकी सेना की मार के सामने जापानियों की एक नहीं चल रही थी। वे अपनी परिस्थिति को सँभाल नहीं सके और १९४४ के सितम्बर में नेता जी को इम्फाल की तरफ की सेना को पीछे हटने के लिए हुक्म देना पड़ा। नवम्बर, १९४४ तक यह सेना रंगून पहुँच गई। क्या करती, लाखों के मुकाबले में वह कब तक लड़ती?

आजाद हिन्द फौज पीछे हटी—१९४४ के ११ अक्टूबर को नेता जी रंगून

पहुँचे। इसके बाद इन्होंने लोगों को युद्ध-परिस्थिति समझाई, जिसमें उन्होंने कहा कि कुछ देर हो जाने के कारण हम सफल नहीं हुए। अराकान, कलादान, टिड्डिम, पलेस, कोहिमा, हाका हमें सर्वत्र विजयी रहे, पर कुछ तो वर्षा के कारण कुछ अन्य कारणों से हमें सफलता नहीं मिली। परिस्थिति इसके बाद और भी बिगड़ती ही गई, और नेता जी नवम्बर, १९४४ में जनरल चटर्जी, जनरल कियानी और कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ परिस्थिति समझने टोकियो चले गए। उनकी अनुपस्थिति में कर्नल अजीज अहमद सेनापति हुए। १९४५ की जनवरी तक नेता जी फिर लौट आए, पर इस वक्त तक मेला उखड़ चुका था। अब कुछ खण्ड युद्धों के बाद पीछे हटने की तैयारी थी।

बर्मियों के विरुद्ध लड़ने से इनकार—१९४५ के मार्च में जिस समय यह हालत थी जापानियों ने यह कहा कि आजाद हिन्द फौजवाले बर्मियों के विरुद्ध लड़ें, पर आजाद हिन्द फौज ने यह कहकर लड़ने से इनकार कर दिया कि वे ब्रिटेन के विरुद्ध अपनी आजादी के लिए लड़ रहे हैं, वे बर्मियों के विरुद्ध कभी नहीं लड़ेंगे। उधर बर्मियों के जनरल औंगसान ने भी इसी प्रकार का हुक्म दिया कि बर्मी आजाद हिन्द सेना से न लड़ें।

जीत की आशा गई—इस समय तक उधर जर्मनी ने घुटना टेक दिया, और जापानी भी बुरी तरह हारने लगे। अब आजाद हिन्द सेना के लिए भी यही परिस्थिति हुई कि अब तो जीत नहीं होती। इसके बाद कुछ आजाद हिन्द फौजियों ने लड़कर प्राण देने का निश्चय किया। तदनुसार बहुत से लोग आगे बढ़कर लड़े और वे या तो गिरफ्तार हुए या मारे गए। कुछ ने आत्मसमर्पण कर दिया। सेना के लिए दो ही गति होती हैं।

नेताजी का रंगून त्याग—२३ अप्रैल को जापानी रंगून छोड़कर चले गए। नेताजी से भी जापानियों ने कहा कि आप हमारे साथ चलिए, पर उन्होंने कहा कि जब तक झांसी की रानी रेजिमेंट की लड़कियाँ चली नहीं जातीं तब तक वह वहीं रहेंगे। ऐसी परिस्थिति में भी वह कर्तव्य न भूले। इसके बाद जब झांसी की रानी रेजिमेंट की स्त्रियाँ आसानी से चली गईं तभी वह आजाद हिन्द फौजियों तथा बर्मा की भारतीय जनता के नाम संदेश देकर रंगून से चले गए। ५ हजार आजाद हिन्द फौजी मेजर जनरल लोकनाथ के कमांड में रंगून

रह गए, जिसमें कि वहाँ अव्यवस्था न हो।

नेताजी का महाप्रस्थान—इसके बाद भी सुभाष बाबू बराबर भारतीय परिस्थिति पर सैगुन रेडियो में बोलते रहे। वावेल से समझौता की निन्दा करते रहे, वह तो संग्राम के पक्ष में थे। इसके बाद अन्त तक नेता जी कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ टोकियो के लिए रवाना हुए, पर रास्ते में ही दुर्घटना हो गई। कर्नल हबीबुर्रहमान के अनुसार नेताजी के सिर पर बहुत चोट आई थी और अस्पताल में ६ घण्टे बाद उनका देहावसान हो गया। कर्नल हबीबुर्रहमान का कहना है कि जिस समय नेताजी चिता पर चढ़ाए गए उस समय वह मौजूद थे। यदि हबीबुर्रहमान का विश्वास किया जाय तो नेताजी का देहान्त हो गया, और इस प्रकार एक अत्यन्त तूफानी जीवन का अन्त हुआ। जो जिया तो देश के लिए और मरा तो देश के लिए।

बची खुची फौज का आत्म-समर्पण—जिस समय ब्रिटिश फौज का पूर्वी एशिया पर कब्जा हो गया उस समय सिंगापुर और बैंकाक में मेजर जनरल कियानी और मेजर जनरल भोंसले के अधीन आजाद हिन्द फौजियों ने युद्ध के नियमों के अनुसार आत्मसमर्पण कर दिया।

रानी झाँसी रेजिमेंट—आजाद हिन्द फौज में स्त्रियों का जो रेजिमेंट झाँसी की रानी रेजिमेंट के नाम से मशहूर हुआ, उसके सम्बन्ध में भी दो एक बात बताई जाय। इसकी नेत्री श्रीमती लक्ष्मी एक लेडी डॉक्टर थीं। इनके अधीन रेजिमेंट ने युद्ध के समय जान जोखिम में डालकर बड़ी-बड़ी सेवाएँ की थीं। १२ जुलाई १९४२ को सिंगापुर में यह रेजिमेंट बना था। इनको घायलों की सेवा के अतिरिक्त फौजी शिक्षा दी गई थी, और वे बाकायदा फौजी कवायद करती थीं। जिस समय १९४४ के प्रारम्भ में आजाद हिन्द फौज की तरफ से भारत पर आक्रमण हो रहा था, उस समय इस रेजिमेंट की स्त्रियों ने नेता जी को खून से लिखकर एक दरख्वास्त दी थी, जिसमें यह कहा गया था कि उन्हें इस आक्रमण में हाथ बँटाने का मौका दिया जाय। नेताजी की यह इच्छा थी कि वह बाद में चलकर लड़ाई में भाग लें। पर कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं, जिनके कारण इनको युद्ध में भाग लेने का मौका न मिल सका। जिस समय झाँसी की रानी रेजिमेंट की स्त्रियाँ रंगून खाली करके जा रही थीं, तो ब्रिटिश फौज

की एक टुकड़ी ने उन पर हमला बोल दिया। इस पर झाँसी की रानी रेजिमेंट की स्त्रियों ने उन पर बन्दूकों से गोली चलाकर प्रत्याक्रमण कर दिया, और ब्रिटिश फौज को भागना पड़ा।

आजाद हिन्द फौजियों पर मुकदमा—बाद को आजाद हिन्द फौज के जो लोग ब्रिटिश सरकार के हाथों गिरफ्तार हुए, उनमें से कुछ को तो कोर्ट मार्शल करके चुपचाप मार दिया गया, पर ब्रिटिश सरकार ने यह चाहा कि दोष के लिए कुछ खुले मुकदमे चलाए जाएँ। तदनुसार मेजर जनरल शाहनवाज, सहगल तथा ढिल्लन पर पहला मुदमा चला, पर इसका नतीजा उल्टा हुआ। भारत की जनता को इस समय तक यह ज्ञात हो चुका था कि ये लोग कौन हैं, और इन्होंने देश लिए क्या-क्या किया है ? कांग्रेस ने, विशेषकर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने, इनके मामले को उठा लिया और बहुत बड़ा आन्दोलन हुआ। पर ये लोग केवल अखबारी आन्दोलन से नहीं छूटे।

शाहनवाज आदि क्यों छूटे ?—लोग यह समझते हैं कि मेजर जनरल शाहनवाज और उनके साथियों को जन-आन्दोलन के कारण छोड़ दिया गया, पर यह पूर्ण सत्य नहीं है। सेना ने ही मुख्यतः इनकी रिहाई कराई, इस सम्बन्ध में 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' की यह खबर पठनीय है—

(हमारे विशेष सम्वाददाता द्वारा)

"लखकऊ ४ जनवरी दिल्ली से प्राप्त विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि आजाद हिन्द फौज के तीन वीरों शाहनवाज, सहगल, और ढिल्लन की रिहाई की माँग सेना द्वारा की गई थी। कमाण्डर इन चीफ ने, जो इस सेना के प्रधान थे, सेना की इच्छा के अनुसार कार्य किया। सेना के स्वतन्त्र वोट ८० फी सदी रिहाई के पक्ष में थे। इसके बाद रेजिमेंट के अध्यक्षों ने सेना से यह स्पष्ट कर दिया कि सम्राट् के प्रति शपथ की रोशनी में उनके इन विचारों का क्या अर्थ है। उन्हें यह भी बताया कि उनकी हालत में उनका क्या कर्तव्य होता, फिर वोट लिया गया, तो रिहाई के पक्ष में ७८ फीसदी वोट आए। सेना के भारतीय हिस्से ने यह स्पष्ट कर दिया कि आजाद हिन्द फौज वाले जिन परिस्थितियों में पड़ गए थे, वैसी परिस्थिति में पड़ने पर यह भी वैसा ही करते। इस प्रकार सेना के मन की टोह पा जाने पर कमाण्डर-इन-चीफ ने वायसराय की कार्य-

कारिणी से परिस्थिति स्पष्ट कर दी और यह बता दिया कि अन्तिम फैसला देने वाले के रूप में वह इस मामले में क्या करने जा रहे हैं। इस प्रकार इन कोर्ट मार्शलों से एक बात यह साफ हो गई कि 'भारतीय सेनाएँ कानून की दृष्टि से चाहे जिसके अधीन हों, वैधानिक परिस्थिति चाहे उस सम्बन्ध में कुछ भी हो, पर यह सेना अब भारतीय राष्ट्र के अधीन है न कि और किसी के।"

आजाद हिन्द फौज का क्रान्तिकारी असर—इस समाचार का अर्थ स्पष्ट है। इधर जो कई सिपाही विद्रोह हो चुके हैं, उनसे इसका अर्थ और भी स्पष्ट हो गया है। आगामी संग्राम में आजाद हिन्द फौज यदि सबसे बड़ी नहीं तो एक बहुत बड़ी शक्ति प्रमाणित होगी। यह इस बात को देखेगी कि क्रान्ति पेशेवर भाड़े के टट्टुओं के द्वारा खत्म तो नहीं कर दी जाती। सच तो यह कि आजाद हिन्द फौज के कारण अब भारतभूमि पर भाड़े की फौज रह नहीं गई।

नेता जी का महत्त्व—आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में जो प्रचार कार्य हुआ, और जिस प्रकार जनता में इसके बहादुर नेताओं की आवभगत हुई, उसके फलस्वरूप ब्रिटेन की भारतीय फौज पर बहुत क्रान्किारी प्रभाव पड़ा। इसमें संदेह नहीं कि भारत की जनता को तैयार करने में गत २७ वर्षों में महात्मा गांधी का बहुत बड़ा हाथ रहा है, पर उनका प्रभाव चाहे जितना भी हो, न तो वह, और इस बात को कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है कि न तो अन्य क्रान्तिकारी भारतीय फौजों पर वह प्रभाव डाल सके, जिसके कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत त्याग एक वास्तविकता होकर रहा, अवश्य मैं यह नहीं कहता कि आजाद हिन्द फौज ने ही एकाएक सब कुछ कर दिया। बीज तो भीतर-भीतर काम करता है। आजाद हिन्द फौज तो पेड़ था, जिसको हमने देखा। आजाद हिन्द फौज खुद ही क्रान्तिकारियों, विशेष कर रासबिहारी और नेता जी सुभाष के द्वारा उत्पन्न हुई थी। जनता के जगाने वाले के रूप में गांधी जी तथा फौज को जगाने वाले के रूप में नेताजी का नाम अमर रहेगा।

४८

नवम्बर प्रदर्शन, फरवरी प्रदर्शन, नौ-सैनिक विद्रोह

गांधीजी द्वारा जेल से क्रान्ति का विरोध—हम फिर एक बार भारतीय इतिहास की ओर लौटें तो हम देखेंगे कि गांधीजी जिस दिन से जेल में गए उन्होंने बराबर १९४२ के आन्दोलन के क्रान्तिकारी हिस्से को (यानी उस हिस्से को जिसके कारण अगस्त आन्दोलन, अगस्त क्रान्ति हुई) जी-भर के कोसा। उन्होंने बार-बार वायसराय को लिखा कि वह यह नहीं चाहते थे, और हम यह समझते हैं कि यदि गांधीजी छोड़ दिए जाते तो इसमें सन्देह नहीं कि वह जी जान से अगस्त क्रान्ति के क्रान्तिकारी हिस्से के विरुद्ध लड़ते।

उनके अनशन से क्रान्ति खतम—सच तो यह है कि जब गांधीजी ने १९४३ की फरवरी में अनशन किया और इसके फलस्वरूप उनके जो पत्र प्रकाशित हुए, उन्हीं के कारण आन्दोलन अन्तिम रूप से खतम हो गया। उसमें जो थोड़ा-बहुत दम बाकी था, वह टूट गया और उसकी साँस उखड़ गई। इसके बाद भी जयप्रकाशजी आदि कुछ नेता उसे बढ़ाने की कोशिश करते रहे, पर चाबुकों से कहीं मरा घोड़ा मंजिल थोड़े ही करता है। आन्दोलन तो खतम हो चुका था।

अनशन की घोषणा में पत्र—गांधीजी ने १९४३ की १ फरवरी को अपने पत्र में जोरों से इस बात को कहा कि मुझे इस बात का अच्छी तरह पता है कि आन्दोलन में तोड़-फोड़ कांग्रेस की तरफ से नहीं की गई। उन्होंने वायसराय को लिखा "आप कहते हैं कि इस बात का प्रमाण है कि मैं यह जानता था कि इस नीति से उपद्रव होंगे और मैं उन उपद्रवों का समर्थन करने के लिए तैयार था…। इतने भारी अभियोगों के लिए आपने कोई प्रमाण नहीं दिया। होम मेम्बर की जो स्पीच हुई है, उसे किसी मुकदमे के पहले होने वाले इस्तगासे के वकील का बयान कहा जा सकता है।…आप जो कुछ पत्र में कहते है, उससे मैं किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सका। अंग्रेजी कानून के मुताबिक प्रमाण दिए

जाने चाहिए। यदि कार्य समिति के सदस्य की स्त्री आतंकवाद के कार्य तथा बमकांडों की योजना बनाने में संलग्न है, तो उन पर मुकदमा चलना चाहिए और यदि दोषी पाई जाय तो सजा मिलनी चाहिए। और जैसा कि आप कहते हैं, इस महिला ने तभी ये कार्य किए होंगे जब ९ अगस्त की आम गिरफ्तारियाँ हो गईं।"

आन्दोलन की समाप्ति—इस प्रकार गांधीजी ने अगस्त क्रान्ति के सार भाग की निंदा की। साथ ही उन्होंने इस पत्र में यह भी कहा कि ऐसी परिस्थिति में वह एक सत्याग्रही के नाते अनशन करने के लिए वाध्य हैं, और वह ९ फरवरी से अनशन करने जा रहे हैं। यह अनशन गांधी जी के प्रण के अनुसार २१ दिन तक चला और इस बार गांधीजी मीठे नींबू का कुछ रस पीते रहे। इस अनशन के नतीजे में मामूली जनता में कुछ जोश आया, और कुछ थोड़े बहुत उपद्रव हुए, मैं इन्हें उपद्रव इसलिए कह रहा हूँ कि अब क्रान्ति की शक्ल खत्म हो गई थी। जनता पर तो यह असर पड़ा, पर कांग्रेसियों में एक तो दमन के कारण ही उत्साह कम हो रहा था, तिस पर यह अनशन तथा उसके साथ के पत्र आए तो बहुत से बुद्धिमान लोग आन्दोलन से अलग हो गए। साथ ही कायरों को भी मौका मिल गया और वे खुलकर अब दूसरे रूप में आ गए। कुछ स्थानों के अलावा गांधीजी के अनशनों को ही अगस्त क्रान्ति का अन्तिम बिन्दु समझना चाहिए।

क्रान्तिकारी शक्तियाँ सुप्त—पर क्रान्तिकारी शक्तियां दमन, नेतृत्व का अभाव तथा गलत नेतृत्व के कारण दब जाने पर भी मरी नहीं। सतारा, मेदिनीपुर आदि कई स्थानों में तो इसके बाद भी ज्वाला सुलगती रही। क्रान्ति अब जमीन के नीचे चली गई। १९४४ में गांधीजी रिहा हुए, और इसके बाद १९४५ में अन्य नेता रिहा हुए। गांधीजी ने छूटते ही अगस्त क्रान्ति के क्रान्तिकारी हिस्से की निन्दा की। जब पंडित जवाहरलाल आदि छूटे तो उन्होंने अगस्त क्रान्ति के वीरों का आवाहन किया, पर साथ ही क्रान्ति के सम्बन्ध में कहा कि इसमें बहुत कुछ ऐसी बातें थीं जिनका समर्थन नहीं किया जा सकता। कार्य समिति के आचार्य नरेन्द्रदेव ने ही १९४२ की सभी बातों की तारीफ की। गांधीजी ने तो फरारों से आत्मसमर्पण करने के लिए कहा और बहुत से

फरारों ने आत्म समर्पण कर भी दिया।

प्रचार का क्रान्तिकारी असर—१९४५ में आजाद हिन्द फौज तथा १९४२ की क्रान्ति की जनता में इतनी प्रशंसा हुई कि उसका बहुत भारी क्रान्तिकारी असर हुआ। इसके लिए सबसे अधिक श्रेय पंडित जवाहरलाल नेहरू को है। जो क्रान्ति दबा दी गई थी, उस पर इन दिनों जो प्रचार कार्य हुआ, उसका असर वैसा ही हुआ जैसे पानी के अभाव के कारण सूखे हुए पेड़ पर वर्षा का प्रभाव होता है।

२१ नवम्बर कलकत्ता—नवम्बर, १९४५ में आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में सर्वत्र सभाएँ हो रहीं थीं। २१ नवम्बर को कलकत्ते में मिर्जापुर के छात्र फैडरेशन अर्थात् आर० एस० पी० के छात्र संगठन तथा छात्र कांग्रेस ने एक ही जगह एक ही समय में आजाद हिन्द फौज के वीरों को छुड़ाने के लिए सभा बुलाई। सभा खत्म होने को थी कि यह ज्ञात हुआ कि पुलिस के इरादे अच्छे नहीं हैं। जब छात्रों का गिरोह मैडन और मोतीशील स्ट्रीट के पास पहुँचा, तो पुलिस ने रास्ता रोक लिया। छात्र गाना गा रहे थे और बराबर नारे लगाते जा रहे थे, पर वे वहीं पर रुके पड़े रहे। इसी तरह साढ़े तीन बजे से पड़े-पड़े रात हो गई और बत्तियाँ जल गईं। पुलिस ने पहले तो घोड़ा दौड़ाया जब उससे काम नहीं बना तो गोली चलने लगी। भगदड़ मच गई पर हजारों छात्र डटे रहे और गोली खाते रहे। इसके बाद बाकायदा जनता और पुलिस में संघर्ष चलने लगा। बहुत से पुलिस वाले मारे भी गए। उस दिन के शहीदों में श्री रामेश्वर बनर्जी थे।

आगे भी क्रान्तिकारी प्रदर्शन जारी—२२ नवम्बर को फिर छात्रों का जुलूस निकला। शहर में हड़ताल थी। पिछले दिन के शहीदों के सम्बन्ध में जनता क्षुब्ध थी। भीड़ के अन्दर कांग्रेसी, लीगी, खाकसार, हिन्दूसभाई सभी थे और वे अपने-अपने झंडे और नारे के साथ थे। शरत बाबू ने आकर भीड़ को लौट जाने के लिए कहा, पर भीड़ नहीं लौटी। धर्मतल्ला स्ट्रीट में फिर गोली चली। पुलिस इस दिन डरी हुई थी क्योंकि उसने अपने सामने बैरीकेड बना रखा था। इस प्रकार कई दिन तक बराबर जनता और पुलिस में संघर्ष होता रहा। जनता ने जहाँ तहाँ पुलिस तथा मिलेटरी लारियाँ जला डालीं और पुलिसवालों को

मारा। १९४२ के दृश्य ताजे हो गए।

१९४२ की क्रान्ति पर कार्य समिति—अब तो कांग्रेस के उच्च नेता घबरा गए और उन्होंने १९४२ तथा आजाद हिन्द फौज पर अपने मत व्यक्त करते हुए अहिंसा पर जोर दिया। प्रस्ताव में कहा गया "१९४२ के अगस्त में मुख्य कांग्रेसियों की गिरफ्तारी के बाद नेतृत्वहीन जनता ने बागडोर अपने हाथों में ले ली और स्वत: स्फूर्त रूप से काम किया। उनको अनेक वीरता तथा कुर्बानी के कार्यों के लिए श्रेय मिलना चाहिए जो अहिंसा के अन्दर नहीं आ सकते। इसलिए कार्य समिति के लिए यह जरूरी हो गया है कि सबके पथ-प्रदर्शन के लिए वह इस बात को साफ़ कर दे कि अहिंसा के अन्दर सार्वजनिक सम्पत्ति को जलाना, तारों का काटना, गाड़ियों को पटरी से उतारना तथा भय प्रदर्शन नहीं आते।" ऐसा करने की क्यों जरूरत पड़ी, यह स्पष्ट है।

आजाद हिन्द फौज पर कार्य-समिति—आजाद हिन्द फौज पर भी कार्य-समिति ने कहा "कांग्रेस इस बात पर गर्वित होते हुए भी कि विदेशों में अभूतपूर्व परिस्थितियों में श्री सुभाषचन्द्र बोस ने जिस आजाद हिन्द फोज का संगठन किया, उसके लोगों ने कुर्बानी, अनुशासन, देशभक्ति, बहादुरी तथा अपनी सद्भावनाओं का प्रदर्शन किया, तथा यह मानते हुए भी कि कांग्रेस के लिए यह उचित तथा ठीक ही है कि जिन पर मुकदमा चल रहा है, उनकी पैरवी की जाय, तथा इस फौज के ऐसे लोगों को जिनको मदद की जरूरत है मदद की जाय, कांग्रेसियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि इन लोगों की पैरवी करने तथा इन लोगों को मदद देने का अर्थ हरगिज यह नहीं है कि कांग्रेस किसी भी तरह स्वराज्य प्राप्त करने की अपनी अहिंसा सम्बन्धी नीति से विचलित हो गई है।" इस प्रस्ताव की क्यों आवश्यकता पड़ी यह भी स्पष्ट है।

फरवरी प्रदर्शन—पर इस प्रकार के प्रस्ताव क्रान्तिकारी शक्तियों को रोकने में समर्थ नहीं रहे। आजाद हिन्द के कैप्टन रशीद की सजा पर कलकत्ते में दिसम्बर से बड़े पैमाने पर प्रदर्शन हुए, और जनता ने फिर मिलेटरी मोटर लारियां जलाईं, और अंग्रेजों पर हमले किए। शहर पर फौजी राज हो गया और टामीगन से सुसज्जित होकर गुरखे और गोरे शहर के चारों तरफ घूमने लगे। कई दिन तक रोज बीसियों जगह पर गोलियाँ चलीं। बारबार अश्रुगैस

का प्रयोग करना पड़ा। जनता गोलियाँ खाकर दबी नहीं। इस अवसर पर जो जुलूस निकले, उनमें बड़ा अजीब दृश्य दिखाई पड़ा। कांग्रेस का तिरंगा, लीग का चाँद सितारा, और मजदूरों का हँसिया-हथौड़ा एक साथ बाँधे गए और उनके नीचे जनता का जलूस निकला। जनता को किसी ने एका का यह तरीका नहीं सिखलाया था, पर क्रान्तिकारी जनता ने क्रान्ति की जरूरत के कारण अपना एका स्थापित कर लिया था। मजे की बात है कि इस प्रकार जनता ने जिस एका को कायम किया था, उसको लीग तथा कांग्रेस के नेताओं ने कुछ बहुत खुशी से नहीं देखा, उस ढर्रे पर चलने की बात तो दूर रही। जनता ने इस अवसर पर निहत्थी होते हुए भी बीसियों लारियाँ जला दीं, तार आदि काट डाले। बहू बाजार, मानिकतल्ला और धर्मतल्ले में आन्दोलन सबसे तीव्र रहा। फौज ने कई बार अश्रुगैस का प्रयोग किया तो जनता ने रास्ते के गंगा पानी के नलों को खोल दिया, और इस प्रकार सड़कों में बाढ़-सी आ गई। फौज ने गोली चलाई। कई गिरजे तथा हैटों पर आक्रमण हुए। १५ फरवरी तक ३५ आदमियों के गोली से मारे जाने की खबर थी।

जनता क्रान्ति के पथ पर—ट्राम, बस, टैक्सी बन्द हो गए। कलकत्ते में और उसके आस-पास कांकानाडा, कामरहाटी, वेलधरिया आदि स्थानों में मजदूरों ने हड़ताल की। बी० ए०, ई० आई आर० की लाइनों में गड़बड़ी रही। मेन लाइन की गाड़ियों को बनगा घूमकर जाना पड़ा। लोकल गाड़ी बैरकपुर तक जा रही थी। ई० आई० आर० के सब लोकल बन्द थे। बजबज और डायमण्ड हार्बर की गाड़ियाँ ब्रेस ब्रिज तक जारी रहीं। १३ फरवरी को जनता ने चापाहांटी में एक गाड़ी खड़ी करके ऊपर के दर्जे के डब्बों में आग लगा दी। जनता ने सिगनल का तार काट दिया, और कैबिन तोड़ दिया। बाटानगर के पास नुंगी से १४ फरवरी को १० हजार हड़ताली मजदूरों का जुलूस निकला। जो लोग गोलियों से मरते जाते थे, जनता बराबर जुलूस निकालकर उनको कब्रिस्तान तथा मरघट पर पहुँचाती रही। सरकार की ओर से असम्भव अत्याचार हुए। मिठाई की कई दुकानें फौजियों द्वारा लूटी गईं। होटल पर धावे हुए। रेस्तेराँ मे घुसकर फौजियों ने खाने वालों को निकाल दिया और खुद खाने लगे। कई दिन तक इसी प्रकार के प्रदर्शन होते रहे।

नेताओं ने इसका विरोध किया, फिर भी जनता का जोश बहुत मुश्किल से घटा।

अपना रक्त देने के लिए बेताबी—पुलिस के गोलियों से जो घायल हुए, यह खबर लगी कि उनके इलाज के लिए रक्त की जरूरत है, बस इतने पर हजारों की संख्या में लोग ब्लड बैंक के दफ्तर पर पहुँचे और सब काम छोड़ कर घण्टों कतार में खड़े रहे और जब रक्त देकर लौटे तो उनके चेहरे पर एक दिव्य ज्योति खेल रही थी। यह क्रान्तिकारी, सर्वस्व त्यागी जनता का चेहरा था जो क्रान्ति की आभा से उज्जवल हो रहा था।

नौ-सैनिकों को भद्दी गालियाँ—जनता की तो यह हालत थी । वह तो क्रान्ति के लिए सब कुछ न्योछावर करने के लिए तैयार थी। इधर भारतीय फौज भी बेचैन हो रही थी, इस युद्ध के दौरान में उन्होंने गोरों के कन्धों से कन्धा भिड़ाकर लड़ाई की थी, पर उनकी गुलामी जैसी की तैसी मौजूद थी। विशेषकर भारतीय नौ सैनिक बेचैन थे। ११ फरवरी को तलवार नामक जहाज के कमाण्डर किंग नामक गोरे ने कुछ भारतीय नौ सैनिकों को कुली के बच्चे तथा कुत्ते के बच्चे कहकर गालियाँ दीं। लोगों में क्रोध तो भड़क ही रहा था, आखिर कब तक सहते! गत पाँच वर्षों से वे गोरों के नंगेपन को सहते चले आ रहे थे। पर और नहीं। प्याला भर चुका था। भारतीय नौ-सैनिक अब इस तरह की बातों को सहने के लिए तैयार नहीं थे। फिर आजाद हिन्द फौज ने उन्हें एक मार्ग प्रदर्शित किया था। देश में आजाद हिन्द फौज की अभूतपूर्व आवभगत हुई थी, उसके कारण प्रत्येक भारतीय नौ सैनिक के मन में तमन्ना उठी थी कि काश मैं भी होता तो देश के लिए बलिवेदी पर चढ़ता। आजाद हिन्द फौज ने उनकी आँखें खोल दी थीं। मरने से भला कौन सैनिक डरता है? वह तो हर वक्त जान हथेली पर लेकर ही चलता है। अतएव यदि देश के लिए फाँसी ही हो तो क्या है? इसमें क्या डर है। उन्होंने अब कुत्ते का बच्चा तथा कुली का बच्चा रहने से इनकार कर दिया। लोगों में असन्तोष फैला।

कोई सुनाई नहीं हुई—जिन लोगों को गालियाँ दी गई थीं, उन्होंने प्रतिवाद किया, शिकायत की, अर्जियाँ लिखीं क्योंकि सेना के नियमों के अनुसार भी गोरे कमाण्डर को इस प्रकार गालियाँ देने का कोई अधिकार नहीं था। पर वहाँ

कौन सुनता ? जो रक्षक था वही तो भक्षक हो रहा था। इसलिए कोई सुनाई नहीं हुई।

नाश्ता खराब से झगड़ा शुरू—१८ फरवरी को तलवार जहाज के नौ-सैनिकों को जो नाश्ता दिया गया, वह बहुत ही खराब था। इस पर उस जहाज के ११०० नौ सैनिकों ने हड़ताल कर दी। इस पर कमाण्डर किङ्ग ने उन्हें धमकाया कि काम पर लौटो नहीं तो कड़ी सजा दी जाएगी। पर इससे इन लोगों ने दबने से इनकार किया। वे समझ गए कि लड़ाई कठिन है, इसलिए उन्होंने बाकायदा माँग बनाकर लड़ने का निश्चय किया।

नौ-सैनिकों की माँगें—तदनुसार उन्होंने ये माँगें बनाईं—

(१) खाना ढंग का तथा अच्छा मिले।

(२) कमाण्डर किंग पर कार्रवाई की जाए।

(३) गोरों और भारतीयों की तनख्वाह बराबर हो।

ये उनकी अपनी माँगें थीं, पर उन्होंने केवल अपनी माँगें ही नहीं रखीं जैसा कि आगे की माँगों से व्यक्त हो जाएगा—

(४) सब राजनीतिक कैदी, जिनमें आजाद हिन्द फौज के कैदी भी हैं, फौरन रिहा कर दिया जाए।

(५) हिन्द एशिया से सब भारतीय फौजें वापस बुला ली जाएँ, और भारतीय फौजों को कभी ऐसे काम में न भेजा जाए।

हड़ताल विद्रोह में परिणत—तलवार के बहादुर नौ-सैनिक अपने प्रण पर डटे रहे। अगले दिन फोट बैरक के ८००, कैसल बैरक के २५००, अकबर, चीता, नामक जहाजों के सब नौ-सैनिक, कोलबा और महोल के बेतार केन्द्र के लोग मछली मार तथा हमला नामक जहाजों के नौ-सैनिक, सभी हड़ताल में आ गए। सब मिलाकर १०० छोटे-बड़े जहाजों तथा उपकूल में तैनात नौ-सैनिकों ने हड़ताल कर दी। उन्होंने केवल हड़ताल ही नहीं की। सब जहाजों के अफसरों के हथियार छीन लिए गए और जहाजों पर सैनिकों का अपना पहरा बैठ गया। वायरलेस से सब स्थानों के भारतीय नौ-सैनिकों को बम्बई के नौ-सैनिकों ने यह खबर दी कि भाईयो, हमने लड़ाई छेड़ दी, आप भी इसमें शरीक हो जाएँ। कई स्थानों में क्रान्तिकारी नौ सैनिकों ने ब्रिटिश झंडा उतारकर उसकी जगह

पर तिरंगा, चाँद सितारा तथा लाल झंडा लगा दिया। इन्कलाबी नारे लगने लगे। फिर वे शहर में जुलूस में निकल पड़े। आजाद मैदान में उसकी एक सभा हुई। सरकार की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। जुलूस वालों पर लाठी चार्ज की कोशिश हुई, पर एक गोरे पर ही मार पड़ी।

सरकार द्वारा हमला—बड़ी चिन्ता के बाद बम्बई के सबसे ऊँचे नौ-सैनिक अफसर रियर एडमिरल रात्रे तलवार नामक जहाज में आए, और उन्होंने लोगों से यह कहा कि अपनी माँगें बताओ। इस पर पहले उनसे यह वचन लिया गया कि जो लोग माँग लेकर अगुआ बनकर उनके सामने जाएँगे उनको गिरफ्तार न किया जाए, तभी माँगें बताई जा सकती हैं। इस पर रात्रे राजी हो गए। उनको माँगें दी गईं, उन्होंने कहा कि ४½ बजे शाम तक इनका जवाब दिया जाएगा। इसके बाद क्या हुआ, पता नहीं। शायद ऊपर के अफसरों से परामर्श करने के बाद रात्रे इस नतीजे पर पहुँचे कि माँगों के सम्बन्ध में कुछ कहना गलत होगा, क्योंकि गुलामी के अनुशासन में फर्क आएगा, इसलिए कोई उत्तर नहीं दिया गया। उलटा 'हमला' के ३०० नौ सैनिक गिरफ्तार कर लिए गए।

संगठित लड़ाई—अब तो मालूम हो गया कि लड़ाई लम्बी है। इस कारण प्रत्येक जहाज में सेण्ट्रल स्ट्राइक कमेटी चुनी गई, जिससे कि अनुशासन के साथ काम हो सके। इसके बाद सरकार ने उपकूल के सारे नौ-सैनिक कैम्पों पर पहरा बैठा दिया। अवश्य समुद्र में जो जहाज थे, उन पर कोई पहरा नहीं बैठाया जा सका। इसके अतिरिक्त सरकार ने नौ-सैनिकों को अपनी तरफ मिलाने के लिए जो खाने की सूची नौ-सैनिक की ओर से दी गई थी, उसी के अनुसार अच्छा खाना भेजना शुरू किया, पर इससे काम न बना। फिर नौ-सैनिकों की एक सभा हुई और उसमें यह तय हुआ कि युद्ध जारी रखा जाए।

लड़ाई फैली—करांची में भी जो नौ-सैनिकों के जहाज थे, उनमें भी हड़ताल शुरू हो गई। चमक, बहादुर, हिमालय, आदि में हड़ताल हो गई। कलकत्ता में भी राजपूताना तथा हुगली में हड़ताल हो गई।

सरकारी फौज पीछे हट गई—१९४६ की २१ तथा २२ तारीख को बम्बई तथा करांची में नौ-सैनिकों के ऊपर पहरे के लिए मराठे फौजी रखे गए थे।

नौ-सैनिकों ने इन मराठों से कहा कि तुम भी भारतीय हो, हम भी भारतीय हैं फिर क्यों हम एक-दूसरे पर गोली चलाएँ। मराठे बोले कि हमारे पास खाली कारतूस हैं। २१ के सवेरे कैसल बैरक के पास कुछ खाली कारतूस चले, और फौज नौ-सैनिकों के कैम्प की ओर बढ़ने लगी। अब नौ-सैनिकों ने फौरन रायफल, तमंचा आदि लेकर सामना करने का प्रयत्न किया, इस पर सरकारी फौज पीछे हट गई।

बाकायदा लड़ाई—इसके बाद तो युद्ध ही शुरू हो गया। नौ-सैनिकों ने मशीनगनों को ठीक स्थानों पर लगा दिया। सामने ही कुछ गोरी फौज खड़ी थी जिनसे यह खतरा था कि न मालूम वे कब चढ़ आएँ। इसलिए उस तरफ मशीनगन चलाया गया और बम फेंका गया। कुछ गोरों को चोटें आईं और कुछ तो मरे भी। एक नौ-सैनिक भी मारा गया। जो भी नौ-सैनिक मरा, उस पर बाकायदा प्रदर्शन किया गया और उस पर खून का एक क्रूस बना दिया गया।

गोरे भागे—कुछ गोरे ऊँची जगह पर खड़े होकर यह कोशिश कर रहे थे कि वहाँ से कैसल बैरक पर गोली चलाई जाए। इसको 'आसाम' और 'पंजाब' जहाज के नौ-सैनिकों ने देख लिया और उन्होंने [उन गोरों पर गोली चलाई। फौरन गोरे भाग निकले। इस प्रकार सरकारी फौज के दांत खट्टे हो गए।

गाडफ्रे की धमकी—इसके बाद जब साम्राज्यवाद ने देखा कि इस प्रकार मामूली प्रयत्नों से लड़ाई जीती नहीं जाएगी तो उन्होंने अब इससे बड़े कदम उठाने का विचार किया। तदनुसार एडमिरल गाडफ्रे ने वायरलेस से यह धमकी दी कि विद्रोहियों ने हथियार टेक कर आत्मसमर्पण नहीं कर दिया तो फौरन उन पर हमला कर दिया जाएगा और बड़ी भारी फौज की मदद से उनको बिल्कुल तबाह कर दिया जाएगा। जैसा कि स्वयं एक नौ विद्रोही ने लिखा है, और जिससे हम विवरण संकलित कर रहे हैं कि कुछ हवाई जहाज नौ-सैनिकों के सिर पर उड़ रहे थे, इसके साथ ही कुछ बड़ी रणतरियाँ भी मौके पर आ गई थीं और वे भारतीय नौ-सैनिकों को सजा देने के लिए तैयार थीं।

जनता विद्रोह के साथ—पर जनता की सहानुभूति नौ-सैनिकों के साथ थी, जनता तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से ऊब चुकी थी, और वह इसके विरुद्ध किसी भी विद्रोही को अभिनन्दित करने के लिए तैयार थी। जनता इन विद्रोहियों

को हर प्रकार की चीजें, सिगरेट, खाद्य द्रव्य, फलमूल पहुँचा रही थी। जनता के साथ सेना की नाड़ी एक हो गई थी और दोनों का हृदय साथ-साथ धड़क रहा था। जनता केवल इसी बात पर अपनी सहानुभूति को सीमित नहीं रखना चाहती थी कि फलमूल दिया जाय, बल्कि वह इस संग्राम में भाग लेना चाहती थी। वह इस बात पर क्षुब्ध थी कि गोरे भारतीयों पर गोली चलाने की हिम्मत कर रहे थे।

पार्टियों से अपील—इस समय तक नौ-सैनिक के विद्रोहियों की एक केन्द्रीय कमेटी बन चुकी थी। यह कमेटी सारे विद्रोह को एक सूत्र तथा अनुशासन में बाँधकर चलाने का काम कर रही थी। संगठन की शक्ति का सुन्दर परिचय दिया गया। अब इस कमेटी की तरफ से देश के नेताओं तथा राजनीतिक दलों के नाम अपील की गई, और उस अपील में कहा गया कि हम तो केवल शान्तिपूर्वक हड़ताल मात्र करना चाहते थे, पर सरकार ने हमें कुचल डालना चाहा तो हमने उससे इनकार किया, कांग्रेस लीग तथा अन्य पार्टियों के नेताओं को चाहिए कि जनता हमारे संग्राम का समर्थन करे।

हिन्दुस्तान—इस तरफ बम्बई में जो कुछ हो रहा था, हो ही रहा था उधर २१ फरवरी को साम्राज्यवाद ने एक बलूची रेजिमेंट को इसलिए भेजा कि वह जाकर 'हिन्दुस्तान' जहाज पर कब्जा करले। पर बलूचियों ने ऐसा करने से इनकार किया। तब गोरी फौज बुलाई गई, इसके बाद हमला हुआ। छोटे मशीनगन काम में लाए गए। तब गोरी फौज उलटे पांव भागी, पर फिर हमला हुआ। अब मशीनगन काम में लाए गए। तब गोरी फौज फिर भागी और चुप पड़ी रही।

आत्मसमर्पण—२२ तारीख को करांची में जिस समय 'हिन्दुस्तान' एक भाटे के कारण कम पानी में फँसा हुआ था, और वह अपने मशीनगनों को इस्तेमाल करने में असमर्थ था, उस समय फिर गोरों ने हमला बोल दिया। ६ मारे गए और २५ घायल हुए, तब हिन्दुस्तान ने आत्म-समर्पण कर दिया। फौरन बाकी लोग गिरफ्तार कर लिए गए। करांची में 'हिन्दुस्तान' के पराजित हो जाने से बाकी नौ-सैनिकों ने भी आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार करांची में आन्दोलन की समाप्ति हो गई।

विद्रोह का विस्तार—इस सैनिक विद्रोह का विस्तार कितना था, यह बताने के लिए यह गिना दिया जाय कि बताई हुई जगहों के अतिरिक्त कहाँ-कहाँ विद्रोह हुए ! कोचीन में ७००, विजगापट्टम में १३००, यहाँ तक कि काठिया-वाड़ के जामनगर में भी विद्रोह हुआ।

काठियावाड़ की वीरता—विद्रोही नौ-सैनिक ने अपने विवरण में लिखा है कि गुजरात के मोरवी राज्य के 'काठियावाड़' नामक छोटे से जहाज ने बड़ी वीरता दिखलाई। 'काठियावाड़' ने यह तय किया कि जब जहाज बन्दर से निकले, उसी समय विद्रोह कर दिया जाय और बम्बई केन्द्र में पहुँचा जाय। दस बजे दिन जहाज छूटा, पर थोड़ी दूर जाने के बाद करांची के हिन्दुस्तान जहाज से यह संदेश मिला कि हम विपत्ति में हैं, हमारी मदद करो तदनुसार १२० नौ सैनिक वाले इस छोटे से जहाज ने बम्बई जाना स्थगित कर करांची जाने का निश्चय किया। पर एक बजे उन्हें मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसलिए अब नौ-सैनिकों की सभा हुई और वे बम्बई के लिए फिर रवाना हो गए। इस प्रकार वह जहाज बम्बई पहुँचा और जब नौ-सैनिक-विद्रोह आमतौर से खत्म हो गया तब उसने भी आत्मसमर्पण किया।

सहानुभूति में प्रदर्शन—इस विद्रोह के साथ-साथ बम्बई में जनता की हड़-ताल भी हुई। जनता ने फ्लोरा फाउण्टेन इलाके पर कब्जा कर लिया। कुछ वर्दी पहने हुए गोरे जा रहे थे उन पर लाठियों से हमला हुआ। वे भाग निकले। फ्लोरा फाउण्टेन में एक अमेरिकन झण्डा जलाया गया। २२ फरवरी को लाखों मजदूरों ने भारतीय नौ सैना के साथ सहानुभूति दिखाने के लिए हड़ताल की। कलकत्ते में भी बी० ए० आर० में हड़ताल हो गई। चीतपुर लोकोशैड, कैरेज और वैगन और रनिंग स्टाफ में हड़ताल हुई। साथ ही डलहौजी स्कवायर के भारतीय हवाई सेना के १५० कार्यकर्त्ताओं ने भूख हड़ताल कर दी। २३ फरवरी को बम्बई में भयंकर परिस्थिति हो गई। यत्रतत्र गोलियाँ चलीं। दादर और मोहिम के बीच बी० बी० सी० आई० की दो ट्रेनों में आग लगाकर जला दिया गया। मोहिम स्टेशन जला दिया गया। उस दिन अस्पताल की खबरों से मालूम हुआ कि १३० से अधिक मरे और ७०० घायल हुए। २ पुलिस वाले मरे और १२७ घायल हुए। करांची में ईदगाह में सभा की चेष्टा हुई, जिस

पर गोली चलाई गई । इस प्रकार जनता ने नौ विद्रोह का पूरा समर्थन किया। डिलीसल रोड और डंकन रोड बम्बई में पूरी लड़ाई हो गई ।

सरदार पटेल ने आत्मसमर्पण कराया—इसके बाद सरदार पटेल तथा अन्य नेताओं के बीच में पड़ने से विद्रोह खत्म हो गया । सरदार ने यह कहा था कि उनकी वाजिब माँगें मानी जाएँगी तथा उनको कोई सजा नहीं मिलेगी । पर उन्हें बाद को सजा मिली । इन नौ विद्रोहियों का भारत पर क्या एहसान है, यह इससे ज्ञात होगा कि इसी नौ विद्रोह के साथ-साथ क्रिप्स साहब दोबारा प्रस्ताव लेकर चले । पर हम अपनी क्रान्तिकारी शक्ति को फिर भी नहीं पहचान पाए ।